॥ श्री ॥

सर्वदर्शनसंग्रहः

श्रीमन्मध्वाचार्य विरचितः

मुजफ्फरपुर जनपदान्तर्गत मधुरापुर निवासी
पं. श्रीउदयनारायण सिंह कृत
तथा
गोविन्द सूरि विरचित
हिन्दी टीका सहित:

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन,
बम्बई-४.

॥ श्रीः ॥

सर्वदर्शनसंग्रहः

श्रीमन्मध्वाचार्य विरचितः

मुजफ्फरपुर जनपदान्तर्गत मधुरापुर निवासी
पं. श्रीउदयनारायण सिंह कृत

तथा

गोविन्द सूरि विरचित
हिन्दी टीका सहितः

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन,
बम्बई-४.

संस्करण : अक्टुबर २००६, सम्वत् २०६३

मूल्य १०० रुपये मात्र।

मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers
Khemraj Shrikrishnadass
Prop: Shri Venkateshwar Press
Khemraj Shrikrishnadass Marg,
7th Khetwadi, Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.khe-shri.com
E-mail : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj for M/s Khemraj Shrikrishnadass
Prop. Shri Venkateshwar Press, Mumbai-400004,
at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate,
Pune -411 013.

SARVADARSHAN SANGRAH

OR

AN EPITOME OF THE DIFFERENT
SYSTEMS OF
INDIAN PHYLOSOPHY
BY

MADHAVACHARYA

TRANSLATED INTO HINDI

BY

PANDIT UDAYA NARAIN SINH

OF

MADHURAPUR, DIST. MUZAFFARPUR

KHEMRAJ SHRIKRISHANDASS PUBLICATION,

BOMBAY-4.

समर्पण ।

भारतवर्षके गौरवस्तम्भ वैश्यवंशावतंस परमोदार देवभाषा
(संस्कृत) उद्धारक वैष्णवकुलचूडामणि श्रीमान्
सेठ–खेमराज श्रीकृष्णदासजी महोदय.

श्रीमन् !

आपने संस्कृतभाषाकी उन्नति करके हम भारतवासियोंका परम उपकार किया है । ईश्वर–आप ऐसे धर्म्मरक्षक; दानशील और आर्ष एवं आधुनिक ग्रन्थोंके प्रचार करनेवालोंकी संख्या प्रतिदिन बढावे ।

प्राचीन ग्रन्थोंसे माध्वाचार्य्यविरचित " सर्वदर्शनसंग्रह " नामक दर्शन ग्रन्थ भारतवर्षमें-भलीभाँति प्रख्यात है–परन्तु ग्रन्थ केवल संस्कृतभाषामें होनेके कारण सर्व्वोपयोगी नहीं होते देखकर मैंने इसका भाषामें सरल अनुवाद किया है; जिससे सब लोगोंका उपकार हो ।

इस सानुवाद ग्रन्थको आपके करकमलमें अर्पणकर आशा करताहूं कि आप इसे सुन्दर कागजपर शुद्ध छापकर सम्पूर्ण भारतवर्षमें विज्ञापनद्वारा सूचना दे प्रचारित करेंगे । जिससे लोगोंका उपकार होगा एवं आपकी अतुल कीर्ति फलगा ।

स्थान–मधुरा पुर,
जि० मुजफ्फरपुर.

आपका–शुभचिंतक–
उदयनारायणसिंह शा० ।

भूमिका।
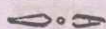
भारतभूमि सब रत्नोंकी प्रसावित्री है। भारतवर्ष संसारका प्रदर्शनागार कहकर, भूमण्डलमें प्रसिद्ध है। भारतवर्ष प्रकृतिका प्रियतम निकेतन है। प्रकृति देवीकी विभिन्न भीमकान्त मूर्त्तिका एकत्र समावेश, भारतमें पूर्णरूपसे विकासित दीख पडती है। या गगनस्पर्शी उत्तुङ्गशृङ्ग समन्वित हिमधवलित पर्वतमाला या उत्ताल तरङ्गमय भीतिजनक नीलवर्ण सालिलपूर्ण समुद्र, या बहुदूर प्रवाहिनी आवर्त्तमयी सुविस्तीर्णा स्रोतस्वती, या वालुका राशिपूर्ण विभीषिकाकी साक्षात् प्रतिकृति मरुभूमि, या भीषण हिंस्रक श्वापदसंकुल जनमानवविहीन गहन अरण्यानी, या सौधमालापरिशोभित कोलाहलपूर्ण सुन्दरनगरी, या नानाविध सुरस फल पुष्प विभूषित नयन तृप्तिकर सुरम्य उपवन, या लतिका परिवेष्टित सुमधुर पक्षिरव विनादित सुविशाल वृक्षराजि, या श्यामल शस्य परिशोभित कृषकके यत्न परिरक्षित शस्यक्षेत्र (धान्यका खेत), या योगमग्न तपस्वियोंका शान्तिरसास्पद तपोवन—भारतवर्षमें किसीके दृश्यका अभाव नहीं है। भारतविभिन्न भाषाभाषी विभिन्न धर्म्मावलम्बी विभिन्न जातीय लोगोंकी आवासभूमि है। भारतवर्ष भिन्न भूमण्डलके किसी प्रदेशमें जाति, धर्म, भाषा वर्ण, स्वभाव और आचारगत सम्पूर्ण वैसादृश्यका इस प्रकार एकत्र सन्निवेश परिलक्षित नहीं होता। संक्षेपसे, भारतवर्षको क्षुद्रायतन पृथिवी वा छोटा भूमण्डल कहनेसे भी अत्युक्ति दोष नहीं होगा।

भारत जिस प्रकार प्रागुक्त मनोमुग्धकर नैसर्गिक दृश्यादिमें जगत्में सबसे श्रेष्ठ एक समय धन एवं ज्ञानरत्नसे भी भारत उसीप्रकार श्रेष्ठ आसनपर अधिष्ठित था महामूल्य धनरत्नकी प्रसवित्री कहकर मिसरीय; फिनिसीय, इहूदी, ग्रीक, रोम्यान, आरब और चैनिक (चिनदेशका) प्रभृति नाना प्राचीन वैदेशिक जाति वाणिज्य व्यपदेशसे भारतमें आकर, भारतके धनसे अपना २ धनागार (खजाना) परिपूर्ण किये। भारतका अतुल ऐश्वर्यप्राप्ति दुराशामें विमोहित होकर, नानाजातीय नानादेशीय, दिग्विजयीगण, भारतको अपने करतलगत करनेके लिये विभिन्नसमयमें प्रयासी हुए हैं, एवं निदारुण उत्पीडनसे निरीह भारतवासीको उत्त्युक्त उत्पीडित और भयसंत्रस्त कर छोडा।

विधर्म्मी और विजातीय वैदेशिक दस्युदलके पुनः पुनः आक्रमणमें भारतवर्ष विध्वस्त, विपर्यस्त और परपदानत होता एवं भारतकी अतुलनीय धनराशि बारम्बार लुटी जाती है बहुतसे वैदेशिक परिव्राजक विभिन्न समयमें चक्षुकर्णके विसम्बाद निवटानेके लिये भारतमें आकर अपनी २ भाषामें भारतकी यशोगीति सग्रंथित कर

भारतकी मनोमुग्धकर प्रतिकृति जगत्के सामने रखकर, अपनी २ उदारता और महानुभावताके उदाहरण दिखला गये हैं ।

प्राचीन भारत जिस प्रकार धन रत्नोंसे जगत्में सबसे श्रेष्ठ था । जिस समय पृथिवीका अधिकांश देश असभ्य आममांसभोजी अरण्याचारी मनुष्यद्वारा परिपूर्ण था—उस समय भारत सभ्यताके उच्चतम चोटीपर अधिष्ठित होकर, अपने सौभाग्यप्रभासे जगत्को मुग्ध और पुलकित करता था । जिस समय सम्पूर्ण जगत् घोरतम अज्ञानान्धकारमें समाच्छन्न था, जिस समय ज्ञान और सभ्यताका क्षीण आलोकभी युरोप आदि महादेशमें शनैः शनैः पादविक्षेपसे नहीं प्रसृत होता था,—उस समय भारत विद्या बुद्धि, ज्ञान और सभ्यताके पूर्ण आलोकसे जगत्को आलोकितकर, अविनश्वर गौरव महिमामें सविशेष गौरवान्वित हुआ था । क्या धर्म्म, क्या विज्ञान, क्या दर्शन, क्या गणित, क्या ज्योतिष, क्या भैषज्यतत्त्व, क्या काव्य, क्या पुराण, क्या शिल्प, क्या वाणिज्य क्या भाषा, क्या साहित्य, सर्वविध विषयोंमें भारत संसारके शीर्षस्थानाय था । भारतका विज्ञान और सभ्यता आरब आदिके द्वारा युरोपमें लाया जाकर युरोपके ज्ञान और सभ्यताको देदीप्यमान आलोकसे समुज्ज्वल किया । ईस्वी सन् १००० से १७०० पर्य्यन्त भारतके शिष्यस्थानीय अरब, उपदेष्टाके वरणीय पदमें अधिष्ठित रहकर युरोपमें विद्या और ज्ञानकी सुविमलज्योति विकिरणपूर्वक, युरोपको समुद्भासित किया है ।

भारतका सर्वविध विषयक अभ्युदय जिस प्रकार सबकी अपेक्षा प्राचीन, उसी परिमाणसे उसका प्राचीनकालीय आख्यानमय इतिहास विद्यमान नहीं । विभिन्नप्रदेशीय राजन्यवर्गकी धारावाहिक वंशावली और कीर्तिकलाप, एवं तदीय आविर्भाव कालादिका विनिर्णायक, वैज्ञानिक इतिहासका प्रवेश द्वारा स्वरूप, सर्वाङ्गसुन्दर आख्यानमय प्राचीन इतिहास—केवल भारतवर्षहीका क्यों, ग्रीस, रोम, मिसर, फिनिसिया, एसिरिया, वेविलन पार्थिया पारस्य और चीन प्रभृति किसी देशका सर्वाङ्गीन भावसे विद्यमान नहीं । काल्पनिक उपन्यास और जनश्रुति, सबही देशोंमें अतिप्राचीनकालीय अतीतसाक्षी इतिहासका वरणीय पदपर समासीन रहा है । किन्तु जो इतिहास अतीतका एकमात्र वर्षीयान् अपक्षपाती साक्षी—जो इतिहास प्रकृत प्रस्तावसे समाजका अभ्रान्त उपदेष्टा और परिचालक,—जो इतिहास मानवजीवनका और मानवसमाजका यथा यथा प्रतिकृति अङ्कितकर, समाजका आविर्भाव उन्नति और अवनति यथोचित कारण, निर्देशपूर्वक अभ्रान्तरूपसे प्रदर्शन करता—जो इतिहास सुनिपुण शिल्पविद्का सुकौशल विचित्रित विचित्र फूलकी नाईं समाजका यथार्थतत्त्व सुस्पष्टरूपसे प्रकट करता है । सुविमल स्वच्छ दर्पणकी नाईं जिसमें समाजकी यथायथ प्रतिकृति प्रतिभाषित होती है—उस वैज्ञानिक इतिहासका यथो-

पयुक्त उपकरण प्रचुररूपसे संस्कृतसाहित्यमें विद्यमान रहाहै । संस्कृतसाहित्यमें भारतीय आर्यजातिका जातीय जीवन, जातीय इतिहास, जातीय चरित्र, जातीय धर्म, जातीय ज्ञान और जातीय विद्या, बुद्धि, जातीय रीति, नीति, और जातीय सभ्यता स्वर्णाक्षरमें सुस्पटरूपसे लिपीबद्ध है । भारत किस समय जो अद्वितीय नाइबुर, ग्रोट, जिवनवा प्रेङ्कट आविर्भूत होकर, इन सब बहुमूल्य ऐतिहासिक तत्त्व एकत्र संग्रहीतकर जगत्को अच्छीप्रकार दिखलाकर विमोहित करेगा सो भगवान् जाने ।

जो आर्यजाति अतुलसाहस, विक्रम, तेजस्विता और मनस्विता प्रभावसे भूमण्डलमें अक्षय कीर्ति लाभकरगयी, जो आर्यजाति एकदा पृथिवीमें सब विषयोंमें सर्वश्रेष्ठ जाति कहकर परिगणित हुई थी । जो आर्यजाति ज्ञान और सभ्यताका विमल आलोकमें जगत्को उद्भासित कर, जगत्के शिक्षा गुरु बहुसम्माननाई वरणीय पदपर अधिरुढ थी–जिस आर्यजातिके गौरव प्रभावसे भारतवर्षका इतिहासके शीर्षस्थानमें विराज रहा है । जिस आर्यजातिके वंशधर कहकर हमलोग परपददलित होकरभी अद्यापि सभ्यसमाजमें ससम्मानसे परिगृहीत होते हैं, उसी जगतगुरु आर्य्यजातिके पवित्र कीर्तिपूर्ण इतिहास आज अदृष्टचक्रके आवर्तनसे कीर्ति विलोप कारी करालकालके विस्मृति कवल (ग्रास) में निहित है। व्यास, वाल्मीकि, कालिदास प्रभृति जिस देशके कवि,–पाणिनि, पतञ्जलि प्रभृति जिस देशके वैयाकरण, कपिल, कणाद और गौतम प्रभृति जिस देशके दार्शनिक–चरक, सुश्रुत आदि जिस देशके चिकित्सक,–मनु, नारद, बृहस्पति, रघुनन्दन प्रभृति जिस देशके धर्मोपदेष्टा–आर्यभट्ट पराशरादि जिस देशका ज्योतिर्वित्,–बुद्ध, शङ्कराचार्य, रामानुज मध्वाचार्य्य आदि जिस देशके धर्म्म प्रचारक,–मल्लिनाथ, सायनाचार्य आदि जिस देशके भाष्यकार–अमरसिंह, महेश्वर आदि जिस देशके कोषकार–उस भारत विलुप्तप्राय गौरवके उद्धारसाधनार्थ अतीतसाक्षी इतिहासके आश्रय अवलम्बन करनेके लिये निश्चेष्ट, निष्क्रय परपदानत भारतवासी आर्यसन्तानकी प्रवृत्ति और उत्साह उत्पन्न नहीं होता । जो जाति पूर्वपुरुषाओंके कीर्ति कल्याणका यथायोग्य आदर और सम्मान करना नहीं जानती, जो जाति आत्मगौरव और आत्माभिमानके मर्म्म हृदयङ्गम करनेमें समर्थ नहीं होती, उस जातिका अभ्युदय सुदूर पराहत, उस जातिका पतन और परपदानति, अवश्यम्भावी । इसी कारण विधाताने भारतके भाग्यमें ऐसी दशाविपर्यय अदृष्ट नेमिका इस प्रकार निदारुण परिवर्तन लिख रक्खा है एवं स्वाधीनताके साथ २ भारतकी विद्या, बुद्धि, ज्ञान, धर्म, कीर्ति, गरिमा, समस्त विलुप्त किया है जिस भारत निकटसे शिक्षा लाभकर, युरोपादि सुलभ्यदेश-

की इतनी श्रीवृद्धि हुई है,-वही भारत इस समय ज्ञानके लिये युरोपके समीप भिक्षा प्रार्थी, वही सुविज्ञ भारत इस समय सूत्रसञ्चालित क्रीडापुत्तलीकी नाईं निरवच्छिन्न जडभावापन्न वही भारत इससमय हिताहित बोधशून्य चित्तमें युरोपके अनुकरण करनेमें व्यतिव्यस्त है।

अमृतलाभकी आशासे आज युरोपीय पण्डितवर्ग बद्धपरिकर होकर भारतके अतुलनीय गौरवका निदानभूत संस्कृतसाहित्य समुद्रमन्थन करते हैं-आज भारतके अतीतज्ञानका अक्षयभण्डार युरोपिय पण्डितोंके अविचलित यत्न, अदम्य उत्साह और दृढतर अध्यवसायमें, जीवनीशक्तिरहित, निमीलितनेत्र और मोहनिद्राशायित भारतवासीके सन्मुखमें उपस्थापित रहा है, भारतवासी निश्चेष्टभावसे उस विस्मयचकित हृदयमें चाहकर देखते हैं। भारतके भूतपूर्व गौरव माहिमाके प्रसङ्ग अपने २ देशमें मुक्त कण्ठसे प्रचार पुरःसर, युरोपके मनस्वी पाण्डितवर्ग कृतार्थमान्य होते हैं। मृतसञ्जीवनी विद्याप्रभावसे विलुप्तप्राय संस्कृतसाहित्यको पुनर्जीवितकर, भारतके निर्जीव और निष्पन्ददेहमें मृदुमन्द वेगसे वे लोग जीवनीशक्तिके तडितालोक सञ्चालित करते हैं, एवं भारतके पूर्वतन अपूर्व कीर्तिकलाप द्वार २ पर डङ्का बजाकर मोहनिद्रामें चिराभिभूत भारतवासीको जगाकर सचेत करते हैं। पुरा तत्त्वानुसन्धायी शास्त्रज्ञ युरोपीय पण्डितोंको सौ सौ धन्यवाद, हम लोग उनके प्रदर्शित युक्ति, तर्क, विचार, शक्ति और गवेषणके प्रभावसे, भारतके अनेक अपरिज्ञेयकल्पाविषय परिज्ञानसे समर्थ होते हैं।

संस्कृत साहित्यकी नाईं अनन्त रत्नराजिपरिपूर्ण साहित्य संसारमें दुर्लभ है। देवभाषा संस्कृतकी नाईं मधुरभाषा पृथिवीमें कहीं नहीं है। संस्कृतभाषा और संस्कृतसाहित्य जगत्में सबसे श्रेष्ठ पदपर अधिष्ठित है। संस्कृत साहित्यके अक्षयभण्डारमें क्या २ अमूल्य रत्नराजि सन्निविष्ट है, सो केवल संस्कृतभाषामें ग्रन्थोंके हानेसे सर्वसाधारणको सम्यक्तया ज्ञात नहीं।

आज मैं उन्हीं संस्कृतके अनेक रत्नोंमेंसे "सर्वदर्शनसंग्रह" नामक ग्रन्थके भाषानुवादको कर पाठकोंको अवलोकन कराता हूं। इस भारतवर्षमें बहुत दिनोंसे वैदिकमतके विरुद्ध अनेक बौद्ध, चार्वाक, आर्हत, जैन आदि मत प्रचरित हैं और प्रतिदिन इन मतोंके अतिरिक्त नये २ सम्प्रदाय वा मत बढते जाते हैं, परन्तु उक्त बौद्ध, आदिके ग्रन्थोंको सर्व साधारण लोग नहीं देखते इस कारण प्रत्येक प्रधान २ मतोंका हाल सब नहीं जानते। संस्कृतमें उक्तमतोंके सिद्धान्त वर्णनके लिये श्रीमध्वाचार्यजीने " सर्वदर्शनसंग्रह " नामक ग्रन्थ प्रणयन किया है। जो संस्कृतमें होनेके कारण सर्व साधारणको सुविख्यात नहीं। पर यह ग्रन्थ ऐसा प्रयोजनीय है

क जितने पण्डित और धर्म्मके सूक्ष्मभेद जिज्ञासु व्यक्ति हैं । प्रायः सबही इसको एक एक प्रति रखते हैं । इसमें क्रमसे १ चार्वाकदर्शन, २ बौद्धदर्शन, ३ आर्हतदर्शन, ४ रामानुजदर्शन, ५ पूर्णप्रज्ञदर्शन वा वेदान्तदर्शन, ६ नकुलीशपाशुपतदर्शन, ७ शैवदर्शन, ८ प्रत्यभिज्ञादर्शन, ९ रसेश्वरदर्शन, १० औलुक्यदर्शन ११ अक्षपाददर्शन १२ जैमिनिदर्शन १३ पाणिनिदर्शन १४ सांख्यदर्शन १५ पातञ्जलदर्शन इन पन्द्रह दर्शन वा मत या सम्प्रदाय या सिद्धान्तोंका पूर्णतया वर्णन है । इस एकही ग्रन्थके पढनेसे उक्त पन्द्रह मतोंके अनेक ग्रन्थोंके सारभागका बोध होता है । दर्शन शास्त्रोंका अनुवाद करना बहुत कठिन है उसपरभी प्राकृतभाषामें तो औरभी कठिन है पर जहांतक सरल करते बना अनुवाद किया है-सज्जन पाठकगण अनुवादके दोष परित्यागपूर्वक-मूलके आशयको समझकर इस ग्रन्थसे लाभ उठावेंगे तो मेरा परिश्रम सफल होगा । इसमें पहिली बार उदयनारायणसिंहने इसका अनुवाद किया फिर उसमें जो त्रुटि थी उसको बराबर करके दूसरी बार गोविंदसूरीने अनुवाद किया है । अलमिति बुद्धिमद्वर्येषु ।

स्थान--मधुरापुर,	प्रथमअनुवादक-
डाक विठूपुर,	उदयनारायणसिंह,
जिला, मुजफ्फरपुर.	द्वितीयअ.-गोविन्दसूरी.

॥ श्रीः ॥

सर्वदर्शनसंग्रहस्य विषयानुक्रमणिका ।

इति विषयानुक्रमणिका समाप्ता ।

श्रीः ।

अथ सर्वदर्शनसंग्रहः ।

भाषाटीकासमेतः ।

अथ चार्वाकदर्शनम् ।

नित्यज्ञानाश्रयं वन्दे निःश्रेयसनिधिं शिवम् ।
येनैव जातं मह्यादि तेनैवेदं सकर्तृकम् ॥ १ ॥

टीकाकारकृत मङ्गलाचरण ।

नत्वा श्री मद्धयग्रीवं विद्यारण्यविनिर्म्मितम् ॥
व्याचष्टे प्राकृतगिरा सर्वदर्शनसंग्रहम् ॥ १ ॥

ग्रन्थसमाप्ति तथा ग्रन्थप्रचारके प्रतिबन्धक दुरितकी शान्तिके लिये करते हुए मंगलका शिष्यशिक्षाके लिये उल्लेख करते हैं—"नित्यज्ञानेत्यादि" नित्य जो ज्ञान उसका आश्रय और निश्रेयस जो मोक्ष उसका निधि अर्थात् मोक्षको देनेवाले शिव (महेश्वर) को मैं वन्दना करता हूं जिनसे पृथिव्यादि जगत उत्पन्न है। अतएव उन्हीं महेश्वरसे यह जगत् सकर्तृक भी है । यहां पर नित्य ज्ञान पदसे जीवकी व्यावृत्ति की गई आश्रय पदसे ईश्वरको ज्ञानस्वरूपत्वका निषेध किया गया योगरूढि शिवपदसे पतिपादनीय देवताविशेषको कल्याण गुणाकरत्व और 'येनैव' इत्यादिसे "यतो वा इमानि भूतानि" इत्यादि श्रुतिप्रतिपादित जगत्कारणत्व और परब्रह्मत्व सूचित किया गया ॥ १ ॥

पारं गतं सकलदर्शनसागराणा-
मात्मोचितार्थचरितार्थितसर्वलोकम् ।
श्रीशार्ङ्गपाणितनयं निखिलागमज्ञं
सर्वज्ञविष्णुगुरुमन्वहमाश्रयेऽहम् ॥ २ ॥

देवता नमस्कारके अनन्तर "यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ" इत्यादि श्रुतिप्रतिपादित गुरुप्रपत्तिरूप मंगलको करते हैं "पारङ्गतेत्यादि"—समस्त दर्शन रूपी समुद्रके पारङ्गत और आत्मोचित तत्वोपदेशसे कृतकृत्य किया संसारको जिन्होंने एवम्भूत शार्ङ्गपाणिके पुत्र सर्वज्ञ विष्णुका मैं आश्रयण करता हूं ॥ २ ॥

श्रीमत्सायणदुग्धाब्धिकौस्तुभेन महौजसा।
क्रियते माधवार्येण सर्वदर्शनसंग्रहः ॥ ३ ॥

श्रीसायणवंशरूपी क्षीरसमुद्रमें कौस्तुभमणिके समान महाप्रतापी माधवाचार्य सर्वदर्शन-संग्रह ग्रन्थको करते हैं ॥ ३ ॥

पूर्वेषामतिदुस्तराणि सुतरामालोडय शास्त्राण्यसौ
श्रीमत्सायणमाधवः प्रभुरुपन्यास्थत्सतां प्रीतये।
दूरोत्सारितमत्सरेण मनसा शृण्वन्तु ते तत्सज्जना
माल्यं कस्य विचित्रपुष्परचितं प्रीत्यै न सञ्जायते ॥ ४ ॥

सायण वंशोद्भव महामान्य श्रीमाधवाचार्यने पूर्वजोंके अतीव दुर्बोध शास्त्रको, सम्यक् प्रकार मथन करके सज्जनोंके प्रमोदार्थ सर्वदर्शन संग्रहका उपन्यास किया सज्जन गण निर्मत्सरचित्तसे उसका श्रवण करें, क्योंकि विचित्र फूलोंसे बनी हुई माला किसके मनको आह्लादकारक न होगी ॥ ४ ॥

अथ कथं परमेश्वरस्य निःश्रेयसप्रदत्वमभिधीयते बृहस्पतिमतानुसारिणा नास्तिकशिरोमणिना चार्वाकेण दूरोत्सारितत्वात्। दुरुच्छेदं हि चार्वाकस्य चेष्टितम्। प्रायेण सर्वप्राणिनस्तावत

"यावज्जीवं सुखं जीवेन्नास्ति मृत्योरगोचरः।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः" इति

लोकगाथामनुरुन्धाना नीतिकामशास्त्रानुसारेणार्थकामावेव पुरुषार्थौ मन्यमानाः पारलौकिकमर्थमपह्नुवानाश्चार्व्वाकमतमनुवर्त्तमाना एवानुभूयन्ते अत एव तस्य चार्वाकमतस्य लोकायतमित्यन्वर्थमपरं नामधेयम् ॥ ५ ॥

विषयोन्मुख चित्तोंको देहात्माभिमानादिक स्वाभाविक होनेसे तत्प्रतिपादक तथा सब मतका निषेध्य होनेके कारण प्रथम चार्वकमतोपन्यास करते हैं--"अथेत्यादि" परमेश्वरको मोक्षप्रद कैसे कहते हो? क्योंकि सुरगुरुमतानुयायी नास्तिक शिरोमणि, चार्वाकने इसको अत्यन्त दूषित किया है। चार्वाकमतका निराकरण भी अशक्य है। क्योंकि प्रायः सभी लोग "मृत्युसे कोई भी बच नहीं सकते अतः जब तक जीवे तब तक सुखपूर्वक जीवे। जलाकर भस्म किये हुये देहकी पुनः उत्पाति कहांसे होगी?" इस लोकोक्त्यनुसार नीति शास्त्र तथा कामशास्त्रमें प्रतिपादित काम और अर्थको ही

पुरुषार्थ मानकर स्वर्गादि पारलौकिक सुखको निराकरण करनेवाले चार्वाकमतावलम्बी ही देख पडते हैं अत एव चार्वाकका लोकायत यह दूसरा नाम है। लोकप्रसिद्धसे अतिरिक्त पदार्थ न माननेसे लोकायत कहाता है ॥ ५ ॥

तत्र पृथिव्यादीनि भूतानि चत्वारि तत्त्वानि तेभ्य एव देहाकारपरिणतेभ्यः किण्वादिभ्यो मदशक्तिवत् चैतन्यमुपजायते तेषु विनष्टेषु सत्सु स्वयं विनश्यति। तदिह विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति स न प्रेत्य संज्ञास्ती ति तत् चैतन्यविशिष्टदेह एवात्मा देहातिरिक्त आत्मनि प्रमाणाभावात् प्रत्यक्षैकप्रमाणवादितया अनुमानादेरनङ्गीकारेण प्रामाण्याभावात् ॥ ६ ॥

उनके मतमें पृथिवी, जल, तेज, वायु, चार ही तत्त्व हैं। देहरूपसे परिणत इन्ही तत्त्वोंसे चैतन्य उत्पन्न होता है। जैसे मादक द्रव्योंसे मदशक्ति उत्पन्न होती है प्रत्येक द्रव्यमें अविद्यमान भी मदशक्ति समुदायसे उत्पन्न होती है। इन तत्त्वोंका नाश होनेपर देहरूप आत्मा स्वयं नष्ट होता है। "विज्ञानस्वरूप आत्मा इन तत्त्वोंसे उत्पन्न होकर उसीमें नष्ट होता है मरनेपर परलोकमें कोई नाम नहीं रहता। चैतन्यविशिष्ट देहसे अतिरिक्त आत्मामें कोई प्रमाण नहीं। केवल प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। अनुमानादिके प्रामाण्यमें कोई युक्ति नहीं ॥ ६ ॥

अङ्गनालिङ्गनादिजन्यं सुखमेव पुरुषार्थः। न चास्य दुःखसंभिन्नतया पुरुषार्थत्वमेव नास्तीति मन्तव्यम्। अवर्ज्जनीयतया प्राप्तस्य दुःखस्य परिहारेण सुखमात्रस्यैव भोक्तव्यत्वात्। तद्यथा मत्स्यार्थी सशल्कान् सकण्टकान् मत्स्यानुपादत्ते स यावदादेयं तावदादाय निवर्त्तते। यथा वा धान्यार्थी सपलालानि धान्यान्याहरति स यावदादेयं तावदादाय निवर्त्तते। तस्माद्दुःखभयान्नानुकूलवेदनीयं सुखं त्यक्तुमुचितम्। नहि मृगाः सन्तीति शालयो नोप्यन्ते, नहि भिक्षुकाः सन्तीति स्थाल्यो नाधिश्रीयन्ते यदि कश्चिद् भीरुर्दृष्टं सुखं त्यजेत् तर्हि स पशुवन्मूर्खो भवेत् ॥ ७॥

अङ्गनालिङ्गनादि जन्य सुख ही पुरुषार्थ है। यदि कहो तादृश सुख दुःखमिश्रित होनेसे पुरुषार्थ नहीं हो सकता यह भी नहीं, क्योंकि नान्तरीयकतया अनिवार्यरूपसे प्राप्त दुःखको परित्याग कर सुखमात्रका ग्रहण होता है। जिस प्रकार मत्स्यार्थी काँटा और छिलका सहित मत्स्योंको पकडते हैं परन्तु जितना अंश उपयुक्त हो उतना लेकर बाकीको छोड देते हैं अथवा जैसे धान्यार्थी सपलाल धान्यको लाकर अपेक्षित अन्नमात्रको ग्रहण कर बाकी पलालको छोड देते हैं। अतः दुःखके डरसे सुखको छोड देना उचित नहीं मृगके डरसे धान ही न बोये जायँ; भिक्षुकोंके भयसे पाक भी न किया जाय ऐसा नहीं होता। यदि कोई डरपोक दृष्ट सुखको त्याग दे तो उसको पशुके समान मूर्ख समझना चाहिए॥ ७॥

तदुक्तम्–"त्याज्यं सुखं विषयसङ्गमजन्म पुंसां
दुःखोपसृष्टमिति मूर्खविचारणैषा।
व्रीहीन् जिहासति सितोत्तमतण्डुलाढ्यान्
को नाम भोस्तुषकणोपहितान् हितार्थी" ॥ ८॥

कहा भी है–विषयभोगसे जायमान सुख दुःखामिश्रित होनेसे त्याज्य है यह मूर्खोंका विचार है कौन विचारशील तुषकणोंसे आच्छादित होनेके कारण उत्तम धवल तण्डुलोंसे युक्त धानोंको छोड देगा॥ ८॥

ननु पारलौकिकसुखाभावे बहुवित्तव्ययशरीरायाससाध्ये अग्निहोत्रादौ विद्यावृद्धाःकथं प्रवर्त्तिष्यन्ते इति चेत्। तदपि न प्रमाणकोटिं प्रवेष्टुमीष्टे अनृतव्याघातपुनरुक्तदोषैर्दूषिततया वैदिकम्मन्यैरेव धूर्तबकैः परस्परं कर्म्मकाण्डप्रामाण्यवादिभिर्ज्ञानकाण्डस्य ज्ञानकाण्डप्रामाण्यवादिभिःकर्म्मकाण्डस्य च प्रतिक्षिप्तत्वेनत्रय्या धूर्त्तप्रलापमात्रत्वेन अग्निहोत्रादेर्जीविकामात्रप्रयोजनत्वात्। तथा चाभाणकः–"अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम्। बुद्धिपौरुषहीनानां जीविकेति बृहस्पतिः" ॥ ९॥

यदि पारलौकिक स्वर्गादि सुख नहीं हो तो बहुत धन व्यय एवं शरीरश्रमसाध्य अग्निहोत्रादि कर्मोंमें बडे २ विद्वान् लोग क्यों प्रवृत्त होते हैं यह भी प्रमाणपदवीमें प्रवेश नहीं कर सकता क्योंकि वैदिकाभिमानी धूर्तोंने ही परस्पर अनृत, व्याघात, पुनरुक्त, दोषोंसे दूषित किया है जैसे ज्ञानकाण्डप्रामाण्यवादियोंने कर्मकाण्डको और कर्मकाण्डप्रामाण्यवादियोंने ज्ञानकाण्डको दूषित किया है। ऋग्यजुःसामा-

त्मक वेदत्रय धूर्तोंके कल्पित हैं । अग्निहोत्रादिक भी जीविकाके लिये हैं ॥ अग्निहोत्र, वेदत्रय, संन्यास और भस्मलेपन यह सब बुद्धि और पराक्रमसे हीनोंकी जीविकामात्र है । यह बृहस्पतिका कहना है ॥ ९ ॥

अत एव कण्टकादिजन्यं दुःखमेव नरकं लोकसिद्धो राजा परमेश्वरः देहोच्छेदो मोक्षः । देहात्मवादे च 'कृशोऽहं कृष्णोऽहम्' इत्यादि सामानाधिकरण्योपपत्तिः । 'मम शरीरम्' इति व्यवहारो 'राहोः शिरः' इत्यादिवदौपचारिकः ॥ १० ॥

संक्षेपतः इस मतका सिद्धान्त यह है कि कण्टकादिजन्य दुःख ही नरक है, लोकप्रसिद्ध राजा ही ईश्वर है देहोच्छेद अर्थात् मरण ही मुक्ति है, देहात्मवादमें ही मैं कृश हूं स्थूल हूं श्याम हूं इत्यादि सामानाधिकरण्य उपपन्न होता है ॥ सामानाधिकरण्य उसको कहते हैं कि जो विभिन्न धर्म्मविशिष्ट एकधर्मीका वाचक हो देहात्मवादमें मेरा देह इत्यादि व्यवहार भी राहुका शिर, शिलपुत्रकका शरीर इत्यादिवत् औपचारिक हो सकता है ॥ १० ॥

तदेतत्व सर्वं समग्राहि–
"अत्र चत्वारि भूतानि भूमिवार्य्वनलानिलाः
चतुर्भ्यः खलुभूतेभ्यश्चैतन्यमुपजायते ॥
किण्वादिभ्यः समेतभ्यो द्रव्येभ्यो मदशक्तिवत् ।
अहं स्थूलः कृशोऽस्मीति सामानाधिकरण्यतः ॥
देहः स्थौल्यादियोगाच्चस एवात्मा न चापरः ।
मम देहोऽयमित्युक्तिः सम्भवेदौपचारिकी" इति ॥ ११ ॥

उक्त बातोंको चार्वाकोंने संग्रह करके कहा है--पृथिव्यादि चार ही तत्त्व हैं और इन्हीं तत्त्वोंसे मादक द्रव्यसमुदायसे मदशक्तिवत् चैतन्य उत्पन्न होता है । मैं स्थूल हूं; कृश हूं इत्यादि देहाभेद व्यवहारसे देह ही आत्मा है । मेरा देह इत्यादि व्यवहार भी उपचारसे होता है ॥ ११ ॥

स्यादेतत्–स्यादेष मनोरथो यद्यनुमानादेः प्रामाण्यं न स्यात् अस्ति च प्रामाण्यं कथमन्यथा धूमोपलम्भानन्तरं धूमध्वजे प्रेक्षावतां प्रवृत्तिरुपपद्येत । नद्यास्तीरे फलानि सन्तीति वचनश्रवणसमनन्तरं फलार्थिनां नदीतीरे प्रवृत्तिरिति । तदेतन्मनोराज्यविजृम्भणं व्याप्तिपक्षधर्म्मताशालि हि लिङ्गं गमकमभ्यु-

पगतमनुमानप्रामाण्यवादिभिः व्याप्तिश्चोभयविधोपाधिविधुरः सम्बंधः। स च स्वसत्तया चक्षुरादिवन्नांगभावं भजते किन्तु ज्ञाततया। कः खलु ज्ञानोपायो भवेत्। न तावत् प्रत्यक्षम् तच्च बाह्यमान्तरं वाभिमतम्। न प्रथमः। तस्य सम्प्रयुक्तविषयज्ञानजनकत्वेन विद्यमाने प्रसरसम्भवेपि भूतभविष्यतोस्तदसम्भवेन सर्व्वोपसंहारवत्यव्याप्तेर्दुर्ज्ञानत्वात्। न च व्याप्तिज्ञानं सामान्यगोचरमिति मन्तव्यं, व्यक्त्योरविनाभावाभावप्रसंगात्॥ १२॥

"स्यादेतत् इति" यह मनोरथ तब सिद्ध हो जब अनुमानादिका प्रामाण्य ही न हो किंतु अनुमानका प्रामाण्य अवश्य मानना होगा, अन्यथा धूम देखकर धूमध्वज अग्निके विषयमें बुद्धिमानोंकी प्रवृत्ति कैसे हो सकती है। एवं शब्द प्रमाण न माननेसे नदीके किनारे पाँच फल हैं इस वाक्यको सुनकर फलार्थियों की फलाहरणप्रवृत्ति भी कैसे होगी। यह भी मनोराज्यमात्र है। क्योंकि व्याप्तिप्रकारक पक्षधर्मताशाली लिङ्गज्ञानको अनुमितिके प्रति कारण अनुमान प्रामाण्यवादियोने माना है यथा जहां२ अग्नि है वहां२ धूम है यह व्याप्ति है वह्निव्याप्य धूम, यह व्याप्तिप्रकारक ज्ञान है। वह्निव्याप्य धूमवान् पर्वत यह व्याप्तिप्रकारक पक्षधर्म्मताज्ञान है इसीको परामर्श भी कहते है॥ अनन्तर "पर्वतो वह्निमान् धूमात्"[1] ऐसी अनुमिति होती है। शंकित निश्चित भेदसे द्विविध उपाधिरहित सम्बन्ध व्याप्ति है। वह सम्बन्ध चक्षुरादिके समान स्वसत्तामात्रसे कार्यसाधक नहीं होता किन्तु ज्ञात होनेसे होता है। व्याप्तिज्ञानका उपाय प्रत्यक्ष हो ही नहीं सकता क्यों कि बाह्य और आन्तर (मानस) भेदसे प्रत्यक्ष दो प्रकारका है चक्षुरादि बहिरिन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष बाह्य है वह विषयेन्द्रिय संयोगसे होता है। विद्यमान (धूम वह्न्यादि) विषय के साथ इन्द्रियसम्बन्ध होनेपर भी भूत भविष्यत् के साथ सम्बन्धका असम्भव होनेसे निखिल वह्नि धूमका अव्यभिचरित व्याप्तिग्रह दुर्ज्ञेय होगा॥ यदि कहो निखिल धूम वह्निका प्रत्यक्ष न होनेपर भी धूमादिवृत्ति धूमत्वादि एक सामान्यद्वारा सम्बन्ध (व्याप्ति) ज्ञानका सम्भव होगा यह भी नहीं क्योंकि सामान्यत्व धूमत्व वह्नित्वका व्याप्तिग्रह अर्थात् धूमत्ववह्नित्वका अविनाभाव (व्याप्ति) गृहीत होनेपर भी व्यक्ति (धूम अग्नि)की व्याप्तिग्रहका अभावप्रसङ्ग होगा॥ १२॥

नापि चरमः। अन्तःकरणस्य बहिरिन्द्रियतन्त्रत्वेन बाह्येऽर्थे स्वातन्त्र्येण प्रवृत्त्यनुपपत्तेः॥ तदुक्तम्– 'चक्षुराद्युक्तविषयं परतन्त्रं बहिर्म्मन इति॥ १३॥

---

१ 'पर्वत अग्निवाला है आमें धूम होनसे'

मानस प्रत्यक्ष भी नहीं कह सकते अन्तःकरण स्वतन्त्ररूपसे बाह्यार्थका ज्ञान नहीं कर सकता किन्तु चक्षुरादि परतन्त्र ही करता है यथा मनको चक्षुरादिका संयोग और चक्षुरादिको विषयका संयोग होनेपर प्रत्यक्ष होता है ऐसा नियम है "चक्षुरादिके विषयको ग्रहण करनेमें मन चक्षुरादि परतन्त्र ही प्रवृत्त होते हैं ।" ऐसा कहा भी है ॥ १३ ॥

नाप्यनुमानं व्याप्तिज्ञानोपायः, तत्र तत्राप्येवमिति अनवस्थादौस्थ्यप्रसङ्गात् । नापि शब्दस्तदुपायः, काणादमतानुसारेणानुमान एवान्तर्भावात् अनन्तर्भावे वा वृद्धव्यवहाररूपलिङ्गावगतिः सापेक्षतया प्रागुक्तदूषणलङ्घनाजङ्घालत्वात् ॥ १४ ॥

अनुमान भी व्याप्तिज्ञानका उपाय नहीं हो सकता एक व्याप्तिज्ञानके लिये अनुमान करें तो उसमें भी व्याप्तिज्ञानकी अपेक्षा, उसके लिये अनुमानान्तर; उसके लिये पुनः व्याप्तिज्ञानापेक्षा, एवं क्रमसे अनवस्था होगी । शब्द भी व्याप्तिज्ञानका उपाय नहीं क्योंकि वैशेषिकके मतमें शब्द भी अनुमानमें अन्तर्भूत है अत एव–

"शब्दोपमानयोर्नैव पृथक् प्रामाण्यमर्हति ।
अनुमाने गतार्थत्वादिति वैशेषिकं मतम् ॥"

इत्यादि वैशेषिकोंने कहा भी है । शब्दको अनुमानमें अन्तर्भाव न माननेपर भी वृद्ध व्यवहाररूप लिङ्गसापेक्ष होनेसे पूर्वोक्त अनवस्था तदवस्थ होगी । यथा एक वृद्ध 'गौ को लावो' ऐसा किसी भृत्यसे कहते हैं उसको सुनकर भृत्य गौको लाता है उसको देखकर समीपस्थ बालकको शक्तिग्रह होता है. यह शब्दकी शक्तिग्रहका क्रम है ॥ १४ ॥

धूमधूमध्वजयोरविनाभावोऽस्तीति वचनमात्रे मन्वादिवद् विश्वासाभावाच्च । अनुपदिष्टाविनाभावस्य पुरुषस्यार्थान्तरदर्शनेनार्थान्तरानुमित्यभावे स्वार्थानुमानकथायाः कथाशेषत्वप्रसङ्गाच्च ॥ १५ ॥

केवल अग्निके विना धूम नहीं रहता यह वचन मनुवचनके समान विश्वासास्पद भी नहीं होगा । धूम-अग्निके अविनाभूत अर्थात् अग्निकी सत्ताके विना धूमकी सत्ता नहीं रहती है इसी प्रकार जिस पुरुषको उपदेश नहीं हुआ हो उस पुरुषको धूमको देखकर अग्नि आदि अर्थान्तरका अनुमान भी असम्भव है एवं स्वार्थानुमानका अंजलिप्रदान हो जायगा । तात्पर्य–अनुमान स्वार्थपरार्थ भेदसे दो प्रकार है । स्वयं वह्नि धूमकी व्याप्ति ग्रहणकर पश्चात् धूम देखकर व्याप्ति स्मरणपूर्वक पर्वतमें वह्निका अनुमान करतो

हैं वह स्वार्थानुमान है जिसने स्वयं व्याप्तिग्रह न किया हो उसको बोधन करनेके लिये पञ्चावयव वाक्यका प्रयोग करता हो वह परार्थानुमान है प्रकृतमें स्वयं व्याप्ति-ग्रह न करनेसे स्वार्थानुमान परकीय वाक्यमें विश्वास न होनेसे परार्थानुमान दोनों-दूरतः पलायित हो गये ॥ १५ ॥

उपमानादिकं तु दूरापास्तं तेषां संज्ञासंज्ञिसम्बन्धादिबोधकत्वेनानौपाधिकत्वसम्बन्धबोधकत्वासम्भवात् ॥ १६ ॥

उपमान भी व्याप्तिग्रहका उपाय नहीं हो सकता क्योंकि संज्ञा-सांज्ञि-भावसम्बन्धको उपमान कहते हैं यथा गौके सदृश गवय है इस वाक्यको सुनकर वनमें तादृश जन्तुको देखनेसे यह गवय है ऐसा उपमान होता है गवयपद-संज्ञा तादृश वस्तु संज्ञी दोनोंकी शक्ति सम्बन्ध है-परन्तु यह भी निरुपाधिक सम्बन्ध बोधनमें असमर्थ है॥ १६॥

किञ्च उपाध्यभावोऽपि दुरवगम उपाधीनां प्रत्यक्षत्वनियमासम्भवेन प्रत्यक्षाणामभावस्य प्रत्यक्षत्वेऽपि अप्रत्यक्षाणामभावस्याप्रत्यक्षतया अनुमानाद्यपेक्षायामुक्तदूषणानतिवृत्तेः ॥१७॥

उपाधिका अभाव भी दुर्ज्ञेय है-क्योंकि पूर्वोक्त प्रकार समस्त उपाधिका प्रत्यक्ष सम्भव न होनेसे, अभाव प्रत्यक्षके प्रतियोगि प्रत्यक्ष कारण है, विद्यमान उपाधिके अभावका प्रत्यक्ष होनेपर भी अतीत अनागत और वर्तमान भी अप्रत्यक्ष उपाधिके अभावका प्रत्यक्ष सम्भव नहीं है: अतः तादृश अभावप्रत्यक्षके लिये अनुमानकी अपेक्षा करे तो उसमें भी व्याप्ति ज्ञानकी अपेक्षा होगी उसके लिए उपाध्यभाव ज्ञानकी अपेक्षा एवं क्रमसे अनवस्था तदवस्थ होगी ॥ १७ ॥

अपि च=साधनाव्यापकत्वे सति साध्यसमव्याप्तिरिति तल्लक्षणं कक्षीकर्त्तव्यम् । तदुक्तम्—"अव्याप्तसाधनो यः साध्यसमव्याप्तिरुच्यते स उपाधिः" इति ॥ शब्देऽनित्यत्वे साध्ये सकर्तृकत्वं घटत्वमश्रावणताञ्च व्यावर्त्तयितुमुपात्तान्यत्र क्रमतो विशेषणानि त्रीणि ॥ १८ ॥

उपाधि लक्षणमें भी व्याप्तिज्ञानापेक्षा कहते हैं "अपिचेति" साधनाव्यापकत्वेति इसमें तीन पद हैं. साधनाव्यापकत्व १—साध्य २—सम ३—तीनोंका प्रयोजन—"शब्दाऽनित्यः कृतकत्वात्"—यह सद्धेतु है । यदि साधनाव्यापकत्व नहीं कहता तो सकर्तृकत्व उपाधि हो जायगा साधनाव्यापकत्व कहा तो सकर्तृकत्व—कार्यत्वका अव्यापक न हुआ। जहां जहां कार्यत्व है वहां सर्वत्र सकर्तृकत्व है अतः उसमें अतिव्याप्ति वारणके लिए

साधनाव्यापकत्वरूप विशेषण चरितार्थ हुआ । साध्यव्यापकत्व नहीं कहते तो घट-त्वमें अतिव्याप्ति होगी—क्यों कि घटत्व घटमात्रहीमें रहेगा कार्यत्व अनित्य वस्तुमात्र में रहेगा अतः साधनाव्यापकत्व होगया साध्यव्यापक कहते हैं तो घटत्व अनित्यत्वका व्यापक नहीं हुआ सम नहीं कहते तो अश्रावणत्वमें अतिव्याप्ति होगी साधनका अव्या-पक और साध्यका व्यापक भी अश्रावणत्व है साध्य सम कहते हैं तो साध्य समनियत व्याप्ति नहीं हुई क्योंकि अश्रावणत्व अनित्यत्वरूप साध्यसे अन्यत्र नित्य आकाशादिमें भी रहता है। " वह्निमान् धूमात् " इत्यादिमें आर्द्रेन्धनसंयोगरूप उपाधिमें साधना-व्यापकत्व साध्यसमव्यापकत्व होनेसे लक्षणसमन्वय हुआ ॥ १८ ॥

तस्मादिदमनवद्यं समासमेत्यादिनोक्तमाचार्य्यैश्चेति ॥ १९ ॥

उक्तार्थमें आचार्यसम्मति कहते हैं कि समासमेति--

"समासमाविनाभाववेकत्र स्तो यदा तदा ।
समेन यदि नो व्याप्तस्तयोर्हीनोऽप्रयोजकः" इति ॥

व्याप्ति दो प्रकारकी है एक समव्याप्ति और दूसरी असमव्याप्ति यथा गन्धवत्त्व पृथिवीत्व दोनोंकी परस्पर व्याप्ति सम व्याप्ति है । दोनोंमें से एक की व्याप्ति हो दूसरेकी नहीं हो वह असमव्याप्ति है यथा वह्निधूमकी व्याप्ति धूमकी वह्निके साथ व्याप्ति है परन्तु वह्निकी धूमके साथ व्याप्ति नहीं क्यों कि तप्त लोहपिण्डमें अग्नि है धूम नहीं अविनाभावका अर्थ व्याप्ति है सम व्याप्ति और असमव्याप्ति दोनों एकस्थल में हो तो सम और असम अर्थात् धूम और अग्निके मध्यमें ही न अर्थात् असम अग्नि समधूमके साथ यदि व्याप्त न हो अर्थात् अग्नि धूमसे व्याप्त न हो तो हीन अग्नि अप्रयोजक है अर्थात् धूमरूप साध्यका हेतु नहीं होसकती ॥ १९ ॥

तत्र विध्यध्यवसायपूर्व्वकत्वान्निषेधाध्यवसायस्योपाधिज्ञाने जाते तदभावविशिष्टसम्बंधरूपं व्याप्तिज्ञानं व्याप्तिज्ञानाधीनं चोपा-धिज्ञानमिति परस्पराश्रयवज्रप्रहारदोषो वज्रलेपायते। तस्मादवि-नाभावस्य दुर्बोधितया नानुमानाद्यवकाशः। धूमादिज्ञानानन्त-रमग्न्यादिज्ञाने प्रवृत्तिः प्रत्यक्षमूलतया भ्रान्त्या वा युज्यते ॥२०॥

उक्त अन्योन्याश्रयको उपपादन करते हैं तत्रेत्यादिसे

ऐसा नियम है कि अभावज्ञानमें प्रतियोगिज्ञान कारण होता है एवं निषेधज्ञानमें भी विधिज्ञान कारण होनेसे उपाधिज्ञान होनेपर उपाध्यभाव सहित व्याप्ति ज्ञान होगा व्याप्ति ज्ञानानन्तर उपाधिज्ञान इति अन्योन्याश्रय दोष भी अपारिहरणीय है । अन्यो-न्याश्रयका लक्षण "स्वज्ञानाधीनज्ञानवत्त्व" है स्वपदसे उपाधिके अभावका ग्रहण है उसके

ज्ञानके अधीन व्याप्तिज्ञान है । अतः अविनाभाव दुर्ज्ञेय होनेसे अनुमानादिका अवकाश ही नहीं । यदि कहो अनुमानका प्रामाण्य ही नहीं तो धूमादि (हेतु) ज्ञानसे अग्न्यादि (साध्य) ज्ञानमें प्रवृत्ति कैसे होती है–कहीं २-प्रत्यक्षद्वारा कहीं २-भ्रान्तिसे होती है ऐसे कहेंगे ॥ २० ॥

क्वचित् फलप्रतिलम्भस्तु मणिमन्त्रौषधादिवत् यादृच्छिकः अतस्तत्तु साध्यमदृष्टादिक मपि नास्ति । नन्वदृष्टानिष्टौ जगद्वैचित्र्यमाकस्मिकं स्यादिति चेत् न तद्भद्रम् "अग्निरुष्णो जलं शीतं शीतस्पर्शस्तथानिलः । केनेदं चित्रितं तस्मात् स्वभावात्तद्व्यवस्थितिरिति" ॥ २१ ॥

भ्रान्तिज्ञानसे प्रवृत्त पुरुषको शुक्ति-रजत आदिमें फलकी सिद्धि नहीं होती, प्रकृतमें अग्न्यादिरूप फल प्राप्त होता है । सो क्यों ? वह यदृच्छासे (अकस्मात) ही होता है यथा मणि मन्त्र औषधादिसे फल होता है–यदि मणि-मंत्र औषधादिसे निश्चित फल मिलता हो तो एक ही रोगके लिए अनेक औषधियोंको बदल बदलकर क्यों देते हैं ? इससे मालूम होता है–रोगनिवृत्त्यादि फल अकस्मात् ही होता है । अतः मन्त्रादिसाध्य अदृष्टादिक भी नहीं; यदि कहा अदृष्ट न मानो तो संसारकी विचित्रता (कोई सुखी कोई दुःखी इत्यादि) न होगी–यह भी नहीं क्योंकि यह सब स्वभावसे होते हैं। अग्निको उष्ण, जलको शीत, वायुको शीतस्पर्श–विचित्र रूप किसने बनाया अर्थात् किसने नहीं, यह सब स्वभावसे ही होते हैं ॥ २१ ॥

तदेतत् सर्व्वं बृहस्पतिनाप्युक्तम् ।
"न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः ।
नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः ॥
अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम् ।
बुद्धिपौरुषहीनानां जीविका धातृनिर्म्मिता ॥
पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति ।
स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते ॥ २२ ॥

बृहस्पतिने भी कहा है--न स्वर्ग है न मोक्ष है परलोकका सुखभोगनेवाला आत्मा भी नहीं है वर्णाश्रमादिका जो कर्म है वह भी फलदायक नहीं है ॥ अग्निहोत्र ऋग्, यजुःसामरूपवेदत्रय, संन्यास, भस्मलेपन सब बुद्धि और पराक्रम शून्यके लिये ब्राह्मने

जीविकामात्र बनाये हैं ॥ ज्योतिष्टोम यागमें मारे हुए पशु यदि स्वर्गको जायगा तो याग करनेवाले अपने पिताको यज्ञमें क्यों नहीं मारते जिससे पिता भी स्वर्ग पहुँच जाय ॥ २२ ॥

मृतानामपि जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम् ।
गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेयकल्पनम् ॥
स्वर्गस्थिता यदा तृप्तिं गच्छेयुस्तत्र दानतः ।
प्रासादस्योपरिस्थानामत्र कस्मान्न दीयते ॥
यावज्जीवेत् सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत् ।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥
यदि गच्छेत्परं लोकं देहादेष विनिर्गतः ।
कस्माद् भूयो न चायाति बन्धुस्नेहसमाकुलः ॥ २३ ॥

श्राद्ध करनेसे मरे हुए प्राणियोंकी तृप्ति होती है तो परदेश जानेवाले पाथेय (मार्गके भोज्य)को क्यों लेजाते हैं घरहीमें श्राद्ध करनेसे सब तृप्त हो जायंगे ॥ यहां पर दान करनेसे स्वर्गस्थ पितृगण तृप्त होते हों तो कोठे पर बैठ विराजमानके नामसे भी यहींसे क्यों नहीं दे देते हो वह तृप्त तो हो ही जायंगे और नीचे उतरनेका कष्ट भी न होगा ॥ जबतक जीवे तबतक सुख भोगे । ऋण लेकर भी घृत पीवे देह जलकर भस्म होजानेपर पुनः उसकी उत्पत्ति कहांसे हो सकती है ॥ यदि कोई आत्मा इस देहसे निकलकर लोकान्तरमें जाता हो तो बन्धुस्नेहसे व्याकुल होकर पुनः क्यों नहीं घर आता है,आता तो नहीं अतः देहसे भिन्न आत्मा नहीं है । देह ही है सो यहां नष्ट होगया ॥२३॥

ततश्च जीवनोपायो ब्राह्मणैर्विहितस्त्विह ।
मृतानां प्रेतकार्य्याणि न त्वन्यद्विद्यते क्वचित् ॥ २४ ॥

अतः मरेके लिए प्रेतकार्यादि सब ब्राह्मणोंने अपने जीवनके उपाय बनाये हैं इसके अतिरिक्त कुछ फल नहीं है ॥ २४ ॥

त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भण्डधूर्तनिशाचराः ।
जर्फरीतुर्फरीत्यादि पण्डितानां वचः स्मृतम् ॥
अश्वस्यात्र हि शिश्नं तु पत्नीग्राह्यं प्रकीर्तितम् ।
भण्डैस्तद्वत्परं चैव ग्राह्यजातं प्रकीर्त्तितम् ॥
मांसानां खादनं तद्वन्निशाचरसमीरितमिति ।

तस्माद् बहूनां प्राणिनामनुग्रहार्थं चार्व्वाकमतमाश्रयणीयमिति रमणीयम् ॥ २५ ॥

इति सायणमाधवीये सर्वदर्शनसंग्रहे चार्वाकदर्शनं समाप्तम् ॥

वेदको बनानेवाले धूर्त, भंड और राक्षस यह तीन हैं । जर्फरी तुर्फरी इत्यादि ऋषियोंके नाम भी पण्डितोंने कल्पित किये हैं । घोडेके लिंगको पत्नी ग्रहण करे इत्यादि अश्लीलवचन भंडोंके कहे हुए हैं । मांसभक्षणादिके वचन राक्षसोंने बनाये हैं। अतः अनेक जीवोंके कल्याणके लिए चार्वाकमतका अवलम्बन करना ही उत्तम है॥२५

इति सर्वदर्शनसंग्रहे चार्वाकदर्शनं समाप्तम् ।

अथ बौद्धदर्शनम् ।

अत्र बौद्धैरभिधीयते-

यदभ्यधायि अविनाभावो दुर्बोध इति तदसाधीयः, तादात्म्यतदुत्पत्तिभ्यामावनाभावस्य सुज्ञानत्वा । तदुक्तम्-

"कार्य्यकारणभावाद्वा स्वभावाद्वा नियामकात् ।
अविनाभावनियमो दर्शनादतदर्शनादिति" ॥ १ ॥

चार्वाकमत निरूपणके नन्तर पुनर्जन्मादि निषेधरूप नास्तिकत्वादि समान होनेसे बौद्धमतका निरूपण करते हैं । चार्वाकोंका जो कथन है कि व्याप्तिज्ञान दुर्बोध है सो अयुक्त है क्योंकि उत्पत्ति एवं तादात्म्य (स्वभाव) से व्याप्तिका निश्चय हो सकता है । कार्य कारण भावसे अथवा स्वभावसे व्याप्ति निश्चित होसकती है दर्शनसे अथवा अदर्शनसे भी हो सकती है। तात्पर्य यह है कि व्याप्तिग्रहमें कार्य कारण भाव नियामक है । व्याप्य व्यापकका प्रत्यक्ष अपेक्षित नहीं है ॥१॥

अन्वयव्यतिरेकावविनाभावनिश्चायकाविति पक्षे साध्यसाधनयोरव्यभिचारो रवधारणो भवेत्। भूते भविष्यति वर्त्तमाने अनुपलभ्यमाने च व्यभिचारशाङ्काया अनिवारणात् । ननु तथाविधस्थले तावकेऽपि मते व्यभिचारशङ्का दुष्परिहरेति चेत् मैवं विनापि कारणं कार्यमुत्पद्यतामित्येवं विधायाः शङ्कायाः व्याघातावधितया निवृत्तत्वात् ॥ २ ॥

बौद्धदर्शन (अ०सं० २) यदि कोई शंका करे कि अन्वयव्यतिरेकसे अविनाभावका निश्चय हो जायगा पुनः कार्यकारण भावको नियामक क्यों मानते हो जिस वस्तुके रहनेसे जो अवश्य रहै वह अन्वय यथा धूमके रहनेपर वह्नि अवश्य रहती है जिसके न रहने पर जो न रहे वह व्यतिरेक कहाता है। यथा अग्निके न रहनेसे धूम नहीं रहता है। उत्तर- इस पक्षमें साध्य साधनके व्यभिचाराभावका निर्णय न होगा क्यों कि अतीत अनागत, दूर व्यवहितादिस्थित वर्तमानका प्रत्यक्ष न होनेसे उसमें व्यभिचार शंकाका कारण असम्भव है यदि कहो तादृशस्थलमें कार्यकारणभाव वादिके मतमें भी उक्त दोष समान ही है अतः एक ही पक्षमें निर्भय रहना अनुचित है। कहा है—

" यत्रोभयोः समो दोषः परिहारोऽपि तादृशः।
नैकः पर्य्यानुयोक्तव्यस्तादृशार्थविचारणौरिति "॥

ऐसे नहीं कह सकते क्यों कि कारणके विना भी कार्य उत्पन्न होगा ऐसा कहना अपनी माताको वन्ध्या कहनेके समान वचन व्याघात है ॥ २ ॥

तदेव ह्याशंक्येत यस्मिन्नाशंक्यमाने व्याघातादयो नावतरेयुः तदुक्तम्-व्याघातावधिराशङ्केति। तस्मात्तदुत्पत्तिनिश्चयेन अविनाभावो निश्चीयेत तदुत्पत्तिनिश्चयश्च कार्य्यहेत्त्वोः प्रत्यक्षोपलम्भानुपलम्भपञ्चकनिबन्धनः। कार्य्यस्योत्पत्तेः प्रागनुपलम्भः कारणोपलम्भे सत्युपलम्भः उपलम्भस्य पश्चात् कारणानुपलम्भादनुपलम्भ इति पञ्चकारण्या धूमधूमध्वजयोः कार्य्यकारणभावो निश्चीयते ॥ ३ ॥

शंका यही हो सकती है जिसमें व्याघात दोष न आवे अत एव इस विषयमें उदयानाचार्यकी भी सम्मति कहते हैं। "व्याघातेति"—"शंकाचेदनुमास्त्येव नचेच्छंका कुतस्तराम् व्याघातावधिराशंका तर्कः शंकानिवर्त्तकः" ॥ कालान्तर और देशान्तरमें व्यभिचार था उपाधिमें अन्य आशंका हो तो अनुमान अवश्य है. क्योंकि अनुमानके विना व्यभिचार और उपाधिका ज्ञान नहीं हो सकता यदि देशान्तर और कालान्तरमें उपाधिकी आशंका नहीं है तो अनुमान अवश्य होगा. शंकाके निवारणकी आवश्यकता ही नहीं है "वादकथाभिमायसे" शंकानिवर्तक कहते हैं. "व्याघातेति"। शंकाकी अवधि तर्क है क्योंकि तर्क शंकाका निवर्तक है—अतः उत्पत्तिके निश्चयसे अविनाभावका निश्चय होता है। उत्पत्तिनिर्णय भी कार्यकारणका प्रत्येक्षापलम्भ अनुपलम्भरूप कारणपञ्चकसे निश्चित होता है यथा उत्पत्तिके पूर्वमें कार्य उपलब्ध नहीं होता, कारणके उपलब्धिसे उपलब्ध होता है। उपलब्ध कार्य भी कारणके अनुपलम्भ (उपादा-

नकारणनाश) के पश्चात् उपलब्ध नहीं होता, इत्यादि क्रम है उत्पत्तिके पूर्व अनुपलम्भ कारणोपलम्भ २-कार्योलम्भ ३ कारणानुपलम्भ ४ कार्यानुपलम्भ ५ यही कारण पञ्चक है इसी प्रकार वह्निके विना धूम उपलब्ध नहीं होता है वह्निके नष्टहोनेपर धूम भी नष्ट होजाता है। अतः धूम वह्निसे उत्पन्न और वह्निधूमकी व्याप्ति निश्चित है ॥ ३ ॥

तथा तादाम्यनिश्चयेनाप्यविनाभावो निश्चीयते । यदि शिंशपा वृक्षत्वमतिपतेव् स्वात्मानमेव जह्यादिति विपक्षे बाधक-प्रवृत्तेः । अप्रवृत्ते तु बाधके भूयः सहभावोपलम्भेऽपि व्यभि-चारशङ्कायाः को निवारयिता ॥ ४ ॥

इस प्रकार स्वभावसे भी व्याप्ति निश्चित होती है । यथा यह शिंशपा वृक्ष है यहां पर शिंशपा यदि वृक्षत्वका अतिक्रमण करेगा अर्थात् शिंशपामें वृक्षत्व न रहेगा तो शिंशपाका स्वरूप ही नष्ट हो जायगा ऐसा बाधक होता है. क्योंकि वृक्षविशेष ही शिंशपा है अतः वृक्षत्व शिंशपाका असाधारण धर्म (स्वभाव)है । स्वभावके नाशसे स्वरूप नाश होता है यथा उष्णत्व अग्निका स्वभाव है उसका नाश होनेसे अग्नि भी नष्ट होता है । यदि बाधक न हो तो बहुधा साहचर्य देखनेसे भी व्यभिचार शंकाको कोई भी वारण नहीं कर सकते॥४॥

शिंशपावृक्षयोश्च तादात्म्यनिश्चयो वृक्षोऽयं शिंशपेति सामा-नाधिकरण्यबलादुपपद्यते ॥ ५ ॥

यह शिंशपा वृक्ष है इत्यादि सामानाधिकरण्यसे शिंशपा और वृक्षका रूप करा नहीं निश्चय होता है प्रवृत्तिनिमित्त (धर्म)भिन्न होकर एक विशेष्य(धर्म्मी)का बोधकरनेवाले दो शब्दोंको सामानाधिकरण्य कहते हैं जैसे नील घट यहां नील शब्दका प्रवृत्तिनिमित्त नील त्व है नीलत्व नीलगुण है क्योंकि नीलशब्द अर्शआद्यजन्त होनेसे नीलवान् परक है नीलवानमें नील विशेषण है त्व तलादि भावप्रत्ययका अर्थ विशेषण है क्यों "प्रकृतिजन्य-बोधे प्रकारीभूतो भावः" ऐसा अनुशासन है घट शब्दका प्रवृत्तिनिमित्त घटत्व है घटत्व और नील गुण दोनों घटमें रहनेसे नील घट इन दोनोंका सामानाधिकरण्य उपपन्न होगया । एवं वृक्षत्व शिंशपात्व दोनों शिंशपामें रहनेसे सामानाधिकरण्य (तादात्म्य) लक्षण संगत होता है । एवं मृद्-घट, धूम–धूमध्वजादि कार्यकारण भाव स्थलमें भी सामानाधिकरण्यसे तादात्म्य निश्चित होता है ॥ ५ ॥

नह्यत्यन्ताभेदे तत् सम्भवति पर्य्यायत्वेन युगपदपि प्रयोगा-योगात् नाप्यत्यन्तभेदे गवाश्वयोरनुपलम्भात् तस्मात् कार्य्या-त्मानौ कारणमात्मानमनुमापयत इति सिद्धम् ॥ ६ ॥

दोनों वस्तुएं अत्यन्त अभिन्न होनेपर तादात्म्य असम्भव है॥क्यों कि अत्यन्त अभेद में पर्य्याय होता है पर्य्यायवाचक अनेक शब्दोंका एक साथ प्रयोग नहीं होता है यथा घट कलश इत्यादि अत्यन्त भेदमें भी तादात्म्य नहीं होता कोई भी अश्व महिष को तादात्म्य नहीं कहते अतः भेदाभेद समानियत तादात्म्य है तथाच कार्य रूपसे भेद और कारण रूपसे अभेद होनेपर कार्य वस्तु कारणका अनुमान करता है यह सिद्ध हुआ ॥ ६ ॥

यदि कश्चित् प्रामाण्यमनुमानस्य नांगीकुर्यात् तं प्रति ब्रूयात् अनुमानप्रमाणं न भवतीत्येतावन्मात्रमुच्यते तत्र न किञ्चन साधनमुपन्यस्यते उपन्यस्यते वा। न प्रथमः, एकाकिनी प्रतिज्ञा हि प्रतिज्ञातं न साधयेदिति न्यायात्। नापि चरमः, अनुमानं प्रमाणं न भवतीति ब्रुवाणेन त्वया(अशिरस्क)साधनवचनस्योपन्यासे मम माता वन्ध्येतिवद् व्याघातापातात् ॥ ७ ॥

यदि कोई अनुमान प्रमाण न माने तो उससे पूछना चाहिये क्या अनुमान प्रमाण नहीं इतना ही कहते हो या कुछ हेतुका भी उपन्यास करते हो, ऐसा नियम है केवल प्रतिज्ञा मात्रसे वस्तुसिद्धि नहीं होती है पर्वतमें अग्नि है इस प्रतिज्ञामात्र से कोई सन्तुष्ट न होगा धूमादि हेतुको भी दिखाना पडेगा अतः प्रथम विकल्प असम्भव है। द्वितीय पक्षमें अनुमान अप्रमाण है प्रमितिकरणवत्तावच्छेदकधर्मशून्य होनेसे इत्यादि हेतु और साध्य दिखाकर अनुमान ही करोगे. तब तो अनुमानको अप्रामाण्य साधनेमें भी अनुमान ही प्रमाण होनेसे अपनी माताको वन्ध्या कहनेके समान वदतो व्याघात होगा ॥ ७ ॥

किञ्चप्रमाणतदाभासव्यवस्थापनंतत्समानजातीयत्वादितिवदता भवतैव स्वीकृतं स्वभावानुमानम्। परगता विप्रतिपत्तिस्तु वचनलिङ्गेनेति ब्रुवता कार्यलिंगकमनुमानम् अनुपलब्ध्या कञ्चिदर्थं प्रतिषेधयतानुपलब्धिलिंगकमनुमानम्। तथा चोक्तं तथागतैः-

प्रमाणान्तरसामान्यस्थितिरन्यधियो गतेः ।
प्रमाणान्तरसद्भावः प्रतिषेधाच्च कस्यचि दिति ॥
पराक्रान्तश्चात्र सूरिभिरिति ग्रन्थभूयस्त्वभयादुपरम्यते॥८॥

'किञ्चेति'–दूरसे नदी आदिमें जलको देखकर यह जल है ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञान प्रमाण है। अन्यत्र दृष्ट जलके सजातीय होनेसे एवं मृगतृष्णादिमें जल प्रत्यक्षज्ञान अप्रमाण

है अर्थात् प्रमाणाभास है। इस भाँति कहकर स्वयं स्वभावानुमानको स्वीकार कर लिया। एवं अन्यदीय विरुद्धाभिप्राय वचनरूप हेतुसे अवगत होता है, इस प्रकार कहकर कार्यसे कारणका अनुमान भी मानलिया, अनुपलब्धि हेतुसे घटादि वस्तुका प्रतिषेध करनेसे अनुपलब्धिलिङ्गक अनुमानको भी स्वीकार ही किया । उक्त तीनो अनुमानोको संग्रह करके कहते हैं।'तथा चोक्तमित्यादि'। प्रमाणान्तर सामान्यपरसे प्रलय प्रमाद तदभाव व्यवस्थापनरूप स्वभावानुमान "अन्यधियः गतेः" इन शब्दोंसे कार्यलिङ्गक अनुमान अवशिष्टसे अनुपलब्धिलिंगक अनुमान हो गये हैं ॥ ८ ॥

ते च बौद्धाश्चतुर्व्विधया भावनया परमपुरुषार्थं कथयन्ति । ते च माध्यमिकयोगाचारसौत्रान्तिकवैभाषिकसंज्ञाभिः प्रसिद्धाः बौद्धा यथाक्रमं सर्व्वशून्यत्वबाह्यशून्यत्वबाह्यार्थानुमेयत्वबाह्यार्थप्रत्यक्षत्ववादानातिष्ठन्ते ॥ ९ ॥

दूरसे नदी आदि जलको देखकर यह जल है, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञान प्रमाण है अन्यत्र दृष्ट जलके सजातीय होनेसे एवं मृगतृष्णादिमें जल प्रत्यक्षज्ञान अप्रमाण है अर्थात् प्रमाणाभास है। इस भाँति कहकर स्वयं स्वभावानुमानको स्वीकार किया यहां तक बौद्धोंने चार्वाक मतको सयुक्ति खण्डन किया। आगे स्वसिद्धान्त कहते हैं बौद्ध वक्ष्यमाण चारप्रकारकी भावनासे ही परम पुरुषार्थ मानते हैं वे माध्यमिक योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाषिक भेदसे चार प्रसिद्ध हैं। माध्यमिक बाह्याभ्यन्तर समस्त वस्तुको शून्य मानते हैं। योगाचार बाह्यवस्तुको शून्य मानते हैं। सौत्रान्तिक बाह्यवस्तुको अनुमेय मानते हैं और वैभाषिक लोग बाह्यवस्तुको प्रत्यक्ष कहते हैं। माध्यमिकादि संज्ञाका निमित्त आगे चलकर स्पष्ट होगा॥ ९ ॥

यद्यपि भगवान् बुद्ध एक एव बोधयिता तथापि बोद्धव्यानां बुद्धिभेदाच्चातुर्विध्यं यथा तोऽस्तमर्क इत्युक्ते जारचौरानूचानादयः स्वेष्टानुसारेणाभिसरणपरस्वहरणसदाचरणादिसमयं बुध्यन्ते ॥ १० ॥

यद्यपि उपदेश करनेवाले भगवान बुद्ध एक ही हैं तथापि बोद्धव्य वस्तु विषयक बुद्धि भेद होनेसे चतुर्विध भेद होगये हैं। जिसप्रकार सूर्यास्त होगया ऐसे कहनेपर विट. चोर और ब्रह्मचारी भिन्न २ अभिप्राय समझकर भिन्न २ कार्यमें प्रवृत्त होते हैं अर्थात् विट तो व्यभिचारका समय समझ लेते हैं चोर चोरीका ब्रह्मचारी सन्ध्या वन्दनादिका समय समझ लेते हैं ॥ १० ॥

सर्व्वं क्षणिकं क्षणिकं दुःखं दुखं स्वलक्षणं स्वलक्षणं शून्यं शून्यमिति भावनाचतुष्टयमुपदिष्टं द्रष्टव्यम् ॥ ११ ॥

"भावनाका आकार" समस्त वस्तु क्षणिक हैं क्षणिक हैं-१-समस्तु वस्तु दुःखात्मक हैं-२- क्षाणिक होनेके कारण अन्यवस्तुका सादृश्य न होसकनेसे स्वलक्षण-स्वलक्षण -३- समस्त वस्तु शून्य है शून्य है-४ यही भावनाचतुष्टय है ॥ ११ ॥

तत्र क्षणिकत्वं नीलादिक्षणानां सत्त्वेनानुमातव्यं यत् सत् तत् क्षणिकं यथा जलधरपटलं सन्तश्चामी भावा इति ॥ १२ ॥

क्षणिकत्व साधन युक्ति कहते हैं "तत्रेत्यादि" नीलादिवस्तुके क्षणिकत्वका सत्वरूप हेतुसे अनुमान किया जाता है *। क्षणिकत्व साधक अनुमान—यत् सत् (जो सत् है) तत् क्षणिकम् (वह क्षणिक है) यथा जलधर पटल (जिसप्रकार मेघमंडल नीलादि भावभी सत् है अतः वह भी क्षणिक है-जहां जहां सत्व है वहां सर्वत्र क्षणिकत्व है यही व्याप्ति हुई बौद्धमतमें अनुमानके उदाहरण उपनय दो अवयव हैं। जलधरपटल पर्यन्त व्याप्तिप्रतिपादक उदाहरण है, सन्तश्चामीभावाः पक्षधर्मता प्रतिपादक उपनय है ॥ १२ ॥

न चायमसिद्धो हेतुः, अर्थक्रियाकारित्वलक्षणस्य सत्वस्य नीलादिक्षणानां प्रत्यक्षसिद्धत्वात्। व्यापकव्यावृत्त्या व्याप्यव्यावृत्तिन्यायेन व्यापकक्रमाक्रमव्यावृत्तावक्षणिकात् सत्त्वाव्यावृत्तेः सिद्धत्वाच्च। तच्चार्थक्रियाकारित्वं क्रमाक्रमाभ्यां व्याप्तं न च क्रमाक्रमाभ्यामन्यः प्रकारः समस्ति। "परस्परविरोधे हि न प्रकारन्तरस्थितिः । नैकतापि विरुद्धानामुक्तिमात्रविरोधतः" इति न्यायेन व्याघातस्योद्भटत्वात ॥ १३ ॥

यदि कहो हेतुका पक्षवृत्तित्व न होनेसे आश्रयासिद्धरूप हेत्वाभास होता है सो यहां पर भी घटादि पक्षमें सत्वरूप हेतुका आश्रयासिद्ध होगा, यह भी नहीं क्यों कि अर्थक्रियाकारित्व ही सत्व है अर्थ प्रयोजन तद्रूपा क्रिया अर्थक्रिया प्रयोजनीकयाकारित्वं किञ्चित्करत्वमिति यावत् एतादृशसत्व नीलादि क्षणमें प्रत्यक्ष सिद्ध है। व्यापकके न रहनेसे व्याप्य भी नहीं रहता ऐसा नियम है जैसे वह्निके न रहनेसे

---

* कोई कोई ऐसे भी कहते हैं कि बौद्धके मतमें काल अतिरिक्त पदार्थ नहीं हैं क्षण्यते हिंस्यते इस व्युत्पत्तिसे-लब्ध जो क्षण हैं उसके साथ नीलादिको कर्मधारय समास करनेसे नीलादिरूपक्षण यही अर्थ होता है-क्षणिक-व्यवहार राहोः शिरः शिलापुत्रका शरीर इत्यादिवत् है। अतिरिक्त हैं या नहीं इसका निर्णय उन्हींके ग्रन्थसे ही हो सकता है।

घूम भी नहीं रहता सत्वका व्यापक क्रम और अक्रम है यह क्षणिक ही में सम्भव है अतः व्यापक क्रमाक्रम अक्षणिकसे (स्थिरसे) व्यावृत्त होनेसे उसका व्याप्य सत्व भी अक्षणिकसे व्यावृत्त होता है। अर्थक्रियाकारित्वरूप सत्व क्रम (पर्य्याय) अक्रम (युगपत्) से व्याप्त है अर्थात् क्रमाक्रमसत्वका व्यापक है। अर्थ क्रियाकारित्व (किञ्चित्करत्व) के लिये क्रम अक्रम दोनोंको छोडकर तीसरा मार्ग ही नहीं। क्रमके विरुद्ध है अक्रम और अक्रमके विरुद्ध है क्रम इन दोनोंसे परस्परविरुद्धः प्रकारान्तर नहीं हो सकता। क्रमाक्रम जो विरुद्ध है उसका एकत्व भी नहीं हो सकता। क्योंकि यह वचनसे ही विरुद्ध है उक्तयुक्तिसे व्याहति भी स्पष्ट है ॥ १३ ॥

तौ च क्रमाक्रमौ स्थायिनः सकाशाद्व्यावर्त्तमानौ अर्थक्रियामपि व्यावर्त्तयन्तौ क्षणिकत्वपक्ष एव सत्वं व्यवस्थापयत इति सिद्धम् ॥ १४ ॥

उक्त क्रमाक्रम अक्षणिकमें असम्भव होनेसे स्थायीसे स्वयं व्यावृत्त होते हुए व्याप्यभूत अर्थक्रियाको भी व्यावृत्ति कराकर क्षणिकपक्षमें सत्वको व्यवस्थित करते हैं ॥१४॥

नन्वक्षणिकस्यार्थक्रियाकारित्वं किं न स्यादिति चेत् तदयुक्तं विकल्पासहत्वात् । तथा हि—वर्तमानार्थक्रियाकरणकालेऽतीतानागतयोः किमर्थक्रिययोः स्थायिनः सामर्थ्यमस्ति नो वा? आद्ये तयोरनिराकरणप्रसंगः, समर्थस्य क्षेपायोगात्। यत् यदा यत्करणसमर्थं तत् तदा तत् करोत्येव यथा सामग्री स्वकार्य्यं समर्थश्चायं भाव इति प्रसङ्गानुमानाच्च। द्वितीयेऽपि कदापि न कुर्य्यात् सामर्थ्यमात्रानुबन्धित्वादर्थक्रियाकारित्वस्य यत् यदा यन्न करोति तत् तदा तत्रासमर्थं यथा हि शिलाशकल-

---

* यहां पर तात्पर्य यह है कि कुसूल (बखार) स्थबीजसे अंकुर उत्पन्न नहीं होता, क्षेत्रस्थ बीजसे उत्पन्न होता है। अब दोनों स्थानका बीज एक होता तो कुसूलमें भी अंकुर अवस्य उत्पन्न होता परन्तु ऐसा होता नहीं अतः क्षेत्रस्थावस्थामें पूर्व (कुसूलस्थ) बीज नष्ट होकर बीजान्तर उत्पन्न होगया ऐसा अवश्य मानना होगा। एवं—घटादिक भी वर्तमान क्षणमें अतीत अनागत कालवृत्ति कियाको नहीं करता अतः अतीत अनागत अर्थ क्रिया सामर्थ्य उसमें नहीं है ऐसा कहना होगा यह क्षणिकपक्ष माने विना नहीं हो सकता क्योंकि बौद्ध मतमें सामर्थ्य शक्ति सत्ता सब एक है सामर्थ्याभावमें सत्ताका भी अभाव है युगपत् सर्वक्रिया उत्पादन पक्षमें भी एक ही क्षणमें समस्त क्रिया करनेसे "कृतस्य करणन्नास्तीति" न्यायसे द्वितीयादिक्षणमें अर्थक्रियाकारित्वन होनेसे सत्व भी नहीं रहेगा। एक क्षणिक क्षणमात्रवृत्ति है अर्थात् अनेक क्षणमें अवृत्ति होकर कालवृत्ति हो॥

मंकुरे । न चैष वर्त्तमानार्थक्रियाकरणकाले वृत्तवर्त्तिष्यमाणे अर्थक्रिये करोतीति तद्विपर्ययाच्च ॥ १५ ॥

शंका–अक्षणिक (स्थिरको) अर्थक्रियाकारित्व क्यों नहीं हो सकता है । उत्तर-स्थिर पदार्थ वर्तमानकालमें जो कार्य करता है उस कालमें अतीत और अनागत कार्य्य करनेका उस पदार्थको सामर्थ्य है या नहीं ? यदि है तो उसका निरा करना असम्भव होगा अर्थात् वर्तमान अर्थक्रियाकरण समयमें ही भूत भविष्य अर्थक्रिया भी होने लगेगी परन्तु ऐसा होता नहीं । यह नियम है कि जो वस्तु जिस समय जिस कार्यके करनेमें समर्थ है वह उसकालमें उसकार्यको करता है जिस प्रकार सामग्री (दण्ड चक्रादि) अपना कार्य (घटादि) को उत्पन्न करते हैं यदि कहो समर्थ नहीं तो पुनः कदापि उस कार्यको नहीं कर सकेगा, सामर्थ्यके आधीन ही कार्य होता है ॥ जो जिस समयमें जिस कार्यको नहीं कर सकता । वह उसमें उस समय असमर्थ है जिस प्रकार पाषाणखंड अंकुरको नहीं कर सकता यह भी (स्थायित्वेनाभिमत) वर्तमान अर्थक्रियाके उत्पादन समयमें अतीतानागत अर्थक्रिया (प्रयोजनीभूतकार्य) नहीं करता है ऐसा अन्वय-व्यतिरेक दोनों होते हैं ॥ १५ ॥

ननु क्रमवत् सहकारिलाभात् स्थायिनः अतीतानागतयोः क्रमेण क्रमणमुपपद्यते इति चेत् तत्रेदं भवान् पृष्टो व्याचष्टां सहकारिणः किं भावस्योपकुर्व्वन्ति न वा ? न चेत् नापेक्षणीयास्ते अकिञ्चित्कुर्वतां तेषां तादर्थ्यायोगात् । उपकारकत्वपक्षे सोऽयमुपकारः किं भावाद्भिद्यते न वा ? भेदपक्षे आगन्तुकस्यैव तस्य कारणत्वं स्यात् न भावस्याक्षणिकस्य आगन्तुकातिशयान्वयव्यतिरेकानुविधायित्वात् कार्य्यस्य ॥ १६ ॥

यदि कहो सहकारी कारणकी उपलब्धि क्रमसे होती है अतः वस्तु स्थिर होनेपर भी क्रमसे ही अर्थक्रियाका सम्पादन करेगी क्योंकि सहकारी कारणके विना कार्य नहीं हो सकता । प्रथम इसका उत्तर दो क्या सहकारी कारण भाव अर्थात् प्रधानकारणका कोई उपकार करता है या नहीं? उपकार नहीं करता हो तो? अकिञ्चित्कर होनेसे उसकी अपेक्षा ही व्यर्थ होगी । यदि कहो उपकार करता है तो क्या वह उपकार (शक्ति) स्थिर पदार्थसे भिन्न है या अभिन्न ? भिन्न मानो तो सहकारीसे आया हुआ उपकार (शक्ति) अर्थ क्रियाका कारण हुआ न कि अक्षणिक पदार्थ कारण हुआ आगन्तुक अतिशयके रहनेसे कार्य होता है. उसके न रहनेसे नहीं होता है इसप्रकार आगन्तुक अतिशयक अन्वय व्यतिरेकाधीन कार्य हुआ ॥ १६ ॥

तदुक्तम्-"वर्षातपाभ्यां किं व्योम्नश्चर्म्मण्यस्ति तयोः फलम्।
चर्म्मोपमश्चेत् सोऽनित्यः खतुल्यश्चेदसत्फलः" इति ॥ १७ ॥

उसी को कहते हैं-"वर्षातपाभ्यामित्यादि" वर्षाका फल है आर्द्र करना आतपका फल है शुष्क करना यह दोनों निर्विकार (नित्य) आकाशमें नहीं हो सकते आकाश न भीगता है न सूखता है. उक्त दोनों फल चर्ममें होते हैं क्योंकि यह विकारी है। इस प्रकार वस्तुको चर्मके समान मानो तो विकारी होनेसे अनित्य हो जायगा। आकाशके समान निर्विकार मानो तो सहकारी भी निष्फल हो जायगा ॥ १७ ॥

अथ भावस्तैः सहकारिभिः सहैव कार्य्यं करोतीति स्वभाव इति चेत् अस्तु तर्हि सहकारिणो न जह्यात् प्रत्युत पलायमानानपि गले पाशेन बद्ध्वा कृत्यं कार्य्यं कुर्य्यात् स्वभावस्यानपायात्। किञ्च सहकारिजन्योऽतिशयः किमतिशयान्तरमारभते न वा? उभयथापि प्रागुक्तदूषणपाषाणवर्षणप्रसङ्गः ॥ १८ ॥

यदि कहो वस्तुका स्वभाव ही ऐसा है जो सहकारीके साथ ही कार्य करता है हे आयुष्मन्! फिर तो सहकारीको छोडेगा ही नहीं प्रत्युत भागता हो तो गलेमें रस्सी बांधकर कार्य करावेगा। क्योंकि स्वभावका त्याग नहीं होता है. स्वभावनाश होनेसे स्वरूप का भी नाश होगा। और भी दूषण देते हैं-"किञ्चेति" क्या सहकारीसे उत्पन्न अतिशय अतिशयान्तरको उत्पादन करता है या नहीं? दोनों-पक्षमें उपकारकत्व पक्षमें उक्त दूषणपाषाणकी महावृष्टि होगी। अर्थात् यदि अतिशयको न आरम्भ करे तो अकिञ्चित्कर होगा यदि अतिशयान्तरको आरम्भ करे तो क्या वह अतिशय पूर्व अतिशयसे भिन्न है या अभिन्न? भेदपक्षमें पूर्वातिशय व्यर्थ है इत्यादि. अभेदपक्षमें दूषण आगे चलकर मिलेगा ॥ १८ ॥

अतिशयान्तरारम्भपक्षे बहुमुखानवस्थादौस्थ्यमपि स्यात्। अतिशये जनयितव्ये सहकार्यन्तरापेक्षायां तत्परम्परापात इत्येकानवस्था आस्थेया। तथाहि-सहकारिभिः सलिलपवनादिभिः पदार्थसार्थैराधीयमाने बीजस्यातिशये बीजमुत्पादकमभ्युपेयम्। अपरथा तदभावेऽप्यतिशयः प्रादुर्भवेत् बीजञ्चातिशयमादधानं सहकारिसापेक्षमेवाधत्ते। अन्यथा सर्वदोपकारापत्तौ अंकुरस्यापि सदोदयः प्रसज्येत। तस्मादतिशयार्थमपेक्षमाणैः सहकारिभिरतिशयान्तरमाधेयं बीजे तस्मिन्नप्युपकारे

पूर्वन्यायेन सहकारिसापेक्षस्य बीजस्य जनकत्वे सहकारिसम्पाद्यबीजगतातिशयानवस्था प्रथमा व्यवस्थिता ॥ १९ ॥

अतिशयान्तरारम्भपक्षमें अनेक प्रकारकी अनवस्था भी है। अतिशयको उत्पन्न करनेके लिये पूर्वापेक्षा अन्य सहकारीकी अपेक्षा होगी उससे उत्पन्न दूसरा अतिशय पुनः तीसरे अतिशयको आरम्भ करेगा उसके लिये पुनः तीसरे सहकारीकी अपेक्षा इस क्रमसे परम्परा बढती जायगी। यह एक प्रकारकी अनवस्था हुई। यथा अंकुरके लिये बीज कारण है क्षिति जल पवनादि सहकारी हैं तादृश सहकारी सम्मिलित होनेसे बीजमें जो अतिशय उत्पन्न होता है उसके लिये बीजको कारण मानना होगा। नहीं तो बीज न रहनेपर भी केवल सहकारीसे अतिशय उत्पन्न होने लगेगा, अतिशयको बीज धारण करता हैं परन्तु सहकारीके विना नहीं धारण कर सकता अतः सहकारीकी अपेक्षा होगी, नहीं तो उपकार (अतिशय) सदा बने रहनेसे अंकुर भी सदा उत्पन्न होने लगेगा ॥ अतः अतिशयके लिये अपेक्षित सहकारीसे बीजमें अतिशयान्तर अवश्य मानना होगा। उस अतिशयमें भी पुनः सहकारीकी अपेक्षा और बीजकी अपेक्षा एवं क्रमसे सहकारीसे सम्पाद्य बीजगत अतिशयकी अनवस्थारूप प्रथम अनवस्था हुई ॥ १९ ॥

अथोपकारः कार्य्यार्थमपेक्षमाणोऽपि बीजादिनिरपेक्षं कार्य्यं जनयति तत्सापेक्षो वा ? प्रथमे बीजादेरहेतुत्वमापतेत्। द्वितीये अपेक्ष्यमाणेन बीजादिना उपकारे अतिशय आधेय एव तत्र तत्रापीति बीजादिजन्यातिशयनिष्ठातिशयपरम्परापात इति द्वितीयानवस्था स्थिरा भवेत्। एवमपेक्ष्यमाणेनोपकारेण बीजादौ धर्म्मिण्युपकारान्तरमाधेयमित्युपकाराधेयबीजातिशयाश्रयातिशयपरम्परापात इति तृतीयानवस्था दुरवस्था स्यात् ॥२०॥

अंकुरादि कार्य्यके लिये अपेक्षित उपकार (अतिशय) क्या बीजादिके निरपेक्ष होकर स्वयं अंकुरादिको उत्पन्न करता है या बीजादिके सापेक्ष होकर करता है निरपेक्ष माने तो बीजादिका कारण न होनेसे व्यर्थ हो जायँगे। सापेक्ष कहे तो अपेक्षित बीजादिसे उपकारमें अतिशय आधान करेगा। उसमें पुनः अतिशायन्तर उत्पन्न होगा उसके लिये बीजान्तरकी अपेक्षा होगी। पुनरापि एवं इस क्रमसे बीजादिसे जायमान जो अतिशय उसमें पुनः अतिशय कर उसमें भी अत्तिशय इत्यादि दूसरी अनवस्था भी स्थिर होगी। इसी प्रकार अपेक्षित उपकारसे बीजादि धर्मी (आश्रयमें) भी उपकारान्तर मानना

होगा उपकाराश्रय बीजके आतिशयमें भी आतिशयान्तर उसमें भी पुनः आतिशयान्तर इत्यादि अतिशय परम्परारूप तीसरी अनवस्था होगी ॥ २० ॥

अथ भावादभिन्नोऽतिशयः सहकारिभिराधीयत इत्यभ्युपगम्यते तर्हि प्राचीनो भावोऽनतिशयात्मा निवृत्तः अन्यश्चातिशयात्मा कुर्व्वेद्रूपादिपदवेदनीयो जायत इति फलितं ममापि मनोरथद्रुमेण। तस्मादक्षणिकस्यार्थक्रिया दुर्घटा ॥ २१ ॥

यह हुआ स्थिर पदार्थसे भिन्न आतिशय पक्षमें दूषण । यदि सहकारीसे जायमान आतिशयको वस्तुसे आभिन्न मानो तो प्राचीन निरातिशयभाव नष्ट होकर सातिशयभाव उत्पन्न होगया ऐसे मानोगे तो हमारा भी मनोरथ सफल हो जायगा क्योंकि स्थिर पदार्थ नहीं रहा जब जब आतिशय उत्पन्न होगा तब तब अन्य अन्य भाव उत्पन्न होते जायंगे अतः अक्षणिकको कार्यजनकत्व असम्भव है ॥ २१ ॥

नाप्यक्रमेण घटते विकल्पासहत्वात् । तथाहि–युगपत् सकलकार्य्यकरणसमर्थः स भावस्तदुत्तरकालमनुवर्त्तते न वा ? प्रथमे तत्कालवत् कालान्तरेऽपि तावत् कार्य्यकरणमापतेत्। द्वितीय स्थायित्ववृत्त्याशामूषिकभक्षितबीजादावङ्कुरादिजननप्रार्थनामनुहरेत्। यद्विरुद्धधर्म्माध्यस्तं तन्नाना, यथा शीतोष्णे । विरुद्धधर्म्माध्यस्तश्चायमिति जलधरे प्रतिबन्धसिद्धिः ॥ २२ ॥

अक्रम (युगपत्) से भी अर्थक्रियाकारित्व नहीं कह सकते क्यों कि विकल्प (इदं वा इदं वा इत्यादि नानाप्रकारकी कल्पना) होनेपर समीचीन उत्तर देकर एकको भी स्थिर करना असम्भव है । "तथाहीति"-एक ही कालमें अतीतानागत वर्तमान घटादि कार्य करनेमें समर्थ कुलालादि पदार्थ उत्तरकालमें अनुवृत्त (रहता) है या नहीं ? रहता है तो कालान्तर में भी पूर्व अतीतादि समस्तकार्य होने लगेंगे ।* यदि कहो उत्तर कालमें नहीं रहता है तो पदार्थको स्थिरत्व पक्ष मूषिका भक्षित बीज (निस्तत्व) से अङ्कुरकी प्रार्थनाके समान है । अर्थात्–जब उत्तरकालमें अनुवृत्त ही नहीं तब स्थिर कहां रहा । अनुमान भी है जो विरुद्ध धर्म्मवान् हो वह भिन्न होते हैं । जैसे शीतोष्ण । यहां शीतशब्द और उष्णशब्द गुणपरक नहीं किन्तु गुणिपरक हैं अर्थात् शीतजल औ

---

*एक शंका यह भी हो सकती है. कि, उत्तरकालमें जो कार्य करेगा वह क्या पूर्वकालमें किया हुआ ही था ? अन्य पूर्वकालमें किया हुआ तो नहीं कह सकते हो क्योंकि कृतको पुनः करना व्यर्थ होगा । यदि अन्य कहो तो उसका सामर्थ्यासामर्थ्यादि दोष पूर्ववत् रहेगा ।

उष्ण जलपर हैं। पदार्थ (घटकुलालादि) भी विरुद्ध धर्मयुक्त हैं. अतः यह भी अनेक हैं। जहां जहां विरुद्ध धर्म्माश्रयत्व हो तहां तहां अनेकत्व है यह व्याप्ति जलधरमें सिद्ध है मेघ कभी श्याम कभी शुभ्रादि देख पडता है वह भिन्न भिन्न भी हैं प्रतिबन्ध का अर्थ व्याप्ति है । "बीजादिभावाः प्रतिक्षणं भिन्नाः विरुद्धधर्म्माध्यस्तत्वात्" इत्यादि अनुमान भी है। यदि शंका करो बीजादिमें विरुद्ध धर्म्माध्यस्तत्व हेतु स्वरूपासिद्ध है। जिस प्रकार "शब्दो नित्यः चाक्षुषत्वात्" इत्यादिमें चाक्षुषत्व शब्दमें नहीं रहनेसे स्वरूपासिद्ध कहाता है तिस प्रकार विरुद्ध धर्म्माध्यस्तत्व भी बीजादिमें नहीं है। क्यों कि एक ही कालमें विरुद्ध धर्म रहे तो तादृश धर्माध्यस्तत्व कह सकते हैं काल भेदसे तादृश धर्म रहनेपर भी विरोध न होनेसे स्वरूपासिद्ध है ॥ २२ ॥

न चायमसिद्धो हेतुः, स्थायिनि कालभेदेन सामर्थ्यासामर्थ्ययोः प्रसङ्गतद्विपर्य्ययसिद्धत्वात्तत्रासामर्थ्यसाधकौ प्रसङ्गतद्विपर्य्ययौ प्रागुक्तौ सामर्थ्यसाधकावभिधीयेते । यद्यदा यज्जननासमर्थं तत्तदा तन्न करोति यथा शिलाशकलमङ्कुरमसमर्थश्चायं वर्त्तमानार्थक्रियाकरणकाले अतीतानागतयोरर्थक्रिययोरिति प्रसङ्गः । यत् यदा यत् करोति तत्तदा तत्र समर्थं यथा सामग्री स्वकार्य्यं करोति चायमतीतानागतकाले तत्कालवर्तिन्यावर्थक्रिये भाव इति प्रसङ्गव्यत्ययः विपर्य्ययः । तस्माद्विपक्षे कर्मयोगपद्यव्यावृत्त्या व्यापकानुपलम्भेनाधिगतव्यतिरेकव्याप्तिकं प्रसङ्गतद्विपर्य्ययबलाद् गृहीतान्वयव्याप्तिकं सत्त्वं क्षणिकत्वपक्ष एव व्यवस्थास्यतीति सिद्धम् ॥ २३ ॥

इसका उत्तर स्थिर वस्तुमें कालभेदसे सामर्थ्य और असामर्थ्य दोनों प्रसंग और तद्विपर्ययसे सिद्ध हैं । असत् वस्तुके सत्वका आपादन प्रसंग है सत् वस्तुके असत्वका आपादन विपर्यय है । व्यतिरेक व्याप्ति द्वारा दर्शित अनुमान प्रसंगानुमान हैं । अन्वय व्याप्ति द्वारा दर्शित अनुमान विपर्ययानुमान है । असामर्थ्य साधक प्रसंग और तद्विपर्यय "सामर्थ्यमात्रानुबन्धित्वादर्थक्रिययोः" इत्यादि ग्रन्थोंसे पूर्व कह चुके हैं । अब सामर्थ्य साधक कहता हूं । जो वस्तु (अंकुरादि) अथवा (कुलालादि) जिस समय जिस कार्यके करनेमें असमर्थ हो वह उसकालमें उस कार्यको नहीं करता जिस प्रकार पाषाण खंड अंकुरको नहीं उत्पन्न करता । यह बीजादिक भी वर्तमान कार्योत्पादन समयमें

अतीतानागत प्रयोजन क्रियाके लिये असमर्थ हैं, वही प्रसंग है । जो पदार्थ (बीजादि) जिस कालमें जिस कार्यको करता है वह उस कार्यमें समर्थ है । जिस प्रकार जल-पवनादि सामग्री स्वकार्योत्पादनमें समर्थ है । अतीतअनागत कालमें यह भी बीजादि तत्तत्कालवर्ती अर्थक्रियाको उत्पादन करते हैं । यही प्रसंगव्यत्यय अर्थात् प्रसंगाभाव-रूप विपर्यय है । अतः विपक्ष (स्थिरपक्ष) में क्रम यौगपद्य न होनेसे व्यापकाभावसे गृहीत व्यतिरेकव्याप्ति प्रसङ्ग तद्विपर्ययसे गृहीत अन्वयव्याप्तिका जो सत्त्व है वह क्षणिकत्व पक्षमें ही उपपन्न होता है यह सिद्ध हुआ ॥ २३ ॥

तदुक्तं ज्ञानश्रिया-

"यत्सत्तत्क्षणिकं यथा जलधरः सन्तश्च भावा अमी
सत्ता शक्तिरिहार्थकर्म्मणि मितेः सिद्धेषु सिद्धा न सा ॥
नाप्येकैव विधान्यथा परकृतेनापि क्रियादिर्भवेद्
द्वेधापि क्षणभङ्गसङ्गतिरतःसाध्ये च विश्राम्यति"इति ॥२४॥

ज्ञानश्रीनामक बौद्धोंके आचार्यने कहा है । जो वस्तु सत् है वह क्षणिक है जिस प्रकार जलधर । घटादि भाव भी सत् है अतः वह भी क्षणिक होगा । सत्तारूप जो शक्ति है वह अर्थक्रियाकारित्व है । यह मिति (प्रमाण) से सिद्ध होता है । वह शक्ति सिद्ध अर्थात् (स्थिर) पदार्थ में सिद्ध नहीं होसकती । "नाप्येकैकेति" अक्षणिकसे कार्य्योत्पत्तिमें एक ही प्रकार नहीं किन्तु क्रम और अक्रम दो प्रकार हैं। अन्यथा अन्यकी कृतिसे अन्यमें क्रिया दर्शनस्पर्शनादि होने लगेगा। क्रम अक्रम दोनों पक्षमें क्षण भंगत्व सिद्ध होते हैं* ॥ २४ ॥

न च कणभक्षाक्षचरणादिपक्षकक्षीकारेण सत्तासामान्ययोगित्वमेव सत्त्वमिति मन्तव्यं सामान्यविशेषसमवायानामसत्त्वप्रसङ्गात् ॥ २५ ॥

आगे सामान्यखंडनका उपक्रम करते हैं-"नच कणभक्षेति" कणभक्ष-औलूक्य है वह बाल्यावस्थासे कपोत वृत्तिको धारणकर मार्गमें गिरे हुए अन्नके कणोंको बीनकर

---

* यदि कोई शंका करे कुलालादिमें एवं अंकुरादिमें प्रयोजनरूप क्रियाजनकत्व है क्योंकि कुलाल घटादि कार्यको करता है बीजादि अंकुरादि कार्यको करता है. परन्तु घटादिमें अर्थक्रियाकारित्व क्या है ? तिसका उत्तर-घटादिमें भी जलाहरणादि प्रयोजनक्रियानिर्वाहकत्व है अन्ततः विषयता सम्बन्धसे ज्ञानक्रियाकारित्व सर्वत्र है। यह भी समझना आवश्यक है कि आजकलके लोग शास्त्रविचारके समय किसी वस्तुका नाम लेना होता है तब घटपटादि वस्तुका नाम लेते हैं-परन्तु प्राचीनलोग ऐसे समयपर नीलपीतादिका नाम लेते थे यह नीलादि वर्णवाची नहीं किन्तु घटादि वस्तुमात्रका उपलक्षण है ॥

निर्वाह करते रहे अतः उनका नाम कणाद (कणभक्ष) हुआ । उलूक ऋषिके अपत्य (पुत्र) होनेसे औलूक्य नाम हुआ । उनका शास्त्र वैशेषिक है । अक्षपाद गौतम हैं । इनका न्यायशास्त्र है । इनके मतमें व्यक्तिसे अतिरिक्त सामान्य (जाति) एक पदार्थ है– उस सामान्यमें दो भेद हैं, पर और अपर। द्रव्य गुण, कर्म, इन तीनोंमें रहनेवाला परसामान्य है उसीको सत्ता सामान्य कहते हैं । तथा च तादृशसत्ता सामान्यवत्वःही सत्त्व है– अर्थ क्रियाकारित्व सत्त्व नहीं ऐसा नहीं मान सकते सामान्य, विशेष, समवायपर सामान्य न होनेसे उसका असत्वप्रसंग होगा । कहा भी है–"सामान्यपरिहीनास्तु सर्वे जात्यादयो मताः" इति—॥ २५ ॥

न च तत्र स्वरूपसत्तानिबन्धनः सद्व्यवहारः, प्रयोजकगौरवापत्तेः, अनुगतत्वाननुगतत्वविकल्पपराहतेश्च, सर्षपमहीधरादिषु विलक्षणेषु क्षणेष्वनुगतस्याकारस्य मणिषु सूत्रवद् भूतगणेषु गुणवच्चाप्रतिभासनाच्च ॥ २६ ॥

यदि कहो उसमें सद् व्यवहार स्वरूपसत्ता (विद्यमानता) मूलक है जातिमूलक नहीं तो कहीं २ सद्व्यवहार प्रयोजिकासत्तासामान्य, कहीं २ स्वरूपसत्ता होगी तो भिन्नभिन्न प्रयोजक कल्पनाका गौरव होगा । कहां कहां अनुगत है कहां अननुगत है यह व्यवस्था भी न होगी। जिस प्रकार नाना पुष्परचित मालाके अन्तर्गत प्रत्येक पुष्पोंमें सूत्र प्रविष्ट रहता है, जिस प्रकार पृथिव्यादि द्रव्योंमें गुण विद्यमान रहता है, तिसी प्रकार पर्वत सर्षपादि विलक्षण वस्तुओंमें अनुगत सामान्यका प्रतिभास (प्रत्यक्ष) भी नहीं होता ॥ २६ ॥

किञ्च सामान्यं सर्वगतं स्वाश्रयसर्वगतं वा ? प्रथमे सर्ववस्तुसंकरप्रसङ्गः, अपसिद्धान्तापत्तिश्च । यतः प्रोक्तं प्रशस्तपादेन–स्व विषयसर्वगतमिति । किञ्च विद्यमाने घटे वर्त्तमानं सामान्यमन्यत्र जायमानेन सम्बध्यमानं तस्मादागच्छत्सम्बध्यते अनागच्छद्वा ? आद्ये द्रव्यत्वापत्तिः । द्वितीये सम्बन्धानुपपत्तिः । किञ्च विनष्टे घटे सामान्यमवतिष्ठते विनश्यति स्थानान्तरं गच्छति वा ? प्रथमे निराधारत्वापत्तिः;द्वितीये नित्यत्ववाचोयुक्तयुक्तिः, तृतीये द्रव्यत्वप्रसक्तिः, इत्यादि दूषणग्रहग्रस्तत्वात् सामान्यमप्रामाणिकम् ॥ २७ ॥

दूषणान्तर भी देते हैं "किञ्चेति"-क्या सामान्यको सर्वगत अर्थात् सर्वत्र व्याप्त मानते हो या सामान्यका आश्रय यावत् व्यक्ति गत मानते हो? सर्वगत मानो तो घटमें भी पटत्वादि सामान्य रहेगा और पटमें घटत्वादि सामान्य रहेगा अतः समस्त वस्तुओंमें समस्त सामान्य रहनेसे सांकर्य दोष हो जायगा और सिद्धान्तकी हानि भी होगी। क्यों कि प्रशस्तपादाचार्यने स्वाश्रयत्वेन विवक्षित यावत् व्यक्तिगत माना है। अब दूसरे पक्षका खंडन करते हैं "किञ्चेत्यादि"—एक घट मथुरामें विद्यमान है उसमें विद्यमान जो सामान्य है वह कालान्तरमें वृन्दावनमें उत्पन्न होनेवाले घटके साथ मथुरासे आकर सम्बद्ध होता है या वहीं रहकर सम्बद्ध होता है? आ करके संबद्ध होता है ऐसा कहो तो चलनक्रियाके आश्रय होनेसे द्रव्यत्व प्रसंग होगा। क्रिया केवल द्रव्यहीमें रहती है अतएव "गुणादिर्निर्गुणक्रियः" इति। गुणक्रिया सामान्यादिको निर्गुणत्व और निष्क्रियत्व कहा है। यदि नहीं आता हो तो देशभेद होनेसे परस्पर सम्बन्ध नहीं होसकेगा। और भी जब घट नष्ट होता है तब उस घटमें रहनेवाला सामान्य वहीं रहजाता है या दूसरी जगह चला जाता है अथवानष्ट होजाता है ? प्रथम पक्षमें निराश्रय होगा। द्वितीय पक्षमें पूर्ववत् द्रव्यत्व प्रसंग होगा। तृतीय पक्षमें अनित्यत्व प्रसंग होगा। इत्यादि दूषण जालमें पतित होनेसे सामान्य कल्पना अप्रामाणिक है ॥ २७ ॥

तदुक्तम्—

"अन्यत्र वर्त्तमानस्य ततोऽन्यस्थानजन्मनि ।
तस्मादचलतः स्थानाद्वृत्तिरित्यतियुक्तता ॥
यत्रासौ वर्त्तते भावस्तेन सम्बध्यते न तु ।
तद्देशिनञ्च व्याप्नोति किमप्येतन्महाद्भुतम् ॥
न याति न च तत्रासीदस्ति पश्चान्न चांशवत् ।
जहाति पूर्वं नाधारमहो व्यसनसन्ततिः" इति ॥

अनुवृत्तप्रत्ययः किमालम्बन इति चेत् अङ्ग!अन्यापोहा-
लम्बन एवेति सन्तोष्टव्यमायुष्मतेत्यलमतिप्रसङ्गेन ॥२८॥

पूर्वोक्त अर्थको श्लोकरूपमें संग्रह करके कहते हैं-"अन्यत्रेत्यादि" मथुरास्थ विद्यमान घटमें घटत्वरूप सामान्य मथुरासे चले विना पाटलिपुत्र में उत्पन्न घटसे सम्बद्ध होगा यहां बडी विलक्षण युक्ति है। एक ही घरमें ९। १० घट हैं बीच बीचमें अन्यान्य वस्तु भी हैं परन्तु घटत्वरूप सामान्य एक होकर सब घटोंमें व्याप्त रहता है मध्यमें वर्तमान दूसरे वस्तुओंमें नहीं रहता यह भी बडे अचरजकी बात है।

जब नया घट उत्पन्न होता है तब उसमें घटत्व दूसरे स्थानसे नहीं आता है न वहांपर पहिले था। घट नष्ट होनेके पीछे भी वहां नहीं रहता और धटत्व सावयव भी नहीं हैं जिससे एक एक अंशसे एक एकमें व्याप्त कहें। पूर्व आधारको छोडता भी नहीं है ऐसी व्यसन-सन्तातिका कोई अन्त ही नहीं है। यदि सामान्य पदार्थ नहीं है तो प्रत्येक व्यक्तिमें अनुवृत्त "घटोऽयं घटोऽयं" इत्यादि प्रतीति किंमूलक है तो इसका उत्तर सावधानचित्तसे सुनो। अन्यका अभावरूप है अर्थात् घट यह प्रतीति पटाभावरूप है। हे आयुष्मन्! इतनेसे सन्तोष करो। अप्रासंगिक विचार इतने ही बहुत हैं ॥ २८ ॥

सर्वस्य संसारस्य दुःखात्मकत्वं सर्व्वतीर्थकरसम्मतम्। अन्यथा तन्निवर्त्तयिषूर्णां तेषां तन्निवृत्त्युपाये प्रवृत्त्यनुपपत्तेः। तस्मात् सर्व्वं दुःखं दुःखमिति भावनीयम्। ननु किंवदिति पृष्टे दृष्टान्तः कथनीय इति चेन्मैवं स्वलक्षणानां क्षणानां क्षणिकतया सालक्षण्याभावात् नैतेन सदृशमपरमिति वक्तुमशक्यत्वात्। ततः स्वलक्षण स्वलक्षणमिति भावनीयम्। एवं शून्यं शून्यमित्यपिभावनीयम् ॥ २९ ॥

क्षणिकत्वका निरूपण करके क्रमशः दुःखत्वादिकका निरूपण करते हैं। "संसारस्येत्यादि" सम्पूर्ण संसार ही दुःखात्मक है इसको समस्त शास्त्रकारोंने माना है। यदि संसार दुःखात्मक न होता तो शास्त्रकारोंकी दुःखनिवृत्तिके लिये और प्रकारके उपायोंकी प्रवृत्ति असंगत होजाती। अतः समस्त वस्तुओंको दुःखरूप ही जानो। संसारको दुःखात्मक कहनेमें कोई दृष्टान्त देना होगा सो भी नहीं क्योंकि स्वलक्षण अर्थात् घटादि वस्तु जिस कालमें लक्षित (प्रतीत) होता हो वह स्वलक्षण क्षण कहाता है वह क्षण भी क्षणिक हैं। अतः अनेक वस्तुओंको एक समयमें ग्रहण न होनेके कारण अमुक वस्तुके सदृश घटादि वस्तु है ऐसा कहना असम्भव है। इस कारण स्वलक्षण २ ऐसी ही भावना करें एवं शून्य हैं शून्य हैं ऐसी भी भावना करें ॥ २९ ॥

स्वप्ने जागरणे च न मया दृष्टमिदं रजतादीति विशिष्टनिषेधस्योपलम्भात्। यदि दृष्टं सत् तदा तद्विशिष्टस्य दर्शनस्येदन्ताया अधिष्ठानस्य च तस्मिन्नध्यस्तस्य रजतत्वादेस्तत्तत्सम्बन्धस्यच समवायादेः सत्त्वं स्यात्। न चैतदिष्टं कस्यचिद्वादिनः। न चार्द्धजरतीयमुचितम्। न हि कुक्कुटया एको भागः पाकाय अपरो भागः प्रसवाय कल्प्यतामिति कल्प्यते ॥ ३० ॥

क्षणिकत्वादि साधनेके अनन्तर शून्यत्ववादमें प्रमाण न होनेसे असंगत है ऐसी कोई शंका करे तो उसका परिहार करते हैं "स्वप्ने जागरणे चेत्यादि" जिस प्रकार स्वप्न-दृष्ट रजतादि पदार्थ जाग्रत दशामें उपलब्ध न होनेसे शून्य है तिस प्रकार जागरण दशा में दृष्ट पदार्थ भी शून्य है स्वप्नमें दृष्ट वस्तुकी उपलब्धि न होनेसे असत है परन्तु जागरणमें दृष्ट वस्तुकी उपलब्धि होनेसे दृष्टांतके विषयमें ऐसी आशंकासे कहते हैं–" यदि दृष्टेत्यादि " दृष्ट वस्तु सत् है तो " इदं रजतं पश्यामीत्यादि " स्थलमें विशेषणीभूत इदन्ता; (१) दर्शन (२) रजतादिके आश्रय शुक्त्यादि (३) उसमें आरोपित रजतादि (४) तत्सम्बन्ध (५) सबका सत्व होगा परन्तु विशिष्ट का सत्व किसीको भी सम्मत नहीं है । केवल दृष्ट वस्तु मात्रका सत्व मानना अर्धजरतीय है आधा अंग बुढियाके समान और आधा अंग युवतिके समान है । मुर्गीके आधे अंगको काटकर पाक करे और आधे अंगके अण्डे पैदा करनेको रख छोडे ऐसा नहीं हो सकता ॥ ३० ॥

तस्मादध्यस्ताधिष्ठानं तत्सम्बन्धदर्शनद्रष्टॄणां मध्ये एकस्यानेकस्य वा असत्त्वे निषेधविषयत्वेन सर्व्वस्यासत्त्वं बलादापतेदिति भगवतोपदिष्टे माध्यमिकास्तावदुत्तमप्रज्ञा इत्थमचीकथन् । भिक्षुपादप्रसारणन्यायेन क्षणभंगाद्यभिधानमुखेन स्थायित्वानुकूलवदनीयत्वानुगतसर्व्वसत्यत्वभ्रमव्यावर्त्तनेन सर्व्वशून्यतायामेव पर्य्यवसानम् । अतस्तत्त्वं सदसदुभयानुभवात्मकचतुष्कोटिविनिर्म्मुक्तं शून्यमेव । तथाहि–यदि घटादेः सत्त्वं स्वभावस्तर्हि कारकव्यापारवैयर्थ्यम् । असत्त्व स्वभाव इति पक्षे प्राचीन एव दोषः प्रादुःष्यात् । यथोक्तम्–"न सतः कारणापेक्षा व्योमादेरिव युज्यते । कार्य्यस्यासम्भवो हेतुः खपुष्पादेरिवासतः" इति ॥ ३१ ॥

अतः अधिष्ठान दर्शनादिके मध्यमें एक भी असत् होनेसे निषेधका विषय हो तो समस्त वस्तुओंकी निषेध विषयता अवर्जनीय है । अतः बौद्धमतावलम्बी माध्यमिकलोग उक्त प्रकार समस्त वस्तुओंको शून्य कहते हैं । "भिक्षुपादेति"-जैसे किसी भिक्षुकके बैठने मात्रका स्थान मिलनेपर वह भिक्षुक धीरे धीरे पाव पसारते जमीनपर दखल कर लेता है तैसे ही दुःखत्व क्षणिकत्वादि प्रदर्शनद्वारा सर्वशून्यत्व ही अभिमत सिद्धान्त पर्यवसित होता है । अतः सत्, असत्, सदसत्, त्रितयभिन्न रूप चार कोटीसे विलक्षण शून्य ही तत्व है, यह सिद्ध हुआ उसीको पूर्वपक्षद्वारा दृढ करते हैं "तथा हीइत्यादि"

क्या घटादिका सत्वस्वभाव है या असत्त्व ? प्रथम पक्षमें कारक व्यापार व्यर्थ है क्यों कि गगनादिवत् सदा विद्यमानको कारणकी अपेक्षा नहीं होती है। असत्स्वभाव मानों तो भी कारकव्यापार व्यर्थ हैं जो गगन कुसुमके समान। असत् पदार्थोंको भी कारणकी अपेक्षा नहीं होती, वही शास्त्रकारोंने कहा है. "न सतः कारणापेक्षा इत्यादि" सत् पदार्थको कारणकी अपेक्षा नहीं होती है जैसे आकाशको। असत्पदार्थ को भी कारणकी अपेक्षा नहीं होती है जैसे खपुष्पादिको ॥ ३१ ॥

विरोधादितरौ पक्षावनुपपन्नौ। तदुक्तं भगवता लंकावतारे "बुद्ध्या विविच्यमानानां स्वभावो नावधार्य्यते। अतो निरभिलप्यास्ते निःस्वभावाश्च दर्शिताः"इति ॥ "इदं वस्तु बलायातं यद् वदन्ति विपश्चितः । यथा यथार्थाश्चिंत्यंते विशीर्य्यन्ते तथा तथा"इति च॥ न क्वचिदपि पक्षे व्यवतिष्ठत इत्यर्थः। दृष्टार्थव्यवहारश्च न स्वप्नव्यवहारवत् संवृत्त्या सङ्गच्छते ॥ अत एवोक्तम्"परिव्राट् कामुकशुनामेकस्यां प्रमदातनौ। कुणपः कामिनी भक्ष्य इति तिस्रो विकल्पनाः" इति ॥ तदेवं भावनाचतुष्टयवशान्निखिलवासनानिर्वृत्तौ परनिर्व्वाणं शून्यरूपंसे त्स्यतीति वयं कृतार्थाः नास्माकमुपदेश्यं किञ्चिदस्तीति ॥ ३२ ॥

विरुद्ध होनेसे सदसत् और त्रितयभिन्न यह भी दो पक्ष अनुपपन्न हैं, क्यों कि घटको सदसत् मानते हो या सत्-असत्-सदसत् एतत्रितय भिन्न मानते हो ? यदि सदसत् मानो तो जो सत् है सो असत् नहीं कहसकते जैसे आकाश और जो असत् है वह सत् नहीं होसकता जैसे वन्ध्यासुता। यदि त्रितयभिन्न मानो तो भी आपसे पूछते हैं वह सत् है की असत्?घटादिको असत् तो नहीं कहसकते हो क्योंकि "सन् घटः"ऐसी प्रतीति होती है सत् भी नहीं कह सकते,कारण कि भूत भविष्यद् वर्तमान कालत्रयमें जिसका बाध न हो वही सत् कहा जाता है जैसे घटावस्थाके पूर्वमें घटध्वंसके बाद और घटावस्थामें मृत्तिका रहती है इसलिये घटको सत् न कहकर मृत्तिका ही सत् कही जायगी. इस कारण घटको त्रित्तयाभिन्न भी नहीं कहसकते। सिद्धान्तमें क्या मानते हो ऐसा प्रश्न करते हो तो सुनो लंकावतार ग्रन्थमें कहा है-"बुध्योते" अयं भावः-बुद्धिसे जिन पदार्थों, का विचार होसकता है उनके स्वभावका उपपादन नहीं होसकता इस कारण उनको शास्त्रकारोंने निराभिलप्य (दुरुपपाद)माना है। जब उनके स्वभावका कथन नहीं होसकता तब

उनका स्वभाव है इसमें भी प्रमाण न होनेसे वे निःस्वभाव बतलाये गये हैं । " इदं वस्त्विति"इसी बातको पंडित लोक छाती ठोकके कहते हैं कि जिस २ प्रकारसे पदार्थोंका निश्चय होता है उसीप्रकार वे पदार्थ नष्ट (रूपान्तरसे परिणत) भी देखे जाते हैं-सदसदादि किसी पक्षमें व्यवस्थित (ध्रुव) नहीं हैं । दृष्ट वस्तु व्यवहार भी अज्ञानमूलक होनेसे स्वप्नव्यवहारवत् असंगत है । एक ही स्त्रीके देहके विषयमें तीन तरहकी कल्पना होती है । जैसे-परिव्राट् संन्यासी उसको मुर्दाके समान अस्पृश्य मानते हैं । कामी पुरुष उसको अतीव कामिनी और कुत्ता उसको खाद्य मांस मानते हैं । अब उपसंहार करते हैं "तदेव मित्यादि"-उक्त चतुर्विध भावनासे समस्त वासना निवृत्त होनेपर परम शान्तिरूप शून्य पद प्राप्त होगा अतः मैं कृतार्थ हूं मेरे लिये-अब ज्ञातव्य कुछ भी नहीं है ॥

शिष्यैस्तावद्योगश्चाचारश्चेति द्वयं करणीयम् । तत्राप्राप्तस्यार्थस्य प्राप्तये पर्यनुयोगो योगः, गुरूक्तस्यार्थस्याङ्गीकरणमाचारः, गुरूक्तस्याङ्गीकरणादुत्तमाः,पर्यनुयोगस्याकरणादधमाश्च । अतस्तेषां माध्यमिका इति प्रसिद्धिः । गुरूक्तभावनाचतुष्टयं बाह्यार्थस्य शून्यत्वञ्चांगीकृत्यान्तरस्य शून्यत्वञ्चांगीकृतं कथमिति पर्य्यनुयोगस्य करणात् केषाञ्चिद् योगाचारप्रथा ॥ ३३ ॥

योगाराचादि संज्ञामें निमित्त दिखाते हैं "शिष्यैरित्यादि" शिष्योंको योग और आचार दोनों कर्तव्य हैं उसमें जो वस्तु अप्राप्त है उसकी प्राप्तिके लिये आग्रह करना योग है गुरूपदिष्टार्थको अङ्गीकार करना आचार है । गुरुपदिष्टार्थको स्वकिार करनेसे उत्तम हुए पर्यनुयोग (तर्क) न करनेसे अधम होगये उत्तमता-और अधमता दोनों एक ही व्यक्तिमें रहनेसे वे मध्यम कहलाने लगे । मध्यमसिद्धान्तावलम्बी माध्यमिक रूपसे प्रसिद्ध हुए, गुरूपदिष्ट भावनाचतुष्टय और बाह्य विषयको शून्यत्व स्वीकार करके आन्तरिक विषयको शून्यत्व कैसे स्वीकार किया ऐसा प्रश्न करनेसे कोई २-योगाचार नामसे प्रसिद्ध होगये ॥ ३३ ॥

एषा हि तेषां परिभाषा । स्वयंवेदनं तावदङ्गीकार्य्यमन्यथा जगदान्ध्यं प्रसज्येत । तत् कीर्तितं धर्म्मकीर्त्तिना-"अप्रत्यक्षोपलम्भस्य नार्थदृष्टिः प्रसिध्यति ।" इति बाह्यं ग्राह्यं नोपपद्यत एव विकल्पानुपपत्तेः । अर्थो ज्ञानग्राह्यो भावादुत्पन्नो भवति अनुत्पन्नो वा ? न पूर्व्वः, उत्पन्नस्य स्थित्यभावात् । नापरः, अनुत्पन्नस्यासत्त्वात् ॥ ३४ ॥

योगाचार परिभाषा स्वसंवेदन (स्वयं स्वात्मप्रकाशक) ज्ञान अवश्य मानना होगा तो जगत्का आन्ध्य होगा अर्थात् समस्त व्यवहार लुप्त होजायगा । इस विषयमें पूर्वाचार्य_ सम्मति भी देते हैं-"तत्कीर्तितमित्यादि"। जिसको प्रत्यक्ष उपलम्भ नहीं है उसको अर्थज्ञान नहीं होगा । बाह्यार्थका ज्ञानविषयत्व निराकरण कहते हैं।"बाह्यं ग्राह्यं नोपपद्यते इत्यादि" विकल्पसह उसको कहते हैं। "इदं वा इदं वा इत्यादि" नाना प्रकारका तर्क होनेपर समीचीन उत्तर द्वारा एक पक्षको भी स्थिर नहीं करसके । विकल्पको दिखाते हैं-"अर्थ इति" ज्ञानका विषय जो आपका अभिमत बाह्य अर्थ है वह कारण पदार्थसे उत्पन्न है या नहीं ? बिजलीकी चमकके समान उत्पन्न वस्तुकी स्थिति नहीं होसकनेसे प्रथम पक्ष असंगत है गगन-कुसुमादिवत् अनुत्पन्न वस्तुकी सत्ता न होनेसे द्वितीयपक्ष भी असंगत है ॥३४॥

अथ मन्येथाः अतीत एवार्थो ज्ञानग्राह्यः तज्जनकत्वादिति तदपि बालभाषितं वर्त्तमानतावभासविरोधात् इन्द्रियादेरपि ग्राह्यत्वप्रसङ्गाच्च ॥ ३५ ॥

उत्पन्न अर्थकी स्थिति न होनेपर भी-ज्ञानका जनक होनेसे अतीत अर्थ ज्ञानका ग्राह्य होगा ऐसा कहना भी बालकोंके कथनके समान है । क्यों कि यह घट है इस प्रकार सन्निहित विद्यमानत्वादि रूपसे जो प्रतीत होता है उसका विरोध होगा क्योंकि अतीतमें विद्यमानत्व नहीं है । ज्ञानजनकत्व इन्द्रिय मन आदिमें भी होनेसे प्रत्यक्षज्ञानविषयत्व इन्द्रियादिकमें भी अतिव्याप्त होगा इत्याशयसे कहते हैं-"अथ मन्येथा इत्यादि" ॥३५॥

किञ्च ग्राह्यः किं परमाणुरूपोऽर्थः अवयविरूपो वा ? न चरमः, कृत्स्नैकदेशविकल्पादिना तन्निराकरणात् ॥ ३६ ॥

प्रकारान्तरसे भी अवयवी द्रव्यनिराकरण पूर्वक बाह्य वस्तुको ज्ञानग्राह्यत्व निराकरण करते हैं-"किञ्चेत्यादि"परमाणु-रूप या-अवयवीरूप दो विकल्प हैं। अवयवी घटादि ज्ञानका विषय नहीं हो सकता क्यों कि अवयवी द्रव्य सिद्ध ही नहीं है । तथाहि परमाणु अवयव हुआ उसको परमाण्वन्तरसे. संयोग मानोगे तो क्या वह एकदेशसे संयुक्त होता. है. या सर्व देशसे ? एकदेशपक्षमें परमाणु भी सावयव होगा, एक एक अवयवमें एक २·संयुक्त होता जायगा । यदि समस्तप्रदेशसे संयोग मानो तो. पूर्व पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व और अधर छ भागोंसे संयोग होनेपर द्व्यणुक भी परमाणुसे महत् न होगा एवं क्रमसे त्र्यणुकादि परम्परा भी परमाणुरूप ही रहेगा. जब तक एक २ किनारेसे सम्बन्ध न होगा तबतक महत्व न होगा. किनारेसे मानो तो सावयव होगा उसीको कहते हैं- "कृत्स्नेत्यादि" अभियुक्त वचन भी कहते हैं·षट्क अर्थात्. उर्ध्वादि भागोंसे एक कालमें सम्बन्ध होनेसे परमाणुके भी छ भाग (अवयव) होंगे यदि उसको निरवयव माने तो पिण्ड = घटादि अवयवी भी अणुरूप ही रहेगा ॥ ३६ ॥

न प्रथमः, अतीन्द्रियत्वात् षट्केन युगपद्योगस्य बाधकत्वाच्च । यथोक्तम्-"षट्केन युगपद्योगात् परमाणोः षडंशता । तेषां मप्येकदेशत्व पिण्डः स्यादणुमात्रकः" इति ॥ ३७ ॥

परमाणु पक्ष भी दूषित करते हैं " न प्रथमेति " परमाणुको अतीन्द्रिय = अप्रत्यक्ष मानते हैं – परमाणु उसको कहते हैं – जो प्रातःकाल – गवाक्ष (झरोखा) द्वारा सूर्य की किरणें घरके भीतर – प्रवेश होनेपर सूक्ष्म रज देखपडते हैं उसको त्रसरेणु कहते हैं उसमें तीन द्व्यणुक हैं एक द्व्यणुकमें दो अणु होते हैं अणु और परमाणु दोनों पर्यायशद्ब हैं । तथा च उक्त त्रसरेणुका षष्ठ भाग परमाणु है- कोई कोई. साठमें भागको परमाणु कहते हैं वह उक्त क्रमविरुद्ध होनेसे नैयायिकसिद्धान्तके अज्ञानमूलक है नैयायिकोंने दृश्यमानसूक्ष्म रजको त्रिसरेणु माना है इसी अभिप्रायसे कहा है–

" जालान्तरे गते भानौ सूक्ष्मं यद्दृश्यते रजः ।
तस्य षष्ठो विभागस्तु परमाणुः प्रकीर्तितः" इति ॥ ३७ ॥

तस्मात् स्वव्यतिरिक्तग्राह्यविरहात्तदात्मिका बुद्धिः स्वयमेव स्वात्मरूपप्रकाशिका प्रकाशवदितिसिद्धम् । तदुक्तम्-"नान्योऽनुभाव्यो बुद्ध्यास्ति तस्या नानुभवोऽपरः । ग्राह्यग्राहकवैधुर्यात् स्वयं सैव प्रकाशतः" इति ॥ ३८ ॥

उपसंहार "तस्मादिति" ज्ञानसे अतिरिक्त ग्राह्य न होनेसे ज्ञानात्मक बुद्धि ही स्वयं स्वकीय रूपको दीपादि प्रकाशवत् प्रकाश करती है । इसमें प्रमाण भी कहते हैं "तदुक्तमिति" बुद्धिसे अनुभाव्य अन्य वस्तु नहीं है बुद्धिका अन्य कोई अनुभव है भी नहीं ग्राह्यग्राहकशून्य होनेसे स्वयमेव प्रकाशवती बुद्धि है ॥ ३८ ॥

ग्राह्यग्राहकयोरभेदश्चानुमातव्यः । यद्वेद्यते येन वेदनेन तत्ततो न भिद्यते यथा ज्ञानेनात्मा । वेद्यन्ते तैश्च नीलादयः । भेदे हि सत्यधुना अनेनार्थस्य सम्बन्धित्वं न स्यात् तादात्म्यस्य नियमहेतोरभावात्तदुत्पत्तेरनियामकत्वात् यश्चायं ग्राह्यग्राहकसंवित्तीनां पृथगवभासः । स एकस्मिंश्चन्द्रमसि द्वित्वावभास इव भ्रमः । अत्राप्यनादिरविच्छिन्नप्रवाहभेदवासनैव निमित्तम् ॥ ३९ ॥

वेद्यवेदकका अभेद् विनाप्रमाण सिद्ध न होगा। इसलिये कहते है-"ग्राह्यग्राहकयोरिति" ग्राह्य घटादि ग्राहक ज्ञान.दोनोका ऐक्य अर्थात् ग्राह्यके अतिरिक्त वस्तुका अभाव

अनुमानसे ज्ञात होता है । अनुमानका स्वरूप दिखाते हैं (येद्वयेति) जिससे जिस वस्तुका ज्ञान होता है वह वस्तु उस ज्ञानसे अभिन्न होती है जिस प्रकार ज्ञानसे प्रतीयमान आत्मा ज्ञानसे भिन्न नहीं है नीलादि भी ज्ञान ग्राह्य है अतः नीलादिक भी ज्ञानसे अभिन्न होंगे यदि भेद होता तो उत्पन्न वस्तु क्षणिक होनेसे विषय न होनेके कारण ज्ञानका अर्थके साथ सम्बन्धही न होगा तादात्म्य (सम्बन्ध) के नियामक जो वस्तुकी सत्ता है, वह है नहीं उत्पत्ति अर्थात्, ज्ञानका उत्पादक विषय होनेसे सम्बन्ध होगा यह भी इन्द्रियादिके वेद्यत्व निराकरणसे निराकृत है ग्राह्यग्राहकका भेद प्रतीति भी अद्वितीय चन्द्रमामें दो चन्द्र हैं इस प्रतीतिके समान है भ्रान्तिका मूलभूत अविद्यादि न होनेसे भ्रम कैसे सम्भव होगा ऐसी शंकासे कहा है (अनादिरिति) अनादि कालसे निरन्तर अनुवर्तमान भेद वासना ही निमित्त है ॥ ३९ ॥

यथोक्तम्—"सहोपलम्भनियमादभेदो नीलतद्धियोः । भेदश्च भ्रान्तिविज्ञानैर्दृश्येतेन्दाविवाद्वयः " इति ॥ "अविभागोऽपि बुद्ध्यात्मा विपर्य्यासितदर्शनैः । ग्राह्यग्राहकसंवित्तिभेदवानिव लक्ष्यते " इति च ॥ न च रसवीर्य्यविपाकादिसमानमाशामोदकोपार्जितमोदकानां स्यादिति वेदितव्यं वस्तुतो वेद्यवेद्यकाकारविधुराया अपि बुद्धेर्व्यवहर्तृपरिज्ञानानुरोधेन विभिन्नग्राह्यग्राहकाकाररूपवत्तया तिमिराद्युपहताक्ष्णां केशोण्डुनाडीज्ञानाभेदवदनाद्युपप्लववासनासामर्थ्याद्व्यवस्थोपपत्तेः पर्यनुयोगात् ॥ ४० ॥

जिस प्रकार घट मृत्तिकाके साथ ही उपलब्ध होनेसे मृत्तिकासे भिन्न नहीं है, तिसी प्रकार विज्ञानके साथ ही अर्थात् विज्ञानके विना नीलादि वस्तुका उपलम्भ न होनेसे नीलादिक भी नीलादि बुद्धिसे भिन्न नहीं है इसी अभिप्रायसे कहते हैं (सहोपलम्भनियमादित्यादि) ग्राह्य ग्राहक भेद न होनेपरभी बुद्धिरूप आत्मा अनादिकालिक विपरीत वासनासे ग्राह्य, ग्राहक संवेदन भेदवान्के समान प्रतीत होता है इसको आशा मोदकजन्य रस वीर्यके समान असंभव नहीं कहसकते किन्तु वास्तवमें ग्राह्यग्राहकादिस्वरूप भेद न होनेपर भी व्यवहार ज्ञानके लिये अनादि कालिक

१ " ग्राह्यं ग्राहकात् अभिन्नं, ग्राहकेन सहैव उपलभ्यमानत्वात् यद् येन सहैवोपलभ्यते ततः तदभिन्नम्, यथा मृद्घटःइत्यादि" अनुमान है

भ्रान्तिसे भेद व्यवस्था उपपन्न होसकती है इसमें आक्षेपकी आवश्यकता नहीं है जिस प्रकार तिमिराक्रान्त दृष्टिवालोंको आकाशमें कभी २ केशोंके समान रेखा दीख पडती है कभी २ उण्डुक अर्थात् मकरीके जालेके समान रेखा दीख पडती है, कभी २ नाडीके समान रेखा दीख पडती है इसी प्रकार ज्ञान वैचित्र्यभी वासना वैचित्र्यसे होता है ॥ ४० ॥

यथोक्तम्-"अवेद्यवेदकाकारा यथा भ्रान्तैर्निरीक्ष्यते । विभक्त-लक्षणग्राह्यग्राहकाकारविप्लवा ॥ तथा कृतव्यवस्थेयं केशादि-ज्ञानभेदवत् । यदा तदा न सञ्चोद्या ग्राह्यग्राहकलक्षणा"॥ इति ॥ तस्माद्बुद्धिरेवानादिवासनावशादनेकाकाराऽवभासत इति सिद्धम् । ततश्च प्रागुक्तभावनाप्रचयबलान्निखिलवासनो-च्छेदविगलितविविधविषयाकारोपप्लवविशुद्धविज्ञानोदयो महो-दय इति ॥ ४१ ॥

इसमें प्राचीनोंकी सम्मति भी देते हैं (अवेद्यवेदकाकारेति) वेद्य वेदक स्वरूप शून्य बुद्धिको भ्रान्तोंने विभक्त ग्राह्य ग्राहक स्वरूप भेद भ्रान्तिसे समझा है निगमन करते हैं (तस्मादिति) अनादि वासनासे बुद्धि ही अनेकाकारसे प्रतिपन्न होती है यह निर्विवाद हुआ अतः पूर्वोक्त भावना प्रकर्ष वश समस्त वासना नष्ट होने पर नाना प्रकार घटादि विषय भ्रान्ति नष्ट होकर शुद्ध विज्ञान प्रकाशरूप निश्रेयस होता है ॥ ४१ ॥

अन्येतु मन्यन्ते-यथोक्तं बाह्यं वस्तुजातं नास्तीति । तदयुक्तम् प्रमाणाभावात् । नच सहोपलम्भनियमः प्रमाणमिति वक्तव्यम् वेद्यवेदकयोरभेदसाधकत्वेनाभिमतस्य तस्याप्रयोजकत्वेन स-न्दिग्धविपक्षव्यावृत्तिकत्वात् ॥ ननु भेदे सहोपलम्भनियमा-त्मकं साधनं न स्यादिति चेन्न । ज्ञानस्यान्तर्मुखतया च भेदेन-प्रतिभासमानतया एकदेशत्वैककालत्वलक्षणसहत्वनियमा-सम्भवाच्च नीलाद्यर्थस्य ज्ञानाकारत्वे अहमिति प्रतिभासः स्यात् नत्विदमिति प्रतिपत्तिः प्रत्ययादव्यतिरेकात् ॥ ४२ ॥

बाह्यार्थानुमेयवादीका मत कहते हैं (अन्ये तु इत्यादि) विज्ञानातिरिक्त बाह्य नीलादि वस्तु नहीं ऐसा कहना अप्रमाणिक है। मृद्धटवत् सहोपलब्धिरूप नियम भी बाह्यसत्तानिषेधमें प्रमाण नहीं होसकता। ग्राह्यग्राहकका अभेदसाधक अप्रयोजक है अर्थात् व्यभिचारशंका निवर्तकत्वरूप तर्कशून्य है, क्योंकि सन्दिग्ध विपक्ष व्यावर्त्तक नहीं है यदि कहो भेदमें सहोपलम्भनियम न रहेगा यहभी नहीं होसकता क्योंकि ज्ञान अन्तर्मुख (अन्तःकरणधर्म) विषय, बाह्य होनेसे भेद प्रतीतिविषय दोनोंको एक-देशत्व एककालत्वरूप सहत्व ही असम्भव है। दूषणान्तरभी कहते हैं (नीलेति) नीलाद्यर्थ यदि ज्ञानरूप होता तो ज्ञान अहंप्रतीतिविषय होनेसे नीलादिको भी अहं इत्याकारक प्रतीति न होने सकेगी इदं इत्याकारक प्रतीति न होगी क्योंकि ज्ञानसे विषयका भेद है ही नहीं ॥ ४२ ॥

अथोच्यते–ज्ञानस्वरूपोऽपि नीलाकारो भ्रान्त्या बहिर्वद्भेदेन प्रतिभासत इति न च तत्राहमुल्लेख इति। तथोक्तम्–"परिच्छेदान्तराद्योयं भागो बहिरिव स्थितः। ज्ञानस्याभेदिनो भेदप्रतिभासोऽप्युपप्लवः॥" इति। "यदन्तर्ज्ञेयतत्त्वं तद्बहिर्वदवभासते" इति च ॥ ४३ ॥

(अथेति) यद्यपि नीलादि विज्ञानस्वरूप ही है तथापि भ्रान्तिसे बाह्यके समान भिन्न प्रतीत होता है अतः उसमें अहमित्याकार नहीं होता (तथोक्तमिति) भेद-शून्य ज्ञानको भी अन्य (व्यावर्तक) सम्बन्धसे बाह्यके समान स्थित भेदावभास भी भ्रम है। जो आन्तरिक ज्ञेयतत्व बाह्यवत् भासित होता है ॥ ४३ ॥

तदयुक्तम्-बाह्यार्थाभावे तदुत्पत्तिरहिततया बहिर्वदित्युपमानोक्तेरयुक्तेः। नहि वसुमित्रो वन्ध्यापुत्रवदभासत इति प्रेक्षावानाचक्षीत। भेदप्रतिभासस्य भ्रान्तत्वे अभेदप्रतिभासस्य प्रामाण्यम्। तत्प्रामाण्ये च भेदप्रतिभासस्य भ्रान्तत्वमिति परम्पराश्रयप्रसङ्गाच्च। अविसंवादान्नीलतातिक्रमेव संविदाना बाह्यमेवोपाददते जगत्युपेक्षन्तेऽवान्तरमिति व्यवस्थादर्शनाच्च। एवञ्चायमभेदसाधको हेतुर्गोमयपायसीयन्यायवदाभासतां भजेत्। अतो बहिर्वदिति वदता बाह्यं ग्राह्यमेवेति भावनीयमिति भवदीय एव बाणो भवन्तं प्रहरेत् ॥ ४४ ॥

अब समाधान करते हैं (तदयुक्तमिति) जब बाह्य अर्थ है ही नहीं तो शशशृंगवत् उत्पत्ति न होनेसे ज्ञानको बहिर्वत् ऐसा उपमानोपमेयभाव कथन भी अयुक्त है वसुमित्र वन्ध्यापुत्रके समान सुन्दर है ऐसा कोई बुद्धिमान् नहीं कहते हैं भेदज्ञान भ्रान्तिसिद्ध होनेसे अभेद ज्ञानको प्रामाण्य होगा अभेद ज्ञानका प्रामाण्य होनेसे भद ज्ञानमें भ्रांततत्व होगा इस प्रकारसे अन्योन्याश्रय होगा प्रत्युत लोकमें निर्विवाद रूपसे बाह्य नीलादि विषयको ही स्वीकारकर आन्तरिक वस्तुकी ही उपेक्षा करते हैं अतः अभेदसाधक युक्ति गोबरकी खीरके समान कथनमात्र है बहिर्वत् ऐसे उपमानवाक्यको कहनेवाले स्वयं बाह्यवस्तुकी भावनास्वीकार करके पुनः बाह्यपर निषेध करनेपर आप अपने ही वाणसे मारे जायगे । अर्थात् स्वकीय वाक्यसे ही बाह्यार्थ सिद्ध होता है ॥ ४४ ॥

ननु ज्ञानाभिन्नकालस्यार्थस्य बाह्यत्वमनुपपन्नमिति चेत्तदनुपपन्नम्। इन्द्रियसन्निकृष्टस्य विषयस्योत्पाद्ये ज्ञाने स्वाकारसमर्पकतया समर्पितेन चाकारेण तस्यार्थस्यानुमेयतोपपत्तेः। अतएव पर्य्यनुयोगपरिहारौ समग्राहिषाताम्—"भिन्नकाल कथं ग्राह्यमिति चेत् ग्राह्यतां विदुः। हेतुत्वमेव च व्यक्तेर्ज्ञानाकारार्पणक्षमम्॥" इति। तथाच, यथा पुष्ट्या भोजनमनुमीयते यथा च भाषया देशः यथा वा सम्भ्रमेण स्नेहः तथा ज्ञानाकारेण ज्ञेयमनुमेयम्। तदुक्तम् "अर्द्धेन घटयत्येनां नहि मुक्त्वार्द्धरूपताम्। तस्मात् प्रमेयाधिगतेः प्रमाणं मेयरूपता॥" इति। नहि वित्तिसत्तैव तद्वेदनायुक्ता तस्याः सर्वत्राविशेषात्। तान्तु सारूप्यमाविशत् सरूपयितुं घटयेदिति च ॥ ४५ ॥

(ननु-इति) ज्ञानसे अर्थका प्रतिभास होता है अतः ज्ञानसे अतिरिक्त कालमें अर्थका बाह्यत्व अनुपपन्न है ऐसा कथनही अनुपपन्न है क्योंकि चक्षुरादि इन्द्रिय और विषयको सान्निकर्षसे उत्पादनीय ज्ञानमें विषयको आकारका आरोप होना कहा है " अर्थेनैव विशेषो हि निराकारतया धियाम्" ॥ इति । अन्यथा ज्ञानमें विशेष हीन होगा अतः आर्पित आकारसे बाह्यका अनुमान होसकता है + । एतद्विषयक आक्षेप

+ अनुमान स्वरूप यह है--'बाह्य वस्तु सत्, ज्ञाने स्वाकार समर्प कत्वात् । यः स्वाकार समर्पकः स आरोपाधिकरणातिरिक्त सत्तावान् भवति यथा स्फटिके लौहित्याकारसमर्पकजपाकुसुमं स्पटिकाभिन्नं सदेव ' इत्यादि ।

परिहारकाभी संग्रह भिन्नकालेत्यादिसे किया है ज्ञान ही ग्राहक है अतः जिस कालमें ज्ञान न हो उस कालका ग्रहण कौन करेगा ज्ञानमें विषय अपने स्वरूपको आरोप करता है इस लिये स्वाकार समर्पक स्वरूप हेतुसे बाह्यका ग्रहण होसकता है । अतः 'देवदत्त स्थूल है ' यहां भोजनके विना स्थूलत्व अनुपपन्न होनेसे जिस प्रकार भोजनका अनुमान होता है उसी प्रकार ज्ञानसे स्वाकारसमर्पक बाह्य वस्तुकाभी अनुमान होगा. यथा--भाषासे देशका अनुमान होता है । यथा किसीके वियोगसे संभ्रम देखकर स्नेहका अनुमानुमान होता है तथा ज्ञानका आकारसे ज्ञेयका अनुमान होता है (अर्थेनेति) ज्ञान जब साकार है तो उसको दो अंश हुए आकार और आकारी आकार विषयसे ही आरोपित होता है अतः अर्थ विषय समार्पित आकारको छोडकर केवल निराकारज्ञान नहीं उपपन्न होगा इस कारण विषयसिद्धिमें ज्ञानका प्रमेयाकारवत्त्व ही प्रमाण है (नहीति) केवल ज्ञानमात्रसे विषयप्रतिभास नहीं होसकता क्योंकि ऐसा होनेसे घटपटादिसंवेदनमें विशेष ही नहीं होगा वस्तु भेदसे ही ज्ञानमें विशेषता होती है जो स्वरूप प्रविष्ट होता है तदाकार ही रूप संघटित होता है ॥ ४५ ॥

तथाच—बाह्यार्थसद्भावे प्रयोगः ये यस्मिन् सत्यपि कादाचित्काः ते सर्वे तदतिरिक्तसापेक्षाः । यथा अविवक्षति अजिगमिषति मयि वचनगमनप्रतिभासा विवक्षुजिगमिषुपुरुषान्तरसन्तानसापेक्षा तथाच विवादाध्यासिताः प्रवृत्तिप्रत्ययाः सत्यप्यालयविज्ञाने कदाचिदेव, नीलाद्युल्लेखना इति ॥ ४६ ॥

बाह्यार्थसद्भावमें अनुमानका प्रयोग दिखाते हैं जिसके रहनेपरभी जो वस्तु कदाचित् रहती है वह उससे अतिरिक्त वस्तुको सापेक्ष होता है । जैसे नहीं बोलनेके और न जानेकी इच्छा करनेवालेके विषयमें वचन और गमनका प्रतिभास विवक्षु और जिगमिषु पुरुषान्तर सन्तान सापेक्ष है विवादग्रस्त प्रवृत्तिविज्ञान आलयविज्ञान रहनेपर भी कदाचित् ही नीलाद्याकारसे प्रकाशित होता है अतः वहभी विज्ञानसे अतिरिक्त वस्तु सापेक्ष है ॥ ४६ ॥

तत्रालयविज्ञानं नामाहमास्पदं विज्ञानं, नीलाद्युल्लेखि च प्रवृत्तिविज्ञानम् । यथोक्तम्—"तत् स्यादालयविज्ञानं यद् भवेदहमास्पदम् । तत् स्यात् प्रवृत्तिविज्ञानं यन्नीलादिकमुल्लिखेत्"॥ इति। तस्मादालयविज्ञानसन्तानातिरिक्तः कादाचित्कः प्रवृत्तिविज्ञा-

नहेतुर्बाह्योऽर्थो ग्राह्य एव; न वासनापरिपाकप्रत्ययः कादाचित्कत्वात् कदाचिदुत्पाद इति वेदितव्यम् ॥ ४७ ॥

आलयविज्ञानस्वरूप अहं इत्याकारक प्रतीति है इदं नीलम् इत्याकारक ज्ञान प्रवृत्तिविज्ञान है उपसंहार (तस्मादिति) आलयविज्ञानसे अतिरिक्त प्रवृत्तिविज्ञानका हेतु कादाचित्क बाह्य अर्थ ही ग्राह्य है वासनासंतान ग्राह्य नहीं है क्योंकि उसकी उत्पत्ति कादाचित्क होती है ॥ ४७ ॥

विज्ञानवादिनये हि वासनानामेकसन्तानवर्तिनामालयविज्ञानानां तत्तत्प्रवृत्तिजननशक्तिः तस्याश्च स्वकार्योत्पादं प्रत्याभिमुख्यं परिपाकः तस्य च प्रत्ययः कारणं स्वसन्तानवर्त्तिपूर्वक्षणः कक्षीक्रियते सन्तानान्तरानिबन्धनत्वानङ्गीकारात् । ततश्च प्रवृत्तिज्ञानजननालयविज्ञानवर्त्तिवासनापरिपाकं प्रति सर्वेऽप्यालयविज्ञानवर्त्तिनः क्षणाः समर्था एवेति वक्तव्यम् । न चेदेकोऽपि न समर्थः स्यादालयविज्ञानसन्तानवर्त्तित्वाविशेषात् सर्वे समर्था इति पक्षे कार्यक्षेपानुपपत्तिः ॥ ४८ ॥

नीलादिविज्ञानका कादाचित्कत्व भी बाह्यार्थ सद्भावमें प्रमाण है इस अभिप्रायसे कहते हैं (विज्ञानवादिनय इत्यादि) आलयविज्ञान भी क्षणिक होनेसे कहा (एकसंन्तानेति) तथा च एकसन्तानवर्ति आलयविज्ञानको प्रवृत्तिविज्ञानके प्रति तत्तत्प्रवृत्ति जननशक्ति और उस शक्तिको स्वानुकूलकार्यके प्रति अभिमुख्यरूप परिपाक उसका प्रत्यय (प्रवृत्ति विज्ञानरूप फल) यह सब कारणरूप प्रथमक्षणमें ही मानने होंगे क्योंकि सन्तानान्तरको निमित्त नहीं मानते तब तो प्रवृत्तिज्ञानके जनक जो आलयाविज्ञान तद्वृत्ति वासनापरिपाकके प्रति जितने आलयविज्ञान वृत्ति क्षण हैं सभीको समर्थ कहना होगा नहीं तो एकभी क्षण समर्थ न होगा क्योंकि आलयविज्ञान सन्तानवर्तित्व सबमें समान है जैसे समुद्रके जलकी एकएक बिन्दु खारा न हो तो समुदाय भी क्षाररस न होगा यदि सभीको समर्थ मानोगे तो नीलादि प्रवृत्तिविज्ञान कार्य भी सदा बना रहेगा क्योंकि आलयविज्ञान सन्तानपरम्परा सदा बने रहनेसे तद्वृत्तिसमर्थ क्षण भी बने रहेगा समर्थका क्षेप भी नहीं करसकते ॥ ४८ ॥

ततश्च कादाचित्कत्वनिर्वाहाय शब्दस्पर्शरूपरसगंधाविषयाःसुखादिविषयाः षडपि प्रत्ययाश्चतुरःप्रत्ययान् प्रतीत्योत्पद्यन्ते इति चतुरेणा-

निच्छताप्यच्छमतिना स्वानुभवमनाच्छाद्य परिच्छेत्तव्यम् । ते चत्वारः प्रत्ययाः प्रसिद्धाः, आलम्बनसमनन्तरसहकार्य्यधिपतिरूपाः । तत्र ज्ञानपदवेदनीयस्य नीलाद्यवभासस्य चित्तस्य नीलालम्बनप्रत्ययात् नीलाकारता भवति; समनन्तरप्रत्ययात् प्राचीनज्ञानाद् बोधरूपता, सहकारिप्रत्ययादालोकात् चक्षुषोऽधिपतिप्रत्ययाद्विषयग्रहणप्रातिनियमाः, विदितस्य ज्ञानस्य रसादिसाधारण्यप्राप्तेर्नियामकं चक्षुराधिपतिर्भवितुमर्हति लोके नियामकस्याधिपतित्वोपलम्भात् । एवं चित्तचैत्तात्मकानां सुखादीनां चत्वारि कारणानि द्रष्टव्यानि ॥ ४९ ॥

अतः प्रवृत्तिविज्ञानको कादाचित्कत्व सम्पादनके लिये शब्दादि पांच और सुखदुःखादि विषयक चाक्षुष, स्पार्शन, श्रावण, रासन, घ्राणज, मानस भेदसे छह प्रकारका ज्ञान और वक्ष्यमाण चार प्रत्ययके सम्बन्धसे उत्पन्न होते हैं यहां शुद्ध चित्तवाले चतुर मनुष्योंको अपने अनुभवकी साक्षी देकर अनिच्छासे भी कहना होगा आलम्बन, समनन्तर, सहकारी, अधिपति रूपसे चारों प्रत्यय प्रसिद्ध हैं । ज्ञानपदवाच्य नीलादि प्रतिभासक चित्तको नीलादिके आलम्बन प्रत्ययसे नीलाकारता होती है समनन्तर प्रत्ययसे बोधरूपता होती है सहकारिप्रत्ययसे" आलोकादिवत् गृहीत प्रत्ययमें संकटता होती है चक्षुरादि अधिपति प्रत्ययसे अयं घट इत्यादि विषयका ग्रहण होता है ज्ञातवस्तुके रस रूपादि साधारणताके नियामक चक्षु आधिपति होता है लोकमें भी नियामकको अधिपति कहते हैं इसी प्रकार चित्त,चैत्य, भूत, भौतिक सुखादियोंके चार कारण भी हैं विज्ञानस्कन्ध चित्त हैं इसीको आत्मा कहते हैं रूप, वेदना, संज्ञा, संस्काररूप चार स्कन्ध चैत्य हैं पृथिव्यादि भूत हैं चक्षुरादि इन्द्रिय और रूपादि विषय भौतिक हैं इनका समुदाय लोकव्यवहार निर्वाहक हैं अवयवसे अतिरिक्त अवयवी इनके मतमें नहीं ॥ ४९ ॥

एवं चित्तचैत्तात्मकस्कन्धः पञ्चविधः रूपविज्ञानवेदनासंज्ञासंस्कारसंज्ञकः । तत्र रूप्यन्त एभिर्विषया इति व्युत्पत्त्या सविषयाणीन्द्रियाणि रूपस्कन्धः, आलयविज्ञानप्रवृत्तिविज्ञानप्रवाहो विज्ञानस्कन्धः, प्रागुक्तस्कन्धद्वयसम्बन्धजन्यः सुख-

दुःखादिप्रत्ययप्रवाहो वेदनास्कन्धः, गौरित्यादिशब्दोल्लेखिसं-विज्ञानप्रवाहः संज्ञास्कन्धः, वेदनास्कन्धनिबन्धना रागद्वेषा-दयः क्लेशा उपक्लेशाश्च मदमानादयो धर्माधर्मौ च संस्कार-स्कन्धः ॥ ५० ॥

रूप, विज्ञान, संज्ञा, संस्कार भेदसे चित्त चैत्यात्मक पांच स्कन्ध हैं रूपकी व्युत्पत्ति दो प्रकारसे होती है (रूप्यन्ते एभिरिति) जिससे विषयादिका रूपण अर्थात् ज्ञान हो वह रूप है इससे इन्द्रिय बोधित हुआ । दूसरी (रूप्यन्ते इति) जो जाना जाय इस व्युत्पत्तिसे विषय बोधित हुआ मिलाकर अर्थात् सविषय इन्द्रिय रूप-स्कन्ध कहा गया आलय और प्रवृत्ति विज्ञानका प्रवाह विज्ञान स्कन्ध है पूर्वोक्त दोनों स्कन्धोंसे उत्पन्न सुख दुःखादि विषयके प्रत्यय प्रवाहका नाम वेदनास्कन्ध है (अयं गौः अयं घटः इत्यादि) शब्दसे विधीयमान ज्ञानका प्रवाह संज्ञास्कन्ध है वेदनास्कन्ध निमित्त रागद्वेषादि क्लेश मदमानादि उपक्लेश, धर्माधर्म, संस्कार स्कन्ध है ॥ ५० ॥

तदिदं सर्वं दुःखं दुःखायतनं दुःखसाधन चेति भावयित्वा तन्निरोधोपायं तत्त्वज्ञानं सम्पादयेत् । अतएवोक्तं, दुःखसमुदा-यनिरोधमार्गाश्चत्वारः आर्य्यस्य बुद्धाभिमतानि तत्त्वानि । तत्र दुःखं प्रसिद्धं, समुदायो दुःखकारणं; तद् द्विविधम्, प्रत्ययोप-पानिबन्धनो हेतूपनिबन्धनश्च । तत्र प्रत्ययोपनिबन्धनस्य संग्रा-हक सूत्रम् "इद कार्य्यं ये अन्ये हेतवः प्रत्ययन्ति" गच्छन्ति तेषामयमानानां हेतूनां भावः प्रत्ययत्वं कारणसमवायः तन्मा-त्रस्य फलं न चेतनस्य कस्यचिदिति सूत्रार्थः । यथा बीजहेतु-रङ्कुरो धातूनां षण्णां समवायाज्जायते । तत्र पृथिवीधातुरङ्कुर-स्य काठिन्यं गन्धश्च जनयति, अब्धातुः स्नेहं रसञ्च जनयति, तेजोधातू रूपमौष्ण्यञ्च, वायुधातुः स्पर्शनं चलनञ्च, आका-शधातुरवकाशं शब्दञ्च, ऋतुधातुर्यथायोगं पृथिव्या-दिकम् ॥ ५१ ॥

(तदिदमिति) समस्तविषय दुःख है दुःखका घर है और दुःखका साधन है इस प्रकार जानकर उसके निरोधका उपाय तत्त्वज्ञानको सम्पादन करैं (दुःख समु-दायेत्यादि) बुद्धका सूत्र है दुःख चित्तका वैमनस्यादि प्रसिद्ध है दुःखका कारण

समुदाय है वह दो प्रकारका है प्रथम कारण समुदाय मूलक और दूसरा हेतुमूलक है हेतुका समूह प्रत्यय है प्रत्ययोपनिबन्धनका संग्राहक सूत्र कहते हैं (इदमिति) कार्यको अन्यान्य हेतु प्राप्त हों हेतुं हेतुं हेत्वन्तरमें प्राप्त हों उनका भाव अर्थात् कारण समुदायका ही फल कार्य है कारणसे अतिरिक्त किसी चेतन कार्यके लिये अपेक्षित नहीं यह सूत्रका अर्थ हुआ जिस प्रकार बीजसे जो अङ्कुर होता है वह छहों धातुओंके समुदायसे होता है उसमें पृथिवी धातु अङ्कुरमें काठिन्य और गन्ध प्राप्त करता है जलधातु स्नेह और रस, तेज धातु रूप और उष्णता, वायुधातु स्पर्श और चलन-आकाशधातु अवकाश और शब्द, ऋतुधातु यथायाग पार्थिवत्वादिक उत्पादन करते हैं ॥ ५१ ॥

हेतूपनिबन्धनस्य च संग्राहकं सूत्रम्, उत्पादाद्वा तथागतानामनुत्पादाद्वा स्थितैवैषां धर्माणां धर्मता धर्मस्थितिता धर्मनियामकता च प्रतीत्य समुत्पादानुलोमतेति । तथागतानां बुद्धानां मते धर्माणां कार्यकारणरूपाणां या धर्मता कार्यकारणभावरूपा एषोत्पादादनुत्पादाद् वा स्थिता, यस्मिन् सति यदुत्पद्यते तत्तस्य कारणस्य कार्यमिति धर्मतेत्यस्य विवरणं, धर्मस्य कार्य्यस्य कारणातिक्रमेण स्थितिः । स्वार्थिकस्तल्प्रत्ययः । धर्मस्य कारणं स्वकार्य्यं प्रति नियामकता ॥ ५२ ॥

हेतूपनिबन्धनसूत्र (उत्पादाद्वेत्यादि) बुद्धके मतमें कार्य कारणरूप धर्म्मकी कार्य कारणकी सत्तारूप धर्म्मता उत्पाद उत्पत्ति अथवा अनुपत्तिसे स्थित है जिस वस्तुके रहनेपर जो उत्पन्न हो वह उस कारणका कार्य है, यही धर्म्मताका विवरण है धर्म जो कार्य है वह कारणको अनतिक्रमण न करे अर्थात् कारणाभावमें न होना यही धर्म स्थिति है धर्मस्थिति हीको धर्मस्थितिता भी कहते हैं क्योंकि तल् प्रत्यय स्वार्थमें हुआ है कारणको स्वकार्यके प्रति नियामकत्व धर्मनियामकता है ॥ ५२ ॥

नन्वयं कार्य्यकारणभावश्चेतनमन्तरेण न सम्भवतीति अत उक्त कारणे सति तत्प्रतीत्यप्राप्यसमुत्पादे अनुलोमता। अनुसारिता या सैव धर्मता। उत्पादादनुत्पादाद्वा धमाणां स्थिता । नचात्र कश्चिच्चेतनोऽधिष्ठातोपलभ्यत इति सूत्रार्थः। यथा प्रतीत्यसमु

त्पादस्य हेतूपनिबन्धः' बीजादङ्कुरोऽङ्कुरात्काण्डंकाण्डान्नालो नालाद्गर्भस्ततः शूकं ततः पुष्प ततःफलम् । न चात्र बाह्ये समुदाये कारणं बीजादि कार्य्यमङ्कुरादि वा चेतीयते । अहमङ्कुरं निर्वर्त्तयामि अहं बीजेन निर्वर्त्तित इति । एवमाध्यात्मिकेष्वपि कारणद्वयमवगन्तव्यम् । पुरःस्थिते प्रमेयाब्धौ ग्रन्थ विस्तरभीरुभिरुपरम्यते ॥९३ ॥

उक्त कार्यकारणभाव चेतनके विना नहीं होसकेगा ऐसी आशंकासे कहते हैं (प्रतीत्येति) कारणकी सत्तामें उसके सम्बन्धसे उत्पत्तिमें अनुकूलता है वही धर्मता धर्ममें स्थित है किसी कार्यमें भी कोई चेतन कहीं उपलब्ध नहीं होते हैं प्रतीत्यसमुत्पादमें जो दो भेद कहे हैं उनमें हेतूपनिबन्धन यथा बीजसे अङ्कुर, अंकुरसे काण्ड, काण्डसे नाल, नालसे गर्भ, गर्भसे शूक, शूकसे पुष्प, पुष्पसे फल यह क्रम है इस बाह्य समुदायमें बीजादि, कारण अथवा अङ्कुरादि कार्य कोई भी चेतन नहीं है मैं बीजसे उत्पन्न हुआ किंवा मैं अङ्कुरको उत्पन्न करता हूं ऐसा ज्ञान भी किसीको नहीं है । इसी प्रकार आध्यात्मिकमेंभी जानना । ग्रन्थ गौरवभयसे उस विषयको छोडदिया इति + ॥ ९३ ॥

तात्पर्य–प्रत्ययोपनिबन्धन हेतूपनिबन्धनरूप प्रतीत्य समुत्पाद है वह बाह्य और आध्यात्मिक भेदसे दो प्रकारकी है बाह्य कहचुका आध्यात्मिक हेतूपनिबन्धन इस प्रकार है "यादिदमविद्याप्रत्ययाः संस्काराः यावज्जातिप्रत्ययं जरामरणादीति " अविद्या यदि न होती तो संस्कार न होते इस प्रकार जाति (जन्म) भी नहीं होतो यदि जाति न होती तो जरामरणादिक भी नहीं होते उसमें अविद्या ऐसा नहीं जानती कि मैं संस्कारको उत्पन्न करती हूं संस्कारको भी ऐसा ज्ञान नहीं कि मुझको अविद्याने उत्पादन किया इसी प्रकार यावज्जातिको भी ऐसा ज्ञान नहीं है मैं जरामरणादिको उत्पादन करती हूं । न जरामरणादिको ऐसा ज्ञान है कि मैं जातिसे उत्पन्न हूं । तथापि अविद्यादिक रहनेपर चेतनान्तरसे अनाधिष्ठित अचेतनमें संस्कारादि स्वय उत्पन्न होते हैं । जिस प्रकार बीजादिमें अंकुरादि उत्पन्न होते हैं । केवल अमुकका संयोगसे अमुक उत्पन्न होता है एतावन्मात्र दृष्ट है ! चेतनाधिष्ठान कहीं इसमें भी दृष्ट नहीं।प्रत्ययोपनिबन्धन पृथिवी, जल, तेज,वायु, आकाश, विज्ञान, धातुओंके समूहसे काय उत्पन्न होता है । पृथिवी शरीरको काठिन्य उत्पादन करती है जल स्नेह तेज शरीरके खाये पिये वस्तुको पचाते हैं वायु श्वासादि संचालन करता है आकाश शरीरके भीतर छिद्र बना रखता है मनोविज्ञानको विज्ञान धातु उत्पादन करता है जब आध्यात्मिक पृथिव्यादि धातु अविकल होते हैं तब शरीरकी उत्पत्ति होती है ! उसमें पृथिव्यादिको यह ज्ञान नहीं कि मैं शरीरका काठिन्यादि उत्पादन करता हूं न काठिन्यादिको ही यह ज्ञान है कि मुझे पृथिव्या-

तदुभयनिरोधस्तदनन्तरं विमलज्ञानोदयो वा मुक्तिः, तन्निरोधोपायो मार्गः स च तत्त्वज्ञानं, तच्च प्राचीनभावनाबलाद्भवतीति परमं रहस्यम् । सूत्रस्यान्तं पृच्छतां कथितं भवन्तश्च सूत्रस्यान्तं पृष्टवन्तः सौत्रान्तिका भवन्त्विति भगवताभिहिततया सौत्रान्तिकसंज्ञा सञ्जातेति ॥ ८४ ॥

उक्त हेतूपनिबन्धन और प्रत्ययोपनिबन्धनरूप प्रतीत्य समुत्पाद निरोधानन्तर-निर्मल ज्ञानका उदय ही मुक्ति है निरोधका उपाय मार्ग है वह तत्त्वज्ञान है वह पूर्व-संस्कारसे होता है यही परम रहस्य है । सूत्रका अन्त पूछनेपर बुद्धने कहा आप लोगोंने सूत्रका अन्त पूछा है इस लिये सौत्रान्तिक हों इससे वे सौत्रान्तिक संज्ञासे प्रसिद्ध होगये हैं ॥ ८४ ॥

केचन बौद्धा बाह्येषु गन्धादिषु आन्तरेषु रूपादिस्कन्धेषु सत्स्वपि तत्रानास्थामुत्पादयितुं सर्वं शून्यमिति, प्राथमिकान् विनेयानचीकथत् भगवान्, द्वितीयांस्तु विज्ञानमात्रग्रहाविष्टान् विज्ञानमेवैकं सदिति, तृतीयानुभयं सत्यमित्यास्थितान् विज्ञेयमनुमेयमिति, सेयं विरुद्धा भाषेति वर्णयन्तो वैभाषिकाख्यया ख्याताः एषा हि तेषां परिभाषा समुन्मिषति । विज्ञेयानुमेयत्ववादे प्रात्यक्षिकस्य कस्यचिदप्यर्थस्याभावेन व्याप्तिसंवेदनस्थानाभावेनानुमानप्रवृत्त्यनुपपत्तेः सकललोकानुभवविरोधश्च । ततश्चार्थो द्विविधः, ग्राह्योऽध्यवसेयश्च ॥ ८५ ॥

बाह्य गन्धादिक और आन्तरिकरूपादि स्कन्धके होनेपर भी उसमें अनास्था उत्पन्न करनेके लिये सब शून्य है इस प्रकार प्राथमिक शिष्य मात्रसे बुद्धने कहा विज्ञानमें

दिने उत्पादन किया तथापि चेतनान्तरसे अनधिष्ठित पृथिव्यादिसे शरीर उत्पन्न होता है जेसे बीजसे अङ्कुर होता है इस दृष्ट प्रतीत्य समुत्पादको अन्यथा नहीं कहसकते ॥

आग्रहवाले दूसरे शिष्यसे विज्ञान ही सत् है यह कहा उभयको सत्य माननेवाले तीसरे शिष्यसे विज्ञेय अनुमेय है ऐसा कहा तब चतुर्थ शिष्यने उनकी परस्पर विरुद्ध भाषा बताई इस कारण वह वैभाषिक संज्ञासे प्रसिद्ध होगया सामान्यतः यह उनका सिद्धान्त है विज्ञेयको अनुमेय मानोगे तो व्याप्तिज्ञानकी अपेक्षा होगी व्याप्ति-ग्रह प्रत्यक्षदृष्टि हीमें होगा प्रत्यक्षदृष्ट वस्तु अनुमेयवादीके मतमें न होनेसे व्याप्ति ग्रहका स्थल न होनेसे अनुमानकी प्रवृत्ति न होगी अनुमान न होनेपर समस्त लोकव्यव-हार भी विरुद्ध होंगे इस लिये ग्राह्य और अध्यवसाय भेदसे अर्थ दो प्रकार मानने होंगे ॥ ५५ ॥

तत्र ग्रहणं निर्विकल्पकरूपं प्रमाणं कल्पनापोढत्वात् । अध्यव-सायः सविकल्पकरूपोऽप्रमाणं कल्पनाज्ञानत्वात् । तदुक्तम्-"कल्पनापोढमभ्रान्तं प्रत्यक्षं निर्विकल्पकम् ।विकल्पो वस्तुनिर्भा-सादसंवादादुपप्लवः ॥" इति । " ग्राह्यं वस्तु प्रमाणं हि ग्रहणं यदि-तोऽन्यथा । न तद्वस्तु न तन्मानं शब्दलिङ्गेन्द्रियादिजम् " ॥ इति च ॥ ५६ ॥

ग्रहण (प्रत्यक्ष) निर्विकल्पक अर्थात् प्रकार विशेष्य संसर्ग आदि शून्य ही प्रमाण है । नाम रूप जात्यादिका नाम कल्पना है उससे रहित कल्पनापोढ है । अध्यवसाय सविकल्पकरूप है यथा अयं घट इत्यादि वह अप्रमाण है उक्तार्थमें प्राचीन सम्मति कहते हैं (कल्पनेत्यादि) कल्पनारहित और भ्रमरहित निर्विकल्पक प्रत्यक्ष प्रमाण है निर्विवाद जात्यादिविशिष्ट वस्तुप्रकाश उपप्लव (भ्रम) है यदि प्रमाणसिद्ध ग्राह्य हो तो उस वस्तुसे पृथक् ग्रहण भी प्रमाण होगा । यद्वा ग्रहण (प्रत्यक्ष) प्रमाण हो तो ग्राह्य पदार्थ भी अवश्य होगा अन्यथा जो शब्द लिङ्ग इन्द्रियादिसे प्रतीयमान ग्राह्यातिरिक्त हो तो वह न वस्तु है और न प्रमाण ही है जो वस्तुका ग्रहण नहीं करसकता है ॥ ५६ ॥

ननु सविकल्पकस्याप्रामाण्ये कथं ततः प्रवृत्तस्यार्थप्राप्तिः सं-वादश्चोपपद्येयातामिति चेन्न तद्भद्रं मणिप्रभाविषयमणिविकल्प-न्यायेन पारम्पर्य्येणार्थप्रतिलम्भसम्भवेन तदुपपत्तेः । अव-शिष्टं सौत्रान्तिकप्रस्तावे प्रपञ्चितमिति नेह प्रतन्यते ॥ न च विनेयाशयानुरोधेनोपदेशभेदः साम्प्रदायिको न भवतीति भणि-

तव्यम् । यतो भणितं बोधचित्तविवरणे ॥ "देशना लोकनाथानां सत्त्वाशयवशानुगाः।विद्यन्ते बहुधा लोके उपायैर्बहुभिः किल ॥ गम्भीरोत्तानभेदेन क्वचिच्चोभयलक्षणाः । भिन्ना हि देशना-भिन्ना शून्यताऽद्वयलक्षणा ॥" इति ॥ ५७ ॥

(ननु इति) सविकल्पक यदि प्रमाण ही नहीं तो अयं घट इत्यादि सविकल्पक ज्ञानसे प्रवृत्तको वस्तु प्राप्ति और निर्विवाद व्यवहार कैसे होते हैं बहुत अच्छा प्रश्न है इसका उत्तर सुनो मणियोंकी प्रभाको देखकर मणिभ्रमसे प्रवृत्त पुरुषको परम्प-रासे जिस प्रकार मणिप्राप्त होता है तद्वत् परम्परासे वस्तुकी प्राप्ति होजाती है शेष सौत्रान्तिक सिद्धान्तके अनुसार ही है एक ही आचार्यका शिष्य भेद होनेसे भिन्न २ रूपसे उपदेश करना सम्प्रदायविरुद्ध होगा क्योंकि उपदेशभेद होनेसे सिद्धान्तभेद अवश्य हो जायगा इस आशयसे कहते हैं (नच विनेयभेदेत्यादि) (देशनेति) लोकनाथ जगत्के स्वामी अर्थात् बुद्धदेवजीका उपदेश प्राणियोंकी बुद्धिके अनु-सार होता है, कुछ सिद्धान्तभेदसे नहीं अधिकारीके भेद होनेसे केवल उपायमात्रका भेद है । लोकमें भी एक ही प्राप्य वस्तुके लिये अनेक उपाय होते हैं । (गम्भी-रेति) गम्भीर (उत्तम) उत्तान (अधम) उभयलक्षण (मध्यम) भेदसे भिन्न है. यह अधिकारीके बुद्धिका तारतम्य है, परन्तु सब मतके सिद्धान्त केवल एक शून्यतत्त्वमें हैं ॥ ५७ ॥

द्वादशायतनपूजा श्रेयस्करीति बौद्धनये प्रसिद्धम् " अर्थानु-पार्ज्य बहुशो द्वादशायतनानि वै । परितः पूजनीयानि किम-न्यैरिह पूजितैः ॥ ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चैव तथा कर्मेन्द्रियाणि च। मनो बुद्धिरिति प्रोक्तं द्वादशायतनं बुधैः " इति ॥ ५८ ॥

बौद्धसिद्धान्तमें श्रोत्रादि द्वादशस्थानकी पूजा ही श्रेयस्कर प्रसिद्ध है, उसीको दिखाते हैं, (अर्थानित्यादि) प्रचुर धनको उपार्जन करके द्वादश आयतनकी भलीभाँतिसे पूजा करे संसारमें अन्यपूजन सब विफल हैं । श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, त्वक्, रसना यह पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पायु, पाणि, पाद, उपस्थ, वाक् रूप पाच कर्मे-न्द्रिय, मन और बुद्धि इन्हीका ज्ञानी लोग द्वादशायतन कहते हैं ॥ ५८ ॥

विवेकविलासे बौद्धमतमित्थमभ्यधायि "बौद्धानां सुगतो देवो विश्वं च क्षणभङ्गुरम् । आर्य्यसत्त्वाख्यया तत्त्वचतुष्टयमिदं

क्रमात् ॥ दुःखमायतनं चैव ततः समुदयो मतः। मार्गश्चेत्यस्य च व्याख्या क्रमेण श्रूयतामतः ॥ दुःखं संसारिणः स्कन्धास्ते च पञ्च प्रकीर्त्तिताः । विज्ञानं वेदना संज्ञा संस्कारो रूपमेव च॥ पञ्चेन्द्रियाणि शब्दाद्या विषयाः पञ्च मानसम् । धर्मायतनमेतानि द्वादशायतनानि तु ॥ रागादीनां गणोऽयं स्यात् समुदेति नृणां हृदि । आत्मात्मीयस्वभावाख्यः स स्यात् समुदयः पुनः ॥ ५९ ॥

विवेकविलास नाम ग्रंथमें बौद्धमत निम्नलिखित प्रकार कहा है बौद्धोंके देव सुगत (बुद्ध) ही हैं । संसार क्षणिक है आर्यसत्त्व अर्थात् "दुःख, समुदाय, तन्निरोध, मार्गाश्चत्वारः आर्यस्य बुद्धाभिमतानि तत्त्वानि" इस सूत्रोक्त चार ही तत्त्व है उसीकी गणना करते हैं. (दुःखमायतनेत्यादि) क्रमसे उसका व्याख्यान कहते हैं विज्ञान, वेदना, संज्ञा, संस्कार, रूप यही पञ्च स्कंध सांसारिक दुःख है । शब्द, स्पर्स, रूप, रस गन्ध यही पाञ्च विषय हैं पञ्च ज्ञानेन्द्रिय मन और बुद्धि यही द्वादशायतन हैं मनुष्यके हृदयमें जो रागद्वेषादि गण हैं वही समुदाय हैं आत्मा आत्मीय स्वभावको भी समुदाय कहते हैं ॥ ५९ ॥

क्षणिकाः सर्वसंसारा इति या वासना स्थिरा । स मार्ग इति विज्ञेयः स च मोक्षोऽभिधीयते ॥ प्रत्यक्षमनुमानश्च प्रमाणद्वितयं तथा । चतुःप्रस्थानिका बौद्धाः ख्याता वैभाषिकादयः ॥ अर्थो ज्ञानान्वितो वैभाषिकेण बहु मन्यते । सौत्रान्तिकेन प्रत्यक्षग्राह्योऽर्थो न बहिर्मतः॥ आकारसहिता बुद्धिर्योगाचारस्य सम्मता । केवलां संविदं स्वस्थां मन्यन्ते मध्यमा पुनः॥ रागादिज्ञानसन्तानवासनाच्छेदसम्भवा । चतुर्णामपि बौद्धानां मुक्तिरेषा पकीर्त्तिता ॥ कृत्तिः कमण्डलुर्मौण्ड्यं चीरं पूर्वाह्णभोजनम् । सङ्घो रक्ताम्बरत्वं च शिश्रिये बौद्धभिक्षुभिः ॥ " इति ॥ ६० ॥

इति सर्वदर्शन संग्रहे बौद्धदर्शनं समाप्तम् ॥ २ ॥

सम्पूर्ण संसार क्षणिक हैं ऐसी जो स्थिरवासना है उसीको मार्ग कहते हैं यही मोक्ष है । प्रत्यक्ष और अनुमान दो प्रमाण हैं । सौत्रान्तिक वैभाषिकादि भेदसे चार

सिद्धान्तवादी बौद्ध है वैभाषिक ज्ञानसे युक्त (बाह्य) अर्थको नहीं मानते हैं सौत्रान्तिक ज्ञानग्राह्य बाह्य अर्थको नहीं मानते योगाचारके मतमें विषयाकारयुक्त बुद्धिमात्र है माध्यमिक लोग शुद्ध संवित्को ही मानते हैं । उक्त चारोंके मतोंमें रागादि ज्ञानसन्तानकी वासनाकी उच्छेद ही मुक्ति है कृत्तिः (चर्म मृगछाला आदि) १ कमण्डलु २ शिरका सशिख मुण्डन ३ चीर ४ दिनका भोजन अर्थात् रात्रिमें भोजन नहीं करना ५ संघ अर्थात् दो चारके साथ रहना ६ रक्तवस्त्र धारण करना इतने बौद्धसंन्यासियोंके चिह्न हैं ॥ ६० ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहे बौद्धदर्शनं समाप्तम् ।

अथार्हतदर्शनम् ।

तदित्थं मुक्तकच्छानां मतमसहमाना विवसनाः कथञ्चित् स्थायित्वमास्थाय क्षणिकत्वपक्षं प्रतिक्षिपन्ति यद्यात्मा कश्चिन्नास्थीयेत स्थायी तदा लौकिकफलसाधनसम्पादनं विफलं भवेत् । न ह्येतत् सम्भविष्यति अन्यः करोत्यन्यो भुङ्क्ते इति । तस्माद्योऽहं प्राक् कर्माकरवं सोऽहं सम्प्रति तत्फलं भुञ्जे इति पूर्वापरकालानुयायिनः स्थायिनस्तस्य स्पष्टप्रमाणावसिततया पूर्वापरभागविकलकालकलावस्थितिलक्षणक्षणिकता परीक्षकैरर्हद्भिर्न परिग्रहार्हा ॥ १ ॥

पूर्वोक्त क्षणिकत्व शून्यत्वादिरूप मुक्तकच्छ (बौद्ध) के मतको न सहनेवाले विवसन (नग्न) स्थिरत्व मानकर क्षणिकत्व पक्षका निराकरण करते हैं यदि आत्माको स्थिर नहीं माने तो पशु अन्नादि फलसाधन समस्त लोकव्यवहार भी विफल होजायेंगे क्योंकि आत्मा क्षणिक होनेसे क्रियाके उत्तरकाल हीमें नष्ट होजायगा कालन्तरभावी फलोत्पत्तिकालमें आत्मा नहीं यह भी सम्भव नहीं कि कर्म कोई करें फल दूसरे भोगें जो मैंने पहिले कर्म किया उसका फल मैं भोगता हूं इस प्रकार प्रत्यभिज्ञासे पूर्वोत्तर कालसम्बन्धी स्थायी आत्मा स्पष्ट प्रतीत होता है अतः पूर्वोत्तरभागशून्य कलात्मक कालस्थितिरूप क्षणिकत्व तर्ककुशलोंके अनादरणीय है ॥ १ ॥

---

१ कच्छ न लगाना बौद्ध संन्यासियोंमें नग्न रहना दिगंबर जैन संन्यासियोंमें प्रसिद्ध है ।

अथ मन्येथाः "प्रमाणबलादायातः प्रवाहः केन वार्य्यंत" इति न्यायेन यत् सत् तत् क्षणिकमित्यादिना प्रमाणेन क्षणिकतायाः प्रमिततया तदनुसारेण समानवर्तिनामेव प्राचीनः प्रत्ययः कर्मकर्त्ता उत्तरः प्रत्ययः फलभोक्ता ॥ न चातिप्रसङ्गः कार्य्यकारणभावस्य नियामकत्वात्। यथा मधुररसभावितानामाम्रबीजानां परिकर्षितायां भूमावुप्तानामङ्कुरकाण्डस्कन्धशाखापल्लवादिषु तद्द्वारा परम्परया फले माधुर्य्यनियमः; यथा वा लाक्षारसावसिक्तानां कार्पासबीजादीनामङ्कुरादिपारम्पर्य्येण कार्पासादौ रक्तिमनियमः। यथोक्तम्—"यस्मिन्नेव हि सन्ताने आहिता कर्मवासना। फलं तत्रैव बध्नाति कार्पासे रक्तता यथा ॥ कुसुमे बीजपूरादेर्यल्लाक्षाद्युपसिच्यते। शक्तिराधीयते तत्र काचित्तां किं न पश्यसि॥" इति ॥ २ ॥

बौद्धमतसे पूर्वपक्ष (अथेति) नहि सिद्धेऽनुपपन्नं नामेति न्यायसे यत्सत् तत् क्षणिकमिति अनुमान प्रमाणसिद्ध क्षणिकत्व प्रवाहको कौन वारण करसकता है अतः पूर्वक्षणवृत्ति विज्ञानात्माको कर्ता और उत्तरक्षणवृत्तिको फलभोक्ता मानने पडेगा यदि पूर्वोत्तरक्षणवृत्तित्वमात्रसे कर्तृत्वभोक्तृत्वव्यवस्था करोगे तो देवदत्तका किया हुआ कर्मका फल यज्ञदत्तको प्राप्त होने लगेंगे क्योंकि पूर्वोत्तरक्षणवृत्तित्व दोनोंमें समान ही है इस आशयसे शंका करते हैं (नचेति)अतिप्रसङ्ग अतिव्याप्ति (उत्तर) (कार्यकारणेति) पूर्वकालवृत्ति विज्ञानात्मा उत्तरविज्ञानका कारण है और उत्तरविज्ञानका कार्य है उसमें भी यद्वृत्तिवासनासे जो उत्पन्न होता है उन दोनों विज्ञानमें परस्पर कार्यकारण भाव है तथाच कार्यकारणभाव ही कर्तृत्व और भोक्तृत्वका नियामक होगा अर्थात् कारण विज्ञानात्मवृत्तिक्रियाजन्यफलके कार्यविज्ञानात्मा भोगेगा एवञ्च उक्त अतिप्रसंग नहीं होगा जिस प्रकार मधुर रससे भावित आम्रबीजको अच्छी जोती हुई भूमिमें रोपनेपर अङ्कुर, स्तम्भ, स्कन्ध, शाखा, पत्र और पुष्पादि परम्परासे मधुर फल उत्पन्न होता है खट्टे बीजसे उत्पन्न फल खट्टा होता है और भी लाक्षाके रससे भिजाया हुआ कपासका बीज अङ्कुरादि परम्परासे कपासमें रक्तवर्ण उत्पन्न करता है उसी प्रकार आत्मामें भी वासनासन्तान परम्परासे फलभोगे नियम होजायगा। अभियुक्तोक्ति भी कहते हैं (यथोक्तमिति) जिस आत्माके वासना (संस्कार)

सन्तानमें कर्मवासना संक्रान्त हो उसमें उस कर्मका फल होता है जिस प्रकार कपासमें रक्तता होती है । (कुसुमेति) बीजपूर अर्थात् बिजोरानीम्बूके पुष्पमें लाक्षादिके जलसे भिजानेपर रूपान्तर रसान्तर गन्धान्तरादिको उत्पन्न करनेवाली जो शक्ति होती है उसी प्रकार आत्मसन्तानमें भी होगी यही तात्पर्य है ॥ २ ॥

तदपि काशकुशावलम्बनकल्पं विकल्पासहत्वात् ॥ जलधरादौ दृष्टान्ते क्षणिकत्वमनेन प्रमाणेन प्रमितं प्रमाणान्तरेण वा । नाद्यः, भवदभिमतस्य क्षणिकत्वस्य क्वचिदप्यदृष्टचरत्वेन दृष्टान्तासिद्धावस्यानुमानस्यानुत्थानात् । न द्वितीय, तेनैव न्यायेन सर्वत्र क्षणिकत्वसिद्धौ सत्त्वानुमानवैफल्यापत्तेः, अर्थक्रियाकारित्वं सत्त्वमित्यङ्गीकारे मिथ्यासर्पदंशादेरपि अर्थक्रियाकारित्वेन सत्त्वापाताच्च । अतएवोक्तम्–उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सदिति ॥ ३ ॥

उक्त पूर्वपक्षका उत्तर–(तदपीति) यह भी जलमें डूबते हुएको कुशाका अवलम्बन करना है । क्योंकि वक्ष्यमाण विकल्पमें एक भी पक्षको स्थिर नहीं कर सकता । तथाहि यत् सत् तत् क्षणिकं यथा जलधर इस अनुमानमें दृष्टान्तभूतजलधरमें क्षणिकत्व इसी अनुमानसे साधना है या प्रमाणान्तरसे सिद्ध है ? प्रथमपक्षको नहीं कहसकते क्योंकि दृष्टान्त वही होता है जो सिद्ध और उभयवादीसम्मत हो आपका अभिमत (अनेकक्षणवृत्तित्वे सति कालवृत्तित्वरूप) क्षणिकत्व कहीं भी दृष्ट नहीं आता अतः दृष्टान्त न होनेसे इस प्रकारका अनुमानका उत्थान ही असम्भव है । यदि अनुमानान्तरसे कहो तो उसी अनुमानसे सर्वत्र क्षणिकत्व सिद्ध होही जायगा पुनः यत्सदिति सत्त्वानुमानान्तरकल्पनाप्रयास भी व्यर्थ है । अर्थक्रिया (फलजनकक्रिया) कारित्वरूप सत्त्वका लक्षण भी अयुक्त है क्योंकि मिथ्यासर्पका काटना भी तादृशज्ञान भयादिरूप अर्थक्रियाकारी होनेसे उसको भी सत्यत्वप्रसंग-होगा । अतएव तत्त्वार्थसूत्रमें उत्पादेत्यादि सत्त्वका लक्षण कहा है इसका अर्थ यह है कि चेतन या अचेतन द्रव्यको सजातीय भावान्तरापत्ति उत्पाद है जैसे मृत्पिण्डका घटरूप परिणाम पूर्वावस्थाका त्याग व्यय है यथा घटोत्पत्तिमें पिण्डका नाश अनादिपरिणाम स्वभाव होनेसे स्थिरता ध्रुव है यथा मृत्पिण्ड घटाद्यवस्थामें मृत्का सम्बन्ध· तथाच तादृश त्रितययुक्त द्रव्य है ॥ ३ ॥

अथोच्येत सामर्थ्यासामर्थ्यलक्षणविरुद्धधर्माध्यासात् तत्सिद्धि-
रिति तदसाधु स्यात् । स्यद्वाादिनामनैकान्ततावादस्येष्टतया
विरोधासिद्धेः । यदुक्तं कार्पासादिदृष्टान्त इति तदुक्तिमात्रं युक्ते-
रनुक्तेः तत्रापि निरन्वयनाशस्यानङ्गीकाराच्च ॥ न च
सन्तानिव्यतिरेकेण सन्तानः प्रमाणपदवीमुपारोढुमर्हति । तदु-
क्तम्—"सजातीयाः क्रमोत्पन्नाः प्रत्यासन्नाः परस्परम् । व्यक्त-
यस्तासु सन्तानः स चैक इति गीयते ॥" इति ॥ ४ ॥

(अथेति) वर्तमान अर्थक्रिया सम्पादन कालमें अतीतानागत अर्थक्रियाको बीजादि नहीं करता अतः विरुद्धधर्माध्यस्त होनेसे "बीजादयः प्रातिक्षणं भिन्ना विरुद्धधर्माध्यस्तत्वादित्यादि" अनुमानसे भी वस्तुका क्षणिकत्व सिद्ध है यह भी कथन अयुक्त है स्याद्वादीके मतसे सर्वत्र अनैकान्त अर्थात् अस्ति नास्तीति विरुद्धधर्माध्यस्तत्व ही रहता है अतः उनके मतमें विरोध असिद्ध है कर्तृत्वभोक्तृत्वादि प्रतिनियमके लिये जो कार्पास दृष्टान्त दिया वह भी निर्युक्तिक होनेसे कथनमात्र है बीजादिकमें भी निरन्वय ध्वंस नहीं होता। तात्पर्य यह है. कि, कार्यका ध्वंस कारणावस्थाप्राप्ति है । निरन्वय अर्थात् निरूपाख्य अभावरूप नहीं यथा घटका ध्वंस होकर कपालरूप होगया तब भी उसमें मृत्तिका रहती है कपाल नष्ट होकर पिण्ड या चूर्ण होनेपर भी मृत्तिकारूप व्यवहार बना रहता है अतः अन्वयी मृत् सत्य ही रहता है यदि कहो यद्यपि घटादिके ध्वंसमें अन्वयी मृदादि बनी रहती है तथापि बीजादिमें एवं तप्तलोहमें छोडी हुई जलबिन्दुमें अन्वयी नहीं उपलब्ध होता है यहभी नहीं वहां पर भी घटादि दृष्टान्तसे अनुमान किया जाता है अनुमानस्वरूप अंकुरादि अनुवर्तमान बीजादि अन्वयी रूपस्थ है कार्य होनेसे घटके समान तप्तलोहमें नष्ट जल भी तेजके वेगसे मेघमण्डलमें अथवा सूर्यमण्डलमें जाता है ऐसा अनुमान करना होगा. अतः अन्वयीका विनाश न होनेसे निरन्वय विनाश कहीं नहीं होता है । अतएव "उदबिन्दौ च सिन्धौ च तोयभावो न भिद्यते । विनष्टेऽपि ततो बिन्दावास्ति तस्यान्वयोऽम्बुधौ ॥" इत्यादि सङ्गत होता है ॥ ४ ॥

न च कार्यकारणभावनियमोऽतिप्रसङ्गं भंक्तुमर्हति । तथाहि
उपाध्यायबुद्ध्यनुभूतस्य शिष्यबुद्धिः स्मरेत तदुपचितकर्मफ-
लमनुभवेद्वा तथा च कृतप्रणाशाकृताभ्यागमप्रसङ्गः । तदुक्तं

सिद्धसेनवाक्यकारेण–" कृतप्रणाशाकृतकर्मभोगभवप्रमोक्ष-स्मृतिभङ्गदोषान् । उपेक्ष्य साक्षात् क्षणभङ्गमिच्छन्नहो महासाहसिकः परोऽसौ ॥" इति ॥ ५ ॥

(नचेति) सन्तानसे भिन्न सन्तान भी प्रमाणगम्य नहीं क्योंकि एकजातीय हो क्रमसे उत्पन्न हो परस्पर मिला हो ऐसे व्यक्तिको सन्तान कहते हैं वह एक ही कहा जाता है कार्यकारणभाव नियम भी अतिव्याप्तिको हटा न हीं सकता अन्यथा आचार्यके अनुभूत वस्तुका स्मरण शिष्यको होने लगेगा एवं आचार्यकृत कर्मका फल शिष्यको भोगना पडेगा । उपालम्भ करते हैं (तदुक्तमिति) कृतका नाश, अकृत कर्मका भोग, संसारका उच्छेद मोक्षभंग स्मरणानुपपत्त्यादि दोषोंको उपेक्षा कर क्षणभंगको माननेवाला बौद्ध बडा साहसिक अर्थात् हठी है ॥ ५ ॥

किञ्च क्षणिकत्वपक्षे ज्ञानकाले ज्ञेयस्यासत्त्वेन ज्ञेयकाले ज्ञानस्यासत्त्वेन च ग्राह्यग्राहकभावानुपपत्तौ सकललोकयात्रास्तमियात्। न च समसमयवर्त्तिता शङ्कनीया सव्येतरविषाणवत् कार्य्यकारणभावासम्भवेनाग्राह्यस्यालम्बनप्रत्ययानुपपत्तेः । अथ भिन्नकालस्यापि तस्याकारार्पकत्वेन ग्राह्यत्वं, तदप्यपेशलम् क्षणिकस्य ज्ञानस्याकारार्पकताश्रयताया दुर्वचत्वेन साकारज्ञानवादे प्रत्यादेशेन निराकारज्ञानवादेऽपि योग्यतावशेन प्रतिकर्मव्यवस्थायाः स्थितत्वात् ॥ ६ ॥

दोषान्तर भी कहते हैं (किञ्चेति) क्षणिक पक्षमें ज्ञानकालमें ज्ञेय घटादि और ज्ञेयकी सत्ताकालमें ज्ञानको न रहनेसे ग्राह्य (घटादि) ग्राहक ज्ञान अनुपपन्न होगा तो तन्मूलक समस्त लोकव्यवहार भी नष्ट होगा (नचेति) ज्ञान और ग्राह्यको एककालवृत्तित्व भी नहीं कहसकते क्योंकि समकालोत्पन्न होनेसे वामदक्षिण शृङ्गके समान परस्पर कार्यकारणभाव असम्भव होगा अतः ग्राह्य न होनेसे विषयालम्बन प्रत्ययत्व असम्भव होगा (अथेति) ज्ञानसे पूर्वकालमें ग्राह्यकी सत्ता होनेसे भी अकारार्पकत्व नहीं कहसकते क्योंकि क्षणिक ज्ञानमें आकारका आश्रयत्व ही दुर्निरूप है ज्ञानकालमें विषय और विषयकालमें ज्ञान दोनों न होनसे ज्ञानमें विषयाकार समर्पकत्वके असम्भव होनेपर ज्ञानवैचित्र्य नहीं होसकेगा घटपटादि विचित्रज्ञान आकार वैलक्ष्यण्यसे ही होता है । कहा भी है " अर्थेनैव विशेषे हि निराकारतया धियामिति"

अतः ज्ञानवैचित्र्यके लिये क्षणिकत्व पक्षमें भी कथञ्चित् विषयाकार समर्पकत्व स्वीकार करना चाहिये इस आशंकासे कहते हैं (निराकारज्ञान वादिऽपीति) तात्पर्य साकार-ज्ञानवादमें विषय नष्ट होनेपर भी घटपाटादिरूप नियत आकारको ग्रहण करता है अर्थात् घटज्ञान घटकेही आकारका ग्रहण करता है पट आकारको नहीं ग्रहण करता यह व्यवस्था जिस प्रकार होती है उसी प्रकार निराकार ज्ञानवादमें भी नियम हो जायगा अतः साकारत्व मानना भी व्यर्थ है ॥ ६ ॥

तथाहि-प्रत्यक्षेण विषयाकाररहितमेव ज्ञानं प्रतिपुरुषमहमिकया घटादिज्ञानमनुभूयते न तु दर्पणादिवत् प्रतिबिम्बक्रान्तम् । विषयाकारधारितत्वे ज्ञानस्यार्थे दूरनिकटादिव्यवहाराय जलाञ्जलिर्वितीर्य्येत । न चेदमिष्टापादनमेष्टव्यं दवीयान् महीधरो नेदीयान् दीर्घो बहुरिति व्यवहारस्य निराबाधं जागरूकत्वात् । न चाकाराधायकस्य तस्य दवीयस्त्वादिशालितया तथा व्यवहार इति कथनीयं दर्पणादौ तथानुपलम्भात् ॥ ७ ॥

उसीको उपपादन करते हैं (तथाहीति) प्रत्यक्षसे जो ज्ञान होता है वह घटादिविषयाकार रहित ही अहंकाररूपसे घटादिज्ञान अनुभूत होता है दर्पणादिमें मुख जिस प्रकार प्रतिबिम्बित होता है उसी प्रकार विषयाकारप्रतिबिम्बित होकर ज्ञान नहीं प्रतीत होता । दूषणान्तर (विषयाकारेति) यदि ज्ञानमें विषयाकारार्पण मानो तो ज्ञान आत्मामें रहता है उसी ज्ञानमें विषयाकार भी अर्पित होनेसे विषयमें दूरत्व समीपत्वादि व्यवहार गगनकुसुमसमान होगा । यदि कहो यह दोष क्या देते हो क्षणिकवादीके मतमें इष्टापत्ति है ऐसा भी नहीं कहसकते क्योंकि शिंशपावृक्ष दूर है अमुक वट वृक्ष बहुत ऊंचा है इत्यादि बडे २ बुद्धिमानोंसे लेकर पामरपर्यन्तको प्रतीति होती है । यह शुक्ति रजतादिकी समान बाधित भी नहीं आकारसमर्पक वृक्षादिक दूर होनेसे ऐसा प्रतीत होता है सो भी नहीं कहसकते क्योंकि दृष्टान्तभूत दर्पणादिमें मुखादिक दूर होनेपर भी दर्पणादिसन्निहितही प्रतीत होता है ॥ ७ ॥

किञ्च अर्थादुपजायमानं ज्ञानं यथा तस्य नीलाकारतामनुकरोति तथा यदि जडतामपि तर्ह्यर्थवत् तदपि जडं स्यात् । तथा च वृद्धिमिष्टवतो मूलमपि ते नष्टं स्यादिति महत्कष्टमापन्नम् ॥ ८ ॥

दूषणान्तर (किञ्चेति) अर्थ (घटादि) से उत्पन्न ज्ञान जिस प्रकार नीलादि (घटादि) आकारका अनुकरण करेगा । अर्थात् जिस प्रकार विषयआकार ज्ञानमें अर्पित होता है । उसी प्रकार घटादि विषय वृत्ति जडताका भी अनुकरण करेगा तो विषयके समान ज्ञानभी जड होने लगेगा, इष्टापत्ति कह नहीं सकते क्योंकि ज्ञानका प्रकाशरूपत्व सर्वसम्मत है जड होगा तो घटादिवत् ज्ञान भी स्वयं प्रकाश नहीं रहेगा । तब तो सूदके लालचसे दीवालियाके पास रुपये जमा करनेसे जिस प्रकार मूलका भी नाश हो जाता है उसी प्रकार विषयका अनुकरण करने ज्ञानका स्वयंप्रकाशरूप स्वरूपभी नष्ट होजायगा ॥ ८ ॥

अथैतद्दोषपरिजिहीर्षया ज्ञानं जडतां नानुकरोतीति ब्रूषे हन्त तर्हि तस्याग्रहणं न स्यादित्येकमनुसन्धित्सतोऽपरं प्रच्यवत इति न्यायापातः । ननु माभूत् जडताया ग्रहणं किं न छिन्नं तदग्रहणेऽपि नीलाकारग्रहणे तयोर्भेदो नैकान्तो वा भवेत् । नीलाकारग्रहणे चागृहिता जडता कथं तस्यानुरूपं स्यात् अपरथा गृहीतस्य स्तम्भस्यागृहीतं त्रैलोक्यमपि रूपं भवेत् । तदेतत् प्रमेयजातं प्रतापचन्द्रप्रभृतिभिरर्हन्मतानुसारिभिः प्रमेयकमलमार्त्तण्डादौ प्रबन्धे प्रपञ्चितमिति ग्रन्थभूयस्त्वभयान्नोपन्यस्तम् ॥ ९ ॥

(अथेति) इस दोषसे छूटनेके लिये यदि कहो ज्ञान जडताका अनुकरण नहीं करेगा तब तो जडताका ग्रहण भी नहीं होगा अर्थात् 'घटो जडः' ऐसा ज्ञान होता रहा सो अब नहीं होगा इस प्रकार एककी रक्षा करनेपर दूसरा नष्ट होजायगा अर्थात् ज्ञान जडाकारताका अनुकरण करे तो स्वयंप्रकाशक नष्ट होगा यदि न अनुकरण करे तो विषयकी जडत्व प्रतीति न होगी । (ननु इति) जडताका ग्रहण न होनेपर भी घटका ग्रहण होनेसे घटाकार और जडताका अत्यन्त अभेद अर्थात् व्यभिचार न होनेसे जडताका भी ग्रहण हो जायगा यह कहना भी असंगत है क्योंकि नीलाकारको ग्रहणसे अगृहीत जडताका ग्रहण कैसा होसकेगा, यदि ग्रहण होता हो तो घट जड है ऐसो कहनेपर घटसे अन्य जड है ऐसी प्रतीति होने लगेगी क्योंकि घटाकार गृहीत होनेसे ज्ञानरूप होगया, जडाकार अगृहीत होनेसे उससे भिन्न होगा (अपरथेति) अगृहीत भी गृहीतका स्वरूप होगा तो अयं स्तम्भ इत्यादि खंभका

ग्रहण होनेपर समस्त संसार उसका रूप होनेसे समस्त संसारका ज्ञान होनेलगेगा यह विषय प्रमेयकमलमार्तण्डादिमें विस्तृत रूपसे निरूपितं होनेसें यहां संक्षेप करके छोड देता हूं ॥ ९ ॥

तस्मात् पुरुषार्थाभिलाषुकैः पुरुषैः सौगती गतिर्मानुगन्तव्या अपित्वार्हत्येवार्हणीया । अर्हत्स्वरूपश्च चन्द्रसूरिभिराप्तनिश्चयालङ्कारे निरटङ्कि—"सर्वज्ञो जितरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजितः। यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हत् परमेश्वरः" ॥ इति । ननु न कश्चित् पुरुषविशेषः सर्वज्ञपदवेदनीयः प्रमाणपद्धतिमध्यास्ते सद्भावग्राहकस्य प्रमाणपञ्चकस्य तत्रानुपलम्भात् । तथा चोक्तं तौतातितैः । "सर्वज्ञो दृश्यते तावन्नेदानीमस्मदादिभिः । दृष्टो न चैकदेशोऽस्ति लिंगं वा योऽनुमापयेत् ॥ १० ॥

अर्हन्के स्वरूपका वर्णन सर्वज्ञ इत्यादि समस्त वस्तुको साक्षात्कार करनेमें समर्थ रागद्वेषादि शून्य सम्पूर्ण संसारमें पूजित; यथार्थ वक्ता, परमेश्वर जो देव है वही अर्हन् है (ननु इति) सर्वज्ञ इत्यादि जो विशेषण दिया सो असंगत है क्योंकि प्रत्यक्षादि पांच प्रमाणोंमेंसे एक भी प्रमाण तादृश पुरुषविशेषके प्रतिपादक न होनेके कारण सर्वज्ञपदवाच्य पुरुषका मानना प्रमाण विरुद्ध है । (तौतातीति) बौद्धधर्मप्रचारक प्रमाणभावका उपपादन करते हैं तत्र पूर्वार्धसें अस्मदादिके दृष्टिगोचर न होनेसे प्रत्यक्षप्रमाणबोध्य कहा (दृष्टो नचैकेति) उत्तरार्धसे अनुमानगम्यका भी अभाव कहा पूर्ववत् शेषवत् सामान्य तो दृष्टभेदसे अनुमानके तीन भेद सांख्योंने माने यथा है समुद्रजलकी एक बूंद पानकरके अवशिष्टको क्षारजलत्वका अनुमान करते हैं यह शेषवत् अनुमान है मेघगर्जना सुनकर वृष्टिका अनुमान होता है यह पूर्ववत् है धूमध्वजका एकदेशधूमाको देखकर जो अग्निका अनुमान है वह समान्यतो दृष्ट है सर्वज्ञ विषयमें ऐसा कोई दृष्टलिङ्ग नहीं है जिससे अनुमान होसके ॥ १० ॥

न चागमविधिः कश्चिन्नित्यसर्वज्ञबोधकः । न च तत्रार्थवादानां तात्पर्य्यमपि कल्पते॥न चान्यार्थप्रधानैस्तैस्तदस्तित्वं विधीयते । न चानुवदितुं शक्यः पूर्वमन्यैरबोधितः ॥ अनादेरागमस्यार्थो न च सर्वज्ञ आदिमान् । कृत्रिमेण त्वसत्येन स कथं प्रतिपाद्यते ॥

अथ तद्वचनेनैव सर्वज्ञोऽन्यैः प्रतीयते । प्रकल्प्येत कथं सिद्धि-रन्योन्याश्रययोस्तयोः ॥ सर्वज्ञोक्ततया वाक्यं सत्यं तेन तद-स्तिता । कथं तदुभयं सिद्ध्येत्सिद्धमूलान्तराहते ॥ असर्वज्ञप्र-णीतात्तु वचनान्मूलवर्जितात् । सर्वज्ञमवगच्छन्तस्तद्वाक्योक्तं न जानते ॥ ११ ॥

अब छह श्लोकोंसे शब्दप्रमाणका भी अविषय कहते हैं । नित्य सर्वज्ञ बोधक कोई आगम विधिवाक्य नहीं अर्थवाद भी ऐसा कोई नहीं जिसका सर्वज्ञमें तात्पर्य हो अर्थवादका स्वतःप्रामाण्य नहीं किन्तु (विध्युपष्टम्भकत्व) अर्थात् विधिनिषेधका प्राशस्त्य निन्दाबोधन द्वारा प्रामाण्य है अतः अन्यार्थप्रधान होनेसे सर्वज्ञकी सत्ताका बोधन नहीं करसकता अनुवाद भी उक्तार्थका होता है अतः पूर्व किसी वाक्या-न्तरसे उक्त न होनेसे अनुवादवाक्य भी तादृश नहीं अनादि अपौरुषेय आगमका अर्थ सादि सर्वज्ञ हो भी नहीं सकता । तात्पर्य अर्थबोधनके लिये शब्दका प्रयोग होता है आगम (वेद) अनादि है उस कालमें आपका सर्वज्ञ नहीं हैं तब किस प्रकार बोधन करसकेगा । यदि कोई कृत्रिम आधुनिक वाक्य प्रमाण कहो तो उस वाक्यका सत्यत्वमें विश्वास न होनेसे वह कैसे बोधन करसकेगा । यदि कहो अर्हन्का बनाये आगमसे ही अस्मदादिका सर्वज्ञका ज्ञान होगा अर्थात् उन्हींके वचनसे ही सर्वज्ञ सिद्ध होगा यह भी अन्योन्याश्रयग्रस्त होनेसे असिद्ध है । अन्यो-न्याश्रयको दिखाते हैं (सर्वज्ञोक्तेत्यादि) सर्वज्ञके उक्ति होनेसे वचनकी सत्यता है वचनहीसे सर्वज्ञका अस्तित्व है अतः सर्वज्ञोक्तिसे अतिरिक्त प्रमाणान्तरके विना दोनों सिद्ध नहीं होसकते असर्वज्ञप्रणीत निर्मूल वाक्यसे सर्वज्ञकी सिद्धि मानने-वाले स्ववचनविरोध भी नहीं जानते हैं ॥ ११ ॥

सर्वज्ञसदृशं किञ्चिद्यदि पश्येम सम्प्रति । उपमानेन सर्वज्ञं जानी-याम ततो वयम् ॥ उपदेशोऽपि बुद्धस्य धर्माधर्मादिगोचर अन्यथा नोपपद्येत सार्वज्ञ्यं यदि नाभवत्॥"इत्यादि ।अत्र प्रतिविधीयते यदभ्य

सर्वज्ञके सदृश कोई दृष्ट हो तो उपमानसे सर्वज्ञकी प्रतीति होती सोभी नहीं (उप-देशोपीत्यादि) श्लोकद्वयसे अर्थापत्तिको भी अविषय कहते हैं । यदि कोई सर्वज्ञ न हो तो बुद्धका धर्माधर्मादि विषयक उपदेश भी अनुपपन्न होगा अतः सर्वज्ञ मानना

चाहिये यह भी नहीं उपदशके सत्यत्वमें कोई प्रमाण नहीं है अतः केवल व्यामोहही से उपदेश किया है ॥ १२ ॥

धायि सद्भावग्राहकस्य प्रमाणपञ्चकस्य तत्रानुपसन्नादिति तद-युक्तं तत्सद्भावादेकस्यानुमानादेः सद्भावात्। तथाहि, कश्चिदात्मा सकलपदार्थसाक्षात्कारी तद्ग्रहणस्वभावत्वे सति प्रक्षीणप्रति-बन्धप्रत्ययत्वाद् यद्यद्ग्रहणस्वभावत्वे सति प्रक्षीणप्रतिबन्ध्य-प्रत्ययं तत्तत्साक्षात्कारि। यथा अपगततिमिरादिप्रतिबन्धं लोच-नविज्ञानं रूपसाक्षात्कारि। तद्ग्रहणस्वभावत्वे सति प्रक्षीणप्र-तिबन्धप्रत्ययश्च कश्चिदात्मा। तस्मात् सकलपदार्थसाक्षात्का-रीति न तावदशेषार्थग्रहणस्वभावत्वमात्मनोऽसिद्धं चोदनाबला न्निखिलार्थज्ञानात् ॥ १३ ॥

सर्वज्ञ सद्भाव समर्थक उत्तर (अत्र प्रतिविधीयत इत्यादि) क्षुद्रोपद्रवा विद्राव्यां-इत्यन्त। प्रत्यक्षादि प्रमाण पञ्चकमेंसे एक भी सर्वज्ञ सद्भाव प्रयोजक नहीं है यह कहना अयुक्त है क्योंकि अनुमान और आगम दोनों सर्वज्ञमें प्रमाण हो सकते हैं प्रथम अनुमान दिखाते हैं (तथा हीत्यादि) कश्चिदात्मा (कोई जीव) यह पक्ष है सकल पदार्थ साक्षात्कारी (समस्तवस्तुओंको जाननेवाले) यह साध्य है। तद्ग्र-हणेत्यादि प्रतिबन्धप्रत्ययत्वात् यह हेतु है। समस्त वस्तु ग्रहण स्वभाव होते हुए प्रतिबन्धक सकल दुरित क्षीण होनेसे, जो जिस वस्तुका साक्षात्कार करनेमें समर्थ होकर प्रतिबन्धकज्ञानशून्य हो तब वह उसको प्रत्यक्ष करते हैं जिस प्रकार तिमिर अन्धकारादि प्रतिबन्धक न रहनेपर नेत्र रूपको प्रत्यक्ष करता है यह दृष्टान्त है एवंभूत कोई आत्मा है यह उपनय है अतः सकलपदार्थको प्रत्यक्ष करनेवाले (सर्वज्ञ) हैं यह निगमन है। हेतुमें तद्ग्रहणस्वभावत्वरूप विशेषणासिद्धिकी आशंका करके परिहार करते हैं। (न तावदित्यादि चोदनेति) चोदनाविधि तथा च विधिशास्त्रसे आत्माको अशेषार्थ ग्रहणस्वभावत्व सिद्ध है ॥ १३ ॥

नान्यथानुपपत्त्या सर्वमनेकान्तात्मकं, सत्त्वादिति व्याप्तिज्ञा-नोत्पत्तेश्च। चोदना हि भूतं भवन्तं भविष्यन्तं सूक्ष्म व्यवहितं

---

१ बुद्धादयो ह्यवेदज्ञा स्तेषां वेदाद्यसंभवात्। उपदेशः कृतोऽतस्तैर्व्यामोहादेव केवलात् ॥

विप्रकृष्टमित्येवंजातीयकमर्थमवगमयतीत्येवंजातीयकैरध्वरमीमांसागुरुभिर्विधिप्रतिषेधविचारणानिबन्धनं सकलार्थविषयज्ञानं प्रतिपद्यमानैः सकलार्थग्रहणस्वभावकत्वमात्मनोऽभ्युपगतम् । न चाखिलार्थप्रतिबन्धकावरणप्रक्षवानुपपत्तिः सम्यग्दर्शनादित्रयलक्षणस्यावरणप्रक्षयहेतुभूतस्य सामग्रीविशेषस्य प्रतीतत्वात् अनया मुद्रयापि क्षुद्रोपद्रवा विद्राव्याः ॥१४॥

यथा 'स्वर्गकामो यजेत' इत्यादि विधिवाक्योंसे भूत भविष्यत् वर्तमान, एवं सूक्ष्म, व्यवहित, दूर, निकटादि वस्तुज्ञान पूर्वमीमांसकोंने माना है तथैव आर्हत सिद्धान्तमें भी विधिप्रतिषेधात्मक आगमबलसे अतीतानागत सूक्ष्म व्यवहितादि निखिलार्थ ग्रहण सम्भव होगा किञ्च अर्हन्मुनिने स्याद्वाद (अनेकान्तपक्ष) अर्थात् अनिश्चित पक्ष माना है उसमें व्याप्तिज्ञानकी अपेक्षा होती है अतः व्याप्तिज्ञान वस्तुप्रत्यक्षके विना अनुपपन्न है इससे भी सर्वज्ञ सिद्ध हो सकता है । विशेष्यासिद्धिमाशंक्य परिहार (नचाखिलार्थेत्यादि) समस्तवस्तुसाक्षात्कारका प्रतिबन्धक जो दुरित है उसका विनाश अनुपपन्न है यह नहीं कहसकते क्योंकि सम्यक्दर्शन ज्ञानचारित्र्यादिसे प्रतिबन्धक आवरणविनाश सम्भव है ॥ १४ ॥

नन्वावरणप्रक्षयवशादशेषविषयं विज्ञानं विशदं मुख्यप्रत्यक्षं प्रभवतीत्युक्तम् । तदयुक्तम्, तस्य सर्वज्ञस्यानादिमुक्तत्वेनावरणस्यैवासम्भवादिति चेत्तन्न, अनादिमुक्तत्वस्यैवासिद्धेन सर्वज्ञोऽनादिमुक्तः मुक्तत्वादितरमुक्तवत् बद्धापेक्षया च मुक्तव्यपदेशः तद्रहिते चास्याप्यभावः स्यादाकाशवत् ॥ १५ ॥

(नन्विति) आवरणक्षय होनेपर निखिलविषयक स्फुटावभासरूप प्रत्यक्ष होता है, यह कहना अयुक्त है कारण सर्वज्ञ जब अनादि और मुक्त है तब आवरण ही असम्भूत है । निराकरण (नेति) अनादित्व और मुक्तत्व दोनों परस्पर बाधित हैं जैसे घटध्वंस अनादि नहीं होता किन्तु घट फूटनेपर होता है तैसे ही मोक्ष भी बन्धनिवृत्ति है न की सामान्यतः बन्धाभावमात्र अतः यदि मुक्त है तो अनादि नहीं हो सकता इसमें अनुमान भी दिखाते हैं सर्वज्ञ यह पक्ष है अनादि मुक्त नहीं यह साध्य है मुक्त होनेसे यह हेतु है अन्यमुक्तवत् दृष्टान्त है । उक्तार्थका उपपादनभी करते हैं बद्धके अपेक्षा मुक्त होता है यदि बद्ध न होता तो आकाशादिवत् कभी भी मुक्त नहीं हो सकता ॥ १५ ॥

नन्वनादेः क्षित्यादिकार्यपरम्परयाः कर्तृत्वेन तत्सिद्धिः । तथाहि क्षित्यादिकं सकर्तृकं कार्य्यत्वाद् घटवदिति, तदप्यसमीचीनं कर्य्यत्वस्यैवासिद्धेः । न च सावयवत्वेन तत्साधनमित्यभिधातव्यं यस्मादिदं विकल्पजालमवतरति ॥ १६ ॥

नैयायिकादिकोंके अभिमत नित्य सर्वज्ञ ईश्वर साधक अनुमानको पूर्व पक्ष करके दूषित करते हैं (नन्वनादेरित्यादि) यह नियम है कि जो जो कार्य हैं वह सब सकर्तृक होते हैं तथाच पृथिव्यादि कभी घटादिवत् कार्य होनेसे सकर्तृक होगा. कर्ता वही होसकता है जो स्वकार्यके उपयुक्त उपादान सम्प्रदानादि निखिलवस्तुओंके साक्षात्कारमें समर्थ हों अतः पृथिव्यादि समस्त कार्यके तादृश कर्ता सर्वज्ञ ही होसकते हैं उक्तानुमानको प्रयोजक हेतुको स्वरूपासिद्धि दोषसे दूषित करते हैं (तदप्यसमीचीनमिति) कार्यत्व ही असिद्ध है हेतुको स्वरूपासिद्धत्व परिहारके लिये अनुमानान्तरसे कार्यत्वसाधन शंका करते हैं (नचेति) जहां जहां सावयवत्व है वहां वहां कार्यत्व रहता है ऐसी व्याप्ति है तथा च पृथिव्यादिक पक्ष है, कार्यत्व साध्य है सावयवत्व हेतु है, घटवत् दृष्टान्त है इसको भी स्वरूपासिद्धिसे दूषित करते हैं (यस्मादित्यादि) ॥ १६ ॥

सावयवत्वे किमवयवसंयोगित्वम्; अवयवसमवायित्वम्, अवयवजन्यत्वम्, समवेतद्रव्यत्वम्, सावयवबुद्धिविषयत्वं वा । न प्रथमः आकाशादावनैकान्त्यात् । न द्वितीयः सामान्यादौ व्यभिचारात्। न तृतीयः साध्याविशिष्टत्वात् । न चतुर्थः विकल्पयुगलार्गलग्रहगलत्वात्। समवायसम्बन्धमात्रवद्द्रव्यत्वं समवेतद्रव्यत्वम् अन्यत्र समवेतद्रव्यत्वं वा विवक्षितं हेतु क्रियते । आद्ये गगनादौ व्यभिचारः, तस्यापि गुणादिसमवायत्वद्रव्यत्वयोः संभवात् । द्वितीये साध्याविशिष्टता अन्यशब्दार्थेषु समवायकारणभूतेष्ववयवेषु समवायस्य साधनीयत्वात् । अभ्युपगम्यैतदभाणि वस्तुतस्तु समवाय एव न समस्ति प्रमाणाभावात्। नापि पञ्चमः आत्मादिनानैकान्त्यात् तस्य सावयवबुद्धिविषय-

त्वेऽपि कार्य्यत्वाभावात् । नच निरवयवत्वेऽप्यस्य सावयवार्थं सम्बन्धेन, सावयवत्वबुद्धिविषयत्वमौपचारिकमित्यष्टव्यं निरवयवत्वे व्यापत्वाविरोधात् परमाणुवत् ॥ १७ ॥

विकल्पोंको दिखाते हैं (सावयवत्वेति) सावयवत्वसें आपको क्या विवाक्षित है अवयवोंका जिसमें संयोग हो वह विवाक्षित है १ या अवयवका जिसमें समवाय हो वह विवक्षित है २ अथवा अवयवसे उत्पन्नत्व विवक्षित है ३ किंवा समवेत द्रव्यत्व विवाक्षित है ४ यद्वा सावयवबुद्धि विषयत्व विवक्षित है ५ ? एक-एकको क्रमशः दूषित करते हैं (न प्रथमेत्यादि) आकाशको जितने अवयव हैं वह सब आकाशहीमें संयुक्त है परन्तु नैयायिकोंके मतमें आकाशमें कार्यत्व न होनेसे सावयवत्वरूप हेतु साध्याभावमें वर्तमान होनेके कारण अनैकान्त्य अर्थात् व्यभिचारी होगया आकाशमें सावयवत्व नहीं है ऐसा तो नहीं कहसकते क्योंकि यदि सावयव नहीं होता तो परमाणुवत् व्यापक भी नहीं होसकता अथवा घटाकाशका जिस प्रकार संयोग है उस प्रकार घटावयव कपालादिके साथ भी संयोग होनेसे अवयवसंयोगित्वरूप सावयवत्व आकाशमें गयां कार्यत्व नहीं गया (नाद्वितीयेति) पूर्ववत् घटत्वद्रव्यत्वादि सामान्य जिस प्रकार घटमें समवेत हैं तिस प्रकार घटावयवमें भी समवेत हैं क्योंकि घटत्वादिक घटादिके सब अवयवोंमें व्याप्त है अतः अवयवसमवायित्व सामान्यादिमें गया किन्तु कार्यत्व नहीं गया अतः यहभी सामान्यमें व्यभिचारी होगया (न तृतीयेति) साध्यसे अविशिष्ट है । तात्पर्य—अवयव समुदाय ही घटादि कार्य है वस्त्वन्तर नहीं ऐसे कहनेवालोंके मतमें कार्यत्ववत् अवयवजन्यत्वरूप सावयवत्व भी साधनीय होनेसे साध्यापेक्षा कुछ भी विशेष नहीं हुआ । (नचतुर्थेति) विकल्पद्वयसे निरुत्तरित है तथाहि समवेत द्रव्यत्वसे क्या समवायसम्बन्धवान् होकर द्रव्यत्ववान् हो यही विवक्षित है, या अन्यत्र समवेत होकर द्रव्यत्ववान् हो यह विवक्षित है । प्रथम पक्ष आकाशमें व्यभिचरित है क्योंकि आकाशमें भी गुणादिका समवायत्व और द्रव्यत्व दोनों हैं । यदि अन्यत्र समवेतत्वादि द्वितीय पक्ष कहो सो भी ठीक नहीं कारण पटसे अन्यत्वेन अभिमत पटावयवतन्तुमें समवेत (समवायसम्बन्धसे विद्यमान) होनेके कारण पटादिको अन्यत्र समवेतत्व कहोगे परन्तु पटके कारणीभूत पटावयवत्वसे विवक्षित तन्तु पटसे अन्य है इसमें प्रमाण न होनेके कारण यह भी अनुमानान्तरसे साधन करना होगा, अतः कार्यत्ववत् अन्यत्र समवेतत्वरूप सावयवत्व भी साधनीय होनेसे साध्यसे विशेष कुछ भी नहीं हुआ अर्थात हेतुका स्वरुप ही असिद्ध है । " तुष्यतु दुर्जनः "

इस न्यायसे अनभिमतको भी मानकर इतना प्रपञ्च बढाया वस्तुतः समवायसत्तामें कोई प्रमाण ही नहीं। पञ्चमका खण्डन करते हैं (आत्मादिनेति) सावयवबुद्धि-विषयत्व आत्मा सावयव है ऐसा ज्ञानवेद्यत्व आत्मामें है परन्तु कार्यत्व नहीं इस लिये हेतु व्यभिचारी होगा। आत्माके निरवयवत्वका खण्डन करते हैं (नचेत्यादि) आत्मा वस्तुतः निरवयव है तथापि सावयव घटादि अर्थके साथ सम्बन्ध होनेसे सावयवबुद्धिवेद्यत्व आरोपित है ऐसा भी नहीं कहसकते क्योंकि निरवयवपदार्थ व्यापक नहीं होसकता अन्यथा परमाणु भी व्यापक होनेलगेगा ॥ १७ ॥

किञ्च किमेकः कर्त्ता साध्यते किं वा स्वतन्त्रः। प्रथमे प्रासादादौ व्यभिचारः स्थपत्यादीनां बहूनां पुरुषाणां तत्र कर्तृत्वोपलम्भात्। न द्वितीयः लाघवादनेनैव सकलजगज्जननोत्पत्तावितरवैयर्थ्यापातात् ॥ १८ ॥

उक्तानुमानको प्रकारान्तरसे भी दूषित करते हैं (किञ्चेत्यादि) क्या कार्यत्व हेतुसे एक कर्ता सिद्ध करते हो १ या स्वतन्त्र कर्ता २ विशाल ग्रह प्रासादादि कार्य एकसे किया हुआ कहीं दृष्ट नहीं आता किन्तु तक्षकादि अनेक शिल्पियोंसे निर्मित ही दृष्ट है अतः एककर्तृकत्वरूप साध्य गृहादिकमें व्यभिचरित है. यदि स्वतन्त्र कर्ता मानो तो घटपटादि समस्त कार्य उसीसे उत्पन्न हो जाते पुनः कुलालादि कर्ताकी आवश्यकता ही नहीं होनी चाहिये ॥ १८ ॥

तदुक्तं वीतरागस्तुतौ–"कर्त्तास्ति नित्यो जगतः स चैकः स सर्वगः सन् स्ववशः स सत्यः। इमाः कुहेवाः कुविडम्बनाः स्युस्तेषां न येषामनुशासकस्त्वम् ॥" इति ॥ अन्यत्रापि–कर्त्ता न तावदिह कोऽपि यथेच्छया वा दृष्टोऽन्यथा कटकृतावपि तत्प्रसङ्गः। कार्य्यं किमत्र भवतापि च तक्षकाद्यैराहत्य च त्रिभुवनं पुरुषः करोति ॥ "इति। तस्मात् प्रागुक्तकारणत्रितयबलादावरणक्षये सार्वज्ञ्यं युक्तम् ॥ १९ ॥

इसमें प्राचीन सम्मति भी कहते हैं (तदुक्तमिति) समस्त संसारका एक कर्ता है वह व्यापक सत्य और स्वतंत्र है। इत्यादि दुराग्रह और विडम्बना उन्हीं लोगोंकी है जिनके शिक्षक अर्हन् न हो (अन्यत्रापीति) स्वेच्छासे इस संसारको बनानेवाला कोई नहीं दृष्टि आता है यदि सम्पूर्ण संसारका कर्ता स्वतंत्र किसीको मानो तो

घटपटादि कार्य भी उन्हींसे होजाता। बढई लोहार कुम्हार तन्तुवाय प्रभृतिसे आपको प्रयोजन ही क्या है यह ईश्वरकारणवादी ऊपर उपालम्भ है। उपसंहार (तस्मादिति) पूर्वोक्त सम्यक्ज्ञान सम्यक्दर्शन सम्यक्चारित्ररूप कारणत्रयसे आवरण (अविद्या) निवृत्ति होनेसे सर्वज्ञत्व उपपन्न होता है यह सिद्ध हुआ ॥ १९ ॥

न चास्योपदेष्ट्रन्तराभावात् सम्यग्दर्शनादित्रितयानुपपत्तिरिति भणनीयम् पूर्वसर्वज्ञप्रणीतागमप्रभवत्वादमुष्या शेषार्थज्ञानस्य । न चान्योन्याश्रयतादिदोषः आगमसर्वज्ञपरम्पराया बीजाङ्कुरवदनादित्वाङ्गीकारादित्यलम् ॥ २० ॥

यदि कहो अर्हन्को उपदेष्टा न होनेसे सम्यक्दर्शनादिका सम्भव नहीं सो भी नहीं पूर्वपूर्व सर्वज्ञप्रणीत आगमसे इनको भी सर्वज्ञत्व होसकता है यदि कहो आगमसे सर्वज्ञत्व होगा सर्वज्ञ होनेपर आगमप्रणयन और उसका प्रामाण्य पूर्वकारिकोक्त प्रकार अन्योन्याश्रयग्रहग्रस्त है सो भी नहीं जिस प्रकार बीजके विना अंकुर और अंकुरके विना बीज न होसकनेपर भी बीजाङ्कुर दोनों अनादि होनेसे अन्योन्याश्रय नहीं माने जाते हैं तिसी प्रकार सर्वज्ञ और तत्प्रणीत आगमपरम्परा दोनों अनादि होनेसे अन्योन्याश्रय दोष नहीं होता है ॥ २० ॥

रत्नत्रयपदवेदनीयतया प्रसिद्धं सम्यग्दर्शनादित्रितयमर्हत्प्रवचनसंग्रहपरे परमागमसारे प्ररूपितं 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः'इति। विवृतश्च योगदेवेन येन रूपेण जीवाद्यर्थों व्यवस्थितस्तेन रूपेणार्हता प्रतिपादिते तत्त्वार्थे विपरीताभिनिवेशरहितत्वाद्यपरपर्य्यायं श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् । तथा च तत्त्वार्थसूत्रं "तत्त्वार्थे श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्" इति ॥ २१ ॥

सम्यक्दर्शनादि त्रितय मोक्षमार्गत्वेनाभिमत रत्नत्रयवाच्यमें प्राचीनसम्मति कहते हैं (परमागमसारे निरूपितामिति-विवृतंचेति) जो वस्तु जिस रूपसे वर्तमान हो उसी प्रकार जिनदेवप्रतिपादित तत्त्वार्थमें विपरीत अभिनिवेश छोडकर श्रद्धा सम्पादन करनेका नाम सम्यक्दर्शन है सूत्रकारने भी कहा है "तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यक्दर्शनम्" इति । तत्त्वसे निश्चित किया जाय वह तत्त्वार्थ है अथवा तत्त्वरूप अर्थ तत्त्वार्थ है तत्त्व "जीवाजीवास्रवसंवरबन्धनिर्जरमोक्षास्तत्वम्" इत्यादि सूत्रोक्त है। यदि अर्थश्रद्धा इतनाही कहते तो यावत् घटादि अर्थ श्रद्धाको भी मोक्षमार्गत्वप्रसंग होगा इसके

१ चानवस्थादिदोषः । इति वा ।

वारण करनक लिए तत्त्वपद कहा । यदि तत्त्वश्रद्धा इतनाही कहदेते तो किसीके मतमें द्रव्यत्वगुणत्वकर्मत्वादिसत्ता तत्त्व है " पुरुष एवेदम् " इत्यादिवचनोंसे किसी-के मतमें एक पुरुषही तत्त्व है अतः व्यभिचारवारणार्थ तत्त्व अर्थ दोनोंका उपादान किया यद्यपि दर्शनका अर्थ चाक्षुषज्ञान है तथापि मोक्षप्रकरण होनेसे प्रसिद्धार्थ छोडकर श्रद्धारूपी अर्थ लियागया आत्मपरिणामरूप तत्त्वार्थ श्रद्धा मोक्षका साधन होसकता है प्रत्यक्षरूप दर्शन आलोक चक्षुरादि निमित्त होनेसे मोक्षका साधन नहीं होसकता ॥ २१ ॥

अन्यदपि-"रुचिर्जिनोक्ततत्त्वेषु सम्यक् श्रद्धानमुच्यते । जायते तन्निसर्गेण गुरोरधिगमेन वा ॥" इति । परोपदेशनिरपेक्षमात्मस्वरूपं निसर्गः । व्याख्यानादिरूपपरोपदेशजनितं ज्ञानमधिगमः । येन स्वभावेन जीवादयः पदार्थाः व्यवस्थिताः तेन स्वभावेन मोहसंशयरहितत्वेनावगमः सम्यग्ज्ञानम् ॥ यथोक्तम्- " यथावस्थिततत्त्वानां संक्षेपाद्विस्तरेण वा । योऽवबोधस्तमत्राहुः सम्यग्ज्ञनं मनीषिणः ॥ " इति । तज्ज्ञानं पञ्चविधं मतिश्रुतावधिमनःपर्य्यायकेवलभेदेन । तदुक्तम्- " मतिश्रुतावधिमनःपर्य्यायकेवलानि ज्ञानम् " इति । अस्यार्थः-ज्ञानावरणक्षयोपशमे सति इन्द्रियमनसी पुरस्कृत्य व्यापृतः सन् यथार्थं मनुते मतिः । ज्ञानावरणक्षयोपशमे सति मतिजनितं स्पष्टं ज्ञानं श्रुतम् । असम्यग्दर्शनादिगणजनितक्षयोपशमनिमित्तम् अवच्छिन्नविषयं ज्ञानमवधिः ॥ २२ ॥

(अन्यदपीति) जिनदेवके कहे हुए तत्त्वोंमें सम्यक्प्रीतिका नाम श्रद्धान है वह निसर्गसे अथवा गुरूपदेशसे होता है " तन्निसर्गादधिगमाद्वा " इति दर्शन मोहन क्षय और क्षयोपशमादि रहनेपर बाह्योपदेशनिरपेक्ष जो आत्मस्वरूपज्ञान है वह निसर्ग है परोपदेशसे ज्ञायमान जीवादिज्ञान अधिगम है । " प्रमाणनयैरधिगमः " इति सम्यक्ज्ञानका निरूपण करते हैं (येनस्वभावेनेति) मोहसंशयरहित होकर यथावस्थित जीवादिज्ञान सम्यक्ज्ञान है वह भी मति आदिभेदसे पांच प्रकार है ज्ञान शब्दका प्रत्येकसे सम्बन्ध है अर्थात् मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान इत्यादि ज्ञानकी आवरण अविद्याका नाश होनेपर इन्द्रिय और मनद्वारा वस्तुका यथावस्थित

स्वरूप ज्ञान जिससे हो वह मति है एवं ज्ञानावरण क्षय होनेपर मननसे जायमान स्फुटतर ज्ञान श्रुत है।(असम्यग्दर्शनादीति) असम्यक्दर्शनादिसे जनित जो क्षय है उसके उपशम होनेपर नियत विषय ज्ञानका नाम अवधि[1] है ॥ २२ ॥

ईर्ष्यान्तरायज्ञानावरणक्षयोपशमे सति परमनोगतस्यार्थस्य स्फुटं परिच्छेदकं ज्ञानं मनःपर्य्यायः । तपःक्रियाविशेषान् यदर्थं सेवन्ते तपस्विनस्तज्ज्ञानासंस्पृष्टं केवलम् । तत्राद्ये परोक्षं प्रत्यक्षमन्यत् । तदुक्तम्-" विज्ञानं स्वपराभासि प्रमाणं बाधवर्जितम् । प्रत्यक्षञ्च परोक्षञ्च द्विधा मेयविनिश्चयात् ॥ " इति । अन्तर्गणिकभेदस्तु सविस्तरस्तत्रैवागमेऽवगन्तव्यः॥२३॥

(ईर्ष्यान्तरायादि)ज्ञानका आवरण अविद्या शान्त होनेपर दूसरेके मनके आभिप्रायका स्पष्ट प्रतिभास होना मनःपर्य्याय है. अर्थात् मनःशब्द लक्षणासे मनोवृत्तिको कहनेवाला है उस मनकी वृत्तिको जो पर्ययण अर्थात् प्राप्त करे वह मनःपर्य्याय कहाता है । बाह्याभ्यन्तर क्रियाविशेषको तपस्वी लोग जिस लिये सेवन करते हों वह ज्ञानसे अस्पृष्ट अर्थात् असहाय केवल है । प्रत्यक्ष परोक्ष दो प्रमाण हैं तत्र मति और श्रुत दोनों परोक्ष हैं, अन्य तीन प्रत्यक्ष हैं. इस अभिप्रायसे कहते हैं. (आद्ये परोक्षमिति) भ्रमरहित स्वपरप्रातिभासक विज्ञान प्रमाण है वह प्रत्यक्ष परोक्षभेदसे दो प्रकार है उपमानार्थापत्त्यादि व्यावृत्तिके लिये कहते हैं मेयविनिश्चयादि उक्त दो ही प्रमाणद्वारा पदार्थ निश्चय होनेसे अधिक कल्पना व्यर्थ है इसका अवान्तरभेद सर्वार्थसिद्धिग्रन्थमें प्रपाश्चित है ॥ २३ ॥

संसरणकर्मोच्छित्तावुद्यतस्य श्रद्दधानस्य ज्ञानवतः पापगमनकारणक्रियानिवृत्तिः सम्यक्चारित्रम् । तदेतत् सप्रपञ्चमुक्तमर्हता ॥ " सर्वथावद्ययोगानां त्यागश्चारित्रमुच्यते । कीर्तितं तदहिंसादिव्रतभेदेन पञ्चधा । अहिंसासूनृतास्तेयब्रह्मचर्य्यापरिग्रहाः ॥ न यत् प्रमादयोगेन जीवितव्यपरोपणम् । चराणां

---

१ अवायान्ति व्रजन्तीति अवायाः पुद्गलाः तान् दधाति जानाति इति अवाधिः अवाग्धानं वा। पुद्गल परिज्ञानसे अथवा द्रव्य क्षेत्र काल भावोंसे जो परिच्छिन्न किया जाय वह अवधि है । यह व्याख्या सर्वार्थसिद्धिस्थ है.

स्थावराणां च तदहिंसाव्रतं मतम्॥ प्रियं पथ्यं वचस्तथ्यं सूनृतं व्रतमुच्यते। तत्तथ्यमपि नो तथ्यमप्रियं चाहितं च यत् ॥ अनादानमदत्तस्यास्तेयव्रतमुदीरितम्। बाह्याःप्राणा नृणामर्थो हरता तं हता हि ते ॥ दिव्यौदयिककामानां कृतानुमतकारितैः ॥ मनोवाक्कायतस्त्यागो ब्रह्माष्टादशधा मतम् ॥ २४ ॥

संसार हेतु कर्मकी निवृत्ति सम्यक् चारित्र है यह सब अर्हत्ग्रन्थमें प्रपञ्चित है (सर्वथेत्यादि) निन्दित कर्मका सर्वथा त्याग चारित्र है वह अहिंसादि व्रतभेदसे पाँच प्रकार हैं. अहिंसा १ अपरिग्रह २ अस्तेय ३ ब्रह्मचर्य ४ सूनृत ५ यह पाँच हैं चर, या स्थावररूप प्राणियोंको प्रमाद अर्थात् क्रोध, मान, माया, लोभरूप चतुर्विध कषायसे जीवित (दश इन्द्रियोंका) वियोग न करना अहिंसाव्रत है। अतएव तत्त्वार्थसूत्र "प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा" इति ॥ प्रिय, हित, और सत्यवचन सूनृत व्रत है तथ्य भी हो परन्तु अप्रिय और अहित हो तो उसको असत्यके समान जानना चाहिये। तथा च मनुः 'सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्। प्रियश्च नानृतं ब्रूयादेष धर्म्मः सनातनः ॥" इति। तत्वार्थसूत्र "असदभिधानमनृतम्" इति। जो नहीं दिये हुए वस्तुको ग्रहण करना स्तेय (चोरी) है उससे भिन्न अस्तेय है क्योंकि धन प्राणियोंके बाह्य प्राण है अतः उस प्राणको हरनेसे प्राणी हत होता है। तथा च सूत्रम् 'अदत्तादानं स्तेयम्" इति। दिव्य और औदयिक कामोंको मनः कर्म वचनसे त्यागना ब्रह्मचर्य है वह अठारह प्रकार है ॥ २४ ॥

सर्वभावेषु मूर्च्छायास्त्यागः स्यादपरिग्रहः । यदसत्स्वपि जायेत मूर्च्छया चित्तविप्लवः ॥ भावनाभिर्भावितानि पञ्चभिः पञ्चधा क्रमात्। महाव्रतानि लोकस्य साधयन्त्यव्ययं पदम्॥" इति। भावनापञ्चकप्रपञ्चनं च प्ररूपितम्–"हास्यलोभभयक्रोधप्रत्याख्यानैर्निरन्तरम्। आलोच्य भाषणेनापि भावयेत् सूनृतं व्रतम् ॥" इत्यादिना । एतानि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मिलितानि । मोक्षकारणं न प्रत्येकं यथा रसायनसाधनानि सम्भूय रसायनफलं साधयन्ति न प्रत्येकम् ॥ २५ ॥

समस्त वस्तुओंमें मोहविशेषका त्याग अपरिग्रह है । क्योंकि मूर्च्छासे निन्दित वस्तुओंमेंभी मनकी आसक्ति होजाती है । उक्त पाँचों व्रत वक्ष्यमाण पाँच प्रकारकी भावनाओंसे अनुष्ठित होनेपर प्राणियोंका अव्यय पद प्राप्त कराते हैं। पाँच भावनाओंके कहते हैं। हास्य, लोभ, त्याग, भय और क्रोध इनका त्याग तथा सदा विचारपूर्वक भाषणरूपी पांच भावनाओंसे सूनृत व्रतको सम्पादन करे एवं अन्य चारों व्रतोंमें भी प्रत्येक पाँच पाँच प्रकारकी भावना करे । जिस प्रकार रसायनादि औषधियोंके लिये जितनी सामग्री अपेक्षित है वह सब मिलकर रसायनका फल उत्पन्न करती है न की केवल एक एकवस्तु तादृश फल देसकती है उसी प्रकार सम्यक्‌दर्शन ज्ञान चारित्र मिलकर मोक्षकाकारण है ॥ २५ ॥

अत्र संक्षेपतस्तावज्जीवाजीवाख्ये द्वे तत्त्वे स्तः। तत्र बोधात्मको जीवः, अबोधात्मकस्त्वजीवः । तदुक्तं पद्मनन्दिना "चिदचिद्द्वे परे तत्त्वे विवेकस्तद्विवेचनम् । उपादेयमुपादेयं हेयं हेयं च कुर्वतः ॥ हेयं हि कर्तृरागादि तत्त कार्य्यमविवेकिनः । उपादेयं परं ज्योतिरुपयोगैकलक्षणम् ॥ "इति । सहजचिद्रूपपरिणतिं स्वीकुर्वाण-ज्ञानदर्शने उपयोगः। स परस्परप्रदेशात्तु प्रदेशन्बधात् कर्मणैकीभूतस्यात्मनोऽन्यत्वप्रतिपत्तिकारणं भवति ॥ २६ ॥

संक्षेपतः तत्त्वविचार—जीव और अजीव दो तत्त्व हैं बोधरूप अर्थात् चेतनालक्षण जीव है इससे विपरीत अचेतन अजीव है । (चिदचिद्द्वेति) उक्तार्थ कर्त्तृत्व रागादि हेय है वह अविवेकका कार्य है । परज्योति उपादेय है वह मतिज्ञान श्रुतज्ञान मत्यज्ञान श्रुताज्ञानादि भेदयुक्त ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग स्वरूप है । वह उपयोग कर्मवश परस्पर प्रदेश संयोगसे एकीभूत आत्माको अन्यत्वप्रतीतिका कारण है ॥२६॥

---

१ तथा च तत्वार्थसूत्रं " तत्स्थैर्यार्थं भावना पंच पंच " तत्स्थैर्य पूर्वोक्त व्रतपुष्टिके लिये प्रथमव्रतमं " वाङ्मनोगुप्तिर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पंच " द्वितीयमें— "क्रोधं लोभ मीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणञ्च पञ्च " इति । तृतीयमें— " शून्यागारं विमोचितावासं परोपरोधाकरणं भैक्ष्यशुद्धि सद्धर्म्माविसंवादाः पञ्च " इति । ब्रह्मचर्यव्रतभावना " स्त्रीरागकथाश्रवण तन्मनोहराङ्गनिरीक्षण पूर्वरतानुस्मरण वृष्येष्टरस स्वशरीरसंस्कारत्यागाः पंच " इति । अपरिग्रहव्रत भावना—"मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पञ्च " इति । इन सूत्रोंका विस्तृत व्याख्यान सर्वार्थसिद्धिमें है यहां केवल नामनिर्देश मात्र किया है ।

सकलजीवसाधारणं चैतन्यमुपशमक्षयक्षयोपशमवशादौपशमिकक्षयात्मकक्षयोपशमिकभावेन कर्मोदयवशात् कलुषान्याकारेण च परिणतजीवपर्य्यायजीवविवक्षायां स्वरूपं भवति। यदवोचद्वाचकाचार्य्यैः—"औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रं च जीवस्य सत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ चेति । अनुदयप्राप्तिरूपे कर्मण उपशमे सति जीवस्योत्पद्यमानो भाव औपशमिकः। यथा पङ्के कलुषतां कुर्वति कतकादिद्रव्यसम्बन्धादधःपतिते जलस्य स्वच्छता। कर्मणः क्षयोपशमे सति जायमानो भावः क्षयिकः। यथा मोक्षः। उभयात्मा भावो मिश्रः। यथा जलस्यार्द्धस्वच्छता। कर्मोदये सति भवन् भाव औदयिकः। कर्मोपशमाद्यनपेक्षः सहजो भावश्चेतनत्वादिः पारिणामिकः। तदेतत् स्वतत्त्वं यथासम्भवं भव्यस्याभव्यस्य जीवस्य तत्त्वं स्वरूपमिति सूत्रार्थः ॥ २७ ॥

समस्त जीव साधारण चैतन्य उपशम, क्षय, क्षयोपशम, निमित्तसे औपशमिक, क्षायिक, क्षयोपशमिक भाव वश कर्मोदय और कालुष्यसे अन्याकारसे परिणत जीवपर्यायका स्वरूप होता है इसमें तत्त्वार्थसूत्र प्रमाण भी देते हैं (यदवोचदित्यादि) आत्मामें कर्मरूप स्वशक्तिका किसी कारणवश प्रादुर्भाव न होना उपशम है तादृश उपशमके अनन्तर जीवका उत्पद्यमान भाव औपशमिक है । जिस प्रकार जलको कलुषित करनेवाला कर्दम निर्मलीके संयोगसे जब नीचे बैठ जाता है तब जलकी निर्मलता होती है । अत्यन्त निवृत्ति क्षय है तथा च कर्मका क्षय होनेसे उत्पन्न भाव सार्थिक है जिस प्रकार स्फटिकादि पात्रमें रखे हुए जलमें कर्दमका अत्यन्त अभाव होता है वैसी जीवकी मोक्षदशामें कर्मोंका अत्यन्त अभाव है । उभयात्मक भाव मिश्र है जिस प्रकार जलमें आधी स्वच्छता द्रव्यादिनिमित्तसे कर्म फलप्राप्तिका नाम उदय है कर्मोदयसे जायमान भाव औदयिक है कर्मोपशमनिरपेक्ष सहज होनेवाला चेतनत्वादि अर्थात् द्रव्यात्मलाभ मात्र निमित्तक परिणामिक है उक्त पाँच भाव यथायोग्य भव्याभव्यात्मक जीवका स्वरूप है ॥ २७ ॥

तदुक्तं स्वरूपसम्बोधने—"ज्ञानाद्‌ भिन्नो न चाभिन्नो भिन्ना-

भिन्नः कथञ्चन । ज्ञानं पूर्वापरीभूतं सोऽयमात्मेति कीर्तितः ॥ " इति ॥ २८ ॥

(तदुक्तमिति) ज्ञानसे अत्यन्त भिन्न या अत्यन्त अभिन्न आत्मा नहीं है किन्तु भिन्नाभिन्न अर्थात् पूर्वापरीभूत ज्ञानको आत्मा कहते हैं ॥ २८ ॥

ननु भेदाभेदयोः परस्परपरिहारेणावस्थानादन्यतरस्यैव वास्तवत्वादुभयात्मकमयुक्तमिति चेत्तदयुक्तम्, बाधे प्रमाणाभावात् । अनुपलम्भो हि बाधकं प्रमाणं न सोऽस्ति समस्तेषु वस्तुष्वनेकरसात्मकत्वस्य स्याद्वादिनो मते सुप्रसिद्धत्वादित्यलम् ॥ २९ ॥

भेदाभेदका विरोधाभाव समर्थन-(ननु इत्यादि) यथा घटसे भिन्न पट है घटमें पटका भेद अर्थात् अभाव है तहां घट नहीं रहसकता अभेद अर्थात् भेदाभाव घटमें पटका भेदाभाव पटरूपता है तथा च भेदाभेद परस्पर विरुद्ध होनेसे एकत्र नहीं रह सकते । नैयायिकोंने भी भेदका प्रतियोगितावच्छेदकके साथ और अभावका प्रतियोगीके साथ विरोध माना है अतः परस्पर विरुद्ध होनेसे एकको सत्यत्व और अन्यको मिथ्यात्व कहनाहोगा । उत्तर (तदयुक्तमिति) सहानवस्थान लक्षण ही विरोध है विरोध होनेपर बाध्यबाधकभाव होता है बाधमें कोई प्रमाण ही नहीं घट जहांपर है वहां घटाभाव उपलब्ध नहीं होता न घटाभाव व्यवहार भी नहीं होता है अतः अनुपलम्भरूप ही प्रमाण कहोगे सो भी ठीक नहीं क्योंकि स्याद्वादियोंके मतमें समस्तवस्तुओंमें अनेकान्तात्मक अर्थात् (स्यादस्ति स्यान्नास्ति) इत्यादि अनिश्चयात्मक रहता है अतः आर्हत् मतमें कोई विरोध ही नहीं ॥ २९ ॥

अपरे पुनः जीवाजीवयोरपरं प्रपञ्चमाचक्षते जीवाकाशधर्माधर्मपुद्गलास्तिकायभेदात् । एतेषु पञ्चसु तत्त्वेषु कालत्रयसम्बन्धितया स्थितिव्यपदेशः, अनेकप्रदेशत्वेन शरीरवत् कायव्यपदेशः । तत्र जीवा द्विविधाः, संसारिणो मुक्ताश्च । भवाद्भवान्तरप्राप्तिमन्तः संसारिणः । ते च द्विविधाः, समनस्का अमनस्काश्च । तत्र संज्ञिनः समनस्काः, शिक्षाक्रियालापग्रहणरूपा संज्ञा, तद्विधुरास्त्वमनस्काः । ते चामनस्का द्विविधाः, त्रसस्थावरभेदात् । तत्र द्वीन्द्रियादयः शङ्खगण्डोलकप्रभृतयश्चतुर्विधास्त्रसाः ॥ ३० ॥

तत्त्वपञ्चक वादिका मत-(अपरेषु नरित्यादि) जीव, आकाश, धर्म, अधर्म, पुद्गल अस्तिकायशब्दका प्रत्येकसे सम्बन्ध है अर्थात् जीवास्तिकाय आकाशास्तिकाय इत्यादि इन पांच तत्त्वोंमें कालत्रयसम्बन्धसे स्थिति व्यवहार और अनेक प्रदेश होनेसे शरीरवत् काय व्यवहार योग्य होनेसे अस्तिकाय कहा जाता है। संसारी और मुक्त भेदसे जीव दो प्रकार है संसरण अर्थात् परिवर्तनशील संसारी है वह भी मनोयुक्त और मनोरहित भेदसे दो प्रकार है । शिक्षा क्रिया आलापादिरूप संज्ञायुक्त समनस्क है इससे शून्य अमनस्क है अमनस्क। भी त्रस, स्थावर भेदसे दो प्रकार है (द्वीन्द्रियादय इत्यादि) तथा च तत्त्वार्थसूत्रं ' द्वीन्द्रियादयः त्रसाः" इति। दो तीन चार पांच इन्द्रिय जिसको हो वह त्रस है " कृमि पिपीलिका भ्रमर, मनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि " इति। अर्थ पूर्वसूत्र " वनस्पत्यन्तानामेकम् " में वनस्पतियोंको एक मात्र स्पर्शेन्द्रिय कहा है उसमेंसे स्पर्शका अधिकार इस सूत्रमें आता है उसके साथ क्रमशः एक एक बढानेसे (द्वीन्द्रियादि) कृमि शंख प्रभृतिको स्पर्श और रसना दो इन्द्रिय होतीहै पिपीलिका प्रभृतिको स्पर्श, रसना, घ्राण तीन इन्द्रियें हैं भ्रमरादिको स्पर्श, रसना, घ्राण और चक्षु चार इन्द्रियें हैं मनुष्यादिको श्रोत्र सहित पूर्वोक्त मिलकर पाच इन्द्रिय होती है ॥ ३० ॥

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः । तत्र मार्गगतधूलिः पृथिवी, इष्टकादिःपृथिवीकायः, पृथिवीकायत्वेन येन गृहीता स पृथिवीकायकः, पृथिवीं कायत्वेन यो ग्रहीष्यति स पृथिवीजीवः। एवमबादिष्वपि भेदचतुष्टयं योज्यम्। तत्र पृथिव्यादि कायत्वेन गृहीतवन्तो ग्रहीष्यन्तश्च स्थावरा गृह्यन्ते न पृथिव्यादिपृथिवीकायादयः तेषां जीवत्वात्। ते च स्थावराः स्पर्शनैकेन्द्रियाश्च भवान्तरप्राप्तिविधुरा मुक्ताः धर्माः धर्माधमाकाशास्तिकायास्ते एकत्वशालिनो निष्क्रियाश्च द्रव्यस्य देशान्तरप्राप्तिहेतुः ॥ ३१ ॥

स्थावर निरूपण-पृथिवी, जल, तेज, वायु और वनस्पति ये स्थावर हैं (मार्गगतेति) अचेतन कठिन गुणयुक्त पृथिवी है पृथिव्यादिके चार चार भेद आगममें कहे हैं पृथिवी पृथिवीकाय पृथिवीकायिक और पृथिवीजीव यही चार प्रकार हैं इस प्रकार जलादिकमें भी चार भेद हैं काय शरीर है पृथिवीकाय इष्टक दि है पृथिवी-

कायिक मृतशरीरादि पृथिवीको शरीररूपसे जो ग्रहण करता है वह पृथिवी जीव है पृथिव्यादिको कायरूपसे ग्रहण करनेवाला स्थावर है पृथिवी वा पृथिवीकाय नहीं क्योंकि वह जीव है "वनस्पत्यन्तानामेकम्" इति सूत्रोक्त प्रकार पृथिव्यादि एक मात्र स्पर्शन इन्द्रिय है यह सब पुनः ससार प्राप्ति रहित होनेसे मुक्त कहा जाते हैं धर्म्म अधर्म और आकाशास्तिकायादिक एक और निष्क्रिय है द्रव्यको प्रदेशान्तर प्राप्तिमें हेतुभी है ॥ ३१ ॥

तत्र धर्माधर्मौ प्रसिद्धौ आलोकेनाविच्छिन्ने नभसि लोकाकाशपदवेदनीये सर्वत्रावस्थितिगतिस्थित्युपग्रहो धर्माधर्मयोरुपकारः, अत एव धर्मास्तिकायः प्रवृत्त्यनुमेयः अधर्मास्तिकायः स्थित्यनुमेयः । अन्यवस्तुप्रदेशमध्येऽन्यस्य वस्तुनः प्रवेशोऽवगाहः तदाकाशकृत्यम् । स्पर्शरसवर्णवन्तः पुद्गलाः । ते च द्विविधाः, । अणवः स्कन्धाश्च । भोक्तुमशक्या अणवः । द्व्यणुकादयः स्कन्धाः । तत्र द्व्यणुकादिस्कन्धभेदादण्वादिरुत्पद्यते, अण्वादिसङ्घातात् द्व्यणुकादिरुत्पद्यते । क्वचिद्भेदसंघाताभ्यां स्कन्धोत्पत्तिः; अतएव पूरयान्त गलन्तीति पुद्गलाः । कालस्यानेकप्रदेशत्वाभावेनाऽस्तिकायत्वाभावेऽपि द्रव्यत्वमस्ति तल्लक्षणयोगात् ॥ ३२ ॥

विहितकर्मानुष्ठानादि धर्म और निन्दित कर्म्मानुष्ठानादि अधर्मरूपसे प्रसिद्ध है आलोकविशिष्ट आकाश अर्थात् जिसको लोकाकाश कहते हैं उसमें सर्वत्र गति और स्थितिका उपकारक धर्माधर्म है । धर्माधर्म प्रवृत्ति और निवृत्तिके उपकारक होनेसे ही प्रवृत्ति स्थितिरूप कार्यसे धर्माधर्मका अनुमान होता है । आकाश अवकाशका हेतु है जैसे गृहमें घटादिका प्रवेश होता है । स्पर्श, रस, रूपगुणवाला पुद्गल है । वह अणु स्कन्ध भेदसे दो प्रकार है । उपभोगका अशक्य प्रदेशशून्य सूक्ष्म अणु है द्व्यणुक आदि स्कन्ध है स्कन्धका भेद न होनेसे अणु उत्पन्न होता है । अणुसमुदायसे स्कन्ध उत्पन्न होता है कहीं कहीं अणु और संघात दोनों मिलकर स्कन्ध उत्पन्न होता है जेसे अणु द्व्यणुक मिलकर एक स्कन्ध उत्पन्न हुआ उसी स्कन्धमें पुनः एक अणुका संयोग होनेसे पुनः स्कन्धान्तर उत्पन्न होता है एवं दो दो संघातसे भी संघातान्तर उत्पन्न होता है यथा द्व्यणुक त्रसरेणु प्रभृतिकी उत्पत्ति होती है

अतएव पूरयन्ति गलन्ति इस प्रकार पुद्गलकी व्युत्पत्ति होती है अर्थात् स्कन्धसे अलग होजानेसे गलन (विशीर्ण) होता है अणुसंयोगद्वारा स्कन्ध होनेसे पूरण होता है ॥ ३२ ॥

तदुक्तं गुणपर्य्यायवद्द्रव्यमिति । द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः । यथा जीवस्य ज्ञानत्वादिसामान्यरूपाःपुद्गलस्य रूपत्वादिसामान्यस्वभावा धर्माधर्माकाशकायानां यथासम्भवं गतिस्थित्यवगाहहेतुत्वादिसामान्यानि गुणाः । तस्य द्रव्यस्योक्तरूपेण भवनमुत्पादः तद्भावः परिणामः पर्य्याय इति पर्य्यायाः । यथा जीवस्य घटादि ज्ञानसुखक्लेशादयःपुद्गलस्य मृत्पिण्डघटादयःधर्मादीनां गत्यादिविशेषाः, अतएव षट् द्रव्याणीति प्रसिद्धिः ॥ ३३ ॥

(गुणपर्यायवदिति) गुण एक द्रव्य द्रव्यान्तरसे जिसके द्वारा व्यावृत्त हो वह गुण है यथा नील घट इत्यादिमें नीलादि विशेषण नीलगुण घटान्तरसे व्यावृत्ति करता है यदि तादृश गुण न होता तो समस्त द्रव्य एकरूपहोनेसे सांकर्य होता जीव भी ज्ञानादि गुणद्वारा पुद्गलादिसे व्यावृत्त होता है और पुद्गलादि भी रूपादिगुणसे व्यावृत्त रहता है अतः अन्वयी गुण है उसके विकार अर्थात् विशेषरूपसे व्यावृत्त होनेवाले पर्याय हैं । क्रोध मान गन्धादि जो द्रव्यमें रहनेवाले हों और जिनपर गुण नहीं रहता हो वही गुण है।धर्माधर्म आकाशकायक यथाक्रम गतिस्थिति अवकाशादि गुण हैं। द्रव्योंकी उक्तरूपसे उत्पत्ति करे उत्पाद कहते । हैं जिस द्रव्यका जो वास्तविक स्वभाव हो उस स्वरूपप्राप्तिरूप परिणामको पर्याय कहते हैं । अत एव जीवाजीव, धर्माधर्म, आकाश पुद्गल भेदसे किसीके मतमें द्रव्य हैं किसीके मतमें छह अजीवके स्थानपर काल मिलाकर छह हैं ॥ ३३ ॥

केचन सप्त तत्त्वानीति वर्णयन्ति । तदाह जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरमोक्षास्तत्त्वानीति । तत्र जीवाजीवौ निरूपितौ । आस्रवो निरूप्यते । औदारिकादिकायादिचलनद्वारेणात्मनश्चलनं योगपदवेदनीयमास्रवः । यथा सलिलावगाहिद्वारं नद्यां स्रवणं कारणत्वादास्रव इति निगद्यते तथा योगप्रणाडिकया कर्मास्रवतीति स योग आस्रवः ॥ ३४ ॥

सप्ततत्त्ववादीका मतनिरूपण-(के च नेत्यादि)बोधात्मक जीव अबोधात्मक अजीव यह कहचुके हैं । आस्रवनिरूपण-(औदारिकेत्यादि) तात्पर्य, योगका नाम आस्रव है " कायवाङ्मनःकर्म योगः " इति सूत्रोक्तप्रकार आत्मप्रदेशका चलन योग है वह शरीरयोग वाक्‌योग और मनोयोगभेदसे तीन प्रकार है " तत्र औदारिक वैक्रियिकाहारक-तैजस-कार्मणानि शरीराणि " इस सूत्रोक्त प्रकार उदार अर्थात् स्थूलमें जो हो वह औदारिक और अणिमादि ऐश्वर्यसे अनेक शरीर धारण विक्रिया है विक्रियाके निमित्त वैक्रियिक इत्यादि सूत्रार्थ है तथा च औदारिकादि सात प्रकारके शरीर चलनसे आत्माका चलन योग है वही आस्रव है जिस प्रकार जलमें प्रवेश होनेके लिये जो मार्ग है वह नदीमें प्राप्त होनेका द्वार होनेसे आस्रव कहाता है तिसी प्रकार योगप्रणालीसे आत्माके कर्मकी गति होनेसे आस्रव भी योग कहाता है ॥ ३४ ॥

यथा आर्द्रं वस्त्रं समन्ताद्वातानीतं रेणुजातमुपादत्ते तथा कषायजलार्द्र आत्मा योगानीतं कर्म सर्वप्रदेशैर्गृह्णाति । यथा वा निष्टप्तायःपिण्डे जले क्षिप्ते अम्भः समन्ताद्गृह्णाति तथा कषायोष्णो जीवो योगानीतं कर्म समन्तादादत्ते । कषति हिनस्त्यात्मानं कुगतिप्रापणादिति कषायः क्रोधो मानो माया लोभश्च । स द्विविधः शुभाशुभभेदात् । तत्राहिंसादिः शुभः काययोगः सन्यमितहितभाषणादिः शुभो वाग्योगः । तदेतदास्रवभेदप्रभेदजातं कायवाङ्मनः कर्मयोगः । स आस्रवः शुभः पुण्यस्य अशुभः पापस्येत्यादिना सूत्रसन्दर्भेण ससंरम्भमभाणि । अपरे त्वेवं मेनिरे आस्रवयति पुरुषं विषयेष्विन्द्रियप्रवृत्तिरास्रवः । इन्द्रियद्वारा हि पौरुषं ज्योतिर्विषयानस्पृशद्रूपादिज्ञानरूपेण परिणमित इति ॥ ३५ ॥

बन्धनिरूपण-जिस प्रकार आर्द्र वस्त्रमें हवासे उडी हुई धूली चिपक जातीहै तिसी प्रकार क्रोध मान माया और लोभ रूप कषाय जलसे आर्द्र जो आत्मा वह योगसे प्राप्त क्रियाको चारों ओरसे ग्रहण करता है यथावा तप्त लोहमें निक्षिप्त जलको लोहपिण्ड सर्वात्मना ग्रहण करता है तिसी प्रकार कषायसे तप्त आत्मा योगसे प्राप्त कर्मको सर्वतः ग्रहण करता है । कष धातु हिंसार्थक होनेसे कषाय जीवस्वरूपविनाशक अर्थात् बन्धहेतु है । वह कर्म शुभाशुभ भेदसे दो प्रकार है· अहिंसादि

शुभ काययोग है सत्यभाषण मितभाषण हितभाषणादि शुभ वाग्योग है उक्त आस्रव भेद प्रभेदरूप योगको शुभः पापस्येत्यादि सूत्रसंदर्भसे सविस्तर सूत्रवृत्तिकारने निरूपण किया है । आस्रवशब्दके व्याख्यानमें मतान्तर कहते हैं (अपरेत्यादि) पुरुषको चञ्चल करनेवाली विषयेन्द्रियवृत्ति आस्रव है पुरुषज्योति सम्बन्धी इन्द्रियद्वारा निकलकर विषयाकारसे जो परिणत होती है वही आस्रव है ॥ ३५ ॥

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषायवशाद्योगवशाच्चात्मा सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहिनामनन्तान्तप्रदेशानां पुद्गलानां कर्मबन्धयोग्यानामादानमुपश्लेषणं यत् करोति स बन्धः । तदुक्तं, सकषायत्वाज्जीवः कर्मभावयोग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्ध इति तत्र कषायग्रहणं सर्वबन्धहेतूपलक्षणार्थम् । बन्धहेतून् पपाठ वाचकाचार्य्यः । मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाया बन्धहेतव इति । मिथ्यादर्शनं द्विविधं मिथ्याकर्मोदयात् परोपदेशानपेक्षं तत्त्वाश्रद्धानं नैसर्गिकमेकम् अपरं परोपदेशजम् पृथिव्यादिषट्कापादनकं षडिन्द्रियासंयमनं च अविरतिः । पञ्चसमितिगुप्तिष्वनुत्साहः प्रमादः । कषायः क्रोधादिः । तत्र कषायान्ताः स्थित्यनुभावबन्धहेतवः प्रकृतिप्रदेशबन्धहेतुर्योग इति विभागः ॥ ३६ ॥

बन्धनिरूपणम्–मिथ्यादर्शनादिवश आत्माका सूक्ष्मक्षेत्रमें प्रवेश करनेवाले ही अनन्तानन्त प्रदेशयुक्त कर्मबन्धयोग्य पुद्गलके साथमें जो है वही बन्ध है इसमें तत्त्वार्थसूत्र भी प्रमाण देते हैं(सकषायेति) कषायग्रहणं "मिथ्यादर्शनेत्यादि" सूत्रोक्त बन्धकारणीभूत मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग पांचोंका उपलक्षण है । ग्रंथकार सूत्रार्थ भी स्वयं कहते हैं (द्विविधमिति) मिथ्यादर्शन दो प्रकारके हैं १ नैसर्गिक २ परोपदेशज. परोपदेशके विना मिथ्याकर्मोदयसे स्वभाववश जो तत्त्वार्थमें अश्रद्धा होती है वह नैसर्गिक है परोपदेश उत्पन्न तत्त्वार्थमें अश्रद्धा परोपदेशज है पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, वनस्पतिरूप षट्तत्त्वोंका आपादक छहों इन्द्रियोंका असंयम अविरति है । ईर्या, भाषा, एषणा, आदान, निक्षेप उत्सर्गरूप पञ्चसमिति गुप्तिसामिति आदिमें अनुत्साहका नाम प्रमाद है । कषायक्रोधादि पूर्वोक्त हैं कषाय-

पर्यन्त स्थित्यनुभाव बन्धहेतु है । प्रकृतिप्रदेशका बन्धहेतु योग है प्रकृति बन्ध स्थिति, अनुभाव, प्रदेशभेदसे बन्ध चार प्रकार है ॥ ३६ ॥

बन्धश्चतुर्विध इत्युक्तम्, प्रकृतिस्थित्यनुभावप्रदेशास्तु तद्विधय इति । यथा निम्बगुडादेस्तिक्तत्वमधुरत्वादिस्वभावः एवमावरणीयस्य ज्ञानदर्शनावरणत्वमादित्यप्रभोच्छेदकाम्भोधरवत् प्रदीपप्रभातिरोधायककुम्भवच्च सदसद्वेदनीयस्य सुखदुःखोत्पादकत्वमसिधारामधुलेहनवद्दर्शनमोहनीयस्य तत्त्वार्थाश्रद्धानकारित्वं दुर्जनसङ्गवच्चारित्रे मोहनीयस्यासंयमहेतुत्वं मद्यमदवदायुषो देहबन्धकर्तृत्वं जलवत् नाम्नो विचित्रनामकारित्वं चित्रकवद्गोत्रस्योच्चनीचकारित्व कुम्भकारवद्दानादीनां विघ्नानिदानत्वमन्तरायस्य स्वभावः कोशाध्यक्षवत् । सोऽयं प्रकृतिबन्धोऽष्टविधः, द्रव्यकर्मावान्तरभेदमूलप्रकृतिवेदनीयः । तथावोचदुमास्वातिवाचकाचार्य्यः 'आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायाः' इति । तद्भेदश्च समगृह्णात् पञ्चनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशाद्विपञ्चदशभेदा यथाक्रममिति । एतच्च सर्वं विद्यानन्दादिभिर्विवृतमिति विस्तरभयान्न प्रस्तूयते ॥ ३७ ॥

बंधके चार भेद हैं—प्रकृति स्थिति, अनुभव और प्रदेश,प्रकृतिका, अर्थ स्वभाव है जिस प्रकार निम्ब और गुडका तिक्त और मधुर स्वभाव है उसी प्रकार अर्थका तिरोधान करना ज्ञानावरणका स्वभाव है जैसे मेघ सूर्यकी प्रभाको आच्छादन करता है वैसे ही ज्ञानावरण अर्थका तिरोधान करता है जिस भाँती घटादि दीपप्रभाको तिरोधान करता है उसी भाँति दर्शनावरण वस्तुको अप्रकाशित करता है मधुलिप्त तलवारकी धार जिस प्रकार सुख और दुःख दोनोंको उत्पन्न करती है उसी प्रकार सदसत्रूपवेद्य सुख और दुःख दोनोंको उत्पन्न करता है दुर्जनोंका संघ जिस प्रकार सदाचारोंसे श्रद्धाको हटादेताहै उसी प्रकार दर्शन मोहन तत्त्वार्थमें अश्रद्धा उत्पन्न करदेते हैं । यह आठ प्रकारका बन्ध द्रव्य कर्मके अवान्तर मूल प्रकृति वेदनीय है प्रसंगवश बन्ध और उसके भेदमें प्रमाण कहते हैं (आद्यो ज्ञानदर्शनेत्यादि) मूलप्रकृतिबन्धके आठों भेदोंके अनन्तर उत्तर प्रकृतिबन्धके भेद कहते हैं—(पञ्चनवेत्यादि) पाँच प्रकार ज्ञानावरणीय, नौ प्रकार दर्शनावरणीय, दो प्रकार वेदनीय २८ प्रकार

मोहनीय ४ प्रकार आयुः, ४२ प्रकार नामबन्ध दो प्रकार गोत्रबन्ध और पांच प्रकार अन्तराय बन्ध है । यह सब सर्वार्थसिद्धिमें प्रपञ्चित हैं ॥ ३७ ॥

यथा अजागोमहिष्यादिक्षीराणामेतावन्तमनेहसं माधुर्य्यस्वभावादप्रच्युतिस्थितिः तथा ज्ञानावरणादीनां मूलप्रकृतीनामादितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटिकोट्यः परास्थितिरित्याद्युक्तं कालदुर्द्धानवत् स्वीयस्वभावादप्रच्युतिस्थितिः॥ ३८॥

एवं अष्टमाध्यायके चारसे तेरहवें सूत्रतक प्रकृति बन्धके भेदप्रभेद निरूपण करके आगे स्थितिबन्ध प्रदर्शन करते हैं–(यथा अजागोमहिष्येत्यादि) जिसका जो स्वभाव हो उससे च्युत न होना स्थिति है जिस प्रकार गौ महिषी प्रभृतिका दुग्ध अनादिकालसे आजतक माधुर्यस्वभावसे च्युति नहीं हुआ है तिसी प्रकार ज्ञानावरणादि "आदितास्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटिकोटयः परास्थितिः" इति सूत्रोक्त ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय अन्तरायरूप अनेककोटिकोटिप्रकृतिको स्वस्वभावसे च्युत न रहना स्थिति बन्ध है इसका भी अवान्तर भेद "शेषाणामन्तर्मुहूर्ता" इत्यन्त आठवे अध्यायके बीसवें सूत्रतक वर्णन किया है ॥ ३८ ॥

यथा अजागोमहिष्यादिक्षीराणां तीव्रमन्दादिभावेन स्वकार्यकारणे सामर्थ्यविशेषोऽनुभावः तथा कर्मपुद्गलानां स्वकार्य्यकारणे सामर्थ्यविशेषोऽनुभावः ॥ ३९ ॥

अनुभवबन्धनिरूपण कहते हैं–(यथेति) "तद्रसविशेषोऽनुभवः" इति वृत्तिः । जिस प्रकार गौ महिषी आदिके दूधको तीव्र मन्दादि स्वभावसे स्वकार्यकारणमें जो सामर्थ्यविशेष है अर्थात् रसविशेष प्रकटन सामर्थ्यानुभव है उसी प्रकार कर्म पुद्गलको भी स्वकार्यविशेषमें सामर्थ्यविशेष अनुभव है ॥ ३९ ॥

कर्मभावपरिणतपुद्गलस्कन्धानामनन्तान्तप्रदेशानामात्मप्रदेशानुप्रवेशः प्रदेशबन्धः, आस्रवनिरोधः संवरः, येनात्मनि प्रविशत् कर्म प्रतिषिध्यते स गुप्तिसमित्यादिः संवरः । ससारकारणाद्योगादात्मनो गोपनं गुप्तिः । सा त्रिविधा कायवाङ्मनोनिग्रहभेदात् । प्राणिपीडापरिहारेण सम्यगयनं समितिः सा ईर्ष्याभाषादिभेदात् पञ्चधा ॥ ४० ॥

प्रदेशबन्धका निरूपण कहते हैं-(एतावदेव)इस प्रकार निश्चयका नाम प्रदेश है कर्मभावसे परिणत अनन्तानन्त प्रदेशवाले पुद्गल और स्कंध हैं उनको आत्मप्रदेशमें अनुप्रवेश अर्थात् परमाणुरूपसे अवस्थानका नाम प्रदेशबन्ध है । चतुर्विधबन्धनिरूपणानन्तर उद्देशक्रमप्राप्त संवरनिरूपण करते हैं (आस्रवनिरोधः संवर इति) अभिनवकर्महेतुभूत जो आस्रव कहे हैं उनका निरोध अर्थात् जिनसे आत्मामें प्रवेश करनेवाले कर्मका प्रतिषेध हो वह संवर है । गुप्ति, समिति, धर्मानुप्रेक्षा, परिषद्जय, चारित्र संवरका भेद है । संसारके कारणोंसे आत्माका गोपन करना गुप्ति है । वह कायगुप्ति, वाक्गुप्ति और मनोनिग्रहभेदसे तीन प्रकार हैं प्राणियोंकी पीडापरिहारार्थ सम्यक् यत्नका नाम समिति है । वह ईर्ष्या, भाषा, एषणा, आदान, निक्षेपोत्सर्ग भेदसे पांच प्रकार है ॥ ४० ॥

प्रपञ्चितं च हेमचन्द्राचार्य्यैः-"लोकातिवाहिते मार्गे चुम्बिते भास्वदंशुभिः । जन्तुरक्षार्थमालोक्य गतिरीर्ष्या मता सताम् ॥ आपद्यनागतः सर्वजनीनं मितभाषणम् । प्रिया वाचंयमानां सा भाषासमितिरुच्यते ॥ द्विचत्वारिंशता भिक्षादोषैर्नित्यमदूषितम् । मुनिर्यदन्नमादत्ते सैषणासमितिर्मता ॥ आसनादीनि संवीक्ष्य प्रतिलङ्घ्य च यत्नतः । गृह्णीयान्निक्षिपेद् ध्यायेत् सादानसमितिः स्मृता ॥ कफमूत्रमलप्रायैर्निर्जन्तुजगतीतले । यत्नाद्यदुत्सृजेत् साधुः सोत्सर्गसमितिर्भवेत्॥" अत एवास्रवःस्रोतसो द्वारं संवृणोतीति संवर इति निराहुः ॥ ४१ ॥

(लोकातिवाहितेत्यादि) आकाश दो प्रकार है एक लोकाकाश दूसरा आलोकाकाश । धर्माधर्म पुद्गलादि लोक है तादृश लोक जिसमें अधिष्ठित हो वह लोकाकाश है । तथा च लोकाधारभूत भास्वत् सूर्य किरणोंसे चुम्बित युक्त आकाशमें प्राणियोंकी रक्षाके लिये जो गति है उसका नाम ईर्ष्या है । सर्वावस्थामें सर्व प्रकार सर्व जनोंके हितार्थ प्रिय और परिमित भाषणनाम समिति है । ४२ प्रकारकी भिक्षाओंके दोषोंसे अदूषित जिस अन्नको मुनिजन ग्रहण करते हैं वह एषणा है । सम्यक् प्रकार देखकर आसनादिको रखना उठाना एवं ध्यानादिक करनेका नाम आदानसमिति है । कफ मूत्र और मलादिसे उत्पन्न जीवरहित भूमिपर मलमूत्रादिके त्यागका नाम उत्सर्ग है अतएव आस्रवकर्म प्रवाहद्वारको संवरण आच्छादन करनेसे संवर कहाता है ॥ ४१ ॥

तदुक्तमभियुक्तैः-"आस्रवो भवहेतुः स्यात् संवरो मोहकारणम् । इतीयमार्हती सृष्टिरन्यदस्याः प्रपञ्चनम् ॥" अर्जितस्य कर्मण-स्तपःप्रभृतिभिर्निर्जरणं निर्जराख्यं तत्त्वं चिरकालप्रवृत्तकषा-यकलापं पुण्यं सुखदुःखे च देहेन जरयति नाशयति केशोल्लु-ञ्चनादिकं तप उच्यते ॥ सा निर्जरा द्विविधा यथा कालोपक्रमि-कभेदात् । तत्र प्रथमा यस्मिन् काले यत् कर्म फलप्रदत्वेना-भिमतं तस्मिन्नेव काले फलदानाद्भवन्ती निर्जरा कामादिपाक-जेति च जेगीयते । यत् कर्म तपोबलात् स्वकामनयोदयावलिं प्रवेश्य प्रपद्यत तत् कर्मनिर्जरा ॥ यदाह-"संसारबीजभूतानां कर्मणां जरणादिह । निर्जरा संस्मृता द्वेधा सकामाकामनिर्जरा । स्मृता सकामा यमिनामकामा त्वन्यदेहिनाम् ॥" इति ॥४२॥

सारांश कहते हैं-आस्रव संसारका कारण है संवर मोहका कारण है यही आर्हत मतमें सृष्टि, अन्य सब इसीका प्रपञ्च है । कृतकर्मको तपःसमाधिप्रभृतिसे निर्जरण अर्थात् अनन्तकालसे प्राप्त क्रोधादि कषाय, पुण्य, पाप, सुख और दुःखको देहके साथ ही नाश करदेनेका नाम निर्जराख्य तत्त्व है केशलुञ्चनादिका नाम तप है उक्त निर्जर काल और औपक्रमिक भेदसे दो प्रकार है जिस कालमें फलप्रदत्व-नियम है उसी कालमें फल उत्पन्न करनेसे कालनिर्जर कहाता है। वह कामादि और पाकज कहाताहै जो कर्म स्वकामनावश फलजनक होता है वह सकाम निर्जर है (यदाहेति) संसारकारणभूत कर्मका नाश करनेसे निर्जरा कहाता है वह सकाम अकाम भेदसे दो प्रकार है योगियोंका सकाम और अन्य संसारियोंका अकाम है ॥ ४२ ॥

मिथ्यादर्शनादीनां बन्धहेतूनां निरोधः अभिनवकर्माभावात्, निर्जराहेतुसन्निधानेनार्जितस्य कर्मणो निरसनादात्यन्तिककर्म-मोक्षणं मोक्षः, बन्धहेतुभवहेतुनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षणं मोक्ष इति तदनन्तरमूर्द्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात् यथा हस्तदण्डा-दिभ्रमिप्रेरितं कुलालचक्रमुपरतेऽपि तस्मिन् तद्बलादेवासंस्का-रक्षयं भ्रमति तथा भवस्थेनात्मना अपवर्गप्राप्तये बहुशो

यत् कृतं प्रणिधानं मुक्तस्य तदभावेऽपि पूर्वसंस्कारादालोकान्तं गमनमुपपद्यते यथा वा मृत्तिकालेपकृतमलाबुद्रव्यं जलेऽधः पतति पुनरपेतमृत्तिकाबन्धनमूर्ध्वं गच्छति तथा कर्मरहित आत्मा असङ्गत्वादूर्ध्वं गच्छति बन्धच्छेदादेरण्डबीजवच्चोर्ध्वग-तिस्वभावाच्चाग्निशिखावत् ॥ ४३ ॥

मोक्षपदार्थको निरूपण करते हैं-(मिथ्यादर्शन-विरत्यादि)जो तत्त्वार्थ श्रद्धानादिरूप बन्ध कारणका निरोध है वह अभिनव कर्मके अभावसे होता है वह भी निर्जराके हेतुसन्निधानसे अर्जित कर्मके निरास होनेसे कर्मोंके अत्यन्त उच्छेदका नाम मोक्ष है अतएव बन्धहेतु और भवहेतु निर्जरासे कृतकर्मकी अत्यन्तनिवृत्तिको मोक्ष कहा है अनन्तर आत्मा लोकाकाशसे ऊपर आलोकाकाशमें पतंगेके समान ऊपर उडता रहता है। मुक्तात्मामें क्रिया न होनेसे ऊर्ध्वगमन असम्भव है ऐसी आशंकाका परिहार करते हैं-(यथा हस्तेत्यादि) जिस प्रकार कुम्हारके चक्र घुमाकर हस्त और दण्डका व्यापार शान्त होनेपर भी पूर्वव्यापार वेगबलसे चक्र घूमता रहता है तिसी प्रकार संसारदशामें मोक्षप्राप्तिके लिये किये हुए प्रणिपतन ध्यानादि आत्माके विपुल कर्म मुक्तावस्थामें कर्म न होनेपरभी पूर्व कर्म ही स्वसंस्कारद्वारा आलोकाकाशान्त गमनके साधक होते हैं। असंग तथा बन्धाभाव एवं स्वभावरूप हेतुत्रयसे आत्माको ऊर्ध्व-गतिसमर्थन-(यथा वेत्यादि) अथवा असंगसे भी ऊर्ध्वगमन सम्भव है जैसे मृत्तिकासे लिप्त तुम्बिका जलमें नीचे डूब जाती है परन्तु मृत्तिकासंयोग छूट जानेपर स्वभा-वतः ऊपर आजाती है तिसी प्रकार कर्मसे बद्ध आत्माका ऊर्ध्वगमनस्वभाव न रह-नेपर भी कर्मबन्धसे मुक्त होनेपर निस्संग होनेके कारण स्वभावतः ऊपर उडता है इसीमें दृष्टान्तद्वय और भी देते हैं जिस प्रकार एरण्डका फल सूखके फटजानेपर बीज बन्धरहित होनेके कारण ऊपर उडजाता है तिसीप्रकार आत्मा भी बन्धरहित होनेसे ऊपर उडजाता है यथावा अग्निकी ज्वाला स्वभावसे ऊपर जाती है तथैव आत्मा भी ऊर्ध्वगति स्वभाव है ॥ ४३ ॥

अन्योन्यं प्रदेशानुप्रवेशे सत्यविभागेनावस्थानं बन्धः परस्पर-प्राप्तिमात्रं सङ्गः। तदुक्तं 'पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद् बन्धच्छेदात्तथा गतिपरिणामाच्चाविरुद्धं कुलालचक्रवद् व्यपगतलेपालाबुवदे-रण्डबीजवदग्निशिखावच्च' इति ॥ ४४ ॥

बन्ध और संगका परस्पर भेद कहते हैं । परस्पर एकके प्रदेशमें अन्यके प्रवेशका नाम बन्ध है यथा जल और मृत्तिका मिलकर जो पिण्ड होता है उसमें जल और मृत्तिका दोनों रहते परस्पर संयोगमात्रका संग है जैसे घटपटका संग है एवं स्फटिक और जपाकुसुमका संग है उक्त हेतुमें आप्तोक्ति भी प्रमाण देते हैं (पूर्वप्रयोगेत्यादि) पूर्वप्रयुक्त कुलालके व्यापारसे यथा चक्रभ्रमण होता है असंग होनेसे जिस प्रकार तुम्बिका ऊपर जाती है तिसी प्रकार असंग होनेसे आत्मा भी ऊपर जाता है बन्ध छेदसे एरण्डबीज जिस प्रकार ऊपर जाता है उसी प्रकार आत्मा भी संसारबन्धसे छूटनेपर ऊपर जाता है । गतिपरिणाम गतिस्वभावसे यथा अग्निशिखा ऊपर जाती है तद्वत् आत्मामें भी ऊपर गमन अविरुद्ध है ॥ ४४ ॥

अतएव पठन्ति--"गत्वा गत्वा निवर्त्तन्ते चन्द्रसूर्य्यादयो ग्रहाः। अद्यापि न निवर्त्तन्ते त्वालोकाकाशमागताः ॥" इति ॥४५॥

(अतएवेति) चन्द्रसूर्यादि जितने ग्रह हैं वह सब स्वस्वनियतकाल नियतदेशपर्यन्त ऊपर जा जाकर लौट आते हैं । परन्तु लोकाकाशके ऊपर आलोकाकाशमें प्राप्त परम मुक्त आजतक नहीं लौटे हैं ॥ ४५ ॥

अन्ये तु–गतसमस्तक्लेशतद्वासनस्यानावरणज्ञानस्य सुखैकतानस्यात्मन उपरिदेशावस्थानं मुक्तिरित्यास्थिषत । एवमुक्तान् सुखदुःखसाधनाभ्यां पुण्यपापाभ्यां सहितान्नवपदार्थान् केचनाङ्गीचक्रुः । तदुक्तं सिद्धान्ते–'जीवाजीवौ पुण्यपापयुतावास्रवः संवरो निर्जरणं बन्धो मोक्षश्च नव तत्त्वानि' इति । सङ्ग्रहे प्रवृत्ता वयमुपरताः स्म ॥ ४६ ॥

पूर्वोक्त निरन्तर उपरिगमनरूप मुक्तिसे भिन्न देशविशेष स्थितिरूप मुक्तिवादीका मत कहते हैं । (अन्ये तु इति) वासना संस्कारसहित समस्तदुःख नष्ट होनेपर ज्ञानावरण दर्शनावरणादि शून्य निरतिशय सुखस्वरूप आत्माको लोकाकाशसे उपरिस्थान प्राप्ति ही मुक्ति है । नौ पदार्थवादियोंके मतको कहते हैं, सुखदुःखका साधन पुण्य पाप और पूर्वोक्त जीवाजीवास्रवबन्ध, संवर निर्जरा और मोक्ष मिलाकर नौ तत्त्व कोई कोई मानते हैं ॥ ४६ ॥

अत्र सर्वत्र सप्तभङ्गिनयाख्यं न्यायमवतारयन्ति जैनाः । स्यादस्ति स्यान्नास्ति स्यादस्ति च नास्ति च स्यादवक्तव्यः स्याद-

स्ति चावक्तव्यः स्यान्नास्ति चावक्तव्यः स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्य इति ॥ तत्सर्वमनन्तवीर्य्यः प्रत्यपीपदत् । " तद्विधानविवक्षायां स्यादस्तीति गतिर्भवेत् । स्यान्नास्तीति प्रयोगः स्यात्तन्निषेधे विवक्षिते ॥ क्रमेणोभयवाञ्छायां प्रयोगः समुदायभाक् । युगपत्तद्विवक्षायां स्यादवाच्यमशक्तितः ॥ आद्यावाच्यविवक्षायां पञ्चमो भङ्ग इष्यते । अन्त्यावाच्यविवक्षायां षष्ठभङ्गसमुद्भवः ॥ समुच्चयेन युक्तश्च सप्तमो भङ्ग उच्यते ॥ "इति ॥ ४७ ॥

" स्याद्वादिनो नैकान्तिकस्येष्टत्वात् " इति बौद्धमतखण्डनप्रकरणोक्त अनैकान्तिकत्वसाधक स्याद्वादका निरूपण करते हैं–(अत्र सर्वत्र इत्यादि सप्तभंगीति) सातों भंगोंके समाहार (सम्मेलन) का नाम सप्तभंगी है सप्तभङ्गी· रूप नय (न्याय) सप्तभङ्गीनय है । स्यादस्ति १ स्यान्नास्ति २ स्यादस्ति च नास्ति च ३ स्यादवक्तव्यः ४ स्यादस्ति चावक्तव्यः ५ स्यान्नास्ति चावक्तव्यः ६ स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यः ७ यही सात भङ्ग हैं । स्यात् पद क्रियावाचक तिङन्त नहीं है किन्तु तिङन्तसमानाकृतिक अव्यय है यथा 'अस्तिक्षीरा गौः ' इत्यादिमें अस्तिशब्द है । अनन्तवीर्योक्तविवरण (तत्सर्वमित्यादि) वस्तुके सत्ताकी विवक्षामें प्रथम भंग होता है अभावकी विवक्षामें द्वितीय भंग होता है । क्रमसे जहां वस्तुकी सत्ता और प्रभाव कहना हो तो तृतीय भंग होता है । एक ही कालमें वस्तुका विधान और निषेध करना असम्भव होनेसे चतुर्थ (स्यादवक्तव्य) पक्ष होता है । प्रथम और चतुर्थ भंगकी विवक्षामें स्यादस्ति चावक्तव्यरूप पाँचवां भंग होता है । द्वितीय और चतुर्थकी विवक्षामें षष्ठभंग और तृतीय चतुर्थकी विवक्षामें सप्तम भंग होता है ॥ ४७ ॥

स्याच्छब्दः खल्वयं निपातः तिङन्तप्रतिरूपकोऽनेकान्तद्योतकः । यथोक्तम्–"वाक्येष्वनेकान्तद्योतिगम्यं प्रति विशेषणम् । स्यान्निपातोऽर्थयोगित्वात्तिङन्तप्रतिरूपकः ॥" इति । यदि पुनरेकान्तद्योतकःस्याच्छब्दोऽयं स्यात्तदा स्यादस्तीति वाक्ये स्यात्पदमनर्थकं स्यात् । अनेकान्तद्योतकत्वे तु स्यादस्ति

कथञ्चिदस्तीति स्यात्पदात् कथञ्चिदिति अयमर्थो लभ्यत इति नानर्थक्यम्। तदाह–"स्याद्वादः सर्वथैकान्तत्यागात् किंवृत चिद्विधे। सप्तभङ्गिनयापेक्षो हेयादेयविशेषकृत्॥" इति ॥ ४८ ॥

यथोक्तमिति पूर्व कहे हुए वाक्यमें जो स्यात्शब्द है वह अनिश्चयका बोधक और प्रतिपादनीय प्रधान अर्थमें विशेषण भी है यथा प्रथमवाक्य स्यादस्ति है इसमें अस्तिशब्दका अर्थ प्रधान है स्यात्पद तिङन्त क्रियाबोधकके सदृश अव्यय होनेसे उसका अर्थ कथञ्चित् है तथा च कथञ्चित् है ऐसा अर्थ हुआ यदि स्यात्पद अनिश्चयार्थक न होता तो स्यात्पद और अस्तिपद दोनों अस धातुसे निष्पन्न होनेके कारण समानार्थक होनेसे स्यात्पद व्यर्थ होजायगा, क्योंकि अस्तिपदसे वस्तुकी सत्ता और नास्तिपदसे निषेध हो जाता है। कथञ्चित अर्थ मानो तो किसी एक रूपसे है अन्य रूपसे नहीं अर्थात् एकत्व होता है इसलिये स्यात्शब्द सार्थक होता है अतएव कहा है स्यात् शब्द किम्शब्दसे निष्पन्न जो कथम् शब्द उससे चित्प्रत्यय विधान करनेसे जो पद बनता है उसके अर्थको कहनेवाला अर्थात् कथञ्चित् अर्थ कहनेके कारण अनेकान्त पक्षको छोडकर सर्वथा एकान्त पक्ष ही मानाजाय तो त्याग उपादानादि व्यवहार सब नष्ट होजायँगे ॥ ४८ ॥

यदि वस्त्वस्त्येकान्ततः सर्वथा सर्वदा सर्वत्र सर्वात्मनास्तीति न उपादित्साजिहासाभ्यां क्वचित् कदा केनचित् प्रवर्त्तेत निवर्त्तेत वा प्राप्तप्रापणीयत्वहेयज्ञानानुपपत्तेश्च। अनेकान्तपक्षे तु कथञ्चित् क्वचित् केनचित् सत्त्वेन हानोपादाने प्रेक्षावतामुपपद्येते ॥ ४९ ॥

उसीको उपपादन करते हैं–(यदीति) यदि वस्तुका एकान्त अर्थात् अस्तित्वादि निश्चित एकही स्वरूप होता तो सर्वत्र सर्वकालमें सब प्रकार हान उपादानादि समस्त रूपसे रहजायगा अतः घटादि किसी वस्तुके ग्रहण त्यागादिके लिये न कोई प्रवृत्त ही होगा न कोई कदापि कहीं भी निवृत्तही होगा. क्योंकि जो वस्तु प्राप्त हो चुकी है उसकी प्राप्तिके लिये पुनः उद्योग नहीं किया जाता है अनेकान्तपक्षमें किसीके पास किसी कालमें किसीरूप अर्थात् दर्शनीयरूपसे है जलाहरणादिरूपसे नहीं है एवं 'बाहर है घरमें नहीं पूर्व दिवस था आज नहीं' इत्यादि अनेक रूपसे सत्ता और तदभाव दोनों होनेसे प्रवृत्ति निवृत्ति दोनों उपपन्न होती है ॥ ४९ ॥

किञ्च वस्तुनः सत्त्वं स्वभावः असत्त्वं वेत्यादि प्रष्टव्यम् । न तावदस्तित्वं वस्तुनः स्वभाव इति समास्ति घटोऽस्तीत्यनयोः पर्य्यायतया युगपत् प्रयोगायोगात् नास्तीति प्रयोगविरोधाच्च । एवमन्यत्रापि योज्यम् ॥ ५० ॥

एकान्त पक्षमें दूषणान्तर भी देते हैं-(किश्चेति) वस्तुका स्वभाव सत्त्व है या असत्त्व है? सत्त्व तो कह नहीं सकते क्योंकि "घटोऽस्ति" इत्यादि स्थलमें घटशब्द भी सत्वस्वभावका बोधक है और अस्तिशब्द भी सत्वस्वभावका बोधक है अतः दोनों पर्यायशब्द होजायंगे तो पर्यायशब्दको युगपत् एकत्र प्रयोग न होनेसे उक्त वाक्य ही अप्रामाणिक होगा । और " घाटो नास्ति " ऐसे प्रयोगका भी असम्भव होगा क्यों नास्तिशब्द अभावको कहता है घटशब्द सर्वथा भाववाची होनेसे भावाभाव दोनोंको एकत्र स्थिाति बाधित है । इसी प्रकार "स्याद् एकः, स्यादनेकः,स्यादेकोऽनेकश्च, स्यादवक्तव्यः स्यादेकोवक्तव्यः, स्यादनेकोऽवक्तव्यः स्यादनेकोऽवक्तव्यः, स्यादेकोऽनेकश्चावक्तव्यः, स्यान्नित्यः, स्यादानित्यः, इत्यादि सर्वत्र जानना चाहिये ॥ ५० ॥

यथोक्तम्-"घटोऽस्तीति न वक्तव्यं सन्नेव हि यतो घटः । नास्तीत्यपि न वक्तव्यं विरोधात् सदसत्त्वयोः॥" इत्यादि ॥ ५१ ॥

(यथोक्तमिति) घट और अस्ति दोनोंका प्रयोग एक साथ नहीं कर सकते क्योंकि घटका स्वरूप ही अस्तित्व है अर्थबोधनके लिये शब्दका प्रयोग कियाजाता है जब घटशब्दसेही अस्तित्वका बोध होगया । 'उक्तार्थानामप्रयोगः' इस न्यायसे अस्तिशब्दका प्रयोग व्यर्थ और अन्याय होगा । नास्तिशब्दका भी प्रयोग नहीं हो सकेगा क्योंकि भाव और अभाव दोनों अत्यन्त विरुद्ध होनेसे एकत्र असम्भव है ॥५१॥

तस्मादित्थं वक्तव्यम्- सदसत्सदसदनिर्वचनीयवादभेदेन प्रतिवादिनश्चतुर्विधाः । पुनरप्यनिर्वचनीयमतेनामिश्रितानि सदसदादि मतानीति त्रिविधाः । तान् प्रति किं वस्त्वस्तीत्यादिपर्य्यनुयोगे कथश्चिदस्तीत्यादिप्रतिवचनसम्भवेन ते वादिनः सर्वे निर्विण्णाः सन्तः तूष्णीमासत इति सम्पूर्णार्थविनिश्चायिनः स्याद्वादमङ्गीकुर्वतस्तत्र तत्र विजय इति सर्वमुपपन्नम् ॥ ५२ ॥

उपसंहार' करते हैं-(तस्मादीति) चार प्रकारके वादी हैं एक पदार्थको सदा सत् मानते हैं, दूसरे असत्, तीसरे सत् और असत् कहते हैं, चौथे न सत् कहते न असत् कहते हैं किन्तु अनिर्वचनीय कहते हैं । उनमें अनिर्वचनयिपक्ष सिद्धान्ति सम्मत होनेसे प्रथम तीनों प्रतिवादी रहजाते हैं । उनसे घटादि वस्तु है ? ऐसे पूछनेपर कथाश्चित् है ऐसा

उत्तर देते हैं। यही स्याद्वादका मुख्य सिद्धान्त है इसको स्वीकार करनेसे वे सब विरक्त होकर निरुत्तर होजाते हैं अतः स्याद्वादियोंकी विजय सर्वत्र होजाती है ॥ ५२ ॥

यदवोचदाचार्य्यः स्याद्वादमञ्जर्य्याम्-"अनेकान्तात्मकं वस्तु गोचरः सर्वसंविदाम् । एकदेशविशिष्टोऽर्थो न यस्य विषयो मतः ॥ न्यायानामेकनिष्ठानां प्रवृत्तौ श्रुतवर्त्मनि । सम्पूर्णार्थविनिश्चायि स्याद्वस्तु श्रुतमुच्यते ॥" इति ॥ ५३ ॥

समस्तज्ञानका विषय वस्तु अनेकान्त (अनिश्चित) रूप है एकदेशविशिष्ट सत् या असत् इत्यादि एकान्त ज्ञानका विषय नहीं हो सकता । अस्ति नास्ति इत्यादि एकदेशविशिष्टार्थकशब्दको सुनकर प्रवृत्तको समस्त अर्थोंका निर्णायक स्यात्शब्द ही श्रुत है ॥ ५३ ॥

"अन्योन्यपक्षप्रतिपक्षभावाद्यथापरे मत्सरिणः प्रवादाः । नयानशेषानविशेषमिच्छन्नपक्षपाती समयस्तथार्हतः ॥" इति ॥ ५४ ॥

(अन्योन्येति) परस्पर एकका पक्ष दूसरेका प्रतिपक्ष होनेसे अन्यवादियोंका सिद्धान्त मत्सरग्रस्त है । जैसे सांख्य कहते हैं कार्य सत् है तब नैयायिक उसी कार्यको असत् कहते हैं, मीमांसक शब्दको नित्य मानते हैं परन्तु नैयायिक अनित्य मानते हैं नैयायिक आकाश कालादिको नित्य मानते हैं तो वेदान्ती उसको भी कार्य मानते हैं वेदान्ती जगत्के उपादान ब्रह्मको कहते हैं तो सांख्यवादी प्रकृतिको कहते हैं और नैयायिक परमाणुको कहते हैं वे सब पदार्थोंको स्थिर मानते हैं तो बौद्ध क्षणिक मानते हैं इसी प्रकार एकका पक्ष दूसरेका विपक्ष होजानेसे परस्पर स्वपक्षस्थापन और परपक्ष खण्डनके लिये मत्सर बढ जाता है । परन्तु सप्तभंगीन्यायसे समानरूप सत्, असत, क्षणिक, नित्यादि सब सर्वत्र समान माननेके कारण आर्हतसिद्धान्त पक्षपातशून्य है ॥ ५४ ॥

जिनदत्तसूरिणा जैनं मतमित्थमुक्तम्–"बलभोगोपभागोनामुभयोर्दानलाभयोः । अन्तरायस्तथा निद्रा भीरज्ञानं जुगुप्सितम् । हिंसा रत्यरती रागद्वेषौ रतिरतिः स्मरः ॥ शोको मिथ्यात्वमेतेऽष्टादश दोषा नयस्य च॥ जिनो देवो गुरुः सम्यक् तत्त्वज्ञानोपदेशकः । ज्ञानदर्शनचारित्राण्यपवर्गस्य वर्तिनि ॥ स्याद्वादस्य प्रमाणे द्वे प्रत्यक्षमनुमापि च । नित्यानित्यात्मकं सर्वं नव तत्त्वानि सप्त वा । जीवाजीवौ पुण्यपापे चास्रवः संवरोऽपि च ।

बन्धो निर्जरणं मुक्तिरेषां व्याख्याऽधुनोच्यते ॥ चेतनालक्षणा जीवः स्यादजीवस्तदन्यकः । सत्कर्मपुद्गलाः पुण्यं पापं तस्य विपर्य्ययः ॥ आस्रवः कर्मणां बन्धो निर्जरस्तद्वियोजनम् । अष्टकर्मक्षयान्मोक्षोऽथान्तर्भावश्च कैश्चन । पुण्यस्य संस्रवे पापस्यास्रवे क्रियते पुनः ॥ लब्धानन्तचतुष्कस्य लोकागूढस्य चात्मनः । क्षीणाष्टकर्मणो मुक्तिर्निर्व्यावृत्तिर्जिनोदिता ॥५५॥५६॥

पूर्वोक्त तत्त्वोंको संक्षेपसे जिनदत्तसूरिने इस प्रकार कहा है कि बल, भोग, उपभोग, और दान, लाभके प्रतिबन्धक निद्रादि १८ दोष जिनमें न हों एवम्भूत जो तत्त्वज्ञानका उपदेशक गुरु जिनदेव हैं । ज्ञानदर्शनादि मोक्षका मार्ग है स्याद्वादमें प्रत्यक्ष और अनुमान दो प्रमाण हैं अनेकान्तात्मैक सब तत्त्व हैं किसीके मतमें नौ तत्त्व हैं किसीके मतमें सात हैं जीवाजीवेत्यादि तत्त्व पूर्वोक्त हैं । चेतनास्वरूप जीव है इससे विपरीत अजीव है शुभ कर्मका पुद्गल पुण्य और शुभ कर्मका विपर्यय पाप है । कर्मबन्धका नाम आस्रव है कर्मनाशको नाम निर्जर है आठों कर्मोंके क्षयसे कोई २ मोक्ष मानते हैं । कोई २ पुण्यके आस्रव पापके संस्रवमें उसका अन्तर्भाव है कहते हैं आनन्दादिको प्राप्त लोक सम्बन्ध शून्य पुनरावृत्तिरूप मुक्ति आठों प्रकारके कर्मोंके नाशसे होती है ऐसा जिनदेवने कहा है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

सरजोहरणा भैक्षभुजो लुञ्चितमूर्द्धजाः । श्वेताम्बराः क्षमाशीला निःसङ्गा जैनसाधवः ॥ लुञ्चिताः पिच्छिकाहस्ताः पाणिपात्रा दिगम्बराः । ऊर्द्धाशिनो गृहे दातुर्द्वितीयाः स्युर्जिनर्षयः ॥ भुङ्क्ते न केवलं न स्त्रीं मोक्षमेति दिगम्बरः । प्राहुरेषामयं भेदो महान् श्वेताम्बरैः सह ॥" इति ॥ ५७ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहे आर्हतदर्शनम् ॥ ३ ॥

जैनसंन्यासियोंके आचरणको कहत हैं–धूलिसे लिप्त अर्थात् स्नानादि न करनेसे देहमें सदा मैल भरा रहता है भिक्षान्न भोजन केशलुञ्चन क्षमावान् और निःसङ्ग श्वेताम्बर जैनसाधुओंका आचरण होता है । केशलुञ्चन हाथमें छोटेछोटे जीवोंको उडानके लिये पिच्छिका रखना, जलपात्र रखना, खडेखडे भिक्षा देनेवालेके घरमें भोजन करना यह दिगम्बर नामक जैनसंन्यासियोंका अनुष्ठान है वे अकेले भोजन नहीं करते स्त्रीसंभोग नहीं करते मुक्त समझे जाते हैं इत्यादि श्वेताम्बरोंसे बहुत भेद है ॥ ५७ ॥

इति आर्हतमत समाप्त ।

अथ रामानुजदर्शनम् ॥ ४ ॥

तदेतदार्हतमतं प्रामाणिकगर्हणमर्हति न ह्येकस्मिन् वस्तुनि परमार्थे सति परमार्थसतां युगपत् सदसत्त्वादिधर्माणां समावेशः सम्भवति । न च सदसत्त्वयोः परस्परविरुद्धयोः समुच्चयासम्भवे विकल्पः किं न स्यादिति वदितव्यम्, क्रिया हि विकल्प्यते न वास्त्वीति न्यायात् ॥ १ ॥

श्रीभाष्यकारोविजयते ।

कपर्दिमतकर्दमं कापिलकल्पनावागुराम्
दुरत्ययमतीत्य तद्द्रुहिणतन्त्रयन्त्रोदरम् ।
कुदृष्टिकुहनामुखे निपततः परब्रह्मणः
करग्रहविचक्षणो जयति लक्ष्मणोऽयं मुनिः ॥

अनादिकालसे निरवच्छिन्न सत्संप्रदाय प्रचलित परम वैदिक विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तको प्रतिपादनके लिये पूर्व सन्दर्भके साथ संगति कहते हैं (तदेतदिति) उक्त जैन सिद्धान्त प्रमाणसराणिका अनुसरण करनेवालोंके आदरणीय नहीं॰ कारण एकही वस्तुमें पारमार्थिक सत्त्व और असत्त्व एक कालमें एकत्र नहीं होसकता । " अतिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति " नातिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति " इत्यादिमें अतिरात्रयागविशेषमें षोडशिनामक पात्रविशेषका ग्रहण और अग्रहणका समुच्चयवाधित होनेपरभी जिस प्रकार विकल्प होता है उसी प्रकार सत् और असत्का विकल्प क्यों नहीं होगा ऐसी आशंका करते हैं-(नचेति) उत्तर क्रियाका विकल्प होता है वस्तुका विकल्प नहीं हो सकता, यथा घटको देखो या मत देखो यहां दर्शनका विकल्प होता है घटका विकल्प नहीं होता है + ॥ १ ॥

न चानेकान्तं जगत् सर्वं हेरम्बनरसिंहवादिति दृष्टान्तावष्टम्भवशादेष्टव्यम् । एकस्मिन् देशे गजत्वं सिंहत्वं वा अपरस्मिन् नरत्वमिति देशभेदेन विरोधाभावेन तस्यैकस्मिन् देश एव सत्त्वासत्त्वादिना अनेकान्तत्वाभिधाने दृष्टान्तानुपपत्तेः । ननु द्रव्यात्मना सत्त्वं पर्य्यायात्मना तदभाव इत्युभयमप्युपपन्नमिति चेन्मैवं कालभेदेन हि कस्यचित् सत्त्वमसत्त्वञ्च स्वभाव इति न कश्चिद्दोषः ॥ २ ॥

× अत एव महाभाष्यकारनेभी कहा है "मेध्यः पशुर्विभाषितो भवति मेध्योऽनड्वान् आलब्धव्योनालब्धव्य इति, नतु अनड्वान् अननड्वान् वेति " ॥

प्रमाणसिद्धका अपलाप नहीं होता इस न्यायसे यथा मनुष्यत्व गजत्व परस्पर विरुद्ध होनेपर भी गजाननमें दोनों रहते हैं । यथावा सिंहत्व मनुष्यत्व परस्पर विरुद्ध होनेपरभी नरसिंहशरीरमें दोनों रहते हैं तिसी प्रकार संसारका सद् और सदात्मक अनेकान्त होनेमें क्या बाधक है ? यह भी नहीं कहसकते क्योंकि दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिक समान नहीं है दृष्टान्तमें सिंहत्व या गजत्व और मनुष्यत्व दोनों एकही स्थानपर होते तो विरोध कहते सो नहीं है सिंहत्व या गजत्व कण्ठके ऊपरी भागमें है मनुष्यत्व उससे अधोभागमें है अतः विरोध नहीं दार्ष्टान्तिकमें एकहीमें सत्त्व और असत्त्व होनेसे विरोध स्पष्ट है (ननु इति) जिस प्रकार मृत्पिण्डमें द्रव्यत्वरूपसे सत्त्व और घटत्वादिरूपसे असत्त्व दोनों रहते हैं तिसी प्रकार प्रत्येकमें द्रव्यत्वरूपसे सत्त्व और कार्यत्वादिरूपसे असत्त्व दोनों रहसकते हैं सो भी नहीं एकही कालमें एकत्र सत्त्वासत्त्वमें ही विरोध है कालभेद और आकारभेदसे सत्त्वासत्त्व स्वभाव होसकता है इसमें कोई विरोध नहीं परन्तु आपके मतमें एकत्र एकही वस्तुको एक कालमें सत्त्व और असत्त्व दोनों हैं यह अत्यन्त विरुद्ध होनेसे सर्वथा असम्भव है ॥ २ ॥

न चैकस्य ह्रस्वत्वदीर्घत्ववदनेकान्तत्वं जगतः स्यादिति वाच्यम्, प्रतियोगिभेदेन विरोधाभावात् । तस्मात् प्रमाणाभावात् युगपत् सत्त्वासत्त्वे परस्परविरुद्धे नैकस्मिन् वस्तुनि वस्तुयुक्ते । एवमन्यासामपि भङ्गीनां भङ्गोऽवगन्तव्यः ॥ ३ ॥

यदि कहो एकही यष्टिकामें ह्रस्वत्व दीर्घत्व जिस प्रकार होते हैं तिसी प्रकार जगत्का अनैकांत्य होसकता है यह भी ठीक नहीं ह्रस्वत्व दीर्घत्वादिक प्रातियोगि सापेक्ष होता है यथा चार हाथ लम्बी एक यष्टिका हो वह पाँच हाथ लम्बी यष्टिकाकी अपेक्षा ह्रस्व और तीन हाथवालेकी अपेक्षा दीर्घ कहा सकती है एकहीकी अपेक्षा उसको ह्रस्व दीर्घ नहीं कहसकते हैं । अतः प्रतियोगिभेदसे उसमें विरोध नहीं । जगत्में ऐसा कोई प्रतियोगिभेद न होनेसे विरोध दुष्परिहरणीय है । अतः एकवस्तुमें एककालमें परस्पर विरुद्ध सत्त्वासत्त्व मानना सर्वथा प्रमाण और युक्तिसे विरुद्ध है इसी प्रकार एकत्व, अनेकत्व, नित्यत्व, अनित्यत्वादिकाभी असम्भव जानना ॥ ३ ॥

किञ्च सर्वस्यास्य मूलभूतः सप्तभङ्गिनयः स्वयमेकान्तः अनेकान्तो वा । आद्ये सर्वमनेकान्तमिति प्रातिज्ञाव्याघातः ।

द्वितीये विवक्षितार्थासिद्धिः । अनेकान्तत्वेनासाधकत्वात् । तथा चेयमुभयतः पाशरज्जुः स्याद्वादिनः स्यात् ॥ अपि च नवत्वसप्तत्वादिनिर्द्धारणस्य फलस्य तन्निर्द्धारयितुः प्रमातुश्च तत्करणस्य प्रमाणस्य प्रमेयस्य नवत्वादेरनियमे साधु. समर्थितमात्मनस्तीर्थकरत्वं देवानां प्रियेणार्हतमतप्रवर्त्तकेन ॥ ४ ॥

दूषणान्तर कहते हैं–(किञ्चेति) सत्त्वासत्त्वादि विरुद्धधर्माध्यासरूप अनेकान्तका मूलभूत सप्तभंगीन्याय क्या एकान्त है या अनेकान्त ? यदि एकान्त मानो तो समस्त वस्तुएं अनेकान्त हैं यह तुम्हारी प्रतिज्ञा भंग होगी । अनेकान्त मानो तो मूलमें कुठाराघात होगा अर्थात् जिस सप्तभंगी नयके बलसे अनेकान्तत्व साधना था वह स्वयं अनेकान्त होनेसे उसकी सत्ताभी अनिश्चित हुई अतः साधन असिद्ध होनेसे साध्यभी असिद्ध होगा। औरभी दोष देते हैं–(अपिचेत्यादि) जीवाजीवरूप दो पदार्थ आस्रवादि सात अथवा पुण्यपापादि सहित नौ पदार्थ वादियोंके मतमें न्यूनाधिक पदार्थका निषेधरूप सप्तत्व नवत्वादिका निर्णय और उससे होनेवाला सम्यक्ज्ञान मोक्षादि तथा निर्णय करनेवाला पुरुष आलोकाकाशादि और मुक्तात्मसञ्चरण स्थान प्रमाण प्रमेयादि सबको अनिश्चित माने तो जैनमतप्रवर्तक तीर्थकरकी बुद्धिमत्ता भी प्रशंसनीय है ॥ ४ ॥

तथा जीवस्य देहानुरूपपरिमाणत्वाङ्गीकारे योगबलादनेकशरीरपरिग्राहकयोगिजीवेषु प्रतिशरीरं जीवविच्छेदः प्रसज्येत, मनुजशरीरपरिमाणो जीवो मतङ्गजदेहं कृत्स्नं प्रवेष्टुं न प्रभवेत् ॥ किञ्च गजादिशरीरं परित्यज्य पिपीलिकाशरीरं विशतः प्राचीनशरीरसन्निवेशाविनाशोऽपि प्राप्नुयात् ॥ ५ ॥

जीवको देह परिमाणत्वका खंडन–(तथा जीवस्येति) सौभरिनामक ऋषिने एक समय १०० राजकन्याओंको परिणय करके प्रत्येकके साथ विहार करनेके लिये १०० शरीर धारण किये, ऐसी कथा इतिहासमें प्रसिद्ध है इस प्रकार योगबलसे युगपत् अनेकशरीर धारण करनेवाले योगियोंका जीव टुकडे टुकडे होजायगा एवं टुकडे होनेपर भी तत्तत् शरीर पारीमित नहीं हो सकेगा जैसे एक पात्रमें भरे हुए जलको उतनेही बडे सौ पात्रोंमें थोडा थोडा छोडनेसे सब पात्र नहीं भर सकते । योगियोंने पूर्व देहकी अपेक्षा छोटे २ शरीर धारण किये हों जिससे आत्मा समस्त

शरीरोंमें व्याप्त होजाती है ऐसी आशंकासे कहते हैं-(मनुजशरीरेति) किसीको अपना कर्मवश मनुष्यशरीर छोड गजशरीरमें प्रवेश करनापडे तो मनुष्यशरीर छोटा होनेके कारण उसमें रहनेवाला आत्मा गजशरीरमें सर्वत्र व्याप्त नहीं होसकेगा और भी हाथीका शरीर छोडकर चेंटाके शरीरमें प्रवेश करते समय आत्मा छिन्नभिन्न होजायगा एवं अवयव विनाश होनेसे आत्माकाभी नाश होजायगा परन्तु आत्माका अनित्यत्व जैनको अभिमत नहीं है ॥ ५ ॥

न च यथा प्रदीपप्रभाविशेषः प्रपाप्रासादाद्युदरवर्त्तिसङ्कोच विकासवान् तथा जीवोऽपि मनुजमतङ्गजादिशरीरेषु स्यादित्योषितव्यम्, प्रदीपवदेव सविकारत्वेनानित्यत्वप्राप्तौ कृतप्रणाशाकृताभ्यागमप्रसङ्गात् ॥ एवं प्रधानमल्लनिबर्हणन्यायेन जीवपदार्थदूषणाभिधानदिशाऽन्यत्रापि दूषणमुत्प्रेक्षणीयम् । तस्मान्नित्यनिर्दोषश्रुतिविरुद्धत्वादिदमुपादेयं न भवति । तदुक्तं भगवता व्यासेन-" नैकस्मिन्नसम्भवात् " इति । रामानुजेन च जैनमतनिराकरणपरत्वेन तदिदं सूत्रं व्याकारि । एष हि तस्य सिद्धान्तः-चिदचिदीश्वरभेदेन भोक्तृभोग्यनियामकभेदेन व्यवस्थितास्त्रयः पदार्था इति । तदुक्तम्-"ईश्वरश्चिदचिच्चेति पदार्थत्रितयं हरिः । ईश्वरश्चित इत्युक्तो जीवो दृश्यमचित् पुनः ॥" इति ॥ ६ ॥

यदि कहो जिस प्रकार विशालस्थानमें रखेहुए दीपककी प्रभा उस स्थानभर व्याप्त रहती है उसी दीपको किसी संकुचितस्थानमें रखनेसे वही प्रभा उतने देशमें व्याप्त रहती है तिसी प्रकार जीव भी संकोचविकासरूपसे गज मनुष्य पिपीलिकादि शरीरमें छिन्नभिन्न न होनेपर भी व्याप्त रहसकता है यह भी नहीं कहसकते क्योंकि जो संकोचविकासवान् होता है वह अनित्य होता है दृष्टान्तके लिये दीपप्रभा ही लीजिये एवं संकोचविकासी होनेसे जीव अनित्य होजायगा तो कृतकर्मका नाश और अकृतकर्म फलकी प्राप्ति अर्थात् दूसरेके किये कर्मका फल दूसरेको प्राप्त होने लगेगा । अतः जिस प्रकार प्रधान मल्लको जीतनेसे सभीको जीतना कहाजाता है उसी प्रकार प्रधान जीवके स्वरूपका निराकरण करनेसे अन्यका भी खण्डन होजाता है । उपसंहार करते हैं-(तस्मादिति) अपौरुषेय एवं वक्तृप्रमादादिदोषशून्य वेद-

विरुद्ध होनेसे जैनमत अत्यन्त अग्राह्य है । इसमें सूत्रकारकी सम्मति भी कहते हैं (तदुक्तमिति) संक्षेपसे विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तमें चित्, अचित् और ईश्वर तीन तत्त्व हैं वह क्रमसे भोक्ता, भोग्य और नियामक हैं चित्पद चेतन अर्थात् जीवको कहते हैं जीवका लक्षण " अणुत्वे सति चेतनत्वम् " अत्यन्तसूक्ष्म हो और चेतन हो वही जीवका लक्षण है । परमाणुसे व्यावृत्तिके लिये चेतनपद है, ईश्वरव्यावृत्तिके लिये अणुपद है, कर्तृत्व भोक्तृत्व ज्ञातृत्वादि जीवका स्वाभाविक धर्म है, अचित्पदवाच्य प्रकृति है इसका लक्षण अवस्थाश्रयत्व है । ईश्वर सर्वनियन्ता श्रीमन्नारायण हैं ईश्वरका लक्षण 'महत्त्वे सति चेतनत्वम्' महान् होकर जो चेतन हो वही ईश्वर है जीवकी व्यावृत्तिके लिये महत्पद है आकाशादिकी व्यावृत्तिके लिये चेतनपद है ॥ ६ ॥

अपरे पुनः—अशेषविशेषप्रत्यनीकं चिन्मात्रं ब्रह्मैव परमार्थः । तच्च नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावमपि तत्त्वमस्यादिसामानाधिकरण्याधिगतजीवैक्यं बध्यते मुच्यते च । तदतिरिक्तनानाविधभोक्तृभोक्तव्यादिभेदप्रपञ्चः सर्वोऽपि तस्मिन्नविद्यया परिकल्पितः ॥ ७ ॥

अद्वैतमताभिप्रायसे पूर्वपक्ष कहते हैं—(अपरे पुनः इति) (निर्विशेषाद्वैतवादी) अशेष ज्ञातृत्व कर्तृत्वादि सजातीय विजातीय स्वगत समस्त विशेष गुणसे रहित चिन्मात्र-स्वयंप्रकाश ज्ञेयत्वादि रहित ब्रह्मैव (निर्गुणब्रह्महीं) परमार्थ है अर्थात् तत्त्वनिर्णायक प्रमाणका विषय है सगुणवाक्य उपासनारूप फलविशेषके लिये उपयुक्त होनेसे तत्त्वावेदक प्रमाणका विषय नहीं है वह ब्रह्म नित्य कालत्रयामें भी अबाध्य शुद्ध 'अपहतपात्माविजरोविमृत्युः' इत्यादि श्रुति प्रतिपादितापहतपाप्मत्वादि तथा " निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यमित्यादि " वचन बोधित कर्मबन्धादिरहित बुद्ध ज्ञानानन्द स्वरूप है तथापि अनादिकालकी जो अनिर्वचनीय अविद्या है उससे तिरोहित स्वरूप होनेसे बन्धमोक्षको प्राप्त होते हैं । इसमें (तत्त्वमसि) हे श्वेतकेतु तुम वही ब्रह्म हो जो उपक्रममें (सदेवेत्यादि) वाक्योंसे सत्यज्ञानानन्दस्वरूप प्रतिपादित है इत्यादि वाक्यमें तत् पद और त्वंपदका जो सामानाधिकरण्य है वह जीव ब्रह्मके भेदपक्षमें नहीं होसकता अतः उक्त सामानाधिकरण्यबोधक वाक्य ही अविद्याकल्पित जीवभावमें प्रमाण है । अद्वैतमतमें सामानाधिकारण्य अखण्डार्थकत्व अर्थात् स्वरूपका ऐक्य है। रज्जुज्ञानसे सर्पनिवृत्तिवत् ब्रह्मज्ञानसे प्रपञ्चनिवृत्तिके लिये कहते हैं (कल्पित इति) (नेहनानास्ति इत्यादि) वाक्यसे ब्रह्मव्यतिरिक्त अनेकविधि ज्ञातृज्ञेयादि सब भेद उस ब्रह्ममें अविद्यासे कल्पित है ॥ ७ ॥

"सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्" इत्यादिवचननिचयप्रामाण्यादिति ब्रुवाणाः 'तरति शोकमात्मवित्' इत्यादिश्रुतिशिरःशत वशेत निर्विशेषब्रह्मात्मैकत्वविद्यया अनाद्यविद्यानिवृत्तिमङ्गीकुर्वाणाः 'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति' इति भेदनिन्दाश्रवणेन पारमार्थिकं भेदं निराचक्षाणाः विचक्षणंमन्यास्तमिमं विभागं न सहन्ते ॥ ८ ॥

ब्रह्मसे अतिरिक्त वस्तुका काल्पितत्वमें प्रमाण-(सदेवेति) सदेव यहाँ एवशब्दसे विजातीय अचेतनकी सत्ताका निषेध होता है 'एकमेव' इस पदसे सजातीय चेतनका निषेध होता है। अद्वितीयपदसे स्वगत कर्तृत्वादिका निषेध होता है इस प्रकार "एकमेवाद्वितीयम्" "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" इत्यादि अनेक श्रुतिबलसे परमार्थ भेदका निषेधकर निर्विशेष आत्मैकत्वविज्ञानसे अनादिकालकी अविद्याकी निवृत्ति मानते हुए "मृत्योस्स" इत्यादि भेदज्ञानसे घोरसंसारप्राप्ति प्रतिपादक श्रुतियों द्वारा पारमार्थिक भेदका तिरस्कार करनेवाले पण्डितमानी पूर्वोक्त चिदाचित् ईश्वरादि विभागसे भयभीत होते हैं ॥ ८ ॥

तत्रायं समाधिरभिधीयते-भवेदेतदेवं यद्यविद्यायां प्रमाणं विद्येत न चैवमानादिभावरूपं ज्ञाननिवर्त्यमज्ञानमहमज्ञो गामन्यं च न जानामीति प्रत्यक्षप्रमाणसिद्धम् ॥ ९ ॥

अविद्यामें प्रमाणाभावकथन- यह अविद्यापरिकल्पितत्व कथन तब होसकता है जब अविद्यामें कोई प्रमाण हो, सो नहीं है। यदि कहो वस्तु स्वरूपको तिरोधान करनेवाली यथार्थज्ञानसे नष्ट होनेवाली प्रागभावसे भिन्न अनादि भावरूप जो अविद्या है उसमें प्रत्यक्षही प्रमाण है क्योंकि मैं अज्ञ हूं अपनेको और परको भी नहीं जानता हूं ऐसी प्रतीति होती है अतः अज्ञानरूप अविद्याकाभी प्रत्यक्ष सार्वजनिक है। यहां अज्ञपदसे अज्ञान और न जानामिपदसे स्वरूपाच्छादन कार्य कहा है ॥ ९ ॥

तदुक्तम्-"अनादिभावरूपं यद्विज्ञानेन विलीयते। तदज्ञानमिति प्राज्ञालक्षणं संप्रचक्षते ॥" इति। न चैतत् ज्ञानाभावविषयमित्याशङ्कनीयम्, को हि कं ब्रूयात् प्रभाकरकरावलम्बी; भट्टदत्तहस्तो वा ? नाद्यः-"स्वरूपपररूपाभ्यां नित्यं सदसदात्मके। वस्तुनि ज्ञायते किञ्चित् कैश्चिद्रूपं कदाचन ॥" इति। "भावान्तर-

मभावो हि कयाचित्तु व्यपेक्षया । भावान्तरमभावोऽन्यो न कश्चिदनिरूपणात् ॥ " इति वदता भावव्यतिरिक्तस्याभावस्यानभ्युपगमात् । अभावस्य षष्ठप्रमाणगोचरत्वेन ज्ञानस्य नित्यानुमेयत्वेन च तदभावस्य प्रत्यक्षविषयत्वानुपपत्तेः ॥ १० ॥

एतादृश अविद्यारूपमें अभियुक्तोंकी सम्मति कहते हैं-(तदुक्तमिति) अन्योन्याश्रय अनवस्था आदि परिहारके लिये अनादिपद, प्रागभाव व्यावृत्तिके लिये भावरूप, ब्रह्मस्वरूपसाक्षात्कारसे निवृत्तिबोधनके लिये विज्ञानेनेत्यादि । तथाच अनादि और भावरूप हो ज्ञानसे जिसकी निवृत्ति हो उसको विद्वान् लोग अज्ञान कहते हैं यह अज्ञान ज्ञानका प्रागभावरूप नहीं होसकता क्योंकि प्रागभाव परोक्षज्ञानका विषय है और अज्ञान प्रत्यक्ष विषय है । इसी बातको विशदरूपसे कहते हैं (कोहि कं ब्रूयादित्यादि) मीमांसकोंमें दो विभाग हैं, एक प्रभाकरमतावलम्बी और दूसरा कुमारिलभट्टमतावलम्बी. प्रभाकरके मतमें अभाव अतिरिक्तपदार्थ नहीं है । तथाहि (स्वरूपेति) घटादिवस्तुके दो स्वरूप हैं एक स्वकीय (घटादि) दूसरा परकीय (पटादि) स्वकीयरूपसे सत् और परकीय रूपसे असदात्मक है तथाच कदाचित् किसी एक रूपका ग्रहण होता है जिस प्रकार आम्रादि फलमें रूप और रस दोनों होनेपरभी किसी समय केवल रूपका ग्रहण होता है और किसी समय केवल रसकाही ग्रहण होता है । तिसी प्रकार जिस समय स्वकीयरूपका ग्रहण हो तब सत् कहा जाता है और जिस समयपर रूपका ग्रहण हो तव असत् कहाता है (भावान्तरेति) भाव घटादिपदार्थ है उससे अन्यभाव भावान्तर है अर्थात् घटादिका अभाव पटभूतलादि है । इससे अन्य निरुपाख्य अभावपदार्थका निरूपण नहीं करसकते हैं अतः प्रभाकरके मतको ज्ञानका अभावरूप नहीं कहसकते हैं । कुमारिलभट्टके मतसे कहते हैं-(अभावस्य षष्ठेति) इस मतमें अभाव अतिरिक्त पदार्थ होनेपर भी अनुपलब्धिरूप षष्ठप्रमाण गम्य और ज्ञान अनुमेय है अतः ज्ञानाभाव प्रत्यक्षका विषय नहीं होसकता है ज्ञानका अग्रभावरूप अज्ञान किसी मतसे भी उत्पन्न नहीं होसकता है ॥ १० ॥

यदि पुनः प्रत्यक्षाभाववादी कश्चिदेवमाचक्षीत तं प्रत्याचक्षीत अहमज्ञ इत्यस्मिन्ननुभवे अहमित्यात्मनोऽभावधर्मितया ज्ञानस्य प्रतियोगितया चावगतिरस्ति न वा ? अस्ति चेद्विरोधादेव न ज्ञानाभावानुभवसम्भवः । नचेद्धर्मिप्रतियोगिज्ञानसापेक्षो ज्ञानाभावानुभवः सुतरां न सम्भवति । अस्य चाज्ञानस्य भावरूपत्वे

प्रागुक्तदूषणाभावादयमभावो भावरूपाज्ञानगोचर एवाभ्युपगन्तव्य इति ॥ ११ ॥

(यदि इति) कोई अज्ञानको ज्ञानाभाव मानकर अभावको भी प्रत्यक्ष माने तो क्या अज्ञानके अनुभव समय आत्मामें ज्ञान रहता है या नहीं ? यदि रहता हो तो ज्ञान और अज्ञानके परस्पर विरोध होनेके कारण ग्राह्य (अज्ञान) के न होनेसे प्रत्यक्ष न होगा । यदि नहीं रहता हो तो अज्ञानका ग्राहक (ज्ञान) न होनेसे ही प्रत्यक्ष नहीं होगा इसी आशयसे कहते हैं-(तं प्रत्याचक्षीत इत्यादि) मैं अज्ञ हूँ इस अनुभवमें अहं, ज्ञान और अभाव तीन पदार्थ हैं । अभावका प्रतियोगी ज्ञान है अहंपदार्थ जो आत्मा वह अभावका धर्मी है मैं ज्ञानाभाववान् हूं यह वाक्यार्थ होता है यही सिद्धान्तकी बात है । अब प्रश्न यह है कि, उक्त अनुभवमें धर्मीरूपसे आत्माका और प्रतियोगिरूपसे ज्ञानका अवगाहन है या नहीं ? यदि है तो पूर्वोक्त प्रकारसे अभावका प्रत्यक्ष नहीं होगा । यदि नहीं हैं तो धर्मी और प्रतियोगीके विना अभावका ग्रहण नहीं होगा इस प्रकार दोनों ओरसे फँस जाते हैं । (अस्य चाज्ञानस्येति) भावरूप अज्ञानपक्षमें धर्मी प्रतियोगीसापेक्ष होनेपरभी विरोधन होनेसे प्रत्यक्ष होजाता है. क्योंकि भाव और अभावका परस्पर विरोध है अतः यह अज्ञान भावरूप है यह सिद्ध हुआ ॥ ११ ॥

तदेतत् गगनरोमन्थन्यायितं भावरूपस्याज्ञानस्य ज्ञानाभावसमानयोगक्षेमत्वात् । तथाहि विषयत्वेनाश्रयत्वेन च ज्ञानस्य व्यावर्त्तकतया प्रत्यगर्थः प्रतिपन्नो न वा ? प्रतिपन्नश्चेत् स्वरूपज्ञाननिवर्त्यं तदज्ञानमिति तस्मिन् प्रतिपन्ने कथङ्कारमवतिष्ठेत। अप्रतिपन्नश्चेद्व्यावर्त्तकाश्रयविषयशून्यमज्ञानं कथमनुभूयेत । अथ विशदः स्वरूपावभास एवाज्ञानविरोधिना ज्ञानेनाभासित इति आश्रयविषयज्ञाने सत्यपि नाज्ञानानुभवविरोध इति । हन्त तर्हिज्ञानाभावे ऽपि समानमेतत् अन्यत्राभिनिवेशात्। तस्मादुभयाभ्युपगतज्ञानाभाव एवाहमज्ञो मामन्यं च न जानामीत्यनुभवगोचर इत्यभ्युपगन्तव्यम् ॥ १२ ॥

अविद्याप्रत्यक्षका खण्डन-(तदेतदिति) चर्वित वस्तुका चर्वण रोमन्थ है वह चर्वण तृणादिका होसकता है आकाशका चर्वण नहीं होसकता । जिस प्रकार आका-

शका चर्वण असम्भव है तिसी प्रकार भावरूप अविद्याका प्रत्यक्षभी असम्भव है। अज्ञानका भावरूप और ज्ञानप्रागभावरूप दोनों पक्षमें दूषण भूषण समान है। (तथा हीति) अज्ञानके आश्रयरूपसे और विषयतारूपसे व्यावर्तक प्रत्यगात्मा भासमान है या नहीं ? यदि प्रत्यगात्मा भासमान है तो स्वरूपज्ञानसे निवर्तनीय अज्ञान स्वरूप ज्ञानभासित होनेपर कैसे रहसकता है ? यदि नहीं प्रतिपन्न हो तो व्यावर्तकके आश्रय और विषय शून्य अज्ञानका अनुभवही कैसी होगा ? यदि कहो स्वरूपका विशद रूपसे अवभास (ज्ञान) अज्ञानका विरोधी है। अविशदरूपज्ञान अज्ञानका विरोधी नहीं है यहाँपर अविशदरूप प्रतीत होता है अतः आश्रय और विषय-ज्ञान होनेपरभी अज्ञानानुभवमें कोई विरोध नहीं प्रत्यगात्माके प्रमाणज्ञानसे जो अवभास है उसको विशदावभास कहते हैं। यह समाधान ज्ञानप्रागभाव पक्षमें भी समान है केवलभावपक्षमें हठके सिवाय कुछ विशेष नहीं है अतः उभयपक्षसिद्ध अज्ञानज्ञानका अभावरूपही है भावरूप नहीं है ॥ इत्यविद्याप्रत्यक्षखण्डनम् ॥ १२ ॥

अस्तु तर्ह्यनुमानं विवादास्पदं प्रमाणज्ञानं स्वप्रागभावव्यतिरिक्तस्वविषयावरणस्वनिवर्त्यस्वदेशगतवस्त्वन्तरपूर्वकम् अप्रकाशितार्थप्रकाशकत्वात् अन्धकारे प्रथमोत्पन्नप्रदीपप्र भावादिति ॥ १३ ॥

अथ अविद्यानुमान और उसका खण्डन-(अस्तु तर्हि अनुमानमित्यादि) विवादास्पदम् (विवादग्रस्त) प्रमाण ज्ञान। यहाँतक पक्ष है (स्वप्रागभावेत्यादि) साध्य है (अप्रकाशितार्थ प्रकाशकत्व) हेतु है (अन्धकारेति) दृष्टान्त है पक्षमें यदि प्रमाणपद न देते तो ब्रह्मस्वरूपभूतज्ञान भी पक्षकोटीमें आजायगा परन्तु उसमें वस्त्वन्तरपूर्वकत्वरूप साध्य नहीं रहेगा अतः स्वरूपज्ञानकी व्यावृत्तिके लिये प्रमाणपद है। घटोऽयं घटोयम् इत्यादि धारावाहिक बुद्धिस्थलमें उत्तरोत्तरज्ञानमें अभिमत वस्त्वन्तरपूर्वक न होनेसे उसकी व्यावृत्तिके लिये विवादाध्यासित पद है। साध्यस्वरूपमें केवल वस्त्वन्तरपूर्वकत्वमात्र कहते तो घटपटादिरूप स्वविषयपूर्वकत्व होनेसे सिद्धसाधन होजायगा अतः उसकी व्यावृत्तिके लिये स्वदेशपद है स्वाश्रयगत ऐसे कहते तो दृष्टान्त (प्रदीपप्रभा) में साध्य शून्यता होगी क्योंकि अन्धकार प्रदीपप्रभामें नहीं रहता है धर्माधर्म अथवा संस्कारव्यावृत्तिके लिये स्वनिवर्त्यपद है भयादिव्यावृत्तिके लिये स्वविषयावरण पद है। प्रागभाव उक्तलक्षण विशिष्ट होनेसे उसमें अतिप्रसक्तिवारणके लिये स्वप्रागभावव्यत्तिरिक्त पद है। हेतुदलका कृत्य कहते हैं, प्रकाशकमात्र कहते तो धारावाहिकबुद्धिमें व्यभिचार होगा अतः अप्रकाशितार्थ पद है। इन्द्रियमें अनैकान्तिकत्ववारणके लिये भासमानत्व भी हेतुमें विशेषण देना

चाहिये । दृष्टान्त—केवल प्रदीपप्रभा कहते तो उत्तरोत्तरप्रभामें अप्रकाशित अर्थ प्रकाशक न होनेसे दृष्टान्तसाधन विकल होगा और स्वनिवर्त्यवस्त्वन्तरपूर्वकत्व न होनेसे साध्य विकल भी होगा अतः तद्व्यावृत्तिके लिये प्रथमोत्पन्नत्वविशेषण दिया। दिनमें प्रथमोत्पन्न दीपप्रभामें भी अप्रकाशित वस्तु प्रकाशकत्व न होनेसे साधन वैकल्य होगा अतः तद्व्यावृत्तिके लिये अन्धकार पद है । यदि कहो आलोकाभाव या रूपदर्शनाभाव तम (अन्धकार) है तथा च भावरूप अज्ञानमें दृष्टान्त कैसा होगा सो ठीक नहीं चलनादि क्रिया और नीलादि रूपवान् होनेसे अन्धकार भी द्रव्यही है अतएव कहा है " तमोनाम द्रव्यं बहुलविरलं मेचकचलं प्रतीतं केनापि क्वचिदपि न बाधश्च ददृशे । अतः कल्प्यो हेतुः प्रमितिरपि शाब्दी विजयते निरालोक चक्षुः प्रथयति हि तद्दर्शनवशात् ॥" इति ॥ इति अविद्यानुमानपूर्वपक्ष ॥ १३ ॥

तदपि न क्षोदक्षमम् अज्ञानेऽप्यनभिमताज्ञानान्तरसाधने अपसिद्धान्तापातात् । तदसाधने अनैकान्तिकत्वात् ॥ १४ ॥

उक्त अविद्यानुमानका खण्डन—(तदपि न क्षोदक्षममित्यादि) तात्पर्य—अद्वैतवादी प्रमाणज्ञानको अज्ञान (अविद्या) मूलकत्व मान लेते हैं. उस अज्ञानके मूलभूत अज्ञानान्तर नहीं मानते हैं अब उक्त अनुमानसे अज्ञानको भी अज्ञानान्तरमूलक मानोगे तो सिद्धान्त विरुद्ध होगा अतः स्वसिद्धान्त रक्षाके लिये अज्ञानमें अज्ञानान्तरमूलकत्व नहीं साधन करोगे तो अप्रकाशितार्थ प्रकाशकत्वरूप हेतु साध्याभाववान्में रहनेवाला होनेसे अनेकान्तरूप हेत्वाभास दूषित होगा । तात्पर्य यह है कि अप्रकाशितार्थ प्रकाशकत्वरूप हेतुसे ज्ञायमान (स्वप्रागभावेत्यादि) साध्यविषयक अनुमितिको भी अप्रकाशितार्थप्रकाशकत्वस्वीकार करना होगा अन्यथा प्रकाशितार्थ प्रकाशकत्व अथवा अप्रकाशकत्व होगा । एवञ्च तादृश अनुमितिमें हेतु तो रह गया. परन्तु अनुमितिक विषयीभूत अज्ञानका आवरक अज्ञानान्तर न माननेसे स्वविषय आवरण पूर्वकत्वरूप साध्य न होनेसे हेतुका अनैकान्त्य होगा ॥ १४ ॥

दृष्टान्तस्य साधनविकलत्वाच्च न हि प्रदीपप्रभाया अप्रकाशितार्थप्रकाशकत्वं सम्भवति ज्ञानस्यैव प्रकाशकत्वात् सत्यापि प्रदीपे ज्ञानेन विना विषयप्रकाशासम्भवात् प्रदीपप्रभायास्तु चक्षुरिन्द्रियस्य ज्ञानं समुत्पादयतो विरोधिसन्तमसनिरसनद्वारेणोपकारकत्वमात्रमेवेत्यलमतिविस्तरेण ॥ प्रतिप्रयोगश्च विवादाध्यासितमज्ञानं न ज्ञानमात्रब्रह्माश्रितम् ।

अज्ञानत्वाच्छुक्तिकाद्यज्ञानवदिति। ननु शुक्तिकाद्यज्ञानस्याश्रयस्य प्रत्यगर्थस्य ज्ञानमात्रस्वभावत्वमेवेति चेन्मैवं शङ्किष्ठाः। अनुभूतिर्हि स्वसद्भावेनैव कस्यचिद्वस्तुनो व्यवहारानुगुणत्वापादकस्वभावाज्ञानावगतिसङ्गतिविदाद्यपरनामा सकर्मकानुभवितुरात्मत्वं ज्ञानत्वमित्याश्रयणात् ॥ १९

दोषान्तरभी कहते हैं (दृष्टान्तस्येति) प्रदीपप्रभा अप्रकाशित अर्थ प्रकाशक नहीं किन्तु ज्ञानही सर्वत्र अर्थ प्रकाशक है इसमें युक्तिभी कहते हैं (सत्यपीति) दीपके रहते हुएभी ज्ञानके विना विषयका प्रकाशन नहीं होता साक्षात् अथवा परम्परासे विषयप्रकाशक मानो तो इन्द्रियमें व्यभिचार भी होगा, क्योंकि इन्द्रिय ज्ञानको उत्पन्न करता है प्रदीप प्रभाके बलविरोधी अन्धकारको निवारण करती है अतः प्रदीप केवल उपकारक मात्र है । अप्रकाशित अर्थका प्रकाशक नहीं विपरीत अनुमानभी है अज्ञान ज्ञानस्वरूप ब्रह्मनिष्ठ नहीं होसक्ता । क्योंकि वह अज्ञान है जैसे शुक्तिमें रजत विषयका अज्ञान ज्ञानस्वरूप ब्रह्मवृत्ति नहीं है वैसेही प्रपंच विषयरूप अज्ञानभी ब्रह्मके आश्रित नहीं होसकता जीवज्ञान स्वरूपमात्र नहीं किन्तु ज्ञाता है अतः अज्ञानका आश्रय ज्ञानस्वरूप नहीं होसकता यदि कहो शुक्तिरजतादि अज्ञानका आश्रय प्रत्यगर्थ (जीवात्मा) भी ज्ञानस्वरूप है सो नहीं कहसकते क्योंकि अनुभूति (ज्ञान) स्वसत्तासे किसी वस्तुको व्यवहार योग्यता आपादक ज्ञानादिशब्दवाच्य है अर्थात् ज्ञान या संवित्का स्वयंप्रकाश और विषय प्रकाशकत्व स्वभाव है ज्ञानके विना विषय प्रकाश नहीं होगा और विषय प्रकाशके विना हानोपादानादि व्यवहारभी नहीं होसकता । ज्ञान, अवगति, संवित, अनुभूति यह सब पर्याय शब्द हैं । ज्ञान निर्विषय न होनेके कारण जो विषयहोगा वह कर्म है अतः सकर्मक और अनुभविता आत्माका धर्म विशेष है अभिप्राय यह है कि संवित् पर्याय ज्ञान सिद्ध होगा या नहीं ? नहीं सिद्ध होगा तो आकाशके कमलकी समान तुच्छ होगा । यदि सिद्धि कहो तो समस्त प्रमाण सविषय हानेसे सधर्मक होगा। यदि कहो संवित् सिद्धिरूप है तो किसकी सिद्धि और किसके प्रति है यह कहना पडेगा क्योंकि सिद्धि प्रकाशरूप है अतः जिस किसीके प्रति सिद्धि होती है। यदि आत्माकी सिद्धि कहो तो आत्माज्ञानाश्रय सिद्ध होगा औरभी ज्ञानमें नित्यत्वादि धर्म है या नहीं ? यदि नहीं तो बौद्धमत प्रवेश होगा यदि नित्यत्वादि कहो तो सधर्मकत्व होगा ॥ १९ ॥

ननु ज्ञानरूपस्यात्मनः कथं ज्ञानगुणकत्वमिति चेत् तदसारं यदाहि मणिद्युमणिप्रभृति तेजोद्रव्यं प्रभावद्रूपेणावतिष्ठमानं प्रभारूपगुणाश्रयः। स्वाश्रयादन्यत्रापि वर्त्तमानत्वेन रूपत्वेन च प्रभाद्रव्यरूपापि तच्छेषत्वनिबन्धनगुणव्यवहारा एवमयमात्मा स्वप्रकाशचिद्रूप एव चैतन्यगुणः ॥ तथा च श्रुतिः 'सदा सैन्धवघनोऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नरसघन एव एवं वा अरे अयमात्माऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नः प्रज्ञानघन एव अत्रायं पुरुषः स्वयं ज्योतिर्भवति न विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यते । अथ यो वेदेदं जिघ्राणेति स आत्मा योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृद्यन्तर्ज्योतिः पुरुष एष हि द्रष्टा श्रोता रसयिता घ्राता मन्ता बोद्धा कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुषः" इत्यादिका श्रुतिरपि ॥ १६ ॥

(ननु इति) "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इत्यादि श्रुतियोंसे आत्माको ज्ञानस्वरूपत्व प्रतिपादन होता है। उसको ज्ञानाश्रयत्व कैसे कहते हो ? यहभी अयुक्त है क्योंकि जिस प्रकार मणि, सूर्य, दीपादि तेजोद्रव्य प्रभा और प्रभावद् रूपसे वर्तमान होते हुएभी प्रभारूप गुणका आश्रय रहता है । यद्यपि प्रभाप्रभावद्द्रव्यका गुणभूत है तथापि प्रभातेजोद्रव्यही है शौक्ल्यादिके समान गुण नहीं क्योंकि शौक्ल्यादि गुण द्रव्य देशहीमें रहता है प्रभा उसके आश्रय मण्यादि द्रव्यसे अन्यत्र भी रहती है अर्थात् दीपक एक छोटीसी जगहपर रहता है परन्तु उसकी प्रभा बहुत दूरतक व्याप्त रहती है शुक्लादिगुणमें रूप नहीं रहता है परन्तु प्रभामें रूप रहता है अतः प्रभा द्रव्य है तथापि सदा दीपादि द्रव्याश्रित एवं तादृश द्रव्यका शेषभूत होनेसे प्रभामें गुणत्व व्यवहार होता है । उसी प्रकार आत्माभी स्वयंप्रकाशरूप ज्ञानस्वरूप और ज्ञानगुणवान् भी है। श्रुतिभी कहती है (स यथेत्यादि) जैसे अनन्तर—अन्तरङ्ग और बहिरंग भावशून्य होकर समस्त प्रदेशमें सैन्धवखण्ड (लवण) एक रस रहता है वैसेही यह आत्माभी अनन्तर अबाह्य अर्थात् धर्म धर्मी रूप समस्त अंशोंमें ज्ञानस्वरूप है । शरीरित्वावस्थामेंभी ज्ञानात्मकत्वप्रतिपादक वाक्य कहते हैं (विज्ञानघन एव इति)ज्ञानत्वको स्वयं प्रकाशकत्व ज्ञापनके लिये कहते हैं—(अत्रायं पुरुष इति) पुरुषः आत्मा स्वयं ज्योतिः स्वयंप्रकाश है आत्माके स्वरूपभूत ज्ञान और धर्मभूत ज्ञानका परस्पर भेद प्रतिपादक श्रुति कहते हैं (न विज्ञातुरिति) ज्ञानाश्रय आत्माके

विज्ञानका विनाश नहीं होता है। ज्ञातृसम्बन्धि ज्ञानके नित्यत्व कहनेसे ज्ञानमात्र सत्य अन्य मिथ्या है ऐसी शंका होगी उसके वारण करनेके लिये ज्ञाता (ज्ञानाश्रय) ही आत्मा है उसकी प्रतिपादक श्रुति कहते हैं (अथ यो वेदेति) मैं सूंघताहूं ऐसा जो जानता हो वह आत्मा है। एकही वाक्यसे ज्ञानाश्रयत्व और स्वयंप्रकाशत्वके साथही प्रतिपादिका श्रुति कहते हैं (कतमआत्मेति) आत्मा कौन हैं यह प्रश्न है उसका उत्तर यह है कि हृदयपुण्डरीकमें प्रचुर ज्ञानवान् स्वयंप्रकाश पुरुष आत्मा है। ज्ञानगुणकत्व ज्ञानाश्रयत्व प्रतिपादक वाक्य कहते हैं (एषहि द्रष्टेति) यह आत्मा दर्शन करनेवाला सुननेवाला आस्वादन करनेवाला सूंघनेवाला मनन तथा जाननेवाला कर्ता और ज्ञानस्वरूप है। निष्कृष्ट आत्मस्वरूप बोधक वाक्य यह है कि " विज्ञाता-रमरेकेनविजानीयात् " इत्यादि सहस्रों श्रुति आत्माके ज्ञानाश्रय और ज्ञानस्वरूपप्रति-पादक हैं ॥ १६ ॥

न च 'अनृतेन हि प्रत्यूढाः" इति श्रुतिरपि विद्यापर्वप्रमाणमित्याश्र-यितुं शक्यम्। ऋतेतरविषयो ह्यनृतशब्दः ऋतशब्दश्च कर्मवचनः "ऋतं पिबन्तौ " इति वचनात्। ऋतं कर्मफलाभिसन्धिरहितं परम-पुरुषाराधनयैव तत्प्राप्तिफलम्। अत्र तद्व्यतिरिक्तसांसारिका-ल्पफलं कर्मानृत ब्रह्मप्राप्तिविरोधि। " य एतं ब्रह्मलोकं न विदन्ति अनृतेन हि प्रत्यूढाः" इति वचनात् ॥ १७ ॥

आत्माका ज्ञातृत्वादिकभी अनृत सदसदानिर्वचनीय मायासे प्रत्यूढ (तिरोहित) स्वरूपसे प्रतीत होताहै ऐसा नहीं कहसकते क्योंकि (अनृतेनेति) श्रुतिमें अनृत ऋतसे भिन्न विषयक है ऋत शब्दका अर्थ फलेच्छारहित भगवदाराधनारूप कर्म है इससे विपरीत सांसारिकफल प्राप्तिरूपकर्म अनृत है "ऋतं पिबन्तौ" इत्यादिश्रुतिमें ऐसाही कहाहै। यद्यपि सुकृत दुष्कृत दोनों मोक्ष विरोधी होनेसे पापरूप हैं अत एव " तदाविद्वान् पुण्यपापे विधूय" कहाहै। तथापि भगवदाराध-नाव्यतिरिक्त कर्म फलाभिसन्धिसहित कर्म मोक्ष विरोधी है इसी अभिप्रायको प्रकट करनेके लिये पूर्व वाक्य कहते हैं (एतामिति) जिनका ज्ञान काम्यकर्मसे आच्छादित है वे अज्ञानी ब्रह्मलोकको नहीं प्राप्त होते ॥ १७ ॥

'मायां तु प्रकृतिं विद्यात्' इत्यादौ मायाशब्दो विचित्रार्थसर्गकरत्रि-गुणात्मकप्रकृत्यभिधायको नानिर्वचनीयाज्ञानवचनः। "तेन माया-

सहस्रं तच्छंबरस्याशुगामिना। बालस्य रक्षता देहमेकैकं तेन सूदितम् ॥ इत्यादौ विचित्रार्थसर्गसमर्थस्य पारमार्थिकस्यैवासुराद्यस्त्रविशेषस्यैव मायाशब्दाभिधेयत्वोपलम्भात् अतो न कदाचिदपि श्रुत्यानिर्वचनीयाज्ञानप्रतिपादनम् ॥ १८ ॥

मायाशब्दके अनिर्वचनीयार्थकत्वका खण्डन करते हैं–(मायान्त्विति) मायाशब्द विचित्र सृष्टि करनेमें समर्थ त्रिगुणात्मिक प्रकृतिवाची है अनिर्वचनीय अविद्यावाची नहीं है । उक्तार्थमें प्रमाण भी देते हैं–(तेन मायेति) यह कथा विष्णुपुराणकी है पर्वतके शिखरसे नीचे गिराना अग्निमें डालना आदि अनेक उपायोंसे जब प्रह्लाद नहीं मरा तब हिरण्यकश्यपुकी आज्ञासे बालकको मारनेके लिये शम्बरासुरने असंख्य माया रची उसको देखकर अति वेगवान् सुदर्शन चक्रने बालकके देहकी रक्षा करतेहुए शम्बरासुरकी समस्तमायाको एक एक करके नष्ट करदिया यहाँ पर विचित्रकार्यकरनेमें समर्थ पारमार्थिक असुरादि अस्त्रविशेषका बोधक मायाशब्द है• इसलिये श्रुतिस्मृतिमें कहीं भी अनिर्वचनीय अविद्याका प्रतिपादन नहीं है ॥ १८ ॥

नाप्यैक्योपदेशानुपपत्त्या तत्त्वंपदयोः सविशेषब्रह्माभिधेयत्वेन विरुद्धयोर्जीवपरयोः स्वरूपैक्यस्य प्रतिपत्तुमशक्यतया अर्थापत्तेरनुदयदोषदूषितत्वात् ॥ तथाहि तत्पदं निरस्तसमस्तदोषमनवधिकातिशयासङ्ख्येयकल्याणगुणास्पदं जगदुदयविभवलयलीलं ब्रह्म प्रतिपादयति 'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेये'त्यादिषु तस्यैव प्रकृतत्वात् समानाधिकरणं त्वंपदं वा चिद्विशिष्टं जीवशरीरं ब्रह्माचष्टे प्रकारद्वयविशिष्टैकवस्तुपरत्वात् सामानाधिकरण्यस्य ॥ १९ ॥

तत्त्वमसीत्यादि श्रुतिसे जीव और ब्रह्मका अभेद बोधित होता है यह अभेद तब होसकेगा जब परमार्थतः जीव ब्रह्म व्यतिरिक्त न हो, किन्तु ब्रह्महो जीवभावको प्राप्त होगया हो अतः तादृश निर्विशेषब्रह्मके भेदप्रतिपादक श्रुतिबलसे स्वरूपातिरोधान पूर्वक जीवभाव प्राप्तिका हेतु अवश्य मानना होगा वह हेतु यदि सत् हो तो उत्तरकालमें उसका बाध नहीं हाता । यदि असत् हो तो प्रतीति नहीं होती अतः सदसत् विलक्षण अनिर्वचनीय माया सिद्ध होगी इस अभिप्रायसे आशंका करते हैं–(नाप्यै-

क्योपदेशादिति) तत्त्वमिति यहां तत्पद और त्वंपद दोनों सविशेष ब्रह्मबोधक हैं अतः प्रकाश और तिमिरके समान अत्यन्त विरुद्ध स्वभावक जीव और ब्रह्मका स्वरूपैक्य प्रतिपादन असम्भव होनेसे अर्थापत्तिन्यायका उत्थानही नहीं होसकता है अथवा पूर्वग्रन्थसे ज्ञानके निर्विशेषवस्तु परत्वका तद्विरुद्ध श्रुतिवचनोंसे निराकरण किया । अब तत्त्वमस्यादिका सामानाधिकरण्य (अभेद) सविशेषपक्षमें असम्भव है अतः निर्विशेषज्ञान ही उपाय है ऐसी आशंकाको जीवात्मा और परमात्माके परस्पर अभेदको असम्भव दोषसे दूषित करते हैं (नाप्यैक्योपदेशन्यथानुपपत्त्या इत्यादि) (तत्त्वमिति) अभिप्राय यह है अद्वैतियोंने सामानाधिकरण्य चार प्रकार माने हैं " सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म " इत्यादि स्वरूपशोधक सत्यादिपदोंको मिथ्यात्वादि व्यावृत्तिपरत्वरूप वस्तुका ऐक्य एक है तत्त्वमसीत्यादि जीव ब्रह्मका सामानाधिकरण्य अन्वयद्वारा उपलक्षित वस्तुका ऐक्यपरत्व दूसरा है अचित् और ब्रह्मको " सर्वखल्विदंब्रह्म " इत्यादिमें जगत्का अवास्त विकत्वारोपरूप सामानाधिकरण्य तीसरा है " ज्योतींषिविष्णुः " बाधार्थ सामानाधिकरण्य चतुर्थ है तत्र तत्त्वमसीत्यादिमें अन्वयद्वारा प्रतिपादिति सामानाधिकरण्यका निराकरण करते हैं-(तथाहीत्यादि) यहां तत् और त्वम् दो पद हैं तत्पद अपहतपाप्मत्वादि समस्त दोषरहित और सत्यकामत्वादि अनवधिक असंख्येयकल्याण गुणास्पद, सर्वज्ञ सृष्टिस्थिति संहारकारण ब्रह्मको प्रतिपादन करता है क्योंकि उपक्रम (आरम्भ) में तत् ब्रह्म ईक्षण संकल्प किये, इत्यादिमें जगत्कारणत्वोपयोगि गुणविशिष्ट ब्रह्म प्रकृति है तादृश तत् पदका समानाधिकरण त्वंपद अचित् शरीरक जो जीव है वह जिसका शरीर हो ऐसे शरीरी ब्रह्मका प्रतिपादन करता है । तात्पर्य यह है कि, अचित्पदार्थ जीवका शरीर है और जीव ब्रह्मका शरीर है । तथाच त्वंपद जीवशरीरक ब्रह्मका बोधक है तत्पद सर्वज्ञत्वादि गुणविशिष्ट ब्रह्मका बोधक है। विशेषणद्वयविशिष्ट एक विशेष्यबोधन सामानाधिकरण्य है " भिन्नप्रवृत्ति निमित्तानां शब्दानामेकस्मिन्नर्थे वृत्तिः सामानाधिकरण्यम् " यह सामानाधिकरण्यका लक्षण है विशेषणद्वयको छोडकर विशेषमात्र परत्व मानो तो प्रवृत्ति निमित्त (असाधारणधर्म) भेद न होनेसे उक्तसामानाधिकरण्यलक्षणका परित्याग होगा ॥ १९ ॥

ननु सोऽयं देवदत्त इतिवत् तत्त्वमिति पदयोर्विरुद्धभागत्यागलक्षणयोर्निर्विशेषस्वरूपमात्मैक्यं समानाधिकरणार्थः किं न स्यात् यथा सोऽयमित्यत्र तच्छब्देन देशान्तरकालान्तरसम्बन्धीपुरुषः प्रतीयते इदंशब्देन च सन्निहितदेशवर्त्तमानकालस-

म्बन्धी तयोः सामानाधिकरण्ये नैक्यमवगम्यते । तत्रैकस्य युगपद्विरुद्धदेशकालप्रतीतिर्न सम्भवतीति द्वयोरपि पदयोः स्वरूपपरत्वे स्वरूपस्य चैक्यं प्रतिपत्तुं शक्यम् एवमत्रापि किञ्चिज्ज्ञत्वसर्वज्ञत्वाादिविरुद्धांशप्रहाणेनाखण्डस्वरूपं लक्ष्यते ॥२०॥

(ननुइति) जिस प्रकार सोयं देवदत्तः (वह देवदत्त यह है) जिसको मैंने मथुरामें देखाथा यहां स इति तच्छब्दसे देशान्तर और कालान्तर सम्बन्धी पुरुष प्रतीत होता है इदं (यह) शब्दसे समीपवर्ती वर्तमानकालसम्बन्धी पुरुष प्रतीत होता है. दोनोंका ऐक्य सामानाधिकरण्यसे प्रतीत होता है । एक ही वस्तुको एक कालमें देशद्वयसम्बन्ध बाधित होनेसे दोनों पदोंके अर्थमें देशकालको छोडकर चैतन्यस्वरूप (देवदत्तांश) मात्र लेकर अभेद होता है तिस प्रकार तत् त्वम् यहांपर भी किञ्चित्ज्ञत्व सर्वज्ञत्वादि विरुद्ध धर्मको त्यागकर केवल चैतन्यांश लेकर अखण्डार्थरूप अभेद लक्षित होगा (इसीको अद्वैतवादी भागत्यागलक्षणा कहते हैं) ॥ २० ॥

इति चेत् विषमोऽयमुपन्यासः॥दृष्टान्तेऽपि विरोधवैधुर्य्येण लक्षणागन्धासम्भवादेकस्य तावद्भूतवर्त्तमानकालद्वयसम्बन्धो न विरुद्धः । देशान्तरस्थितिर्भूतासन्निहितदेशस्थितिर्वर्त्तत इति देशभेदसम्बन्धविरोधश्च कालभेदेन परिहरणीयः । लक्षणापक्षेऽप्येकस्यैव पदस्य लक्षकत्वाश्रयणेन विरोधपरिहारे पदद्वयस्य लाक्षणिकत्वस्वीकारो न सङ्गच्छते । इतरथा एकस्य वस्तुनस्तत्तदन्ताविशिष्टत्वावगाहनेन प्रत्यभिज्ञायाः प्रामाण्यानङ्गीकारे स्थायित्वासिद्धौ क्षणभङ्गवादी बौद्धो विजयेत ॥ एवमत्रापि जीवपरमात्मनोः शरीरात्मभावेन तादात्म्यं न विरुद्धमिति प्रतिपादितम् ॥ २१ ॥

उक्त आशंकाका समाधान—(इति चेत् विषमोऽयमुपन्यासइति) दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिक समान होने चाहिये दृष्टान्तभूत "सोयंदेवदत्तः" यहांपर कोई विरोध न होनेसे लक्षणाका नाम भी नहीं. क्योंकि एकही वस्तुको भूत और वर्तमान काल भेदसे देशद्वयका सम्बन्ध विरुद्ध नहीं है भूतकालमें मथुरादि देशान्तर सम्बन्ध है वर्तमा-

नकालमें एतद्दे सम्बन्ध है। एकही कालमें भिन्न भिन्न देशद्वय सम्बन्ध होता तो विरोध अवश्य होता सो नहीं है अतः देश भेदरूप विरोध कालभेदसे हटजाता है यदि लक्षणा मान भी लियाजाय तो भी "गंगायांघोषः" इत्यादिवत् एकही पदमें लक्षणा माननेसे काम चलजायगा दोनों पदोंमें लक्षणा मानना व्यर्थ है। 'सोयंदेवदत्तः' इत्यादि प्रत्यभिज्ञास्थलमें यदि तत्व और इदं तत्वादि धर्मरहित केवल चैतन्यांशमात्र मानोगे तो बौद्धमतमें प्रवेश होगा क्योंकि चैतन्य स्वरूप बौद्धोंने भी माना है। धर्मविशेषादिक न तुमने माना न बौद्धोंने माना जगन्मिथ्यात्व आपके मतमें और बौद्धोंके मतमें समान होनेसे बौद्धही विजयी होंगे। कहा भी है "वेदोऽनृतो बुद्धकृतागमोऽनृतः प्रामाण्यमेतस्य च तस्यचानृतम्। बौद्धानृता बुद्धिफले तथानृते यूयश्च बौद्धाश्च समानसंसदः ॥" इत्यादि। इसी प्रकार यहांपर भी शरीर शरीरी भावसे जीव और ईश्वरका तादात्म्य (अभेद) उपपन्न होता है ॥ २१ ॥

जीवात्मा हि ब्रह्मणः शरीरतया प्रकारत्वात् ब्रह्मात्मकः 'य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोऽन्तरः यं आत्मा न वेद यस्यात्मा शरीरम्' इति श्रुत्यन्तरादत्यल्पमिदमुच्यते सर्वे शब्दाः परमात्मन एव वाचकाः ॥ २२ ॥

उसीको उपपादन करते हैं–(जीवात्मा हीत्यादि) जीवात्मा ब्रह्मका शरीर और ब्रह्म शरीरी अर्थात् आत्मा है शरीर शरीरीका प्रकार (विशेषण) है शरीरवाचकशब्द शरीरीपर्यन्त प्रतिपादक लोकमें प्रसिद्ध है। यथा देवदत्त, यज्ञदत्त, देव, मनुष्यादिशब्द देवदत्तादिशरीरवर्ति आत्मापर्यन्तका बोध करता है देवशब्द देवशरीरवर्ति आत्माका बोधक है शरीर शरीरी भाव द्वारा अभेद होनेसे ही एक मनुष्य इत्यादि एकत्वव्यवहार लोकमें होता है शरीरका लक्षण शास्त्रमें इस प्रकार कहा है "यस्य चेतनस्य यद्द्रव्यं सर्वात्मना स्वार्थे नियन्तुं धारयितुं शक्यं तच्छेषतैकस्वरूपं तत्तस्य शरीरम्" इति। अर्थ–जो वस्तु जिस चेतनके स्वार्थके लिये नियमन करने योग्य हो और धारणकरने योग्य हो उस चेतनका सर्वदा शेषत्व (पारतन्त्र्य) स्वरूप हो वह उस चेतनका शरीर है। तथाच चेतनाचेतनात्मकवस्तु ईश्वरका नियाम्य, ईश्वरका धार्य और ईश्वरका परतन्त्र होनेसे ईश्वरका शरीर है उक्त शरीर शरीरी भावमें अन्तर्यामीब्राह्मणश्रुति प्रमाण देते हैं (यआत्मनि इत्यादि) जो परमात्मा आत्मामें रहते हुए भी अन्तर्यामीरूपसे नियमन करते हैं जिसको आत्मा नहीं जानता है आत्मा जिसका शरीर है वही आत्मा है। इसमें दृष्टान्त देते हैं

(यंप्रथिवीनवेदेत्यादि) जिस प्रकार उस आत्माको अचेतनपृथिवी नहीं जानती है उसी प्रकार जीवात्मा भी अन्तर्यामी रूपसे अवस्थित परमात्माको नहीं जानता है इस प्रकार " यस्यापःशरीरम् ' यस्यमृत्युःशरीरम् '' यस्यविज्ञानं शरीरमित्यादि " अनेक श्रुति प्रत्यक्ष शरीर शरीरी भावको कहती हैं यही घटकश्रुति भेद और अभेद दोनोंको अविरोधसे अर्थका वर्णन करती है ॥ २२ ॥

न च पर्य्यायत्वं द्वारभेदसम्भवात्। तथाहि जीवस्य शरीरतया प्रकारभूतानि देवमनुष्यादिसंस्थानानीव सर्वाणि वस्तूनीति ब्रह्मात्मकानि तानि सर्वाणि ॥ अतः–"देवे मनुष्यो यक्षो वा पिशाचोरगराक्षसाः। पक्षी वृक्षो लता काष्ठं शिला तृणं घटः पटः॥" इत्यादयः सर्वे शब्दाः प्रकृतिप्रत्ययोगेनाभिधायकतया प्रसिद्धा लोके तद्वाच्यतया प्रतीयमानतत्तत्संस्थानवद्वस्तुमुखेन तदभिमानिजीवतदन्तर्यामिपरमात्मपर्य्यन्तसंस्थानस्य वाचकाः। देवादिशब्दानां परमात्मपर्य्यन्तत्वमुक्तं तत्त्वमुक्तावल्यां चतुरन्तरे च ॥ २३ ॥

यदि समस्त शब्द शरीरशरीरी भावसे परमात्माके वाचक हो तो घट कलशके समान पर्यायता होगी ऐसी आशंका भी नहीं करसकते क्योंकि मनुष्यत्व, देवत्व, घटत्वादि द्वार (प्रवृत्तिनिमित्त) भेद होनेसे नीलघटके समान विशेष्य विशेषण भाव होनेसे पर्य्यायता नहीं होगी जीवके शरीरत्वरूपसे प्रसिद्ध देवमनुष्यादि अवयवकी नाईं सब ही वस्तु ब्रह्मात्मक है इसी कारण, देव, मनुष्य, यक्ष, पिशाच, उरग, राक्षस, पक्षी, वृक्ष, काष्ठ, शिला, तृण, घट और पट इत्यादि जो सब शब्द प्रकृति प्रत्ययके योगमें अभिधायक कहकर लोकमें प्रसिद्ध है, सो सब ही उसकी वाच्यतामें प्रतीयमान तत्तत्संस्थान विशिष्ट वस्तु सहायसे तदभिमानी जीव और उसका अन्तर्यामी परमात्मा पर्य्यन्त संस्थानका वाचक होता है। तत्त्वमुक्तावली और चतुरन्तर नामक ग्रंथमें देवादि शब्दोंका परमात्मा पर्य्यन्तत्व कहा है ॥ २३ ॥

" जीवं देवादिशब्दो वदति तदपृथक् सिद्धभावाभिधानं निष्कर्षाभावयुक्तो बहुरिह च दृढो लोकवेदप्रयोगः ॥ आत्मा सबन्धकाले स्थितिरनवगता देवमर्त्यादिमूर्त्तंर्जीवात्मानुप्रवेशाज्जगति विभुरपि व्याकरोन्नामरूपे ॥" इत्यनेन देवादिशब्दानां

शरीरपर्य्यन्तत्वं प्रतिपाद्य संस्थानैक्याद्यभाव इत्यादिना-शरीरलक्षणं दर्शयित्वा शब्दैस्तन्वंशरूपप्रतिकृतिभिरित्यादिना विश्वेश्वरादपृथक्सिद्धत्वमुपपाद्य निष्कर्षाकूतेत्यादिना पद्येन सर्वेषां शब्दानां परमात्मपर्य्यन्तत्वं प्रतिपादितं । तत् सर्वं तत एवावधार्य्यम् । अयमेवार्थः समर्थितो वेदार्थसंग्रहे नामरूपश्रुतिव्याकरणसमये रामानुजेन ॥ २४ ॥

देवादि शब्द जीवका वाचक है। और निष्कर्ष अभिप्राययुक्त सब लौकिक और वैदिक प्रयोग, जीवसे अभिन्न सिद्ध भावाभिधान अर्थात् परमात्माका वाचक होता है ॥ आत्मसम्बन्ध कालमें देव और मनुष्यादि मुक्तिविशिष्ट होकर जो अवस्थिति करता है, सो नहीं जानाजाता। वही जीवात्माही संसारमें अनुप्रवेशकर, नाम और रूपव्यक्त करता है। यहां देवादि शब्दोंका शरीर पर्यन्तत्व प्रतिपादन कर, 'संस्थानैक्याद्यभाव' इत्यादिसे शरीरलक्षणकहकर " शब्दैस्तन्वंशरूपप्रभृतिभिरखिलः स्थाप्यते विश्वमूर्तेरित्थंभावप्रपञ्चस्तदनवगमतस्तत्प्रथक्सिद्धिमोहः । श्रोत्राद्यैराश्रयेभ्यः स्फुरति खलु पृथक्शब्दगंधादिधर्मो जीवात्मन्यप्यदृश्ये वपुरपि हि दृशा गृह्यतेऽनन्यदृष्टिम् ॥ " शब्दैस्तन्वंशैरिति। " यस्यात्मा शरीरम् " " तत्सर्वं वै हरेस्तनुः " " ममैवांशो जीवलोके " इत्यादि तनु अंश और क्षेत्रादिशब्दोंद्वारा चेतनाचेतनात्मक समस्त प्रपञ्चको परमात्माका प्रकार अर्थात् अपृथक्सिद्ध विशेषणस्थापित किया है परन्तु तादृश ईश्वरापृथक्सिद्धत्वको जाननेसे देवादिशब्दको लोकप्रसिद्ध केवल तत्तत्पिण्डविशेष अर्थोंमें पृथक्सिद्धिरूप मोह होता है यथा आकाशका प्रत्यक्ष न होने पर भी श्रोत्रादिइन्द्रियों द्वारा आश्रय आकाशसे पृथक् होकर शब्द, रस और गन्धादि प्रतीत होते हैं तथा जीवात्मा अदृश्य होनेपरभी ज्ञानद्वारा शरीरका ग्रहण होसकता है इस श्लोकसे परमात्मासे अपृथक्सिद्धत्व प्रतिपादन करके–" निष्कर्षाकूतहानौ विमतपदपदान्यन्तरात्मानमेकं तन्मूर्तेर्वाचकत्वादभिदधति यथा रामकृष्णादिशब्दाः । सर्वेषामात्ममुख्यैरगणि च वचसां शाश्वतेऽस्मिन् प्रतिष्ठा पाकैस्तस्याप्रतीतेर्जगति तदितरैः स्याच्च भंक्त्या प्रयोगः ॥ " निष्कर्षाकूतेति । पृथक्बोधतात्पर्यसे उच्चरित शब्द निष्कर्षाकूतशब्द है यथा देवदत्तके शरीर यहांपर शरीरशब्दचेतनविशिष्टका बोधक नहीं किन्तु केवल शरीरका बोधक है यथावा गोशब्द गोत्वविशिष्टका बोधकहै परन्तु गोत्वनिष्कर्षरूपसे गोत्वजातिमात्रका बोधक है तथा निष्कर्षबोधनतात्पर्यके जहाँ हानि हो तहाँ शरीरवाचक शब्द शरीरीपर्यन्तका बोधक है

जिस प्रकार रामकृष्णादिशब्दरामकृष्णादिशरीरबोध होतें हुए भी परमात्मपर्यन्तबोधक हैं इसीमें किसीको विप्रतिपत्ति नहीं है. क्योंकि "सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति सर्वे वेदा यत्रैकीभवन्ति" । आप्तलोग समस्तशब्दोंकी शाश्वतपरमात्मामें विश्रान्ति अर्थात् तत्पर्यन्तबोधक माने हैं जिस प्रकार घटादिकोंके रूपाकादिकसे रूपान्तरनामान्तरादिक होते हैं तथा प्रतीति न होनेसे केवल लक्षणाहीसे एकदेशका बोध होता है इस श्लोकसे समस्तशब्दोंके परमात्मपर्यन्तबोधकत्व प्रतिपादन किया है। यह सब विषय वेदार्थसंग्रहमें विस्ताररूपसे प्रतिपादित हैं ॥ २४ ॥

किञ्च सर्वप्रमाणस्य सविशेषविषयतया निर्विशेषवस्तुनि न किमपि प्रमाणं समस्ति निर्विकल्पकप्रत्यक्षेऽपि सविशेषमेव वस्तु प्रतीयते । अन्यथा सविकल्पके सोयमिति पूर्वप्रातिपन्नप्रकारविशिष्टप्रतीत्यनुपपत्तेः ॥ २५ ॥

निर्विशेष वस्तुप्रतिपादक प्रमाणके अभावको कहते हैं-(किञ्चेति) सिद्धान्तके मतमें प्रत्यक्ष अनुमान और शब्द तीन प्रमाण हैं यह तीनों सविशेष विषय हैं तथाहि सविकल्पक और निर्विकल्पक भेदसे प्रत्यक्ष दो प्रकार है जाति, गुण, अवयव सन्निवेशादि अनेक पदार्थ विशिष्ट विषयग्रहण सविकल्पक प्रत्यक्ष है अतः यह सविशेष विषय है । निर्विकल्पक प्रत्यक्ष भी संस्थानरूप जात्यादि विशिष्ट ही रहता है अत एव सविकल्पक दशामें वही यह है. ऐसी प्रत्यभिज्ञा होती है अन्यथा निर्विकल्पमें यावत् विशेष शून्य हो तो उसीको सविकल्पक दशामें 'सोऽयम्' ऐसी प्रत्यभिज्ञा कदापि न हो सकेगी परन्तु निर्विकल्पक और सविकल्पकमें भेद इतना ही है कि सविकल्पकमें गोत्वादि अनेक व्यक्तिमें अनुवृत्ताकार प्रतीत होता है निर्विकल्पकमें केवल एकही व्यक्तिमें प्रतीत होता है. शब्दभी सविशेष विषय है क्योंकि पदरूप अथवा वाक्यरूप शब्द है प्रकृतिप्रत्यय योगसे पद होता है प्रकृत्यर्थ अन्य है और प्रत्ययार्थ अन्य है उन दोनोंका सम्बन्ध विशेष्य विशेषणभावादि होता है यथा-पाचकः इस पदमें पाच प्रकृति अक प्रत्यय है प्रकृतिका अर्थ पाक क्रिया है प्रत्ययका अर्थ कर्ता है विशिष्टका अर्थ पाककर्ता है अनेक पदार्थोंका संसर्ग होनेसे यह सविशेष है वाक्य पदसमूह होनेसे सुतरां सविशेष रहेगा । अनुमान भी सविशेष विषय है तथाहि अनुमानमें व्याप्ति पक्षधर्मतादि ज्ञान कारण है व्याप्ति प्रत्यक्ष दृष्टमें होती है प्रत्यक्ष सविशेष विषय होनेसे तन्मूलक अनुमानभी सविशेष विषय है स्वानुभव भी " मैं अमुक वस्तु जानता हूं " इत्यादि यत्किञ्चित् प्रकार विशिष्ट ही रहता है अतः निर्विशेष वस्तुमें कोई प्रमाणही नहीं है ॥ २५ ॥

किञ्च तत्त्वमस्यादिवाक्यं न प्रपञ्चस्य बाधकं भ्रान्तिमूलकत्वात्। भ्रान्तिप्रयुक्तरज्जुसर्पवाक्यवत् नापि ब्रह्मात्मैक्यज्ञानं निवर्त्तकं तत्र प्रमाणाभावस्य प्रागेवोपपादनात् ॥ २६ ॥

(किञ्चेति) तत्त्वमसि अयमात्मा ब्रह्म, इत्यादि वाक्यभी प्रपञ्चके बाधक नहीं हो सकते क्योंकि वह भी ब्रह्मव्यतिरिक्त होनेसे रज्जुसर्पादिवत् भ्रान्ति परिकल्पित है जिस प्रकार रज्जुमें सर्पभ्रान्तिके समय कोई भ्रान्त पुरुष आकर यदि कहे यह सर्प नहीं रज्जु है ऐसे कहनेपरभी उसका भय नहीं छूटता क्योंकि वह जानता है कि यह स्वयं पागल है तिसी प्रकार तत्त्वमसि भी ब्रह्मभिन्न होनेसे भ्रान्तवाक्य है ब्रह्म और आत्माका अभेद ज्ञानभी प्रपञ्चनिवर्तक नहीं हो सकता है तादृश ज्ञानका अप्रामाणिकत्व पूर्वही कह चुका हूं. तात्पर्य यह है कि, मायावादियोंकी अविद्याविषयमें सात प्रकारकी अनुपपत्ति है अविद्याके आश्रयकी अनुपपत्ति १ तिरोधानानुपपत्ति २ अनिर्वचनीयत्वानुपपत्ति ३ स्वरूपानुपपत्ति ४ प्रमाणानुपपत्ति ५ निवर्तकत्वानुपपत्ति ६ निवृत्तिकी अनुपपत्ति ७ प्रमाणकी अनुपपत्ति विशदरूपसे पूर्वही कह चुका हूं अविद्याके आश्रय जीव नहीं हो सकता कारण कि अविद्या कल्पित जीव है जीवके विना अविद्या नहीं हो सकेगी अविद्याके विना जीव नहीं होसकेगा इस प्रकार अन्योन्याश्रय होगा. ब्रह्मभी स्वयंप्रकाश ज्ञानरूप होनेके कारण स्वविरोधी अज्ञानका आश्रय नहीं होसकेगा। अद्वैतियोंके मतमें निर्विशेष चिन्मात्र अनुभूतिमें अविद्याका मूलभूत पारमार्थिक दोष न होनेसे अविद्यास्वरूप उत्पन्न नहीं हो सकेगा। अपरमार्थ दोष माने तो दोषके लिये पुनः दोषान्तर उसमें पुनः भी दोषान्तर इस प्रकार अनवस्था होगी। यदि ब्रह्महीका दोषरूप माने तो ब्रह्म नित्य होनेके कारण अविद्याकी निवृत्ति न होनेसे मोक्ष भी नहीं होगा अनिर्वचनीयत्वभी अनुपपन्न है क्योंकि अनिर्वचनीयत्वको सत् और असत् इन दोनोंसे विलक्षणत्व कहोगे तो ऐसी वस्तुमें कोई प्रमाणही नहीं है प्रतीतिसे वस्तुकी व्यवस्था होती है कोई प्रतीति सत्विषयक है और कोई प्रतीति असत्विषयक है अत एव संवित्सिद्धिमें कहा है "नासत्प्रतीतेर्बाधाच्च न सदित्यपि यन्न तत्। प्रतीतेरेव सत्किं न बाधान्नासत् कुतो जगत् ॥" निर्विशेषवस्तुप्रतिपादक वाक्य तथा तादृशज्ञान दोनोंके न होनेसे निवर्तकत्वभी अनुपपन्न है निवृत्तिकी भी अनुपपत्ति है अनिर्वचनीय विरोधीको निवृत्ति कहोगे तो अनिर्वचनीयका विरोधी निर्वचनीय है वह सत् है या असत् है या सदसद्रूप है। किञ्च निवृत्तिको ब्रह्मस्वरूपसे अतिरिक्त मानोगे तो भेददर्शनरूप अविद्याकी निवृत्ति तो नहीं होगी। ब्रह्मस्वरूपहीको निवृत्ति मानो तो स्वरूप नित्य

होनेके कारण ऐक्यज्ञानसे पूर्वभी स्वरूप विद्यमान है ऐक्यज्ञानसे अविद्याकी निवृत्ति और तदभावमें संसार होता है इत्यादि सिद्धान्तकाभी भंग होगा। किञ्च निवर्तकज्ञान भी ब्रह्मसे व्यतिरिक्त है अततः उसकी निवृत्ति किससे होगी ? ज्ञानान्तर कहो तो उसमें भी यही क्रम होगा अन्ततः एक ज्ञान ब्रह्मव्यातिरिक्त रहजायगा । तथा ब्रह्मव्य-तिरिक्त समस्त वस्तुओंका निषेध विषयज्ञानका ज्ञाता अध्यासरूपको नहीं कह सकते क्योंकि वह निषेध्य है अतः निवर्तक ज्ञान कर्म होनेसे उसके कर्तृत्व नहीं हो सकेगा ब्रह्मस्वरूपहीको ज्ञाता मानोगे तो अद्वैतपक्ष छोडकर विशिष्टाद्वैतमतमें प्रवेश होगा ॥ २६ ॥

न च प्रपञ्चस्य सत्यत्वप्रतिष्ठापनपक्षे एकविज्ञानेन सर्वविज्ञा-नप्रतिज्ञाव्याकोपः प्रकृतिपुरुषमहदहङ्कारतन्मात्रभूतेन्द्रियचतु-र्दशभुवनात्मकब्रह्माण्डतदन्तर्वर्त्तिदेवतिर्य्यङ्मनुष्यस्थावरादि-सर्वप्रकारसंस्थानसंस्थितं कार्यमपि सर्वं ब्रह्मैवेति कारणभूत-ब्रह्मात्मज्ञानादेव सर्वविज्ञानं भवतीत्येकविज्ञानेन सर्वविज्ञान-स्योपपन्नतरत्वात् ॥ अपिच ब्रह्मव्यातिरिक्तस्य सर्वस्य मिथ्या-त्वे सर्वस्यासत्त्वादेवैकविज्ञानेन सर्वविज्ञानं बाध्येत ॥ २७ ॥

(नचेति) चेतन अचेतनात्मक प्रपञ्चको सत्यत्व स्वीकार करोगे तो उद्दालक ऋषिके स्वपुत्र श्वेतकेतुके प्रति एक विज्ञानसे सर्वविज्ञानप्रतिज्ञाकी हानि होगी घटज्ञानसे पट जिस प्रकार ज्ञात नहीं होता है उसी प्रकार ब्रह्मविज्ञानसे प्रपञ्चकाभी ज्ञात नहीं होगा अद्वैत मतमें एक ब्रह्मही सत्य अन्य मिथ्या होनेसे ब्रह्मविज्ञानसे सर्वविज्ञान उपपन्न होता है यहभी अयुक्त है क्योंकि प्रकृति पुरुष महत् अहंकारादि मनुष्य स्थावरपर्यन्त अनेक संस्थान संस्थित समस्त कार्य ब्रह्मरूप है कारणभी ब्रह्म है. अतः कारण विज्ञानसे कार्य विज्ञान होता है यही एक विज्ञानसे सर्व विज्ञानप्रतिज्ञाका तात्पर्य है । प्रत्युत अद्वैत पक्षमें ही एकविज्ञानप्रतिज्ञाको अनुपपन्नत्व कहते हैं ब्रह्म-व्यतिरिक्त समस्त मिथ्या है तो ज्ञातव्य सर्व पदार्थ कुछभी न होनेसे सर्व विज्ञ-प्रतिज्ञा सर्वथा अनुपपन्न होगी । यदि सर्व पदको सर्वाभावमें लक्षणा करोगे तो लक्ष-णाही दोष होगा । यदि एक पदार्थ और सर्व पदार्थको तादात्म्य कहोगे तो सर्वपदवाच्य प्रपञ्च मिथ्या होनेसे उसके साथ तादात्म्यापन्न ब्रह्मभी मिथ्या होगा अथवा ब्रह्मतादात्म्य होनेसे जगत्कोभी सत्यत्व होगा इत्यादि अनेक दूषण हैं ॥ २७ ॥

नामरूपविभागेनेहसूक्ष्मदशावत् प्रकृतिपुरुषशरीरं ब्रह्मकारणावस्थं जगतस्तदापत्तिरेव प्रलयः नामरूपविभागविभक्तस्थूलचिदचिद्वस्तुशरीरं ब्रह्मकार्य्यावस्थं ब्रह्मणस्तथाविधस्थूलभावश्च सृष्टिरित्यभिधीयते ॥ एवञ्च कार्य्यकारणयोरनन्यत्वमप्यारम्भणाधिकरणे प्रतिपादितमुपपन्नतरं भवति ॥ २८ ॥

कार्यकारणका उपपादन–(नामरूपेत्यादि) स्थूलचिदचित् विशिष्ट ब्रह्म कार्य है सूक्ष्माचिदाचिद्विशिष्ट कारण है चेतनाचेतनमें सूक्ष्मत्व नामरूपाविभागका अनर्हत्वे है और स्थूलत्व नामरूपविभागका अर्हत्व है । चेतनाचेतन दोनों ब्रह्ममें विशेष और ब्रह्म विशेष्य है एवञ्च चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्मही कारण और तादृश ब्रह्मही कार्य होनेसे कारणविज्ञानसे कार्य विज्ञान उपपन्न होता है । विशिष्ट कारण होनेपरभी विकारादि दोष विशेषणांशमें होते हैं विशेष्यांशमें नहीं होते । जिस प्रकार " शिखी-ध्वस्तः " " स्वर्गी ध्वस्तः " इत्यादि ध्वंसप्रतियोगित्व विशेषणभूत स्वर्गशिखादिमें रहता है । नामरूपविभागानर्ह प्रकृतिपुरुष शरीरापन्न कारणावस्थाका नाम प्रलय है नामरूपविभागार्ह स्थूलरूपापत्ति सृष्टि है । कार्यकारणका अभेद आरम्मणाधिकरणमें सुस्पष्ट प्रतिपादन किया है " उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम् । अर्थवादोपपत्तिश्च लिङ्गं तात्पर्यनिर्णये ' ॥ इत्युक्त तात्पर्यनिर्णायक षड्विध लिङ्ग इसी पक्षमें उपपन्न होते हैं । तथाहि उपक्रममें (सदेव सौम्येत्यादि) वाक्य ब्रह्मको बिमित्तोपादानत्व तथा तदुपयोगी सर्वज्ञत्व सत्यसंकल्पत्वादिक प्रतिपादन किया है वह सविशेष विषय है । तत्त्वमसि इति उपसंहारमें सामानाधिकरण्यभी प्रवृत्तिनिमित्त भेद होनेसे सविशेष विषय है विशिष्टका एकत्व वृक्ष नदी समुद्रादि दृष्टान्तद्वारा नौ वार आवृत्त होनेसे अभ्यास भी है समस्त प्रपञ्चको ब्रह्म विशेषणत्वप्रमाणान्तरसे अप्रतीत होनेसे अपूर्वताभी है एतादृश ज्ञानवान्को तस्य तावदेव चिरमित्यादिसे मोक्षप्रतिपादन होनेसे फलभी है पितापुत्रसंवाद होनेसे अर्थवादभी है मृत्कार्य दृष्टान्त प्रतिपादनसे उपपत्तिभी है । एतादृश लिङ्ग अद्वैत मतमें उपपन्न नहीं होसकते क्योंकि यह सब सविशेष विषयक हैं ॥ २८ ॥

निर्गुणवादाश्च प्राकृतहेयगुणनिषेधविषयतया व्यवस्थिताः नानात्वनिषेधवादाश्च एकस्यैव ब्रह्मणः शरीरतया प्रकारभूत सर्वं चेतनाचेतनात्मकं वस्त्विति सर्वस्यात्मतया सर्वप्रकारं

ब्रह्मैवावस्थितमिति सर्वात्मकब्रह्मपृथग्भूतवस्तु सद्भावनिषेधपरत्वाभ्युपगमेन प्रतिपादिताः ॥ २९ ॥

" निष्कलं निरञ्जनम् " इत्यादि गुणनिषेधक वचन हेयगुणका निषेध करते हैं सत्यकामादि वाक्य समस्त कल्याण गुणोंको प्रतिपादन करते हैं । कहाभी है- " यद्ब्रह्मणोगुण शरीरविकारभेदकर्मादिगोचराविधिप्रतिषेधवाचः । अन्योन्याभिन्नविषयानविरोधगन्धमर्हन्ति तन्नविधयः प्रतिषेधवाध्यः ॥ इति ॥ " नेह नानास्ति " इत्यादि नानात्वनिषेधक वाक्यभी समस्त चेतनाचेतनात्मक वस्तु ब्रह्मके शरीर और ब्रह्म आत्मा होनेसे अब्रह्मात्मक नानात्वका निषेध करते हैं । ब्रह्मका शरीरभूत चेतनाचेतनात्मक प्रपञ्चका निषेधक नहीं है अतः निर्विशेषाद्वैतबोधक नहीं है अत एव " न द्वैतं प्रतिपादयन्त्युपनिषद्वाचः प्रसिद्धं हितात्किन्त्वैद्वतमनन्यगोचरतया तद्द्वेयमास्थीयताम् । अप्राप्ते खलु शास्त्रमर्थवदितिव्यर्थप्रयासो यतः प्रख्यातादपरस्तु शास्त्रविषयो भेदस्त्वदद्वैतवत् ॥ " इत्यादि आचार्योंने कहा है ॥ २९ ॥

किमत्र तत्त्वं भेदः अभेदः उभयात्मकं वा सर्वशरीरतया सर्वप्रकारं ब्रह्मैवावस्थितमित्यभेदोऽभ्युपेयते एकमेव ब्रह्म नानाभूतचिदचित्प्रकारं नानात्वेनावस्थितमिति भेदाभेदौ चिदचिदीश्वराणां स्वरूपस्वभाववैलक्षण्यादसंकराच्च भेदः ॥ ३० ॥

भेदाभेदादि तीन प्रकारके तत्त्व श्रुतिमें प्रतिपादित होनेसे मतान्तरमें एकको मुख्यत्व अन्यको बाधितत्व अर्थात् औपचारिकत्व कहते हैं । परन्तु विशिष्टाद्वैतमें श्रुतिप्रतिपादित होनेसे एककाभी बाध नहीं । इसी बातको प्रश्नपूर्वक कहते हैं (किमत्र तत्त्वमित्यादि) समस्त वस्तु ब्रह्मके शरीर है अत एव ब्रह्ममें प्रकार होनेसे तादृश प्रकारविशिष्ट प्रकारी ब्रह्म एक होनेसे एकमेवाद्वितीयामित्यादि अभेद श्रुति उपपन्न होती है । एकही ब्रह्मके प्रकारभूत चेतनाचेतनात्मक शरीर नानात्वेन अवस्थित होनेसे विशेषणांश लेकर भेद और विशिष्ट रूपसे अभेद दोनों उपपन्न होते हैं चित् अचित् और ईश्वरके स्वरूप और स्वभाव विलक्षण होनेसे परस्पर असांकर्यके लिये भेदभी उपपन्न होगया ॥ ३० ॥

तत्र चिद्रूपाणां जीवात्मनामसङ्कुचितापरिच्छिन्ननिर्मलज्ञानरूपाणामनादिकर्मरूपाविद्यावेष्टितानां तत्तत्कर्मानुरूपज्ञानसङ्कोचविकासो भोग्यभूता चित् भोक्ता संसर्गः तदनुगुणसुखदुः-

खोपभोगद्वयवत् कृता भगवत्प्रतिपत्तिः भगवत्पदप्राप्तिरित्यादयः स्वभावाः । अचिद्वस्तूनान्तु भोग्यभूतानामचेतनत्वमपुरुषार्थत्वं विकारास्पदत्वमित्यादयः परस्येश्वरस्य भोक्तृभोग्ययोरुभयोरन्तर्यामिरूपेणावस्थानमपरिच्छेद्यज्ञानैश्वर्य्यवीर्य्यशक्ति तेजःप्रभृत्यनवस्थितिकातिशयासंख्येयकल्याणगुणगणता स्वसङ्कल्पप्रवृत्तस्वेतरसमस्तचिदचिद्वस्तुजातता स्वाभिमतस्वानुरूपैकरूपदिव्यरूपनिरतिशयविविधानन्तभूषणतेत्यादयः ॥३१

स्वयं असंकुचित अपरिच्छिन्न निर्मल ज्ञानस्वरूप होनेपरभी अनादि कर्मरूप अविद्यासे वेष्टितस्वरूप चेतन जीवात्माकातत्तत्कर्मानुसार ज्ञानका संकोचाविकास एवं भोग्य भूत अचित्संसर्गजनित सुखदुःखोपभोग–भगवत्प्रपत्ति भगवत्प्राप्तिकत्वादि स्वभाव है । भोग्यभूत अचिद्वस्तुके अचेतनत्व अपुरुषार्थत्व और विकारित्वादि स्वभाव हैं । भोक्ता भोग्य दोनोंके अन्तर्यामीरूपसे अवस्थान, अपरिच्छिन्न, ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेजःप्रभृति अनवधिक और अनतिशय असंख्येय कल्याण गुणवत्त्व स्वसंकल्पसे प्राप्त है सत्ता जिसको ऐसे स्वेतर समस्त चेतनाचेतनात्मक वस्तु समुदायकत्व स्वानुरूप स्वाभिमत दिव्यभूषत्वादिमत्त्व परमात्माका स्वभाव है ॥ ३१ ॥

वेङ्कटनाथेन त्वित्थं निराटङ्कि पदार्थविभागः–"द्रव्याद्रव्यप्रभेदायितमुभयविधं तद्विधं तत्त्वमाहुः द्रव्यं द्वेधा विभक्तं जडमजडमिति प्राच्यमव्यक्तकालौ। अन्त्यं प्रत्यक् पराक् च प्रथममुभयथा तत्र जीवेशभेदात् नित्या भूतिर्मतिश्चेत्यपरमिह जडामादिमां केचिदाहुः"॥ तत्र–"द्रव्यं नाना दशावत् प्रकृतिरिह गुणैः सत्त्वपूर्वैरुपेता कालोऽब्दाद्याकृतिः स्यादणुरवगतिमान् जीव ईशोऽन्य आत्मा । संप्रोक्ता नित्यभूतिस्त्रिगुणसमधिका सत्त्वयुक्ता तथैव ज्ञातुर्ज्ञेयावभासा मतिरिति कथितं संग्रहाद्द्रव्यलक्ष्म"॥ इत्यादिना ॥ ३२ ॥

श्रीवेंकटनाथ (वेदान्तदेशिक)स्वामीने पदार्थ विभाग निम्न लिखित प्रकार कहा है। " द्रव्य अद्रव्य भेदसे दो प्रकारके तत्त्व हैं उसमें जड और अजड भेदसे द्रव्य दो प्रकार हैं

प्रथम (जडमी) अव्यक्त कालभेदसे द्विविध हैं । अन्त्य (अजड) प्रत्यक् और पराक् भेदसे दो प्रकार हैं । प्रत्यक्भी जीव और ईश्वरभेदसे दो प्रकार हैं । नित्य विभूति और मतिभेदसे पराक्भी द्विविध हैं नित्य विभूतिको कोई २ जड कहते हैं । द्रव्य अनेक अवस्थाश्रय है सत्व रज तमोगुणयुक्त प्रकृति है । वर्षमासादिरूप काल है । अणुपरिमाण ज्ञानाश्रय जीव है । अन्य अर्थात विभु ज्ञानाश्रय ईश्वर है । त्रिगुणातीत शुद्ध सत्त्वगुणयुक्त नित्य विभूति और ज्ञाताको ज्ञेय (विषय) का अवभास (प्रकाश) जिससे हो वह मति है । इस प्रकार संग्रहसे लक्षण कहाहै ॥ ३२ ॥

तत्र चिच्छब्दवाच्या जीवात्मानः परमात्मनः सकाशाद् भिन्नाः नित्याश्च । तथाच श्रुतिः "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया" इत्यादिका ॥ ३३ ॥

(तत्रेति) चित्पदप्रतिपाद्य जीव परमात्मासे भिन्न और नित्य है (द्वासुपर्णेति) सुपर्णके समान सर्वदा सहवर्तमान जीवात्मा और परमात्मा दोनों एकही वृक्षरूपी शरीरमें रहते हैं उनमेंसे एक (जीव) कर्मके फलको भोगता है परमात्मा स्वकर्मफलको न भोगते हुए जीवको भोगाकर अत्यन्त प्रकाशित होते हैं ॥ ३३ ॥

अतएवोक्तं नानात्मानो व्यवस्थात इति । तन्नित्यत्वमपि श्रुतिप्रसिद्धम् । " न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः । अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥" इति ॥ अपरथा कृतप्रणाशाकृताभ्यागमप्रसङ्गः । अतएवोक्तं वीतरागजन्मादर्शनादिति । तदणुत्वमपि श्रुतिप्रसिद्धम् । "वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च । भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते ॥ " इतिं ॥ "आराग्रमात्रः पुरुष एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः" इति च ॥ ३४ ॥

अतएव सुख दुःख तथा बन्ध मोक्षादि व्यवस्थाके बलसे आत्माका नानात्व सांख्योंने भी माने हैं । " नित्योनित्यानाम् " इत्यादि श्रुतिभी आत्मबहुत्वमें प्रमाण है । नित्यत्वभी श्रुति प्रसिद्ध है । विपाश्चित् जीव (विविधप्रकार–अर्थात् विशेष रूपसे देखनेवाले) न उत्पन्न होता है और न मरता है न उत्पन्न हुआ और न

होगा अतएव उत्पत्ति विनाशरहित होनेसे अज और नित्य प्रकृतिवत् परिणामशील न होनेसे शाश्वत एवं पुरातन हैं । इस कारण शरीरका नाश होनेपरभी आत्माका नाश नहीं होता है । यदि एतादृश नित्यत्व न माना जाय तो कृतप्रणाश अकृतका आगम (प्राप्ति) असङ्ग होगा अतएव रागद्वेषादि शून्यको जन्माभाव न्यायसूत्रकारनेभी कहा है । अणुत्वभी श्रुतिसिद्ध है केशके अग्र भागके प्रथम सौ १०० टुकडे करके पश्चात् एक एकके सौ सौ टुकडे करनेसे एक भागका जो परिमाण हो वह जीवका परिमाण है वह जीव अनन्त (असंख्य) हैं । और जीवरूप पुरुष आरेकी अग्रके समान सूक्ष्म है । आत्मा (जीव) अणुपरिमाण चक्षुरादि इन्द्रियोंके अग्राह्य केवल मनसे जानने योग्य है ॥ ३४ ॥

अचिच्छब्दवाच्यं दृश्यं जडं जगत् त्रिविधं भोग्यभोगोपकरणभोगायतनभेदात् । तस्य जगतः कर्त्तोपादानं चेश्वरपदार्थः पुरुषोत्तमो वासुदेवादिपदवेदनीयः । तदप्युक्तम्—"वासुदेवः परं ब्रह्म कल्याणगुणसंयुतः । भुवनानामुपादानं कर्त्ता जीवनियामकः ॥" इति ॥ ३५ ॥

अचित्पदबोध्य दृश्य जडरूप जगत् तीन प्रकार हैं । भोग्य (घटादि) भोगोपकरण (इन्द्रियादि) भोगस्थान (शरीरादि) भेद हैं एतादृश जगत्का कर्ता और उपादान (समवाय) कारण दोनों ईश्वर है । वह पुरुषोत्तम वासुदेव नारायणादि शब्दवाच्य है । सत्यकामत्वादि कल्याणगुणयुक्त वासुदेवही परब्रह्म है वह जगत्का उपादान और कर्ता तथा जीवोंके अन्तर्यामी होकर नियमन करते हैं । इत्यादि पञ्चरात्रमें प्रसिद्ध है ॥ ३५ ॥

स एव वासुदेवः परमकारुणिको भक्तवत्सलः परमपुरुषस्तदुपासकानुगुणतत्तत्फलप्रदानाय स्वलीलावशादर्चाविभवव्यूहसूक्ष्मान्तर्यामिभेदेन पञ्चधाऽवतिष्ठते । तत्रार्चा नाम प्रतिमादयः । रामाद्यवतारो विभवः । व्यूहश्चतुर्विधः वासुदेवसङ्कर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धसंज्ञकः । सूक्ष्मं सम्पूर्णं षड्गुणं वासुदेवाख्यं परं ब्रह्म । गुणा अपहतपाप्मत्वादयः । 'सोऽपहतपाप्मा विरजो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः' इति श्रुतेः ।

अन्तर्यामी सकलजीवनियामकः 'य आत्मनि तिष्ठन्नात्मानमन्तरोयमयति'इति श्रुतेः । तत्र पूर्वपूर्वमूर्त्युपासनया पुरुषार्थपरिपन्थिदुरितनिचयक्षये सत्युत्तरोत्तरमूर्त्युपास्त्यधिकारः ॥ ३६ ॥

वही वासुदेव परम दयालु और भक्तवत्सल परमात्मा अपने उपासक भक्तोंकी उपासनाके अनुकूल फल देनेके लिये स्वकीय लीलासे पर, व्यूह, विभव, अर्चा और अन्तर्यामी इन पांच भेदोंसे अवस्थित है । अर्चा–दिव्यदेशादि मन्दिरोंकी प्रतिमा हैं, रामकृष्णादि अवतार विभव हैं, वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इन भेदोंसे चतुर्विध व्यूह हैं । सूक्ष्म सम्पूर्ण षड् ऐश्वर्य और षड्गुणादि सम्पन्न वासुदेव परब्रह्म है । अपहत पाप्मा (निष्पाप) विरज विमृत्युत्वादि तथा सत्यकामत्वादि कल्याणगुण एवम् ज्ञान शक्ति बल ऐश्वर्य वीर्य तेजप्रभृति गुण हैं । सम्पूर्ण जीवोंके नियामक परमात्मा अन्तर्यामी है " जो परमात्मा आत्मामें रहकर आत्माको अन्तर्यामी होकर नियमन करता है " इत्यादि श्रुति भी है पूवपूर्व मूर्त्तिकी उपासनासे परमपुरुषार्थ लक्षण मोक्ष विरोधी पापका क्षय होकर उत्तर उत्तर मूर्त्तिकी उपासनामें अधिकार होता है ॥ ३६ ॥

तदुक्तम्–"वासुदेवः स्वभक्तेषु वात्सल्यात् तत्तदीहितम् । अधिकार्य्यानुगुण्येन प्रयच्छति फलं बहु ॥ तदर्थं लीलया स्वीयाः पञ्च मूर्तीः करोति वै । प्रतिमादिकमर्चा स्यादवतारास्तु वैभवाः ॥ सङ्कर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः । व्यूहश्चतुर्विधो ज्ञेयः सूक्ष्मं सम्पूर्णषड्गुणम् ॥ तदेव वासुदेवाख्यं परं ब्रह्म निगद्यते ॥ अन्तर्यामी जीवसंस्थो जीवप्रेरकईरितः ॥ य आत्मानीतिवेदान्तवाक्यजालैर्निरूपितः ॥ अर्चोपासनया क्षिप्ते कल्मषेऽधिकृतो भवेत् ॥ विभवोपासने पश्चाद्व्यूहोपास्तौ ततः परम् । सूक्ष्मे तदनु शक्तः स्यादन्तर्यामिणमीक्षितुम् ॥" इति ॥ ३७ ॥

कहाभी है–वासुदेव भगवान् भक्तविषयक वात्सल्यसे अधिकारीके अनुगुण भक्तोंको अभिमत बहुविध फलको देते हैं (इसीके लिये लीलापूर्वक अर्चादि पञ्चरूपसे स्वयं अवस्थित रहते हैं) प्रतिमादि अर्चा अवतार विभव, संकर्षणादि व्यूह सम्पूर्ण छहों गुणोंसे युक्त परवासुदेव सूक्ष्म, जीवात्वामें स्थित और जीवोंको प्रेरक अन्तर्यामी है

यह सब य "आत्मनि तिष्ठन्" इत्यादि वेदान्त वचनोंसे प्रतिपादित है। अर्चाकी उपासनासे पाप क्षीण होनेपर विभवकी उपासनाके अधिकारी होते हैं अनन्तर व्यूहोपासनाके, तदनन्तर सूक्ष्मोपासनाके, तदनन्तर अन्तर्यामीके साक्षात्कार करनेमें समर्थ होते हैं ॥ ३७ ॥

तदुपासनञ्च पञ्चविधम्, अभिगमनमुपादानमिज्या स्वाध्यायो योग इति श्रीपञ्चरात्रेऽभिहितम् । तत्राभिगमनं नाम देवता-स्थानमार्गस्य संमार्जनोपलेपनादि । उपादानं गन्धपुष्पादि-पूजासाधनसम्पादनम् । इज्या नाम देवतापूजनम् । स्वाध्या-योनाम अर्थानुसन्धानपूर्वको मन्त्रजपो वैष्णवसूक्तस्तोत्रपाठो नामसङ्कीर्तनं तत्त्वप्रतिपादकशास्त्राभ्यासश्च । योगो नाम देवतानुसन्धानम् । एवमुपासनाकर्मसमुच्चितेन विज्ञानेन द्रष्ट दर्शने नष्टे भगवद्भक्तस्य तन्निष्ठस्य भक्तवत्सलः परमकारुणिकः पुरुषोत्तमः स्वयाथात्म्यानुभवानुगुणनिरवधिकानन्दरूपं पुनरावृत्तिरहितं स्वपदं प्रयच्छति । तथाच स्मृतिः—मामुपेत्य पुर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् । नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः" इति॥ स्वभक्तं वासुदेवोऽपि संप्राप्यानन्दमक्षयम् । पुनरावृत्तिरहितं स्वीयं धाम प्रयच्छाति॥"इति च ॥ ३८ ॥

उपासनाभी अभिगमन, उपादान, इज्या, स्वाध्याय और योग इन भेदोंसे पाँच प्रकार पाञ्चरात्रमें वर्णित है। मन्दिरोंमें तथा मन्दिरोंके मार्गोंमें मार्जन और लेप-नादि अभिगमन है। गन्ध पुष्पादि पूजासामग्री प्राप्त करना उपादान है। भगवत्पूजन इज्या है अर्थानुसन्धानपूर्वक अष्टाक्षर और द्वय मंत्रादिका जप पुरुषसूक्त श्रीसूक्तादि स्तोत्रपाठ, भगवन्नामकीर्तन और तत्त्वप्रतिपादक वेदान्तादि शास्त्रोंका अभ्यास स्वाध्याय है और भगवत् स्वरूपका अनुसन्धान योग है उपासनारूप कर्मसहित ज्ञानसे द्रष्टि दर्शनादि नष्ट होनेपर भगवद्विषयमें तैलधाराकी समान अविरत भक्तियुक्तको परम कारुणिक पुरुषोत्तम भगवान् स्वकीय स्परूप और स्वभावको यथावत् अनु-भवके योग्य और निरवधिक आनन्दरूप पुनरावृत्तिरहित परमपद (वैकुण्ठ) प्राप्ति-रूप मोक्षको देते हैं (भगवद्गीतामेंभी कहा है।) भगवत् प्राप्तिरूप परम सिद्धि

(मोक्ष) को प्राप्त पुरुष दुःखका आलयरूप नश्वर संसारको नहीं पाते । वासुदेव भगवान् स्वभक्तोंके परमानन्द युक्त अक्षय पुनरावृत्ति रहित स्वकीय लोकको देते हैं । इत्यादि ॥ ३८ ॥

तदेतत् सर्वं हृदि निधाय महोपनिषन्मतावलम्बनेन भगवद्बोधायनाचार्य्यकृतां ब्रह्मसूत्रवृत्तिं विस्तीर्णामालक्ष्य रामानुजः शारीरिकमीमांसाभाष्यमकार्षीत् । तत्र 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' इति प्रथमसूत्रस्यायमर्थः । अत्र अथशब्दः पूर्वप्रवृत्तकर्माधिगमनानन्तर्य्यार्थः । तदुक्तं वृत्तिकारेण–वृत्तात् कर्माधिगमादनन्तरं ब्रह्म विविदिषता " इति । अतःशब्दो हेत्वर्थः अधीतसाङ्गवेदस्याधिगततदर्थस्य विनश्वरफलात् कर्मणो विरक्तत्वाद्धेतोः स्थिरमोक्षाभिलाषुकस्य तदुपायभूतब्रह्मजिज्ञासा भवति । ब्रह्मशब्देन स्वभावतो निरस्तसमस्तदोषानवधिकातिशयासंख्येयकल्याणगुणगणः पुषोत्तमोऽभिधीयते ॥ ३९ ॥

यह सब हृदयमें रखकर सम्पूर्ण उपनिषदोंको अवलम्बन करके भगवद्बोधायनमहर्षिनिर्म्मित अतिविस्तृत ब्रह्मसूत्रवृत्तिको आधुनिक मनुष्योंको दुर्बोध जानकर भगवान् श्रीरामानुजाचार्यजीने शारीरिकमीमांसाभाष्य निर्म्माण किया। "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" यह प्रथम सूत्र है इसमें अथशब्द आनन्तर्य अर्थक है आनन्तर्य पूर्व अतीतकी अपेक्षा होता है अतीत कर्मज्ञान है अतः कर्मज्ञानके अनन्तर यह अर्थ होता है । वृत्तिकारनेभी कर्मज्ञानके अनन्तर ब्रह्मविचार कहा है अतशब्दका अर्थ हेतु है अधीतसाङ्ग समस्त वेदवेदान्त पुरुषको कर्ममें अल्प और नश्वरफलवत्त्व निश्चित होनेसे तद्विपरीत अनन्त और स्थिरफलक ब्रह्मजिज्ञासा उत्तर कालमें होती है ब्रह्मशब्दसे समस्तदोषरहित और अनवधिक असंख्यात कल्याणगुणोंका सागर पुरुषोत्तम बोधित है यद्यपि ब्रह्मशब्द सामान्यवाची है तथापि पशुशब्द चतुष्पाद जन्तुवाचक होनेपरभी " पशुना यजेत " यहांपर " छागो वा मन्त्रवर्णात् " इस न्यायसे जिस प्रकार छागरूप पशुका ग्रहण होता है तिसी प्रकार " सदेव " आत्मावेत्यादिमें प्रतिपादित सत् ब्रह्म, आत्मादि शब्द भी 'एको ह वै नारायण (अग्र) आसीत् न ब्रह्मा नेशानः" इत्यादि नारायणानुवाकके बलसे नारायणरूप विशेषार्थका निर्णायक ब्रह्मशब्द है ॥ ३९ ॥

एवञ्च कर्मज्ञानस्य तदनुष्ठानस्य च वैराग्योत्पादनद्वारा चित्त-कल्मषापनयनद्वारा च ब्रह्मज्ञानं प्रति साधनत्वेन तयोः काय्य-कारणत्वेन पूर्वोत्तरमीमांसयोरेकशास्त्रत्वम् । अतएव वृत्तिका-रा एकमेवेदं शास्त्रं जैमिनीयेन षोडशलक्षणेनेत्याहुः ॥ ४० ॥

(एवञ्चेति) कर्म ज्ञान और उसका अनुष्ठान यह दोनों वैराग्य और कल्मषनिरसन-द्वारा ब्रह्मज्ञानके साधन होनेसे कर्मज्ञान और ब्रह्मज्ञानके परस्पर कार्यकारणभाव है अतः तत्प्रतिपादक पूर्वोत्तर मीमांसा दोनोंका एक शास्त्रत्व है । अतएव वृत्तिकारनेभी षोडशलक्षणात्मक जैमिनीय शास्त्रके साथ एक शास्त्रत्व वेदान्तको कहा है । यद्यपि जैमिनिकृत मीमांसा द्वादशाध्यायात्मक है तथापि संकर्षण प्रोक्त चतुरध्यायात्मक मिलाकर षोडशाध्याय होते हैं ॥ ४० ॥

कर्मफलस्य क्षयित्वं ब्रह्मज्ञानफलस्य चाक्षयित्वं ' परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन' इत्यादि-श्रुतिभिरनुमानार्थापत्त्युपबृंहिताभिः प्रत्यपादि । एकैकनिन्दया कर्मविशिष्टस्य ज्ञानस्य मोक्षसाधनत्वं दर्शयति श्रुतिः' अन्धं तमः प्रविशन्ति येविद्यामुपासते। ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः । विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयं सह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते " इत्यादि ॥ ४१ ॥

कर्म फलका क्षयित्व और ब्रह्मज्ञानका अनन्त अक्षय फलत्व श्रुति अनुमान अर्थापत्त्यादि प्रमाण सिद्ध है ' कृष्यादि कर्मसे सम्पादित सस्यादि फलके समान यागादि कर्मसे सम्पादित स्वर्गादि फलको भी नाशवान् जानकर त्रैवर्णिक वैराग्य प्राप्त करे क्योंकि कृत अनित्य कर्मसे अकृत (नित्य) मोक्ष नहीं होता है । अध्रुव (क्षणिक) कर्मसे—ध्रुव (नित्य) मोक्ष नहीं मिलता इत्यादि श्रुति है । जो कृतक है वह अनित्य है इत्यादि अनुमान है । केवल कर्म और केवल ज्ञानको निन्दित करके कर्म समुचित ज्ञानको मोक्षसाधनता श्रुति कहती है जो केवल कर्मका अनुष्ठान करते हैं वे घोर तमोगुण प्रधान प्रकृति (संसार) को प्राप्त होते हैं । एवं जो केवल ज्ञाननिष्ठ हैं वे उससेभी अधिक तमोगुणको प्राप्त होते हैं । जो कर्म और ज्ञानको युगपत् अनुष्ठान करते हैं वे कर्मसे ज्ञानके विरोधी प्राचीन कर्मको विनाश करके विद्यासे (ज्ञान से) ब्रह्मस्वरूपको पाते हैं (कोई २ " अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा " यहांपर

" संसारं प्राप्य " ऐसा अर्थ करते हैं वह पाण्डित्यकी पराकाष्ठा वैदिक और लौकिक किसी कोशमें अथवा व्यवहारमें कहींभी प्राप्ति अर्थमें तृधातुका प्रयोग नहीं दृष्टि आता ॥ ४१ ॥

तदुक्तं पाञ्चरात्ररहस्ये–"स एव करुणासिन्धुर्भगवान् भक्तवत्सलः । उपासकानुरोधेन भजते मूर्तिपञ्चकम् ॥ तदर्चाविभवव्यूहसूक्ष्मान्तर्यामिसंज्ञकम् । यदाश्रित्यैव चिद्वर्गस्तत्तज्ज्ञेयं प्रपद्यते ॥ पूर्वपूर्वोदितोपास्तिविशेषक्षीणकल्मषः । उत्तरोत्तरमूर्तीनामुपास्त्याधिकृतो भवेत् ॥ एवं ह्यहरहः श्रौतस्मार्त्तधर्मानुसारतः । उक्तोपासनया पुंसां वासुदेवः प्रसीदति ॥ प्रसन्नात्मा हरिर्भक्त्या निदिध्यासनरूपया । अविद्यां कर्मसङ्घातरूपां सद्यो निवर्त्तयेत् ॥ ततः स्वाभाविकाः पुंसां ते संसारातिरोहिताः । आविर्भवन्ति कल्याणाः सर्वज्ञत्वादयो गुणाः ॥ ४२ ॥

अत एव पञ्चरात्रमें कहा है । भक्तप्रिय दयासागर भगवान् उपासकोंके अनुरोधसे पाँच प्रकारके विग्रहको धारण करते हैं । जिन मूर्तियोंकी उपासना करके चेतनवर्ग तत्तत्प्राप्य वस्तुको प्राप्त करते हैं । पूर्व पूर्व मूर्तियोंकी उपासनासे क्षीण पाप पुरुष उत्तरोत्तर मूर्तिकी उपासनाके अधिकारी होते हैं इसीप्रकार प्रतिदिन श्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानयुक्तपूर्वोक्त उपासनासे वासुदेव भगवान् प्रसन्न होते हैं । निदिध्यासनरूप भक्तिसे प्रसन्न भगवान् कर्मसंज्ञक अविद्याको शीघ्र दूर करते हैं । तदनन्तर चेतनको संसारदशामें तिरोहित स्वाभाविक सर्वज्ञत्वादि कल्याणगुणजात आविर्भूत होते हैं ॥ ४२ ॥

एवं गुणाः समानाः स्युर्मुक्तानामीश्वरस्य च । सर्वकर्तृत्वमेवैकं तेभ्यो देवे विशिष्यते ॥ मुक्तास्तु शेषिणि ब्रह्मण्यशेषे शेषरूपिणः । सर्वानश्नुवते कामान् सह तेन विपश्चिता"इति ॥ ४३ ॥

इस प्रकार अपहतपाप्मत्व, सर्वज्ञत्व, सत्यकामत्वादि कल्याण गुण यह सब मुक्त और ईश्वर दोनोंमें समान हैं केवल ईश्वरमें सृष्टिकर्तृत्व अधिक है सर्वशेषी (स्वामी) ब्रह्ममें शेषरूपयुक्त चेतन सम्पूर्ण कल्याण गुणको ब्रह्मके साथही अनुभव करते हैं ॥ ४३ ॥

तस्मात्तापत्रयातुरैरमृतत्वाय पुरुषोत्तमादिपदवेदनीयं ब्रह्म जिज्ञासितव्यमित्युक्तं भवति। प्रकृतिप्रत्ययैः प्रत्ययार्थं प्राधान्येन सह ब्रूत इतः स नोऽन्यत्रोति वचनबलादिच्छाया इष्यमाणप्रधानत्वादिष्यमाणं ज्ञानमिह विधेयम् ॥ ४४ ॥

अतः आध्यामिक आधिदैविक आधिभौतिकादि दुःखत्रयसे पीडित चेतनोंको अमृत (मोक्ष) प्राप्तिके लिये पुरुषोत्तमादि शब्दवाच्य परब्रह्मविषयक जिज्ञासा करनी चाहिये। ब्रह्मजिज्ञासापद सन्प्रत्ययान्त है सन्प्रत्ययका अर्थ इच्छा और प्रकृतिका अर्थज्ञान है प्रकृति प्रत्ययार्थके मध्यमें प्रत्ययार्थ प्रधान होता है एवञ्च प्रत्ययार्थ इच्छाप्रधान होनेपरभी इच्छा पुरुषाधीन न होनेसे उसका विधान असम्भव है धात्वर्थज्ञान इच्छामें विशेषणीभूत होनेसे उसकाभी विधान सम्भव है। इसी अभिप्रायसे कहते हैं प्रकृति प्रत्यय इत्यादि न्याय सन् प्रत्ययसे अन्यत्र लगता है। इसमें युक्ति यह है कि इच्छा विषयके परतन्त्र होती है। एवञ्च ज्ञानकी इच्छा ज्ञानके परतन्त्र होनेसे इच्छाका कर्मभूतज्ञान प्रधान है अतः इष्यमाण ज्ञानही विधेय है यही प्रकृति प्रत्यय इत्यादि विधय पर्यन्त ग्रन्थका तात्पर्य है ॥ ४४ ॥

तच्च ध्यानोपासनादिशब्दवाच्यं वेदनम्, न तु वाक्यजन्यमापातज्ञानम्। पदसन्दर्भश्राविणो व्युत्पन्नस्य विधानमन्तरेणापि प्राप्तत्वात् 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः। आत्मेत्येवोपासीत विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत अनुविद्य विजानाति'' इत्यादिश्रुतिभ्यः। अत्र श्रोतव्य इत्यनुवादः। अध्ययनविधिना साङ्गस्य ग्रहणे अधीतवेदस्य पुरुषस्य प्रयोजनवदर्थदर्शनात्तन्निर्णयाय स्वरसत एव श्रवणे प्रवर्त्तमानतया तस्य प्राप्तत्वात्। मन्तव्य इति चानुवादः श्रवणप्रतिष्ठार्थत्वेन मननस्यापि प्राप्तत्वादप्राप्ते शास्त्रमर्थवदिति न्यायात्। ध्यानञ्च तैलधारावदविच्छिन्नस्मृतिसन्तानरूपा ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिप्रतिलम्भेसर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्ष इति ध्रुवायाः स्मृतेरेव मोक्षोपायत्वश्रवणात्। सा च स्मृतिर्दर्शनसमानाकारा ॥ ४५ ॥

वह ज्ञान ध्यान और उपासनादि रूप है वाक्यसे जायमान आपात प्रतीत वाक्यार्थ ज्ञानरूप नहीं है क्योंकि व्याकरण काव्यकोशादि ज्ञानवान् व्युत्पन्न पुरुषको पदसमूहरूप वाक्य श्रवणके अनन्तर विधिवाक्यके विनाभी वाक्यार्थ ज्ञान होनेसे विधान व्यर्थ है । अतः वाक्यार्थज्ञानसे विलक्षण ध्यान और उपासनादिरूप ज्ञानही वेदान्तवाक्योंसे विधीयमान है क्योंकि 'आत्मा वाअरे द्रष्टव्य' इत्यादि वाक्य श्रवण मननादि पूर्वक निदिध्यासनका विधान करते हैं आत्मात्येव उपासीत' यह वाक्यभी उपासनाका विधान करता है । विज्ञाय यहांपरभी प्रज्ञापदसे उपासनाहीका ग्रहण है अत एव विज्ञाय और प्रज्ञा दोनों पद चरितार्थ होते हैं अन्यथा दोनों ज्ञान सामान्य वाची हो तो एवपद व्यर्थ होजायगा "अनुविद्यावि जानाति" ध्यान और उपासनाहीका बोधक है तात्पर्य यह है वेदान्तवाक्योंमें वेदन ज्ञान उपासना ध्यानादि शब्द सब पर्याय है अत एव " मनो ब्रह्मेत्युपासीत " यहां उपासनासे उपक्रम करके " य एवं वेद " यहां विदसे उपसंहार किया है । न स वेद यहां वेदनसे उपक्रम करके " आत्मेत्येवोपासीत " इति उपासनासे उपसंहार किया है । श्रीशंकराचार्यनेभी " आवृत्तिरसकृदुपदेशात्" इस सूत्रके भाष्यमें इन बातोंको स्पष्ट किया है " आत्मावाअरे द्रष्टव्यः" इत्यादिमें श्रवणका विधान नहीं हो सकता क्योंकि स्वाध्यायोऽध्येतव्यः " इति अध्ययन विधि साङ्ग समस्त वेदोंके अध्ययनका विधान करता है वह केवल शब्द पाठमात्रको नहीं बोध करता किन्तु अर्थज्ञानपर्यन्तका बोधक है अतः अधीतवेदपुरुष प्रयोजनरूप अर्थके निर्णयके लिये स्वयं प्रवृत्त होगा एवञ्च श्रवण स्वतः प्राप्त होनेसे उसका विधान नहीं होसकता । मननकाभी विधान नहीं होसकता क्योंकि श्रवणकी प्रतिष्ठाके लिये मनन होता है मन्तव्य यहभी अनुवाद है अतः ध्यानमात्रका विधान होता है अप्राप्त अर्थके विधानसे शास्त्र सार्थक होता है तादृश ज्ञान "आवृत्तिरसकृदुपदेशात्" इत्यादि सूत्रसे प्रतिपादित विजातीय ज्ञानरहित तैलधाराकी समान विच्छेद (विराम) शून्य स्मृतिपरम्परा है ध्रुव (निश्चल) स्मृति है स्मृति स्थिर होनेसे हृदयके रागादि समस्त ग्रन्थियोंका विनाश होता है अतः मोक्षका उपाय केवल स्मृति है वह स्मृति प्रत्यक्षकी समानाकार होती है ॥ ४५ ॥

"भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥" इत्यनेनैकत्वात् । तथाच आत्मा वा अरे द्रष्टव्य इत्यानेनास्यादर्शनरूपता विधीयते । भवति च भावनाप्रकर्षात् स्मृतेर्दर्शनरूपत्वम् । वाक्यकारेणैतत् सर्वं प्रपञ्चितं वेदनमुपासनं स्यात् इत्यादिना । तदेव ध्यानं

विशिनष्टि श्रुतिः-'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन । यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्" इति। प्रियतम एव हि वरणीयो भवति यथायं प्रियतममात्मानं प्राप्नोति तथा स्वयमेव भगवान् प्रियतम इति भगवतैवाभिहितम् "तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् । ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥" इति । 'पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया' इति च ॥ ४६ ॥

(भिद्यते इति) परावर परमात्माके दर्शन (निरविच्छिन्न) स्मृतिसे हृदय मनके ग्रन्थि (रागादि) नष्ट होते हैं अथवा हृदयप्रदेशमें विद्यमान जीवकी प्रकृति सम्बन्धरूप ग्रंथिएं नष्ट होती हैं और समस्त देहात्माभिमानादि अविद्यारूप संशय नष्ट होता है पुण्यपापरूप मोक्षविरोधी समस्त कर्म क्षीण होते हैं । इस श्रुतिके साथ एकवाक्यता होनेसे पूर्वोक्त ज्ञान वेदनादि सब प्रत्यक्षतापन्न स्मृतिपरक है। श्रीबोधायन महर्षिनेभी वेदनको उपासना कहा है "आत्मावाअरेद्रष्टव्यः" यह वाक्यभी स्मृतिको दर्शनरूप प्रतिपादन करता है निरातिशय भावना वश स्मृतिभी प्रत्यक्ष समानाकार होती है । तादृश स्मृतिका विशेषण कहते हैं (नायमात्मेति) प्रवचनशब्दकी मनन अर्थमें लक्षणा है क्योंकि प्रवचनका फलभी मनन है मेधाशब्दका अर्थ निदिध्यासन है तथाच केवल श्रवण मनन और निदिध्यासन मोक्षके लिये उपाय नहीं हैं इसका तात्पर्य यह नहीं कि श्रवणादिक उपायही नहीं किन्तु जैसे "न पृथिव्यामग्निश्चेतव्यः" यहाँपर हिरण्यरहित पृथिवीका निषेध करता है तैसेही केवल श्रवणादिका निषेध करता है (यमेवेति) वह आत्मा जिनको स्वीकार करता है उन्हीको प्राप्त होता है जो अत्यन्त प्रिय हो वही स्वीकार योग्य होता है जिसको आत्मा (ईश्वर) निरातिशय प्रिय हो वही ईश्वरकाभी प्रिय होता है जिस प्रकार जीव प्रियतम ईश्वरको प्राप्त होता है उसको गीतामें भगवान्ने स्वयं कहाहै । (तेषामिति) जो निरन्तर योगको कथन करनेवाले अनन्य भक्त हैं उनको मैं उस शुद्ध ज्ञानको प्रीतिपूर्वक देता हूं जिस ज्ञानसे वह मुझको प्राप्त होते हैं (पुरुषः स परेति) परम पुरुष परमात्मा अनन्य भक्तिसे प्राप्त होते हैं ॥ ४६ ॥

भक्तिस्तु निरतिशयानन्दप्रियानन्यप्रयोजनसकलेतरवैतृष्ण्यवज्ज्ञानविशेष एव । तत्सिद्धिश्च विवेकादिभ्यो भवतीति वाक्य-

कारेणोक्तं ' तल्लब्धिर्विवेकविमोकाभ्यासक्रियाकल्याणानवसादानुद्धर्षेभ्यः सम्भवान्निर्वचनाच्च' इति । तत्र विवेको नामादुष्टादन्नात् सत्त्वशुद्धिः,अत्र निर्वचनम्–आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः" इति । विमोकः कामानभिष्वङ्गः शान्त उपासीतेति निर्वचनम् । पुनः पुनः संशीलनमभ्यासः । निर्वचनञ्च स्मार्त्तमुदाहृतं भाष्यकारेण–'सदा तद्भावभावितः" इति । श्रौतस्मार्त्तकर्मानुष्ठानं शक्तितः क्रिया क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठ इति निर्वचनम् । सत्यार्जवदयादानादीनि कल्याणानि सत्येन लभ्य इत्यादिनिर्वचनम् दैन्यविपर्य्ययोऽनवसादः नायमात्मा बलहीनेन लभ्यंत इति निर्वचनम् । तद्विपर्य्ययजा तुष्टिरनुद्धर्षः शान्तो दान्त इति निर्वचनम् । तदेवमेवंविधनियमविशेषसमासादितपुरुषोत्तमप्रसादविध्वस्ततमःस्वान्तस्य अनन्यप्रयोजनानवरतनिरतिशयप्रियवदात्मप्रत्ययावभासतापन्नध्यानरूपया भक्त्या पुरुषोत्तमपदं लभ्यत इति सिद्धम् ॥ ४७ ॥

(भक्तिस्तु इति) निरतिशय आनन्द प्रिय और अनन्यप्रयोजन तथा इतर समस्त विषयोंसे वैराग्यरूप ज्ञानविषेश भक्ति है तादृश ध्रुवानुस्मृतिरूप भक्तिकी सिद्धि विवेकादिसे होती है विवेक, विमोक, अभ्यास, क्रिया, कल्याण, अनवसाद, अनुद्धर्ष, यही विवेकादिक हैं जातिदुष्ट कलञ्जादि और आश्रयदुष्ट गणिकान्नादिसे और उच्छिष्ट या केशादिनिमित्तदुष्ट इन तीनों प्रकारके अन्नोंको छोडकर शुद्ध अन्नसे शरीरकी शुद्धिको विवेक कहते हैं क्योंकि आहारशुद्धिसे चित्तकी शुद्धि होती है और चित्तकी शुद्धिसे ध्रुव स्मृति होती है । कामादिमें आसक्तिके त्यागको विमोक कहते हैं क्योंकि शान्त अर्थात् रागद्वेषरहित होकर उपासना करें ऐसी श्रुति कहती है वारंवार परिशीलनका नाम अभ्यास है । सदा परमात्मानुसन्धान करें इस प्रकार स्मृति कहती है शक्तिके अनुसार पञ्चमहायज्ञादिका अनुष्ठान क्रिया है क्योंकि जो क्रियावान् है-वह ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ है ऐसे श्रुति कहती है सत्य आर्जव दया और दानका नाम कल्याण है सत्यसे ब्रह्मप्राप्ति होती है ऐसी श्रुति है चित्तके अदैन्यको अनवसाद कहते हैं (नायमात्मेत्यादि) श्रुति इसका निर्वचन है चित्तके जो दैन्य है

उससे जायमान तज्ज है उससे विपरीत तद्विपर्ययज सन्तोषको उद्धर्ष कहते हैं इससे विपरीत अनुद्धर्ष है अत्यन्त सन्तोषभी विरोधी होता है शान्तोदान्त इत्यादि श्रुति है एतादृश नियमविशेषोंसे आराधित परमात्माके प्रसादसे जिनके चित्तके रागादिक नष्ट हो गये हों उनको निरतिशय प्रिय और प्रयोजनान्तर शून्य प्रत्यक्षतापन्न भक्तिद्वारा परम पुरुष परमात्मा प्राप्त होते हैं ॥ ४७ ॥

तदुक्तं यामुनेन–"उभयपरिकर्मितस्वान्तस्यैकान्तिकात्यन्तिकभक्तियोगलभ्यः" इति। ज्ञानकर्मयोगसंस्कृतान्तःकरणस्येत्यर्थः ॥ ४८ ॥

श्रीयामुनाचार्यजीने कहा है–ज्ञानयोग तथा कर्मयोगसे परिशुद्धान्तःकरण पुरुषको अनन्य और निरतिशय भक्तिसे परमात्मा प्राप्त होते हैं ॥ ४८ ॥

किं पुनर्ब्रह्म जिज्ञासितव्यमित्यपेक्षायां लक्षणमुक्तं 'जन्माद्यस्य यतः' इति। जन्मादीति सृष्टिस्थितिप्रलयं तद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः अस्याचिन्त्यविचित्ररचनारच्यस्य नियतदेशकालभोगब्रह्मादिस्तम्बपर्य्यन्तक्षेत्रज्ञमिश्रस्य जगतः यतो यस्मात् सर्वेश्वरात् निखिलहेयप्रत्यनीकस्वरूपात् सत्यसङ्कल्पाद्यनवधिकातिशयासंख्येयकल्याणगुणात् सर्वज्ञात् सर्वशक्तःपुंसःसृष्टिस्थितिप्रलयाः प्रवर्त्तन्त इति सूत्रार्थः ॥ ४९ ॥

ब्रह्मजिज्ञासा करनी चाहिये ऐसा कहा है वह ब्रह्म किंरूप है इस आशंकासे ब्रह्मस्वरूप कहते हैं (जन्माद्यस्येति) जन्म है आदि जिसमें ऐसे तद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहिसमाससे जन्म, स्थिति, लय गृहीत होते हैं अभिप्राय यह है कि बहुव्रीहि दो प्रकार है एक तद्गुणसंविज्ञान दूसरा अतद्गुणसंविज्ञान । प्रथममें विग्रहवाक्यगत पदके अर्थ सहित अन्य पदार्थका ग्रहण होता है यथा लम्बकर्णको लाओ दूसरेमें विग्रह वाक्यगत पदार्थका ग्रहण नहीं यथा समुद्रको जिसने देखा हो उसको लाओ। तद्वत् यहांपर भी जन्मसहित अन्यपदार्थका ग्रहण होता है तथा च विचित्र रचनासे रचित देश, काल, भोगसे नियत ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त क्षेत्रज्ञयुक्त जिस सकल हेयगुणरहित कल्याणगुणयुक्त सर्वेश्वर सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् पुरुषसे जगत्की सृष्टि स्थिति और प्रलय हों वही ब्रह्म है । यह सूत्रार्थ है ॥ ४९ ॥

इत्थम्भूते ब्रह्मणि किं प्रमाणमिति जिज्ञासायां शास्त्रमेव प्रमाणमित्युक्तं 'शास्त्रयोनित्वात् इति'। शास्त्रं योनिः कारणं प्रमाणं

यस्य तच्छास्त्रयोनि तस्य भावस्तत्त्वं तस्माद् ब्रह्मज्ञानकारणा-त्मज्ञानकारणत्वात् शास्त्रस्य तद्योनित्वं ब्रह्मण इत्यर्थः । न च ब्रह्मणःप्रमाणान्तरगम्यत्वं शङ्कितुं शक्यमतीन्द्रियत्वेन प्रत्यक्ष-स्य तत्र प्रवृत्त्यनुपपत्तेः नापि महार्णवादिकं सकर्तृकं कार्यत्वात् घटवत् इत्यनुमानस्य पूतिकूष्माण्डायमानत्वात् । तल्लक्षणं ब्रह्म, यतो वा इमानि भूतानीत्यादिवाक्यं प्रतिपादयतीति स्थितम् ॥ ९० ॥

एतादृश ब्रह्ममें प्रमाण क्या है ? ऐसी आशंका करके शास्त्रैक प्रमाण कहते हैं । शास्त्रही योनि (कारण) अर्थात् प्रमाण हो जिसमें वह शास्त्र योनि है ब्रह्मज्ञानका आत्मज्ञान कारण होनेसे ब्रह्मभी शास्त्र योनि हुआ वस्तुतः शास्त्रैक प्रमाण ब्रह्म है मनु आदि धर्मशास्त्रकारोंने प्रत्यक्ष अनुमान आगम (शास्त्र) तीन प्रमाण माने हैं ब्रह्मसे केवल शास्त्रही प्रमाण क्यों है? ऐसी शंकाका खण्डन करते हैं ब्रह्म अतीन्द्रिय होनेसे प्रत्यक्षका विषय नहीं, पृथिवी समुद्रादि कार्य होनेसे सकर्तृक है । अतः जो कर्ता हो वह ब्रह्म है इत्यादि अनुमान भी सडी हुई कूष्मांडकी समान है । तात्पर्य-लोकमें जितने गृहमान्दिरादि महान् कार्य हैं उन सबको अनेक पुरुष मिलके करते हैं अतः मही महार्णवादि कार्यभी अनेक पुरुष मिलके कृत सिद्ध होगा तो अभिमत ब्रह्मसिद्ध नहीं होगी ' यतोवा ' इत्यादिश्रुतिसे एवं द्वितीय सूत्रसे ब्रह्मका लक्षण और तृतीय सूत्रसे ब्रह्ममें प्रमाण प्रतिपादन किया ॥ ९० ॥

यद्यपि ब्रह्म प्रमाणान्तरगोचरतां नावतरति तथापि प्रवृत्तिनि-वृत्तिपरत्वाभावसिद्धरूपं ब्रह्म न शास्त्रं प्रतिपादयितुं प्रभवतीति एतत्पर्य्यनुयोगपरिहारायोक्तं 'तत्तु समन्वयात्' इति । तुशब्दः प्रसक्ताशङ्काव्यावृत्त्यर्थः । तच्छास्त्रप्रमाणकत्वं ब्रह्मणः सम्भ-वत्यवे कुतः समन्वयात् परमपुरुषार्थभूतस्यैव ब्रह्मणोऽभिधेय-तयान्वयादित्यर्थः । न च प्रवृत्तिनिवृत्त्योरन्यतरविरहिणः प्रयो-जनशून्यत्वं स्वरूपपरेष्वपि पुत्रस्ते जातः नायं सर्प इत्यादिषु हर्षभयनिवृत्तिरूपप्रयोजनत्वं दृष्टमेवेति न किञ्चिदनुपपन्नम् ।

दिङ्मात्रमत्र प्रदर्शितं विस्तरस्त्वाकरादेवावगन्तव्य इति विस्तरभीरुणोदास्यत इति सर्वमनाकुलम् ॥ ५१ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहे रामानुजदर्शनं समाप्तम् ॥ ४ ॥

शंका–जैसे प्रत्यक्ष और अनुमानका विषय ब्रह्म नहीं वैसेही शास्त्रकाभी विषय नहीं हो सकता क्योंकि मीमांसक कहते हैं " आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम् " विधिप्रत्यययुक्त क्रियापरक जो वेदवाक्य है वही प्रमाण है इससे विपरीत अनर्थक है अतः प्रवृत्ति निवृत्ति अन्यतर बोधकसे रहितवाक्य सिद्ध ब्रह्मको शास्त्रप्रतिपादन नहीं कर सकता, ऐसी शंकाके परिहारार्थ चतुर्थ सूत्रका अवतार कहते हैं ' तुशब्द ' प्रकृत शंकानिरासक है ब्रह्म शास्त्रप्रमाणक हो सकता है कारण परम पुरुषार्थ बोधनद्वारा ब्रह्म बोधक होनेसे वाचकतासम्बन्धसे अन्वित है यदि कहो प्रवृत्ति और निवृत्ति बोधनशून्य वाक्य निष्प्रयोजन होनेसे अनर्थक होगा यह नहीं 'तुम्हारे पुत्र हुआ यह सर्प नहीं है' इत्यादि सिद्धवस्तुबोधक वाक्यसे भी हर्ष तथा भयनिवृत्तिरूप प्रयोजन देख पडता है अतः सिद्धवस्तुबोधनमें कोई अनुपपत्ति नहीं है यह केवल दिक्दर्शन मैंने किया अधिक जिज्ञासु श्रीभाष्यादि प्रबन्धसे जानलें ॥ ५१ ॥

सर्वदर्शनसंग्रहमें श्रीरामानुज दर्शन समाप्त ।

अथ पूर्णप्रज्ञदर्शनम् ॥ ५ ॥

तदेतद्रामानुजमतं जीवाणुत्वदासत्ववेदापौरुषेयत्वसिद्धार्थबोधकत्वस्वतःप्रमाणत्वप्रमाणत्रित्वपाञ्चरात्रोपजीव्यत्वप्रपञ्चभेदसत्यत्वादिसाम्येऽपि परस्परविरुद्धभेदादिपक्षत्रयकक्षीकारेण क्षपणकपक्षनिक्षिप्तमित्युपेक्षमाणः स आत्मा तत्त्वमसीत्यादेर्वेदान्तवाक्यजातस्य भङ्ग्यन्तरेणार्थान्तरपरत्वमुपपाद्य ब्रह्ममीमांसाविवरणव्याजेनानन्दतीर्थः प्रस्थानान्तरमास्थित । तन्मते हि द्विविधतत्त्वं स्वतन्त्रास्वन्त्रभेदात् । तदुक्तं तत्त्वविवेके । "स्वतन्त्रमस्वतन्त्रं च द्विविधं तत्त्वमिष्यते । स्वतन्त्रो भगवान् विष्णुर्निर्दोषोऽशेषसद्गुणः॥ "इति ॥ १ ॥

पूर्णप्रज्ञ (माध्व) सिद्धान्त ।

यद्यपि रामानुजीय मतमें कहे हुए जीवका अणुपरिमाणत्व वेदापौरुषेयत्व उपनिदकी सिद्ध ब्रह्म बोधकत्व प्रमाणका स्वतः प्रामाण्य "प्रत्यक्षमनुमानंच शास्त्रं च विविधागमम्" इत्यादि स्मृतिबलसे प्रत्यक्षादि प्रमाणत्रयत्व "पंचरात्रस्य कृत्स्नस्य वक्ता नारायणः स्वयम्" इत्युक्त प्रकार पंचरात्रागमका प्राधान्यादि और प्रपंचसत्यत्वादि सिद्धान्ति सम्मत है तथापि भेदश्रुति अभेदश्रुति घटकश्रुतिरूप त्रिविध श्रुति प्रतिपादित होनेपरभी शरीर शरीरीभावसे भेद अभेद और विशिष्टत्वादि पक्षत्रय मानना पूर्वोक्त जैनसिद्धान्तके समान है। अतः तत्वमस्यादिवेदान्तवाक्योंको प्रकारान्तरसे व्याख्यानके लिये ब्रह्मसूत्रविवरणव्याजसे प्रस्थानान्तर करते हैं ॥ माध्वमतमें संक्षेपतः स्वतन्त्र और अस्वतन्त्र रूप दो तत्व हैं समस्तकल्याणगुणाकर हेयगुणरहित भगवान् विष्णु स्वतन्त्र तत्त्व है ॥ १ ॥

ननु सजातीयविजातीयस्वगतनानात्वशून्यं ब्रह्म तत्त्वमितिप्रतिपादकेषु वेदान्तेषु जागरूकेषु कथमशेषसद्गुणत्वं तस्य कथ्यत इति चेन्मैवम्, भेदप्रमापकबहुप्रमाणविरोधेन तेषां तत्र प्रामाण्यानुपपत्तेः । तथाहि प्रत्यक्षं तावदिदमस्माद्भिन्नमिति नीलपीतादेर्भेदमध्यक्षयति ॥ २ ॥

प्रत्यक्ष श्रुतिविरुद्ध होनेसे उक्त विभागके असंगतत्वकी आशंका करते हैं(ननुइति) "सदेवसौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितयिम्" इस श्रुतिमें सत् पदसे असत्रूपकी व्यावृत्ति है एवपदसे विजातीय अचेतन व्यावृत्ति और एकपदसे सजातीय जीवादि व्यावृति है अद्वितीयपदसे स्वगत भेदकी व्यावृत्ति होती है । एवंच समस्त भेदशून्य निर्विशेष चिन्मात्र ब्रह्मस्वरूप बोधक वेदान्तके रहते विविध भेद सत्यत्व मानना सर्वथा अप्रामाणिक है । परिहार करते हैं (मैवमित्यादि)"पृथगात्मानं प्रेरितारंच मत्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति" "नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्" इत्यादि भेदप्रतिपादक अनेक श्रुतियोंके विरोधे होनेसे सदेवेत्यादि श्रुतियोंको वास्तवमें अभेदबोधकत्व नहीं हो सकता पूर्वापरवाक्यको विना विचारे

---

१ तात्पर्य यह है "यस्मात्मा शरीरम्" इत्यादि अन्तर्यामी ब्राह्मणसे शरीर शरीरभाव सिद्ध है शरीर शरीरीका भेदाभेदभी लोकव्यवहारसिद्ध है अतः उस मतमें तीनों प्रकारकी श्रुतियोंकी संगति होती है । केवल भेदवादीके मतमें अभेद श्रुति एवं केवल अभेदवादीके मतमें भेद श्रुति तथा दोनोंके मतमें घटक श्रुति सर्वथा बाधितार्थ रहेगी यही विशेष है।

आपाततः अभेदार्थ वर्णन करते हैं । उसीको उपपादन करते हैं (तथाहीति) नील-पीतादिमें परस्पर भेद प्रत्यक्ष सिद्ध है । प्रत्यक्षसिद्ध वस्तुका अपलाप प्रमाणान्तरसे नहीं कर सकता अन्यथा अग्निमें प्रत्यक्ष सिद्ध उष्णत्वादिका अनुमानादिसे बाध होने लगेगा ॥ २ ॥

अथ मन्येथाः किं प्रत्यक्षं भेदमेवावगाहते किं वा धर्मिप्रतियोगिघटितम् । न प्रथमः, धर्मिप्रतियोगिप्रतिपत्तिमन्तरेण तत्सापेक्षस्य भेदस्याशक्याध्यवसायत्वात् । द्वितीयोऽपि धर्मिप्रतियोगिग्रहणपुरस्सरं भेदग्रहणमथवा युगपत् तत्सर्वग्रहणम् । न पूर्वः बुद्धेर्विरम्य व्यापाराभावात् अन्योन्याश्रयप्रसङ्गाच्च । नापि चरमः कार्य्यकारणबुद्ध्योर्यौगपद्याभावात् । धर्मिप्रतीतिर्हि भेदप्रत्ययस्य कारणं सन्निहितेऽपि धर्मिणि व्यवहितप्रतियोगिज्ञानमन्तरेण भेदस्याज्ञातत्वेनान्वयव्यतिरेकाभ्यां कार्य्यकारणभावावगमात् ॥ तस्मान्न भेदप्रत्यक्षं सुप्रसरम् ॥ ३ ॥

भेदके प्रत्यक्ष होनेसे अभेद श्रुतिको अर्थान्तर परत्व जो कहा सो तभी होसकता है जब प्रत्यक्षसे भेदका ग्रहण होता हो परन्तु प्रत्यक्षसे भेदका ग्रहणही असम्भव क्योंकि प्रत्यक्ष केवल भेदको ग्रहण करता है, या धर्मी प्रतियोगीसहित भेदको ग्रहण करता है ? जिसमें भेद लाना हो वह धर्मी है जिसका भेद कहना हो वह प्रतियोगी है । यथा 'घटो न पटः' यहांपर घटका भेद पटमें कहना है तो पट धर्मी और घट प्रतियोगी है घट प्रतियोगिक भेदविशिष्ट पट ऐसा वाक्यार्थ है । (न प्रथम इति) किसी वस्तुमें अन्यवस्तुका भेद कहा जाता है भेद अन्योन्याभाव है अभावज्ञानमें प्रतियोगीज्ञान कारण है तथाच धर्मी ज्ञान और प्रतियोगी ज्ञानके विना भेदज्ञान नहीं होसकता । द्वितीय पक्षकोभी विकल्प करके दूषित करते हैं (द्वितीयोपीति) प्रत्यक्ष धर्मी और प्रतियोगीको ग्रहण करके भेदको ग्रहण करता है, या एकही कालमें तीनोंको ग्रहण करेगा ? चक्षुरादिके संयोगानन्तर भेद या प्रतियोगी एकको ग्रहण करके बुद्धिके व्यापारकी निवृत्ति होनेपर व्यापारान्तर न होनेसे दूसरेको नहीं ग्रहण कर सकते बुद्धिका ठैर ठैर कर व्यापार नहीं होता है । भेदके ग्रहणसे धर्मी ओर प्रतियोगीका ग्रहण होगा धर्मी और प्रतियोगीके ग्रहणसे भेदका ग्रहण होगा इस प्रकार अन्योन्याश्रयभी है अतः प्रथमविकल्प नहीं हो सकता । कार्य कारण दोनों ज्ञान एक कालमें बाधित

होनेसे द्वितीय पक्षभी नहीं होसकता । धर्मीज्ञान और प्रतियोगीज्ञान दोनों भेद-ज्ञानके कारण हैं क्योंकि पटादि धर्मी समीप दृष्ट होनेपरभी दूरवर्ती प्रतियोगीके ज्ञानके विना भेदज्ञान नहीं होता है अतः अन्वय व्यतिरेकसे दोनोंमें परस्पर कार्य कारणभाव निश्चित होता है । इस कारण भेद प्रत्यक्ष किसी प्रकारमें नहीं हो सकता ॥ ३ ॥

इतिचेत् किं वस्तुस्वरूपभेदवादिनं प्रति इमानि दूषणान्युद्घुष्यन्ते किं धर्मिभेदवादिनं प्रति। प्रथमे चोरापराधान्माण्डव्यनिग्रहन्यायापातः भवदभिधीयमानदूषणानां तद्विषयत्वात् ॥४ ॥

खण्डन—क्या स्वरूप भेदवादीके प्रति यह दोष देते हो, किंवा धर्मी भेदवादीके मतमें ? यदि स्वरूप भेदवादीके मतमें कहो तो सर्वथा विपरीत है (चोरापराधेनेति) यह कथा महाभारतकी है एक समय कोई चोरके भ्रमसे माण्डव्य ऋषिको पकड कर राजाके पास ले गये राजाने शूलीकी सजा दी शूलीमें चढनेके अनन्तर यम-लोकमें जाकर धर्मराजसे पूछा मैंने क्या अपराध किया जिससे मुझको शूलीपर चढना पडा धर्मराजने कहा आप बाल्यावस्थामें छोटे छोटे कीडोंको पकडकर कण्टकसे छेदा करते थे उस पापके फलसे आज आपको शूलीपर चढना पडा । इस बातको सुनकर माण्डव्य ऋषिने क्रुद्ध होकर धर्मराजको शाप दिया मैंने अज्ञानसे बाल्यावस्थामें ऐसा कर्म किया था अज्ञानमें किये कर्मका पाप नहीं होता परन्तु तुमने इतना कडा दण्ड दिया इसलिये मर्त्त्यलोकमें शूद्रयोनिमें जन्म लोगे वही विदुर हुए उस दिनसे बालकको कोई प्रकार पाप नहीं लगता पूर्वोक्त दूषण एकभी स्वरूप भेदके विषयमें नहीं लगता है ॥ ४ ॥

ननु वस्तुस्वरूपस्यैव भेदत्वे प्रतियोगिसापेक्षत्वं न घटते घटवत् प्रतियोगिसापेक्ष एव सर्वत्रभेदः प्रथत इति चेन्न, प्रथमं सर्वतोविलक्षणतया वस्तुस्वरूपे ज्ञायमाने प्रतियोग्यपेक्षया विशिष्टव्यवहारोपपत्तेः । तथाहि परिमाणघटितं वस्तुस्वरूपं प्रथममवगम्यते पश्चात् प्रतियोगिविशेषापेक्षया ह्रस्वं दीर्घमिति तदेव विशिष्य व्यवहारभाजनं भवति ॥ ५ ॥

शंका—यदि वस्तुके स्वरूपको ही भेद कहो तो प्रतियोगीके ग्रहणद्वारा ही भेदका ग्रहण होता है इस प्रकट भेदका प्रतियोगिसापेक्षत्व नियम है सो नहीं रहेगा यथा घट

स्वरूपग्रहणमें प्रतियोगीकी अपेक्षा नहीं होती है । उत्तर (इति चेन्नेति) रूप भेद प्रथम घटादिवस्तु पटादिसे रूपभेद विलक्षण आकार गृहित होता है अनन्तर पटभेदवान् घट इत्यादि विशिष्ट व्यवहारके लिये प्रतियोगीकी अपेक्षा होती है जिस प्रकार परिमाणगुणविशिष्ट वस्तुस्वरूपका ज्ञान प्रथम होता है पश्चात् किसी प्रतियोगी विशेषके प्रति ह्रस्वत्व दीर्घत्वादिका ग्रहण होता है यहां प्रतियोगीकी अपेक्षा उत्तरकालमें होती है ॥ ५ ॥

तदुक्तं विष्णुतत्त्वनिर्णये-न च विशेषणविशेष्यतया भेदसिद्धिः। विशेषणविशेष्यभावश्च भेदापेक्षधर्मिप्रातियोग्यपेक्षया भेदसिद्धिः भेदापेक्षश्च धर्मिप्रतियोगित्वमित्यन्योन्याश्रयतया भेदस्यायुक्तिः, पदार्थस्वरूपत्वाद्भेदस्येत्यादिना । अतएव गवार्थिनो गवयदर्शनान्न प्रवर्त्तन्ते गोशब्दश्च न स्मरन्ति ॥ ६ ॥

उक्त अर्थमें प्रमाण देते हैं (तदुक्तमिति) विशेष्य विशेषणभावसे भेद नहीं सिद्ध हो सकता कारण विशेष्यविशेषणभावमें भेदके लिये अपेक्षित धर्मी और प्रतियोगीकी अपेक्षा होती है एवं धर्मी और प्रतियोगीको भेदकी अपेक्षा होती है इसी प्रकारसे अन्योन्याश्रय होता है अतः भेदसिद्धिमें युक्ति नहीं हैं ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि भेदवस्तुका स्वरूपही है भेद और वस्तुस्वरूप एक होनेपरभी घटादिशब्द कहनेपर प्रतियोगीकी अपेक्षा नहीं होती है भेद कहनेपर प्रतियोगीकी अपेक्षा होती है यह शब्द शक्ति स्वभाव है । भेदवस्तु स्वरूप होनेहीसे गवार्थी गवयजन्तुको देखकर न गौको लानेके लिये प्रवृत्त होता है न अयंगौः ऐसा स्मरणही करता है ॥ ६॥

नच नीरक्षीरादौ स्वरूपे गृह्यमाणे भेदप्रतिभासोऽपि स्यादिति भणनीयम्, समानाभिहारादिप्रतिबन्धकबलाद्भेदभानव्यवहाराभावोपपत्तेः। तदुक्तम्-"अतिदूरात् सामीप्यादिन्द्रियघातान्मनोऽनवस्थानात् । सौक्ष्म्याद् व्यवधानादभिभवात् समानाभिहाराच्च" इति । अतिदूरात् गिरिशिखरवर्त्तितर्वादौ अतिसामीप्याल्लोचनाञ्जनादौ इन्द्रियघाताद्विद्युदादौ मनोऽनवस्थानात् कामाद्युपप्लुतमनस्कस्य स्फीतालोकवर्त्तिनि घटादौ सौक्ष्म्यात् परमाण्वादौ व्यवधानात् कुड्याद्यन्तर्हिते अभिभवात् दिवा प्रदीपप्रभादौ समानाभिहारात् नीरक्षीरादौ यथावद् ग्रहणं नास्तीत्यर्थः॥७॥

यदि कहो भेद वस्तुका स्वरूप है तो जलमिश्रित दूधमें परस्पर जल और दूधका भेदग्रहण होने लगेगा सोभी नहीं समान वस्त्वन्तरसे अभिभूत होनेसे परस्पर भेद-ग्रहण नहीं होता है । अत एव सांख्यतत्वकौमुदीमें कहा है (अतिदूरादित्यादि) अक्षरार्थ अत्यन्तदूर अत्यन्त समीप, इन्द्रियनाश, अत्यन्तसूक्ष्म, व्यवधान, प्रबल वस्तुसे पराभव होनेसे तथा सजातीयवस्तुमें मिल जानेसे उस वस्तुका ग्रहण नहीं होता है उसीको प्रत्येकके उदाहरणपूर्वक दिखाते हैं । अत्यन्त दूर होनेसे पर्वत शिखरवर्ति वृक्षादिका ग्रहण नहीं होता है अति समीप होनेसे नेत्रोंमें लगे हुए अञ्जनका ग्रहण नहीं होता है इन्द्रिय नष्ट होनेसे बिजली आदिका कामक्रोधादि वश विषयान्तरमें आसक्त चित्तको स्फुरत्प्रकाशमें वर्तमानघटका अतिसूक्ष्म होनेसे परमाणुका व्यवधान होनेसे घरके भीतरकी वस्तुका तथा अपनेसे अधिक तेजस्वीसे परिभूत होनेसे दिनमें दीपककी प्रभाका और सजातीय वस्तुमें सम्मिलित होनेसे जलमिश्रित दूधमें जल और दूधके यथार्थ स्वरूपका ग्रहण नहीं होता है ॥ ७ ॥

भवतु वा धर्मभेदवादस्तथापि न कश्चिद्दोषः धर्मिप्रतियोगिग्रहणे धर्मभेदमानसम्भवात् । न च धर्मभेदवादे तस्य तस्य भेदस्य भेदान्तरभेद्यत्वेनानवस्था दुरवस्था स्यादित्यास्थेयं भेदान्तरप्रसक्तौ मूलाभावात् भेदभेदिनौ भिन्नाविति व्यवहारादर्शनात् ॥ ८ ॥

धर्मभेदपक्षमेंभी पूर्वोक्त आक्षेपका समाधान-(भवतु वेत्यादि)'घटो न पटः' यहां पर धर्मी भेदाश्रय पट और प्रतियोगी घटका ग्रहण होनेपर भेदका मानसंग्रहण अवश्य होगा (नचेति) धर्म भेदपक्षमें भेदरूप धर्म स्वरूपसे भिन्न है तो उसमेंभी पुनः भेद मानना होगा उसमें भेदान्तर एवं क्रमसे भेदपर भेद होजायगा अन्यथा प्रथम भेदभी व्यर्थ होगा तथाच अनवस्था दुष्परिहर होगी । उत्तर-(भेदान्तरेति) घट पटका परस्पर भेदव्यवहार सिद्ध होनेसे धर्मरूपभेद व्यवहारमूलक है परन्तु भेदके ऊपर भेदान्तर माननेमें कोई युक्ति नहीं घट पट परस्पर भिन्न है इस प्रकार भेद और भेदी परस्पर भिन्न हैं ऐसा व्यवहार नहीं होता है ॥ ८ ॥

न चैकभेदबलेनान्यभेदानुमानं दृष्टान्तभेदाविघातेनोत्थानदोषाभावात् । सोऽयं पिण्याकयाचनार्थं गतस्य खारिकातैलदातृत्वाभ्युपगम इव । दृष्टान्तभेदाविमर्दे त्वानुत्थानमेव । न

हि वरविघाताय कन्योद्वाहः । तस्मान्मूलक्षयाभावादनवस्था न दोषाय ॥ ९ ॥

यदि कहो 'घटः पटाद्भिन्नः कपालसमवेतत्वात्' इस प्रकार भेदकाभी पटादिसे भेदानुमान हो जायगा उस भेदकाभी पुनः भेदानुमान होगा यहभी नहीं घटभेदानुमानमें दृष्टान्त होनेपरभी भेदको भेदानुमान दृष्टान्त न होनेसे एतादृश अनुमानका उत्थानही नहीं हो सकता है अतः एतादृश अनुमान पिण्याक (खरी) मांगनेवालेको पसेरीभर तेल मिलनेकी समान अतीव अभ्युदय है दृष्टान्तमें भेद न स्वीकार करोगे तो भी उत्थान न होगा कोईभी वरविनाशके लिये कन्याका विवाह नहीं करताहै॥ ९ ॥

अनुमानेनापि भेदोऽवसीयते । परमेश्वरो जीवाद्भिन्नः, तं प्रति सेव्यत्वात् यो यं प्रति सेव्यः स तस्माद्भिन्नः यथा भृत्याद्राजा। न हि सुखं मे स्यात् दुःखं मे न मनागपि इति पुरुषार्थमर्थयमानाः पुरुषाः स्वपतिपदं कामयमानाः सत्कारभाजो भवेयुः प्रत्युत सर्वानर्थभाजनं भवन्ति । यः स्वस्यात्मनो हीनत्वं परस्य गुणोत्कर्षञ्च कथयति स स्तुत्यः प्रीतः तावकस्य तस्मा अभीष्टं प्रयच्छाति।तदाह–"घातयन्ति हि राजानो राजाहमिति वादिन । ददत्यखिलमिष्टञ्च स्वगुणोत्कर्षवादिनाम्"इति ॥ १०॥

जीव और ईश्वरका परस्परभेदसाधक अनुमान कहते हैं–(परमेश्वरेति) " परमेश्वर " पक्ष है " जीव भेद " साध्य है सेव्यत्व हेतु है जो जिसके सेव्य हो वह उससे भिन्न है यह व्याप्ति है यथा भृत्य और राजा (औरभी) मुझे सुख प्राप्त हो किञ्चिदपि दुःख न हो इस प्रकार सुखरूप पुरुषार्थको चाहनेवाले मनुष्य यदि स्वामीके पदकी कामना करेंगे तो उनका सत्कार क्या होगा ? विपरीत अतीव दुःख (कारागारादि) के पात्र बनेंगे जो स्वामीके संनिधिमें अपनेको हीनत्वका अनुसन्धान कर स्वामीके गुणकी स्तुति करते हैं उनपर स्वामी प्रसन्न होकर उनका मनोरथ सफल करते हैं नीतिकारोंने कहाभी है अपनेको स्वयं राजा कहनेवालोंको राजालोग शूली आदि दण्डसे दंडित करते हैं और राजा अपने गुणके गान करनेवालोंको अभिमत वस्तु देते हैं ॥ १० ॥

एवञ्च परमेश्वराभेदतृष्णाया विष्णोर्गुणोत्कर्षस्य मृगतृष्णिका समत्वाभिधानं विपुलकदलीफललिप्सया जिह्वाच्छेदनं हराति

एतादृशविष्णुविद्वेषणादन्धतमसप्रवेशप्रसङ्गात् । तत्तत्प्रतिपादितं मध्यमन्दिरेण महाभारततात्पर्य्यनिर्णये-" अनादिद्वेषिणोदैत्या विष्णोर्द्वेषो विवर्द्धितः । तमस्यन्धे पातयाति दैत्यानन्धे विनिश्चयात् " ॥ इति ॥ ११ ॥

(एवश्चेति) परमेश्वरके साथ स्वरूपकी ऐक्यरूप मुक्तिकी लालसासे जिन्होंने विष्णुके गुणोत्कर्षको मृगतृष्णाके समान कहा सो कदलीफलकी इच्छासे जिह्वाके काटनेके समान हैं इस प्रकार भगवद्द्वेषसे घोर नरकमें प्रवेश होता हैं इस बातको मध्यमन्दिर (आनन्दतीर्थ) जीने प्रतिपादन किया है अनादि कालसे द्वेषस्वभाववाले दैत्योंने विष्णुके विषय द्वेषको बढाया अतः तादृश अज्ञानियोंको घोर नरकमें गिराते हैं ॥ ११ ॥

सा च सेवा अङ्कननामकरणभजनभेदात्रिविधा । तत्राङ्कनं नारायणायुधादीनां तद्रूपस्मरणार्थमपेक्षितार्थसिद्धार्थं च । तथाच शाकल्यसंहितापारिशिष्टम्-"चक्रं बिभर्त्ति पुरुषोभितप्तं बलंदेवानाममृतस्य विष्णोः । स याति नाकं दुरिता विधूय विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ॥ १२ ॥

(सा च सेवेति) तप्तमुद्रा (शंखचक्र) धारण, नाम करण और भजन भेदसे तीन प्रकार हैं, शंखचक्ररूप भगवदायुधधारण अभीष्ट सिद्धिके लिये और भगवत्के रूपका सदा स्मरणके लियेभी है उक्त विषयमें श्रुतिप्रमाणभी देते हैं (चक्रं बिभर्तीति)देवानां देवतोंका, बलम् रक्षक, अभितस्य विष्णोः-व्यापक परमात्मा विष्णुका, अभितप्तम् चक्रम्-अग्निसे सन्तप्त किये हुए श्रीसुदर्शनचक्रको, वपुषा-बाहुमूलमें, यो बिभार्ति-जो धारण करता है अर्थात् (अङ्कित करता है) सः-तादृश चक्रधारी पुरुष, दुरिताः पुण्यपापको, विधूय-नष्ट करके, " तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय " इत्यादि श्रुतिस्वारस्यसे बन्धहेतुक पुण्य पाप दोनों दुरित पदार्थ हैं । नाकम्-परमपदको (श्रीवैकुण्ठ) को, याति-जाता है, यत्-जिस परमपदको वीतरागाः-भगवत्प्राप्तिव्यातिरिक्तविषयमें इच्छा रहित, यतयः-यतिलोग, विशन्ति-जाते हैं ॥ १२ ॥

देवाश्च येन विधृतेन बाहुना सुदर्शनेन प्रयातास्तमायन् येनाङ्किता मनवो लोकसृष्टिं वितन्वन्ति ब्राह्मणास्तद्वहन्ति ॥

ताद्विष्णोः परमं पदं येन गच्छन्ति लाञ्छिताः। उरुक्रमस्य चिह्नै-रङ्किता लोके सुभगा भवाम" इति ॥ १३ ॥ 'अतप्ततनुर्न तदामो अश्नुते श्रितास इद्वहन्तस्तत्समासत' इति तैत्तिरीय-कोपनिषच्च ॥ १४ ॥

(देवाश्च येनेति) जिस सुदर्शन चक्रसे अङ्कित भुजयुक्त देवगण शरीरत्यागके अनन्तर उस परमात्माको प्राप्त होते हैं। जिससे अङ्कित होनेसे मन्वादि लोकसृष्टिको करते हैं। जिस सुदर्शनसे अंकित अर्थात् तप्तमुद्रा धारण करनेवाले ब्राह्मणलोग परमपदको प्राप्त होते हैं। ऋग्वेदीय मन्त्र (पवित्रमित्यादि) ब्रह्मणः पते! चतुर्मुख ब्रह्माके स्वामिन् (नियामक) विष्णो, विभुः-चेष्टानुकूलसंकल्पाश्रय आप, विश्वतः गात्राणि पर्येषि-स्वाश्रित समस्त चेतनोंके शरीरमें अन्तर्यामी रूपसे व्याप्त होते । पवित्रंते विततमिति आपका आस्तिक जन शरीरमें अग्निसंतापसे जायमान चिह्नद्वारा व्याप्त सुदर्शन है तादृश सुदर्शनसे जिनका भुजमूल तप्त न हो वह आम अर्थात् अदग्ध पाप है मोक्षहेतुभूत उपासनादिका प्रतिबन्धक पाप नष्ट नहीं हैं अतः तत् ब्रह्मको "ओम् तत् सत् इति ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः" इति स्मृतिके प्रमाणसे तत् शब्द ब्रह्मका वाचक है। नअश्नुते नहीं प्राप्त होते हैं। (इत् वहन्तः) यह तप्त सुदर्शनको धारण करनेवाले श्रृतासः विनष्टपाप हैं अतः तत् समश्नुते ब्रह्मको प्राप्त होते हैं अर्थात् मोक्षके आधिकारी होते हैं। "सुदर्शने च दर्भे च पवित्रं चरणसूत्रके"। "सुदर्शनं सहस्रारं पवित्रं चरणं पविः" इत्यादि वेदनिघण्टु वचनोंसे तथा "पवित्रं चरणं नेमि रथचक्रं सुदर्शनम्" इत्यादि पद्मपुराण वचनोंसे पवित्र शब्द सुदर्शनचक्रमें रूढ है (उरुक्रमस्येति) वामनभगवान्के चिह्नोंसे अङ्कित होनेसे लोकमें पुण्यशील होते हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

स्थानविशेषश्चाग्नेयपुराणे दर्शितः। "दक्षिणे तु करे विप्रो बिभृयाच्च सुदर्शनम्। सव्येन शंखं च बिभृयादिति ब्रह्मविदो विदुः ॥" इति। अन्यत्र चक्रधारणे मन्त्रविशेषश्च दर्शितः। "सुदर्शन महाज्वाल कोटिसूर्य्यसमप्रभ। अज्ञानान्धस्य मे नित्यं विष्णोर्मार्गं प्रदर्शय ॥ त्वं पुरा सागरोत्पन्नो विष्णुना विधृतः करे ॥ नमितः सर्वदेवैश्च पाञ्चजन्य नमोऽस्तु ते"॥ इति ॥ १५ ॥

ब्राह्मणादि दहिनी भुजामें सुदर्शन और बाई भुजामें शंखको धारण करे ऐसा वेदवेत्ता लोग कहते हैं । चक्रधारणमन्त्र-सुदर्शनेत्यादि । शंखधारण मन्त्र-त्वं पुरेत्यादि ॥ १५ ॥

नामकरणम्-पुत्रादीनां केशवादिनाम्ना व्यवहारः सर्वदा तन्नामानुस्मरणार्थम् । भजनं दशविधं वाचा सत्यं हितं प्रियं स्वाध्यायः कायेन दानं परित्राणं परिरक्षणं मनसा दया स्पृहा श्रद्धा चेति । अत्रैकैकं निष्पाद्य नारायणे समर्पणं भजनम् । तदुक्तम्- "अङ्कनं नामकरणं भजनं दशधा च तत्" इति ॥ १६ ॥

पुत्रादिकोंको केशवादि नाम करना नाम करण है। यह सदा भगवन्नामके स्मरणके लिये है, वचनसे सत्य हितकर और प्रिय बोलना, वेदाध्ययन करना, शरीरसे दानदेना, भयसे मुक्तकरना, रक्षाकरना, मनसे दयाकरना, भगवद्विषयमें श्रद्धा भक्ति करना यह दशविध हैं इनमेंसे एक एकको सम्पादनकरकर श्रीमन्नारायणके चरणोंमें अर्पण करना भजन है अङ्कनमित्यादि पद्यका पूर्वोक्त अर्थ है ॥ १६ ॥

एवं ज्ञेयत्वादिनापि भेदोऽनुमातव्यः, तथा श्रुत्यापि भेदोऽवगन्तव्यः। "सत्यमेतमनुविश्वे मदन्तिरातिं देवस्य गृणतो मघोनः सत्यासो अस्य महिमागृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये सत्य आत्मा सत्यो जीवः सत्यं भिदा सत्यं भिदा मयि वारुण्यो मयि वारुण्यो मयि वारुण्यः" इति मोक्षानन्दभेदप्रतिपादकश्रुतिभ्यः "इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः। सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥" 'जगद्व्यापारवर्जप्रकरणादसन्निहितत्वाच्च' इत्यादिभ्यश्च ॥ १७ ॥

उपास्य उपासक ज्ञेय ज्ञातृभाव होनेसे भी ईश्वर और जीवके अत्यन्त भेदका अनुमान किया जाता है अर्थात् ईश्वर उपास्य और जीव उपासक है एवं श्रुतिसे भी यह प्रतिपादित होता है (सत्यमेतमित्यादि) ऋग्वेदका मन्त्र है । इसमें सत्य आत्मा सत्योजीव इत्यादिसे भेद स्पष्टही प्रतिपादित है । भगवद्गीतामें भी पूर्वोक्त क्षेत्र क्षेत्रज्ञ और ईश्वरके स्वरूपका ज्ञानपूर्वक भगवत्की उपासनासे भगवत्के समान धर्म (स्वरूपका अभेद) को प्राप्त जीवको पुनः सृष्टिकालमें उत्पत्ति और प्रलय

कालमें लयाभाव कहा है इदं ज्ञानेत्यादिसे । अतएव "तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति" इत्यादि श्रुति 'भोगमात्र साम्यलिङ्गात्' इत्यादि ब्रह्मसूत्र संगत होते हैं। सूत्रान्तरमें भी मुक्तात्माको जगत् सृष्टि आदि व्यापारको छोडकर ब्रह्मके समस्त गुण कहे हैं यतो वेत्यादि वाक्यमें सन्निहित ब्रह्म है जीव नहीं अतः प्रकरणवश और सन्निहित न होनेके कारण तदतिरिक्त आनन्दादि गुणही मुक्तात्माका है ॥ १७ ॥

न च 'ब्रह्म विद्ब्रह्मैव भवाति' इति श्रुतिबलाज्जीवस्य पारमैश्वर्य्यं शक्यशङ्कं 'सम्पूज्य ब्राह्मणं भक्त्या शूद्रोऽपि ब्राह्मणो भवेत्' इतिवत् संहितो भवतीत्यर्थपरत्वात् । ननु "प्रपञ्चो यदि वर्त्तेत निवर्त्तेत न संशयः । मायामात्रमिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः ॥" इति वचनात् द्वैतस्य कल्पितत्वमवगम्यत इति चेत् ॥ १८ ॥

अद्वैतिकी आशंका—नचेत्यादि । ब्रह्मको जाननेवाले ब्रह्मरूप होते हैं ऐस श्रुति भगवती कहती है अतः जीव और ब्रह्मका अभेद सिद्ध होता है। समाधान—ब्राह्मणोंकी सेवा और शुश्रूषाआदि करनेसे शूद्रभी ब्राह्मण हो जाता है इत्यादि वत् सन्निहित अथवा सादृश्य उसकाभी अर्थ है (ननुइति) यदि प्रपञ्च है तो घटादि वत् अवश्य नष्टभी होगा क्योंकि यह समस्त वस्तु मायासे कल्पित मात्र हैं वास्तवमें अद्वैतही है ॥ १८ ॥

सत्यं भावमनभिसन्धायाभिधानात् । तथाहि यद्ययमुत्पद्येत तर्हि निवर्त्तेत न संशयः । तस्मादनादिरेवायं प्रकृष्टः पञ्चविधो भेदप्रपञ्चः । न चायमविद्यमानो मायामात्रत्वान्मायेति भगवदिच्छोच्यते ॥ १९ ॥

यहभी वास्तविक भावका अनुसन्धान नहीं करते हैं क्योंकि यदि घटादिवत् आत्मा उत्पन्न होता हो तो अवश्यही विनष्ट भी होता परन्तु ऐसा उत्पन्न नहीं होता है निम्नलिखित पाँच प्रकारके भेद अनादि हैं अतः यह प्रपञ्च अविद्यमान नहीं मायामात्रमिदम् यहांपर भी मायाशब्द सदसदनिर्वचनीयरूप नहीं किन्तु, भगवत्संकल्पका वाची माया शब्द है महामाया, अविद्या, नियति, मोहिनी, प्रकृति वासना यह सब भगवत्की इच्छाको कहते हैं ॥ १९ ॥

'महामायेत्यविद्येति नियतिर्मोहिनीति च । प्रकृतिर्वासनेत्येव तवेच्छानन्त कथ्यते॥प्रकृतिः प्रकृष्टकरणाद्वासना वासयेद्यतः । अ इत्युक्ते हरिस्तस्य मायाऽविद्येति संज्ञिता ॥ मायेत्युक्ता प्रकृष्टत्वात् प्रकृष्टे हि मया भिधा । विष्णोः प्रज्ञप्तिरेवैका शब्दै-रेतैरुदीर्य्यते ॥ प्रज्ञप्तिरूपो हि हरिः सा च स्वानन्दलक्षणा ॥ इत्यादिवचननिचयप्रामाण्यबलात् ॥ २० ॥

प्रकृत्यादि संज्ञाके हेतुको कहते हैं प्रकर्षरूपसे अर्थात् असम्भावितकोभी संभावित करनेसे प्रकृति और वासित करनेसे वासना है। अशब्द हरिका वाचक है उन्हीं हरिकी माया (इच्छा) को अविद्या कहते हैं । अस्य विद्या अविद्या ऐसा विग्रह होता है प्रकष्ट कार्य करनेसे प्रकृति और माया इत्यादि शब्द विष्णुके ज्ञानविशेषको कहते हैं वह ज्ञानस्वरूप भगवान्का आनन्दलक्षण है ॥ २० ॥

सैव प्रज्ञा मानत्राणकर्त्री च यस्य तन्मायामात्रं ततश्च परमेश्वरेण ज्ञातत्वाद्रक्षितत्वाच्च न द्वैतं भ्रान्तिकल्पितं, न हीश्वरे सर्वस्य भ्रान्तिः सम्भवति विशेषादर्शननिबन्धनत्वाद्भ्रान्तेः । तर्हि तद्व्यपदेशः कथमित्यत्रोत्तरम् 'अद्वैतं परमार्थतः' इति परमार्थापेक्षया तेन सर्वस्मादुत्तमस्य विष्णुतत्त्वस्य समाभ्यधिकशून्यत्वमुक्तं भवति ॥ २१ ॥

वही प्रज्ञा मान और रक्षा करनेवालीभी है जिनके मतमें द्वैत मायामात्र है उनके मतमें परमेश्वरसे ज्ञात और रक्षित होनेसे द्वैत कदापि काल्पित नहीं होसकता । सर्वज्ञ परमात्मामें भ्रान्ति हो नहीं सकती क्योंकि भ्रान्ति विशेष दर्शन न होनेसे होती है यथा रज्जुमें सर्पका भ्रम केवल दण्डाकारता मात्र देखकर होता है ईश्वर सर्वज्ञ होनेसे सर्वदा विशेष दर्शन बना रहेगा । यदि ईश्वरमें भ्रम नहीं हो सकता है तो पुनः अद्वैत व्यवहार श्रुतिने कैसे किया? इसका उत्तर देते हैं–कि (परमार्थतः इति) परमार्थपक्ष लेकर अद्वैत है अभिप्राय यह है 'न तत्समश्चाभ्यधिकः कुतोऽन्यः' इत्यादि श्रुतियोंसे भगवान् विष्णुके सम और अधिक कोईभी न होनेसे अद्वैत (अद्वितीय) कहे जाते हैं । अतएव श्रीयामुनाचार्यनेभी कहा है "यथा चोलनृपः सम्राडद्वितीयोत्रभूतले । इति तत्तुल्यनृपातिनिवारणपरं वचः । नतु तत्पुत्रपौत्रादिनिवारणपरं भवेत् ॥ " इत्यादि ॥ २१ ॥

तथाच परमा श्रुतिः-"जीवेश्वरभिदा चैव जडेश्वरभिदा तथा । जीवभेदो मिथश्चैव जडजीवभिदा तथा ॥ मिथश्च जडभेदो यः प्रपञ्चो भेदपञ्चकः । सोऽयं सत्योऽप्यनादिश्च सादिश्चेन्नाशमाप्नुयात् ॥ न च नाशं प्रयात्येष न चासौ भ्रान्तिकल्पितः । कल्पितश्चेन्निवर्त्तेत न चासौ विनिवर्त्तते ॥ २२ ॥

भेदपञ्चक-जीवका ईश्वरके साथ भेद १ जड और ईश्वरका भेद २ जीवोंके परस्पर भेद ३ जड और जीवका भेद ४ जडका परस्पर भेद ५ यह पाँच भेदात्मक प्रपञ्च हैं यह सभी भेद सत्य और अनादि हैं यदि सादि होते तो अवश्य नष्ट होते परन्तु एतादृश भेदका कदापि नाश नहीं होता है एवं यह प्रपञ्च भ्रान्तिकल्पितभी नहीं क्योंकि कल्पित होता तो अवश्य निवृत्तभी होता परन्तु प्रपञ्चकी निवृत्तिभी नहीं होती है ॥ २२ ॥

द्वैतं न विद्यत इति तस्मादज्ञानिनां मतम् । मतं हि ज्ञानिनामेतन्मितं त्रातं हि विष्णुना ॥ तस्मान्मात्रमिति प्रोक्तं परमो हरिरेव तु ॥" इत्यादि । तस्माद्विष्णोः सर्वोत्कर्ष एव तात्पर्य्यं सर्वागमानाम् ॥ २३ ॥

यह अज्ञानियोंका कहना है कि द्वैतरूप प्रपञ्च हैही नहीं विष्णुसे ज्ञात और राक्षित होनेसे द्वैत सत्य है । यह तत्त्वज्ञानियोंका मत है-अतः यह सब मात्र अर्थात् अल्प है सर्वोत्कृष्ट भगवान् विष्णु है । अतः विष्णुको सर्वोत्कर्ष बोधनमें सम्पूर्ण आगमका तात्पर्य है ॥ २३ ॥

एतदेवाभिसन्धायाभिहितं भगवता-'द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च । क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः । यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ यस्मात् क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः । अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ २४ ॥

जगत्में क्षर और अक्षर भेदसे दो प्रकारके पुरुष प्रसिद्ध हैं । संपूर्ण संसारी चेतन ब्रह्मादि स्तंबपर्यन्त क्षरण स्वभाव प्रकृति सम्बन्ध उपाधिके वश क्षर कहाते हैं प्रकृतिसम्बन्धविनिर्मुक्त मुक्तात्मा अक्षर हैं । वह अचित् परिणाम ब्रह्मादि देहस

मान न होनेसे कूटस्थ कहे जाते हैं । क्षर और अक्षर शब्दनिर्दिष्ट बद्ध और मुक्त जीवसे अन्य उत्तम पुरुष है जिसको परमात्मा कहते हैं । जो परमात्मा अचित और बद्धमुक्तरूप लोकत्रयमें आत्मरूपसे प्रवेश करके भरणकरता है अतः वह अविनाशी और ईश्वर है उक्त स्वभाव होनेसे क्षरपदवाच्य पुरुष और अक्षर शब्दवाच्य मुक्तको भी मैंने अतिक्रमण किया इसलिये लोक और वेदमें मैं पुरुषोत्तम शब्दसे प्रसिद्ध हूं ॥ २४ ॥

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम् । स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥ इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ । एतद् बुद्ध्वा बुद्धिमान् स्यात् कृतकृत्यश्च भारत ॥"इति ॥ २५ ॥

जो मुझे उक्त प्रकारसे पुरुषोत्तम हे भारत ! जानता है वह भगवत् प्राप्तिके सम्पूर्ण उपायोंको जाननेवाला सब प्रकार मेरी भक्ति करता है । हे निष्पाप ! इस प्रकार परमपुरुषोत्तमतत्त्व प्रतिपादक अतिगुह्यतम शास्त्र मैंने तुमसे कहा इसको जानकर जीव ज्ञानी और कृतकृत्य होते हैं ॥ २५ ॥

महावराहेऽपि- "मुख्यश्च सर्ववेदानां तात्पर्य्यं श्रीपतौ परे । उत्कर्षे तु तदन्यत्र तात्पर्यं स्यादवान्तरम् ॥" इति ॥ २६ ॥

वाराहपुराणमेंभी कहा है सम्पूर्ण वेदोंका श्रीहरिके परम उत्कर्षबोधनमें मुख्य तात्पर्य है और अन्यत्र गौण तात्पर्य है ॥ २६ ॥

युक्तं च विष्णोः सर्वोत्कर्षे महातात्पर्य्यम् । मोक्षो हि सर्वपुरुषार्थोत्तमः धर्मार्थकामास्त्वनित्याः । मोक्ष एव नित्यः । 'तस्मान्नित्यं तदर्थाय यतेत मतिमान्नरः' इति भाल्लवेयश्रुतेः। मोक्षश्च विष्णुप्रसादमन्तरेण न लभ्यते । 'यस्य प्रसदात् परमा यत्स्वरूपात् संसारान्मुच्यते नावरेसुरा नाराधयन्तोऽसौ परमो विचिन्त्यो मुमुक्षुभिः कर्मपाशादमुष्मात् ' इति नारायणश्रुतेः । "तस्मिन् प्रसन्ने किमिहास्त्यलभ्यं सर्वार्थकामैरलमल्पकास्ते । समाश्रिताद्ब्रह्मतरोरनन्तान्निःसंशयं मुक्तिफलं प्रयाति ॥" इति विष्णुपुराणोक्तेश्च ॥ २७ ॥

विष्णुके विषयमें सर्वोत्कर्षबोधन युक्तभी है क्योंकि सम्पूर्ण पुरुषार्थोंमें मोक्षही उत्तम पुरुषार्थ है धर्म अर्थ काम अनित्य है केवल मोक्षही नित्य है इस मोक्षके

लिये बुद्धिमान् पुरुष नित्य यत्न करे ऐसी श्रुति है मोक्ष श्रीविष्णुकी प्रसन्नता बिना नहीं होता है जिनके प्रसादसे परम (मोक्ष) होता है अन्य देवताओंके आराधन करनेवाले मुमुक्षु कर्मबन्धनसे परमपदके चिन्तन करने योग्यभी नहीं होते हैं इत्यादि श्रुति तथा हरि प्रसन्न होनेसे दुर्लभ कुछभी नहीं अर्थ कामकी बातही क्या है वह अतीव तुच्छ है अनन्त ब्रह्मरूपी वृक्षके आश्रयण करनेसे अवश्य मोक्षफलको प्राप्त होते हैं इत्यादि विष्णुपुराणवचनभी हैं ॥ २७ ॥

प्रसादश्च गुणोत्कर्षज्ञानादेव नाभेदज्ञानादित्युक्तम् । न च तत्त्वमस्यादितादात्म्यव्याकोपः श्रुतितात्पर्यापरिज्ञानविजृम्भणात् । "आह नित्यपरोक्षं तु तच्छब्दो ह्यविशेषितः । त्वंशब्दश्चापरोक्षार्थं तयोरैक्यं कथं भवेत् ॥ आदित्यो यूप इतिवत् सा दृश्यार्था तु सा श्रुतिः ॥" इति ॥ २८ ॥

प्रसन्नता गुणका उत्कर्षके ज्ञानसे होती है अभेद ज्ञानसे नहीं होती यदि कहो तत्त्वमस्यादि श्रुतिका विरोध होगा यहभी तात्पर्यका अज्ञानमूलक है नित्य और परोक्ष वस्तुको तत् शब्द बोधन करता है त्वंपद प्रत्यक्षवस्तुको बोधन करता है अतः अत्यन्त विरुद्ध होनेसे दोनोंका अभेद कैसे होसकता है ? अतः यूप और आदित्यके अभेद बोधक वाक्यकी समान मोक्षदशामें कल्याणगुणादि समान होनेसे सादृश्यार्थक है ॥ २८ ॥

तथाच परमा श्रुतिः–"जीवस्य परमैक्यं च बुद्धिसारूप्यमेव वा । एकस्थाननिवेशो वा व्यक्तिस्थानमपेक्ष्य वा ॥ न स्वरूपैकता तस्य मुक्तस्यापि विरूपतः । स्वातन्त्र्यपूर्णतेऽल्पत्वपारतन्त्र्ये विरूपता ॥" इति ॥ २९ ॥

श्रुतिभी कहती है–जीवको परमात्माके साथ ऐक्य बोधकवाक्य सर्वज्ञत्वादि ज्ञानके समान होनेसे और शरीरादिरूप एक स्थानवृत्ति होनेसे संगत होती है स्वरूपको एक मानकर नहीं होता है कारण मुक्तोंकेभी स्वरूपभेद "सदा पश्यन्ति सूरयः" इत्यादि श्रुतियोंसे प्रतिपादित हैं। स्वतन्त्रत्व, और व्यापकत्वादि ईश्वरका स्वरूप और अणुत्व परतन्त्रत्वादि जीवका स्वरूप है ॥ २९ ॥

अथवा तत्त्वमसीत्यत्र स एवात्मा स्वातन्त्र्यादिगुणोपेतत्वात् अतत्त्वमसि त्वं तत्र भवसि तद्रहितत्वादित्येकत्वमतिशयेन

निराकृतम् । तदाह–'अतत्त्वमिति वा छेदस्तेनैक्यं सुनिराकृतम् ॥' इति ॥ ३० ॥

अथवा अतत्त्वमसि ऐसा पदच्छेद कर ईश्वर स्वतंत्रत्वादिरूप होनेसे तुम ईश्वर नहीं हो सकते एवञ्च अभेदका अत्यन्त निराकरण होता है ऐसाभी अर्थ वर्णन करते हैं अतएव कहा है अतत्त्व ऐसा पदच्छेद करनेसे अभेदका निरास होता है ॥ ३० ॥

तत्तस्मात् दृष्टान्तनवकेऽपि स यथा शकुनिः सूत्रेण बद्ध इत्यादिना भेद एव दृष्टान्ताभिधानाय अयमभेदोपदेश इति तत्त्ववादरहस्यम् । तथाच महोपनिषत्–"यथा पक्षी च सूत्रं च नानावृक्षरसा यथा । यथा नद्यः समुद्राश्च शुद्धोदलवणो यथा ॥ चौरापहार्यौं च यथा यथा पुंविषयावपि । तथा जीवेश्वरौ भिन्नौ सर्वदैव विलक्षणौ ॥ ३१ ॥

नवों दृष्टान्तोंमें भेदहीका प्रतिपादन होता है यह सब दृष्टान्त छान्दोग्योपनिषदके षष्ठप्रपाठकमें हैं जिस प्रकार पक्षी और उसका बन्धन सूत्र परस्पर भिन्न हैं नाना-प्रकार वृक्षोंका रस परस्पर भिन्न है नदी और समुद्र शुद्ध जल और खारा जल भिन्न है चोर और चोरीकी वस्तु एवं पुरुष और विषय भिन्न होते हैं तिसी प्रकार जीव और ईश्वर परस्पर विलक्षण स्वरूप और स्वभाव होनेसे सदा भिन्न हैं ॥ ३१ ॥

तथापि सूक्ष्मरूपत्वान्न जीवात् परमो हरिः । भेदेन मन्ददृष्टीनां दृश्यते प्रेरकोऽपि सन् ॥ वैलक्षण्यं तयोर्ज्ञात्वा मुच्यते बध्यतेऽन्यथा ॥" इति ॥ ३२ ॥

ऐसे होनेपरभी सूक्ष्म होनेसे मन्दमतियोंको सर्व प्रेरक परमात्मा जीवसे भिन्न होकर गृहीत नहीं होते दोनोंका वैलक्षण्य ज्ञानसे मुक्त होता है अन्यथा बद्ध होता है ॥ ३२ ॥

"ब्रह्मा शिवः सुराद्याश्च शरीरक्षरणात् क्षराः । लक्ष्मीरक्षरदेहत्वादक्षरातः परो हरिः ॥ ३३ ॥

ब्रह्मा, शिव, सुर, सब शरीरका क्षरण होनेसे क्षर कहाते हैं नित्य शरीर होनेसे लक्ष्मी अक्षर है और हरि इनसेभी परे हैं ॥ ३३ ॥

स्वातन्त्र्यशक्तिविज्ञानसुखाद्यैरखिलैर्गुणैः ॥ निःसीमत्वेन ते सर्वे तद्वशाः सर्वदेवताः॥" इति ॥ "विष्णुं सर्वगुणैः पूर्णं ज्ञात्वा संसारवर्जितः। निर्दुःखानन्दभुङ्नित्यं तत्समीपे स मोदते ॥ मुक्तानां चाश्रयो विष्णुराधिकाधिपतिस्तथा । तद्वशा एव ते सर्वे सर्वदैव स ईश्वरः ॥" इति च ॥ ३४ ॥

स्वातन्त्र्य, ज्ञान, शक्ति, सुखादि अनेक गुणों करके निस्सीम होनेसे सम्पूर्ण देवता श्रीहरिके आधीन हैं सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त विष्णुकी उपासनाद्वारा जो संसारसे मुक्त हो गया है वह दुःखशून्य परमानन्दसे युक्त होकर भगवत्समीपमें आनन्दको प्राप्त होता है विष्णु मुक्ताक आश्रय और आधिक (ब्रह्मादिक) के भी आधिपति हैं अतः सम्पूर्ण देवता उनके आधीन हैं, सदा एक विष्णुही ईश्वर है ॥ ३४ ॥

एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानञ्च प्रधानत्वकारणत्वादिना युज्यते न तु सर्वमिथ्यात्वेन । न हि सत्याज्ञानेन मिथ्याज्ञानं सम्भवति । यथा प्रधानपुरुषाणां ज्ञानाज्ञानाभ्यां ग्रामो ज्ञातः अज्ञात इत्येवमादिव्यपदेशो दृष्ट एव । यथा च कारणे पितरि ज्ञाते जानात्यस्य पुत्रमिति । अन्यथा 'यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातम्' इत्यत्र एकपिण्डशब्दौ वृथा प्रसज्येयातां मृदा विज्ञातयेत्येतावतैव वाक्यस्य पूर्णत्वात् ॥ ३५ ॥

एक विज्ञानसे सर्वविज्ञान प्रतिज्ञाभी प्रधानत्व कारणत्वादि धर्मयुक्त होनेसे सङ्गत होती है सर्वमिथ्यात्वसे नहीं होती एक वस्तुके सत्यज्ञानसे अन्यका मिथ्याज्ञान सम्भव नहीं है प्रधानके ज्ञानसे अप्रधान ग्रामादि ज्ञान दृष्ट है जैसे कारणज्ञानसे कार्यज्ञान दृष्ट है तैसे ब्रह्म जगत्का कारण है अतः ब्रह्मज्ञानसे कार्यभूत जगत्का ज्ञान होता है । यादि सर्वका मिथ्यात्व माने तो एक मृत्तिकाके ज्ञानसे कार्यभूत घटशरावादि सब ज्ञात होते हैं इस दृष्टान्तमें एक शब्द और मृत्पिण्डपद व्यर्थ होंगे मृत्तिकाज्ञानसे सब ज्ञात होते हैं इतनेहीसे वाक्य पर्याप्त होता है एवं लक्षणादि दोष पूर्व लिख चुका हूं ॥ ३५ ॥

न च वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यमित्येतत् कार्य्यस्य मिथ्यात्वमाचष्टे इत्येष्टव्यं वाचारम्भणं विकारो यस्य

तत् अविकृतं नित्यं नामधेयं मृत्तिकेत्यादिकमित्येतद्वचनं सत्यमिति तथ्यस्य स्वीकारात् । अपरथा नामधेयमेवेतिशब्दयोर्वैयर्थ्यं प्रसज्येत अतो न कुत्रापि जगतो मिथ्यात्वसिद्धिः। किञ्च प्रपञ्चो मिथ्येत्यत्र मिथ्यात्व तथ्यमतथ्यं वा। प्रथमे सत्याद्वैतभङ्गप्रसङ्गः । चरमे प्रपञ्चसत्यत्वापातः ॥ ३६ ॥

घटादि विकार और नाम वचनमात्र है ऐसे कहनेसे कार्यको मिथ्यात्वकी आशंका नहीं कर सकते जिसका विकार वाक् व्यवहारार्थ है अविकृत मृत्तिका इत्यादि नामधेय सत्य है यही अर्थ है अतः मिथ्यात्वशंकाभी नहीं हो सकती अन्यथा नामधेय और इति ये दोनों पद व्यर्थ होंगे अतः कहीं भी जगत्का मिथ्यात्व प्रतिपादन नहीं है (औरभी) प्रपञ्चको मिथ्या कहनेवालोंके मतमें मिथ्यात्व सत्य है या असत्य! यदि सत्य मानो तो अद्वैतकी हानि होगी क्योंकि ब्रह्म और प्रपञ्च मिथ्या दोनों सत्य हो गये । असत्य मानो तो मिथ्यात्वका असत्यत्व होनेसे प्रपञ्चका सत्यत्व होगा ॥ ३६ ॥

नन्वनित्यत्वं नित्यमनित्यं वा उभयथाप्यनुपपत्तिरित्याक्षेपवदयमपि नित्यसमजातिभेदः स्यात् । तदुक्तं न्यायनिर्वाणवेधसा "नित्यमनित्यभावादनित्यत्वोपपत्तेर्नित्यसमः"इति॥ तार्किकरक्षायाञ्च– धर्मस्य तदतद्रूपविकल्पानुपपत्तितः । धर्मिणस्तद्विशिष्टत्वभङ्गी नित्यसमो भवेत् "॥ इति ॥ अस्याः संज्ञाया उपलक्षणत्वमभिप्रेत्याभिहितं प्रबोधसिद्धौ अन्वर्थित्वानूपरञ्जकंधर्मसमेति । तस्मात् सदुत्तरमेतदिति चेत् ॥ ३७ ॥

यदि कहो अनित्यत्व नित्य है या आनित्य ? दोनों पक्षोंमें अनुपपत्ति होती है अतः इस आक्षेपके समान यह भी आक्षेप नित्य सजातीयका एक भेद है अतएव न्यायनिर्णयमें कहा है अनित्य स्वभाव होनेसे अनित्यभी अनित्य हो तो नित्य समान होगा । तार्किक रक्षामेंभी कहा है अनित्यत्वरूप धर्म्मको नित्यानित्य विकल्पसे धर्म्मीको अनित्यतारूप धर्मयुक्तत्व असम्भव होनेसे नित्यकी समान होगा इस कारण मिथ्यात्वादि संज्ञा उपलक्षणमात्र है अतएव प्रबोधसिद्धिमें कहा है कि अन्वर्थ होनेसे उपरञ्जकमात्र है अतः उत्तर समीचीन है ॥ ३७ ॥

अशिक्षितत्रासनमेतत् दुष्टत्वमूलानिरूपणात् । तद्द्विविधं साधारणमसाधारणञ्च । तत्राद्यं स्वव्याघातकम् । द्वितीयं त्रिविधम् युक्ताङ्गहीनत्वमयुक्ताङ्गाधिकत्वमविषयवृत्तित्वञ्चेति । तत्र साधारणमसम्भावितमेव उक्तस्याक्षेपस्य स्वात्मव्यापनानुपलम्भात् । एवमसाधारणमपि घटस्य नास्तितोक्तावस्तित्ववत् प्रकृतेऽप्युपपत्तेः । ननु प्रपञ्चस्य मिथ्यात्वमभ्युपेयते नासत्त्वमिति चेत्तदेतत् सोऽयं शिरश्छेदेऽपि शतं न ददाति विंशतिपञ्चकन्तु प्रयच्छतीति शाकटिकवृत्तान्तमनुहरेत् मिथ्यात्वासत्त्वयोः पर्य्यायत्वादित्यलमतिप्रपञ्चेन ॥ ३८ ॥

यह अशिक्षितोंको भय दर्शाना है क्योंकि मिथ्या दोषका कारण कुछ नहीं दिखाया दुष्टत्वप्रयोजक दो प्रकार हैं एक साधारण और दूसरा असाधारण । साधारण स्वव्याघातक होता है। असाधारण तीन प्रकार हैं अपेक्षित अङ्गसे विकल १ अनपेक्षित अङ्गसे युक्त २ अनुपयुक्तस्थलवृत्तित्व ३ उक्त आक्षेप आत्मव्यापी न होनेसे साधारण संभव नहीं एवं असाधारणभी असम्भावित है जिस प्रकार घटका नास्तित्व कहनेसे अस्तित्व सम्भव नहीं । यदि कहो मैंने प्रपञ्चको मिथ्यात्व कहा है असत्त्व नहीं कहा यह तो शिरके काटडालने परभी १०० रुपये न दूंगा पांच बीसीही दूंगा इस प्रकार कहनेवाले मूर्खका अनुकरण करता है असत्य और मिथ्या दोनों पर्य्याय हैं ॥ ३८ ॥

तत्र 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' इति प्रथमसूत्रस्यायमर्थः। तत्राथशब्दो मङ्गलार्थोऽधिकारानन्तर्य्यार्थश्च स्वीक्रियते । अतःशब्दो हेत्वर्थः । तदुक्तं गारुडे- अथातःशब्दपूर्वाणि सूत्राणि निखिलान्यपि । प्रारभेत नियत्यैव तत्किमत्र नियामकम् ॥ कश्चार्थस्तु तयोर्विद्वान् कथमुत्तमता तयोः । एतदाख्याहि मे ब्रह्मन् यथा ज्ञास्यामि तत्त्वतः ॥ एवमुक्तो नारदेन ब्रह्मा प्रोवाच सत्तमः । आनन्तर्याधिकारे च मङ्गलार्थे तथैव च ॥ अथशब्दस्त्वतःशब्दो हेत्वर्थे समुदीरितः॥" इति ॥यतो नारायणप्रसादमन्तरेण न मोक्षो

लभ्यते प्रसादश्च न ज्ञानमन्तरेण, अतो ब्रह्मजिज्ञासा कर्त्तव्येति सिद्धम् ॥ ३९ ॥

अथात इत्यादि प्रथम सूत्रार्थ निरूपण करते हैं—अथशब्द मङ्गल प्रारम्भ, आधकार रूप अर्थत्रयबोधक है और अतःपद हेतुबोधक है अतएव गरुडपुराणमें कहा है नियमसे अथ अतः शब्दद्वय पूर्वक सम्पूर्ण सूत्रोंका आरम्भ करना इसमें क्या नियामक है दोनों शब्दोंका क्या अर्थ है और दोनों श्रेष्ठ क्यों हैं ! हे ब्रह्मन् ! यह मुझसे कहिये जिससे यथार्थ ज्ञान हो नारदजीके इस प्रकार पूछनेपर सुरश्रेष्ठ ब्रह्माजीने कहा आनन्तर्य मंगल और अधिकार अर्थमें अथशब्द और अतःशब्द हेतु अर्थमें प्रयुक्त होता है भगवान् नारायणकी कृपाके विना मोक्ष नहीं होता ज्ञानके विना प्रसन्नताभी नहीं होती है अतः ब्रह्मजिज्ञासा अवश्य करनी चाहिये ॥ ३९ ॥

जिज्ञास्यब्रह्मणो लक्षणमुक्तं 'जन्माद्यस्य यतः' इति । सृष्टिस्थित्यादि यतो भवति तद् ब्रह्मेति वाक्यार्थः ।तथाच स्कान्दं वचः–' उत्पत्तिस्थितिसंहारा नियतिर्ज्ञानमावृतिः । बन्धमोक्षौ च पुरुषाद्यस्मात् स हरिरेकराट्॥'' इति ॥ 'यतो वा इमानि' इत्यादिश्रुतिभ्यश्च ॥ ४० ॥

द्वितीय सूत्रसे जिज्ञास्य ब्रह्मका लक्षण कहते हैं सृष्टि स्थिति लय का जो कारण है वही ब्रह्म है । स्कन्दपुराणमेंभी कहा है उत्पत्ति और स्थिति आदि जिनसे होते हैं वह स्वयं प्रकाशमान हरि हैं ॥ ४० ॥

तत्र प्रमाणमप्युक्तं 'शास्त्रयोनित्वात्' इति । 'नावेदविन्मनुते तं बृहन्तं तं त्वौपनिषदम्' इत्यादिश्रुतिभ्यः तस्यानुमानिकत्वं निराक्रियते । न चानुमानस्य स्वातन्त्र्येण प्रामाण्यमस्ति । तदुक्तं कौर्मे–''श्रुतिसाहाय्यरहितमनुमानं न कुत्रचित् । निश्चयात् साधयेदर्थं प्रमाणान्तरमेव च ॥ श्रुतिस्मृतिसहायं यत् प्रमाणान्तरमुत्तमम् । प्रमाणपदवीं गच्छेन्नात्र कार्य्या विचारणा'' इति ॥४१॥

तृतीय सूत्रसे ब्रह्ममें प्रमाण दिखाते हैं जो वेदवेत्ता नहीं वह ब्रह्मको नहीं जान सकते उपनिषत्प्रतिपाद्य पुरुषको जानना चाहता हूं इत्यादि श्रुतियोंसे अनुमान विषयत्वनिराकरण कर केवल शब्दप्रतिपाद्यत्व प्रतिपादन करते हैं अनुमान स्वतन्त्र-

प्रमाण नहीं अतएव कूर्म्मपुराणमें कहा है कि, श्रुतिके सहायताके विना केवल अनुमान कहीं भी वास्तविक अर्थका साधक नहीं है श्रुतिके सहित प्रमाणान्तर उत्तम प्रमाण पदवीको प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४१ ॥

शास्त्रस्वरूपमुक्तं स्कान्दे–"ऋग्यजुःसामाथर्वश्च भारतं पाञ्चरात्रकम् । मूलरामायणश्चैव शास्त्रमित्यभिधीयते ॥ यच्चानुकूलने तस्य तच्च शास्त्रं प्रकीर्त्तितम् । अतोऽन्यो ग्रन्थविस्तारो नव शास्त्रं कुवर्त्म तत् ॥" इति ॥ ४२ ॥

शास्त्रका स्वरूप स्कन्दपुराणमें कहा है ऋक्, यजु, साम, अथर्व, भारत, पाञ्चरात्र, और मूलरामायण यही शास्त्र हैं इससे अन्य ग्रन्थ प्रपञ्च और कुमार्ग हैं शास्त्र नहीं ॥ ४२ ॥

तदनेनानन्यलभ्यः शास्त्रार्थ इति न्यायेन भेदस्य प्राप्तत्वेन तत्र न तात्पर्य्यं किन्त्वद्वैत एव वेदवाक्यानां तात्पर्य्यमिति अद्वैतप्रत्याशा प्रतिक्षिप्ता । अनुमानादीश्वरस्य सिद्धाभावेन तद्भेदस्यापि ततः सिद्ध्यभावात् । तस्मान्न भेदानुवादकत्वमितितत्परत्वमवगम्यते । अतएवोक्तम्–सदागमैकविज्ञेयं समतीतक्षराक्षरम् । नारायणं सदा वन्दे निर्दोषाशेषसद्गुणम् ॥" इति ॥ ४३ ॥

अतः प्रमाणान्तरसे जो लभ्य नहीं हो वही शब्दका अर्थ है भेद प्रत्यक्ष सिद्ध होनेसे भेदके बोधनमें वेदका तात्पर्य नहीं हो सकता किन्तु अप्राप्त अद्वैतमें वेदान्त वाक्योंका तात्पर्य है इत्यादि अद्वैतसाधनयुक्ति भी निरस्त होगई । अनुमानद्वारा ईश्वरसिद्धि न होनेसे ईश्वरके साथ अभेदभी अनुमान साध्य नहीं हो सकता अतएव शास्त्रैकगम्य बद्ध मुक्त पुरुषोंसे पर, हेयगुणरहित, कल्याणगुणालय हरिकी वन्दना करता हूं इत्यादि अभियुक्तोक्ति संगत होती है ॥ ४३ ॥

शास्त्रस्य तत्र प्रामाण्यमुपपादितं 'तत्तु समन्वयात्' इति । समन्वय उपक्रमादिलिङ्गम् । उक्तं बृहत्संहितायाम्–"उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम् । अर्थवादोपपत्ती च लिङ्गं तात्पर्यनिर्णयः ॥" इति । एवं वेदान्ततात्पर्य्यवशात् तदेव ब्रह्म शास्त्रगम्यमित्युक्तं भवति । दिङ्मात्रमत्र प्रादर्शि शिष्टमानन्दतीर्थभाष्य

व्यख्यानादौ द्रष्टव्यं ग्रन्थबहुत्वभियोपरम्यत इति । एतच्च रहस्यं पूर्णप्रज्ञेन मध्यमन्दिरेण वायोस्तदीयावतारम्मन्येन निरूपितमिति ॥ ४४ ॥

चतुर्थ सूत्रसे प्रामाण्य प्रतिपादन किया, उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता फल, अर्थवाद, उपपत्ति, इति षड्विधलिङ्ग समन्वय हैं । यही लिङ्ग तात्पर्य निर्णायक होते हैं एवं वेदान्ततात्पर्य वश ब्रह्म शास्त्रगम्य है यह सिद्ध हुआ अधिक आनन्दतीर्थभाष्यसे जानना । यह सब रहस्य अपनेको वायुका अवतार माननेवाले आनन्दतीर्थने निरूपण किये हैं ॥ ४४ ॥

'प्रथमस्तु हनूमान् स्यात् द्वितीयो भीम एव च । पूर्णप्रज्ञस्तृतीयश्च भगवत्कार्य्यसाधकः' इति ॥ एतदेवाभिप्रेत्य तत्र तत्र ग्रन्थसमाप्ताविदं पद्यं लिख्यते । यस्य त्रीण्युदितानि वेदवचने दिव्यानि रूपाण्यलं बट्तद्दर्शतमित्थमेतदखिलं वेदस्य गर्भं महत् । वायो रामवचोनयं प्रथमकं पृक्षो द्वितीयं वपुर्मध्वोयस्तु तृतीयमेतदमुना ग्रन्थः कृतः केशवे ॥ एतत्पद्यार्थस्तु बळित्थातद्वपुषेऽधायि दर्शतं देवस्य भर्गः सहसो यतोजनीत्यादिश्रुतिपर्य्यालोचनयावगम्यत इति । तस्मात् सर्वस्य शास्त्रस्य विष्णुतत्त्वं सर्वोत्तममित्यत्र तात्पर्य्यमिति सर्वं निरवद्यम् ॥ ४५ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहे पूर्णप्रज्ञदर्शनं समाप्तम् ॥

भगवत्कार्य साधनेके लिये पहिले हनुमान्, द्वितीय, भीम, तृतीय पूर्णप्रज्ञ हुए इसी अभिप्रायसे माध्वोंने ग्रन्थसमाप्तिमें निम्न श्लोक लिखे हैं जिन वायुके तीन दिव्यरूप पर्य्याप्त रूपसे " बट्तद्दर्शत " इत्यादि वेदवचनमें कहे हैं उनमेंसे प्रथम " रामवचोनयं " अर्थात् रघुनाथजीके आज्ञाकारी हनुमान्जी प्रथम रूप, कौरवसेनाके विनाश करनेवाले भीम द्वितीय रूप, और मध्वाचार्य तृतीय रूप हैं । जिन्होंने केशवभगवान्के विषयमें ग्रन्थ निर्माण किया है इस विषयमें विशेष जिज्ञासु ऋग्वेदान्तर्गत उक्त श्रुतिसे जिज्ञासा शान्ति करें । एवश्च विष्णु तत्त्वही सर्वोत्कृष्ट है इसीमें सम्पूर्ण वेदोंका तात्पर्य है ॥ ४५ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहमें पूर्णप्रज्ञदर्शन समाप्त ।

अथ नकुलीशपाशुपतदर्शनम् ॥ ६ ॥

तदेतद्वैष्णवमतं दासत्वादिपदवेदनीयं परतन्त्रदुःखावहत्वान्न दुःखान्तादीप्सितास्पदमित्यरोचयमानाः पारमैश्वर्य्यं कामयमानाः पराभिहता मुक्ता न भवन्ति परन्त्रत्वात् पारमैश्वर्य्यरहितत्वादस्मदादिवत् मुक्तात्मानश्च परमेश्वरगुणसम्बन्धिनः पुरुषत्वे सति समस्तदुःखबीजविधुरत्वात् परमेश्वरवदित्याद्यनुमानं प्रमाणं प्रतिपद्यमानाः केचन माहेश्वराः परमपुरुषार्थसाधनपञ्चार्थप्र पञ्चनपरं पाशुपतशास्त्रमाश्रयन्ते ॥ १ ॥

पूर्वोक्त दासत्वादिपदबोध्य वैष्णवमत परतन्त्रत्वादि दुःख बहुल होनेसे सदा दुःखरूपही बना रहेगा अतः निरवधिक सुखाभिलाषियोंके आश्रयणको अयोग्य माननेवाले परमैश्वर्यको चाहनेवाले परतन्त्र परमैश्वर्य शून्य होनेसे मुक्त नहीं हो सकता जिस प्रकार अस्मदादि बद्ध संसारी मुक्त नहीं है । समस्त दुःखबीजरहित होनेसे मुक्तात्मा परमेश्वर गुण सम्बन्धी है इत्यादि अनुमान प्रमाणको उपन्यास करते हुए कोई २ माहेश्वर (शैव) परम पुरुषार्थसाधक पञ्चार्थप्रपञ्चक पाशुपतमतका अवलम्बन करते हैं ॥ १ ॥

तत्रेदमादिसूत्रम्—

'अथातः पशुपतेः पाशुपतयोगविधिं व्याख्यास्यामः' इति । अस्यार्थः—अत्राथशब्दः पूर्वप्रकृतापेक्षः । पूर्वप्रकृतश्च गुरुं प्रति शिष्यस्य प्रश्नः । गुरुस्वरूपं गणकारिकायां निरूपितम् । "पञ्चकास्त्वष्ट विज्ञेया गणश्चैकात्रिकात्मकः। वेत्ता नवगणस्यास्य संस्कर्त्ता गुरुरुच्यते" इति।लाभा मला उपायाश्च देशावस्था विशुद्धयः। दीक्षाकारिबलान्यष्टौ पञ्चकास्त्रीणि वृत्तयः॥"इति । तिस्रो वृत्तय इति प्रयोक्तव्ये त्रीणि वृत्तय इति छान्दसः प्रयोगः। तत्र विधीयमानमुपायफलं लाभः ज्ञानतपोदेवनित्यत्वास्थितिशुद्धिभेदात् पञ्चविधः। तदाह हरदत्ताचार्य्यः—'ज्ञानं तपोऽथ नित्यत्वं स्थितिः शुद्धिश्च पञ्चमम्' इति ॥ २ ॥

प्रथम सूत्रका अर्थ यह है कि अथशब्द पूर्वप्रकृत शिष्यप्रश्नानन्तर्य्यका बोधक है । गुरुका स्वरूप गणकारिकामें इस प्रकार लिखा है आठ पञ्चक और त्रिकरूप एक गण इस प्रकार नौ गणोंके वेत्ता संस्कार करनेवाले गुरु होते हैं । लाभ, मल, उपाय, देश, अवस्था, विशुद्धि, दीक्षाकारी, बल यह आठ पञ्चक हैं । इनमें एक एकमें पाञ्च २ भेद होनेसे पञ्चक कहाते हैं तीन वृत्ति हैं यद्यपि विशेष्यविशेषणका समान लिङ्ग वचन नियम होनेसे 'तिस्रो वृत्तयः' ऐसा कहना उचित था तथापि छान्दस होनेसे लिङ्गविपर्यय करके त्रीणि ऐसा नपुंसक लिङ्ग होगया । अब क्रमसे एक एककी व्याख्या और भेद कहते हैं । क्रियमाण उपायका फल लाभ है उसको ज्ञान, तप, नित्यत्व, स्थिति, शुद्धिभेदसे हरदत्ताचार्यने पाँच प्रकार कहाहै ॥ २ ॥

आत्माश्रितो दुष्टभावो मलः । स मिथ्याज्ञानादिभेदात् पञ्चविधः । तदप्याह–"मिथ्याज्ञानमधर्मश्च सक्तिर्हेतुश्च्युतिस्तथा। पशुत्वमूलं पञ्चैते तन्त्रे हेया विविक्तितः ॥" इति ॥ साधकस्य शुद्धिहेतुरुपायः वासचर्य्यादिभेदात् पञ्चविधः । तदप्याह– "वासचर्य्या जपो ध्यानं सदा रुद्रस्मृतिस्तथा । प्रतिपत्तिश्च लाभानामुपायाः पञ्च निश्चिताः॥" इति ॥ ३ ॥

आत्मवृत्तिदुष्टभाव मल है वहभी मिथ्याज्ञान, अधर्म्म, शक्ति, हेतु, च्युति भेदसे पाँच पशुत्वका मूल है अतः विवेकद्वारा यह सब हेय है । साधककी शुद्धिके हेतु उपायभी वासचर्या, जप, ध्यान निरन्तर रुद्रका स्मरण, लाभकी प्रतिपत्तिभेदसे पाँच प्रकार है ॥ ३ ॥

येनार्थानुसन्धानपूर्वकं ज्ञानतपोवृद्धिः प्राप्नोति स देशो गुरुजनादिः । यदाह–"गुरुर्जनो गुहादेशः श्मशानं रुद्र एव च"इति॥ आलाभप्राप्तेरेकत आदौ यदवस्थानं सावस्था व्यक्तादिविशेषेण विशिष्टा । तदुक्तम्–'व्यक्ताव्यक्तजपादानं निष्ठा चैव हि पञ्चमम्, इति ॥ मिथ्याज्ञानादीनामत्यन्तव्यपोहो विशुद्धिः । सा प्रातियोगिभेदात् पञ्चविधा । तदुक्तम्–'अज्ञानस्याप्यसङ्गस्य हानिः सङ्करस्य च । च्युतिर्हानिः पशुत्वस्य शुद्धिः पञ्चविधा स्मृता' इति॥ दीक्षाकारिपञ्चकं चोक्तम्–'द्रव्यं कालः

क्रिया मूर्त्तिर्गुरुश्चैव हि पञ्चमः’ इति॥ बलपञ्चकञ्च--‘गुरुभक्तिः प्रसादश्च मतेर्द्वन्द्वजयस्तथा। धर्मश्चैवाप्रसादश्च बलं पञ्चविधं स्मृतम् ॥” इति ॥ पञ्चमललघूकरणार्थं मानामानविरोधिनोऽन्नार्जनोपाया वृत्तयः भैक्ष्योत्सृष्टयथालब्धाभिधा इति । शेषमशेषमाकर एवावगन्तव्यम् ॥ ४ ॥

जहाँपर अर्थानुसन्धान पूर्वक ज्ञान और तपकी वृद्धि हों वह देश है वहभी गुरु-जन, गुहा, देश, श्मशान और रुद्र भेदसे पाँच प्रकार है अलाभ प्राप्त होनेपर किसी एक रूपसे स्थितिरूप अवस्थाभी व्यक्त, अव्यक्त, जप, आदान और निष्ठा भेदसे पाँच हैं। मिथ्याज्ञानादिका अत्यन्तविनाशरूप विशुद्धिभी अज्ञान हानि,असङ्गहानि, सङ्ग करनेवालेकी हानि च्युति और पशुत्वहानि भेदसे पाँच प्रकार हैं। द्रव्य, काल, क्रिया, मूर्ति और गुरु यह पाँच दीक्षाकारी हैं । गुरुभक्ति, प्रसाद, चित्तके द्वन्द्वका जय, धर्म्म और अप्रसाद भेदसे बल पाँच प्रकार हैं । पूर्वोक्त पाँचों मलके निरासार्थ मान और अपमानके अविरोधी अन्नार्जनका उपायरूप वृत्ति भैक्ष्य, उत्सृष्ट, और यथालब्ध भेदसे तीन प्रकार हैं अधिक भाष्यसे जान लेना ॥ ४ ॥

अत्राथशब्देन दुःखान्तस्य प्रतिपादनम् । आध्यात्मिकादिदुःखव्यपोहप्रश्नार्थत्वात्तस्य पशुशब्देन कार्य्यस्य परतन्त्रवचनत्वात्तस्य पतिशब्देन कारणस्येश्वरः पतिरीशितोत जगत्कारणीभूतेश्वरवचनत्वात्तस्य । योगविधी तु प्रसिद्धौ। तत्र दुःखान्तो द्विविधः अनात्मकः सात्मकश्चेति। तत्रानात्मकः सर्वदुःखानामत्यन्तोच्छेदरूपः । सात्मकस्तु दृक्क्रिया शक्तिलक्षणमैश्वर्य्यम् । यत्र दृक्शक्तिरेकापि विषयभेदात् पञ्चविधोपचर्य्यते दर्शनं श्रवणं मननं विज्ञानं सर्वज्ञत्वञ्चेति ॥ ५ ॥

(अत्रेति) आध्यात्मिकादि दुःख विनाशनिमित्तक प्रश्नार्थक होनेसे अथशब्दसे दुःखान्त प्रतिपादन होता है पशुशब्दसे कार्यका प्रतिपादन है क्योंकि पशुशब्द परतन्त्रवाचक है और कार्यभी कारण परतन्त्र रहता है । पतिशब्दसे कारणका प्रतिपादन है क्योंकि पति, ईश्वर नियन्ता ये सब जगत्के कारण ईश्वरके वाचक हैं । योग और विधि दोनों प्रसिद्धही है दुःखके अन्त दो प्रकारके हैं एक अनात्मक और दूसरा

सात्मक है। समस्त दुःखोंका अत्यन्त उच्छेद अनात्मक दुःखान्त है। दर्शन क्रिया शक्ति लक्षणरूप ऐश्वर्य सात्मक दुःखान्त है। दृक् शक्ति एक होनेपरभी दर्शन श्रवण, मनन, विज्ञान और सर्वज्ञत्व भेदोंसे पाँच प्रकार लक्षित रहते हैं ॥ ५ ॥

तत्र सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टाशेषचाक्षुषस्पर्शादिविषयं ज्ञानं दर्शनम्। अशेषशब्दविषयं सिद्धिज्ञानं श्रवणम्। समस्तचिन्ताविषयं सिद्धिज्ञानं मननम्। निरवशेषशास्त्रविषयं ग्रन्थतोऽर्थतश्च सिद्धिज्ञानं विज्ञानम्। उक्तानुक्ताशेषार्थेषु समासविस्तरविभागविशेषतश्च तत्त्वव्याप्तसदोदितसिद्धिज्ञानं सर्वज्ञत्वम् इत्येषा धीशक्तिः ॥ ६ ॥

सूक्ष्म, व्यवहित और दूरस्थ समस्त चाक्षुषस्पर्शनादिविषयके ज्ञान दर्शन है, समस्त शब्दविषयक सिद्धिज्ञान श्रवण है, समस्तचिन्ताविषयकज्ञान मनन है। ग्रंथद्वारा या अन्यद्वारा समस्त शास्त्र विषयक सिद्धिज्ञान विज्ञान है। उक्तानुक्त समस्त वस्तुओंमें संक्षेप और विस्तारसे तत्वव्याप्त निरतिशय सिद्धिज्ञान सर्वज्ञत्व है। वही दृक् शक्ति है ॥ ६ ॥

क्रियाशक्तिरेकापि त्रिविधोपचर्य्यते मनोजवित्वं कामरूपित्वं विक्रमणधर्मित्वञ्चेति। तत्र निरतिशयशीघ्रकारित्वं मनोजवित्वम्। कर्मादिनिरपेक्षस्य स्वेच्छयैवानन्तसलक्षणविलक्षणस्वरूपकरणाधिष्ठातृत्वं कामरूपित्वम्। उपसंहृतकरणस्यापि निरतिशयैश्वर्य्यसम्बन्धित्वं विक्रमणधर्मित्वमित्येषा क्रियाशक्तिः ॥ ७ ॥

अब क्रियाशक्ति कहते हैं वास्तवमें एक होनेसेभी मनोजवित्व और कामरूपित्व एवं विक्रमणधर्मित्व भेदसे तीन प्रसिद्ध हैं मनके समान निरातिशय शीघ्रकारित्व मनोजवित्व है। कर्मादिकी अपेक्षाके विना स्वेच्छासे अनन्त सजातीय विजातीय स्वरूपका अधिष्ठानत्व कामरूपित्व है अर्थात् इच्छानुसार स्वरूपका धारण करना कामरूपित्व है। नष्टेन्द्रियकोभी निरातिशय ऐक्य साक्षात् कर्तृत्व विक्रमणधर्मित्व है। यही क्रियाशक्ति है ॥ ७ ॥

यदस्वतन्त्रं सर्वं कार्य्यं त्रिविधं विद्या कला पशुश्चेति । तत्र पशुगणो विद्या । सापि द्विविधा बोधाबोधस्वभावभेदात् । बोधस्वभावा विवेकाविवेकप्रवृत्तिभेदात् द्विविधा । तत्र या विवेकप्रवृत्तिः प्रमाणमात्रव्यङ्ग्या चित्तेत्युच्यत । चित्तेन हि सर्वः प्राणी बाह्यार्थात्मकप्रकाशानुगृहीतं सामान्येन विवेचितमविवेचितं चार्थं चेतयते इति । पश्वर्थधर्माधर्मिका पुनरबोधात्मिका विद्या स्वशास्त्रं येनोच्यते चेतनपरतन्त्रत्वे मत्यचेतना कला ॥ ८ ॥

विद्या कला और पशु भेदसे अस्वतन्त्र कार्य त्रिविध हैं । पशुगण विद्या है । वह बोध और अबोधस्वभाव भेदसे दो प्रकार है । विवेक और अविवेक प्रवृत्ति भेदसे बोधस्वभावभी द्विविध है । प्रमाणगम्य विवेक प्रवृत्तिका नाम चित्त है समस्त प्राणी चित्त हीसे बाह्यार्थ प्रकाशके सहकारी होकर विवेक युक्त और अविवेक युक्त अर्थका ज्ञान करते हैं । पशुपदार्थ धम्माधर्म्मरूप अबोधात्मक विद्या है । जिसको पाशपतशास्त्र कहते हैं चेतनके परतन्त्र और स्वयं अचेतन हो वह कला है ॥ ८ ॥

सापि द्विविधा कार्य्याख्या कारणाख्या चेति । तत्र कार्य्याख्या दशविधा । पृथिव्यादीनि पञ्च तत्त्वानि रूपादयः पञ्च गुणाश्चेति । कारणाख्या त्रयोदशविधा । ज्ञानेन्द्रियपञ्चकं कर्मेन्द्रियपञ्चकम् अध्यवसायाभिमानसङ्कल्पाभिधवृत्तिभेदात् बुद्ध्यहङ्कारमनोलक्षणमन्तःकरणत्रयश्चेति । पशुत्वसम्बन्धी पशुः । सोऽपि द्विविधः साञ्जनो निरञ्जनश्चेति । तत्र साञ्जनः शरीरेन्द्रियसम्बन्धी, निरञ्जनस्तु तद्रहितः । तत्प्रपञ्चस्तु पञ्चार्थभाष्यदीपिकादौ द्रष्टव्यः ॥ ९ ॥

कार्य और कारण भेदसे कला द्विविध है । पृथिव्यादि पञ्च भूत रूपादि पांच गुण मिलकर कार्य दशविध है । कारणभी पांच ज्ञानेन्द्रिय पांच कर्मेन्द्रिय अध्यवसाय (निश्चयात्मक) बुद्धि और अभिमानरूप अहंकार संकल्पात्मक मनोरूप तीन

अन्तःकरण मिलाकर तेरह प्रकार है । पशुत्वका सम्बन्धी पशुभी साञ्जन और निरञ्जन भेदसे द्विविध है। शरीर और इन्द्रियसे युक्त साञ्जन और शरीरेन्द्रियरहित निरञ्जन है । इसका विस्तार पञ्चार्थभाष्यदीपिकासे जान लेना ॥ ९ ॥

समस्तसृष्टिसंहारानुग्रहकारि कारणं तस्यैकस्यापि गुणकर्मभेदापेक्षया विभाग उक्तः पतिः साद्य इत्यादिना । तत्र पतित्वं निरतिशयदृक्क्रियाशक्तिमत्त्वं तेनैश्वर्य्येण नित्यसम्बन्धित्वम् आद्यत्वमनागन्तुकैश्वर्य्यसम्बन्धित्वम् इत्यादर्शकारादिभिस्तीर्थकरैर्निरूपितम् ॥ १० ॥

समस्त सृष्टि और संहारका अनुग्राहक कारण है वह यद्यपि एक है तथापि गुण और कमक भेदसे उसका भेद ' पतिः साद्यः ' इत्यादि पद्यमें वर्णन किया है। निरतिशय दर्शनक्रियाशक्तिमत्त्व पशुत्व है उसको ऐश्वर्यके साथ नित्यसम्बन्धित्व आद्यत्व और अनागंतुक ऐश्वर्यवत्त्व आदर्शादिकारिकामें तीर्थकरोंने कहा है ॥ १० ॥

चित्तद्वारेणात्मेश्वरसम्बन्धो योगः । स च द्विविधः क्रियालक्षणः क्रियोपरमलक्षणश्चेति । तत्र जप्यध्यानादिरूपः क्रियालक्षणः । क्रियोपरमलक्षणस्तु संविद्गत्यादिसंज्ञितः धर्मार्थसाधकव्यापारो विधिः । स च द्विविधः प्रधानभूतो गुणभूतश्च । तत्र प्रधानभूतः साक्षाद्धर्महेतुः चर्य्या सा द्विविधा व्रतं द्वाराणि चेति । तत्र भस्मस्नानशय्योपहारजपप्रदक्षिणानि व्रतम् । तदुक्तं भगवता नकुलीशेन । भस्मना त्रिषवणं स्नायीत भस्मानि शयीतेति ॥ ११ ॥

चित्तद्वारा आत्मा और ईश्वरका सम्बन्ध योग है। वह क्रियालक्षण और क्रियोपरमलक्षण भेदसे योग द्विविध है। जप ध्यानादिरूप क्रियालक्षण है और संवित् गत्यादिरूप दूसरा है । धर्म्मार्थ साधक व्यापार विधि है । वहभी प्रधान और गौण भेदसे दो प्रकार है । साक्षात् धर्मसाधक चर्य्या प्रथम है सोभी व्रत और द्वारभेदसे दो प्रकार है। भस्मस्नान, शय्या, उपहार, जप, और प्रदक्षिणा व्रत है। त्रिकाल भस्म स्नान और भस्ममें शयन करे इत्यादि नकुलीशनेभी कहा है ॥ ११ ॥

अत्रोपहारो नियमः । स च षडङ्गः । तदुक्तं सूत्रकारेण—"हसितगीतनृत्यहुडुक्कारनमस्कारजप्यषडङ्गोपहारेण उपतिष्ठेत" इति । तत्र हसितं नाम कण्ठौष्ठपुटविस्फूर्जनपुरःसरमहहहेत्यट्टहासः । गीतं गान्धर्वशास्त्रसमयानुसारेण महेश्वरसम्बन्धिगुणधर्मादिनिमित्तानां चिन्तनम् । नृत्यमपि नाट्यशास्त्रानुसारेण हस्तपादादीनामुत्क्षेपणादिकमङ्गप्रत्यंगोपांगसहितं भावाभावसमेतञ्च प्रयोक्तव्यम् । हुडुक्कारो नाम जिह्वातालुसंयोगान्निष्पाद्यमानः पुण्यो वृषनादसदृशो नादः हुडुगिति शब्दानुकारो वषडितिवत् । यत्र लौकिका भवन्ति तत्रैतत् सर्वं गूढं प्रयोक्तव्यम् । शिष्टं प्रसिद्धम् । द्वाराणि तु क्राथनस्पन्दनमन्दनशृङ्गारणावितत्करणावितद्भाषणानि । तत्रासुप्तस्यैव सुप्तलिङ्गवद्दर्शनं क्राथनम् । वाय्वभिभूतस्येव शरीरावयवानां स्पन्दनं कम्पनम् । उपहतपादेन्द्रियस्येव गमनं मन्दनम् । रूपयौवनसम्पन्नां कामिनीमवलोक्यात्मानं कामुकमिव यैर्विलासैः प्रदर्शयाति तत् शृङ्गारणम् । कार्य्याकार्य्यविवेकविकलस्येव लोकनिन्दितकर्मकरणमवितत्करणम् । व्याहतापार्थकादिशब्दोच्चारणमवितद्भाषणमिति॥ १२॥

षडङ्ग युक्त नियमका नाम उपहार है । हसित १ गीत २ नृत्य ३ हुडुक्कार ४ नमस्कार ५ और जप्य रूप ६ षडङ्ग उपहारसे उपस्थान करें इत्यादि सूत्रकारने कहा है । कण्ठ और ओष्ठको फाडकर चिल्लाकर अट्टहास करना हसित है । महेश्वरसम्बन्धी गुण और धर्म निमित्तके गन्धर्वशास्त्रानुसार चिन्तन गीत है । नाट्यशास्त्रानुसार हाथ पांवका चलाना अङ्गको भावपूर्वक अथवा भावशून्य डुलाना नृत्य है । बैलके शब्दकी समान हुडुकशब्द वषड् शब्दवत् हुडुकशब्दका अनुकरण हुडुक्कार है यह सब लैकिकोंके सामने गुप्त रखें शेष प्रसिद्ध रखें । क्राथन, स्पन्दन, मन्दन, शृंगारण, अवितत्करण और अवितद्भाषण द्वार हैं । असुप्तभी सुप्तक समान आकृति दर्शनका नाम क्राथन है । वायुसे अभिभूतके समान शरीरको चलाना कम्पन है । लङ्गडोंके समान चलना मन्दन है, रूपयौवनयुक्त सुन्दर स्त्रीको देखकर अत्यन्त

विषयीकी चेष्टा करना शृङ्गार है उन्मत्तके समान लोकनिन्दित कर्मकरना अवितत्क-रण है । पागलोंकी समान परस्पर व्याहत और अपार्थशब्दका उच्चारण करना अवितद्भाषण है ॥ १२ ॥

गुणभूतस्तु चर्य्या अनुग्राहकोऽनुस्नानादिः भैक्ष्योच्छिष्टादि-निर्मितायोग्यताप्रत्ययनिवृत्त्यर्थः । तदप्युक्तं सूत्रकारेण ।अनु-स्नाननिर्माल्यलिंगधारीति ॥ तत्र समासो नाम धर्मिमात्राभि-धानम् । तच्च प्रथमसूत्र एव कृतम् । पञ्चानां पदार्थानां प्रमा-णतः पञ्चाभिधानं विस्तरः । स खलु राशीकरभाष्ये द्रष्टव्यः । एतेषां यथासम्भवं लक्षणतोऽसङ्करेणाभिधानं विभागः । स तु विहितशास्त्रान्तरेभ्योऽमीषां गुणातिशयेन कथनं विशेषः॥१३॥

गुणभूत चर्या अनुग्राहक और अनुस्नानादि है । भिक्षा उच्छिष्टादिनिर्मित अयो-ग्यतानिवृत्तिके लिये है धर्मी मात्रका कथन समास है यह प्रथमसूत्रमें कहा है । पांचों तत्त्वोंके पांच पांच भेद कथन विस्तार है । वह राशीकरके भाष्यसे जानले । इन्हीको पृथक् लक्षणोंसे कथन विभाग है । वह शास्त्रान्तरसे विशेष गुणातिशयका कथन है ॥ १३ ॥

तथाहि अन्यत्र दुःखनिवृत्तिरेव दुःखान्तः इह तु पारमैश्वर्य्य-प्राप्तिश्च ।अन्यत्राभूत्वा भावि कार्य्यमिह तु नित्यं पश्वादि । अन्यत्र सापेक्षं कारणम् इह तु निरपेक्षो भगवानेव । अन्यत्र कैवल्यादिफलको योगः इह तु पारमैश्वर्य्यदुःखान्तफलकः । अन्यत्र पुनरावृत्तिः स्वर्गादिः इह पुनरपुनरावृत्तिरूपः सामी-प्यादिफलकः ॥ १४ ॥

अन्यत्र मतान्तरमें दुःखनिवृत्तिमात्रको दुःखका अन्त कहा है परन्तु इस मतमें पारमैश्वर्यप्राप्तिभी माने जाते हैं अन्यत्र अविद्यमानकी उत्पत्तिही कार्य है । इसमें पश्वादि नित्य कार्य है । अन्यत्र कारण सापेक्ष रहता है । यहां निरपेक्ष भगवान् कारण हैं अन्यत्र योगका फल कैवल्य है यहाँ दुःखान्त और पामैश्वर्य प्राप्तिभी है अन्यत्र स्वर्गादि पुनरावृत्तियुक्त अर्थात् नाशवान् है यहाँ पुनरावृत्तिरहित सामीप्य फलक है ॥ १४ ॥

ननु महदेतदिन्द्रजालं यन्निरपेक्षं परमेश्वरः कारणमिति तथात्वे कर्मवैफल्यं सर्वकार्य्याणां समसमयसमुत्पादश्चेति दोषद्वयं प्रादुष्यात् मैवं मन्येथाः व्यधिकरणत्वात् । यदि निरपेक्षस्य भगवतः कारणत्वं स्यात्तर्हि कर्मणो वैफल्ये किमायातम् । प्रयोजनाभाव इति चेत् कस्य प्रयोजनाभावः । कर्मवैफल्ये कारणं किं कर्मिणः किं वा भगवतः । नाद्यः ईश्वरेच्छानुगृहीतस्य कर्मणः सफलत्वोपपत्तेः तदनुगृहीतस्य ययातिप्रभृतिकर्मवत् कदाचित् निष्फलत्वसम्भवाच्च । न चैतावता कर्मस्वप्रवृत्तिः कर्षकादिवदुपपत्तेः ईश्वरेच्छायत्तत्वाच्च पशूनां प्रवृत्तेः । नापि द्वितीयः परमेश्वरस्य पर्य्याप्तकामत्वेन कर्मसाध्यप्रयोजनापेक्षाया अभावात् । यदुक्तं समसमयसमुत्पाद इति तदप्ययुक्तम् अचिन्त्यशक्तिकस्य परमेश्वरस्येच्छानुविधायिन्या अव्याहतक्रियाशक्त्या कार्यकारित्वाभ्युपगमात् । तदुक्त सम्प्रदायविद्भिः–"कर्मादिनिरपेक्षस्तु स्वेच्छाचारी यतो ह्यहम् । ततः कारणतः शास्त्रे सर्वकारणकारणम् ॥" इति ॥ १९ ॥

यह बडा भारी इन्द्रजाल है कि परमेश्वर निरपेक्षही कारण बन जाते हैं ऐसा हो तो कर्मही विफल होगा और संपूर्ण कार्य एकही समय उत्पन्नभी होने लगेंगे यहभी नहीं आपका कथन विपरीत है निरपेक्ष भगवान्को कारण माननेसे कर्म विफल होनेपर क्या होता है । प्रयोजनाभाव कहोगे तो किसका प्रयोजनाभाव है । कर्मवैफल्यमें क्या कर्मी कारण है या भगवान् कारण है ? (उत्तर) भगवानको ईश्वरेच्छासे अनुगृहीत कर्मका सफलत्व सम्भव है अतः प्रथम पक्षको कह नहीं सकते । ययाति प्रभृतिके कर्मके समान कदाचित् ईश्वरानुगृहीत कर्मभी विफल हो सकता है क्योंकि इतनेहीसे कर्ममें प्रवृत्तिका अभाव सम्भव नहीं कृषकोंके समान कर्ममें प्रवृत्ति हो सकता है परमेश्वर आप्तकाम होनेसे सकर्म साध्य प्रयोजनकी अपेक्षाभी नहीं है समकालमें सब कार्य होनेलगेगा । यहभी नहीं अचिन्त्यशक्ति परमात्माकी इच्छाधीन क्रियाशक्ति कार्यनिर्वाहक मानी है अतएव सांप्रदायिकोंने कहा है जिनसे परमात्मा कर्म्मादि निरपेक्ष स्वेच्छाचारी है इसीसे शास्त्रमें सम्पूर्ण कारणोंको भी कारण कहा है ॥ १९ ॥

ननु दर्शनान्तरेऽपीश्वरज्ञानान्मोक्षो लभ्यत एवेति कुतोऽस्य विशेष इति चेन्मैवं वादीः विकल्पानुपपत्तेः । किमीश्वरविषयज्ञानमात्रं निर्वाणकारणं किंवा साक्षात्कारः, अथवा यथावत्तत्त्वनिश्चयः ।नाद्यः--शास्त्रमन्तरेणापि प्राकृतजनवद्देवानामधिपो महादेव इति ज्ञानोत्पत्तिमात्रेण मोक्षसिद्धौ शास्त्राभ्यासवैफल्यप्रसङ्गात् । नापि द्वितीयः--अनेकमलप्रचयोपचितानां पिशितलोचनानां पशूनां परमेश्वरसाक्षात्कारानुपपत्तेः । तृतीयेऽस्मन्मतापातः पाशुपतशास्त्रमन्तरेण यथावत्तत्त्वनिश्चयानुपपत्तेः । तदुक्तमाचार्यैः--ज्ञानमात्रे यथा शास्त्रं साक्षाद्दृष्टिस्तु दुर्लभा । पञ्चार्थादन्यतो नास्ति यथावत्तत्त्वनिश्चयः ॥" इति । तस्मात् पुरुषार्थकामः पुरुषधौरेयैः पञ्चार्थप्रतिपादनपरं पाशुपतशास्त्रमाश्रयणीयम् ॥ १६ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहे नकुलीशपाशुपतदर्शनं समाप्तम् ॥ ६ ॥

जब दर्शनान्तरमें भी ईश्वरज्ञानसे मोक्ष प्रतिपादन किया है तब यहाँ क्या विशेष है जिससे इतना श्रम उठाते हो सुनो. क्या ईश्वरविषय ज्ञानमात्रसे मोक्ष है, किंवा प्रत्यक्षसे, अथवा यथावत्तत्त्व निश्चयसे मोक्ष है ? शास्त्राभ्यासके विनाभी पामरोंके समान महादेव देवोंकेभी देव हैं इत्यादि ज्ञानमात्रसे मोक्ष होजाय तो शास्त्राभ्यास व्यर्थ होगा अतः प्रथम पक्ष अयुक्त है । द्वितीयमेंभी अनेक पापसे युक्त चर्मचक्षुओंको ईश्वर साक्षात्कार असम्भव है तृतीय पक्षमें पाशुपत मतमें प्रवेश अवश्यही होगा पाशुपतशास्त्रके विना यथावत् तत्त्वनिश्चय अनुपपन्न है अतएव कहा है ज्ञानमात्रपक्षमें शास्त्र व्यर्थ होगा साक्षात्कार (प्रत्यक्ष) दुर्लभ है पञ्चार्थ प्रतिपादक पाशुपतशास्त्रके विना तत्त्वनिश्चयभी नहीं होगा अतः पुरुषार्थ चाहनेवाले श्रेष्ठ पुरुष पञ्चार्थ प्रतिपादक पाशुपतशास्त्रका आश्रयण करें ॥ १६ ॥

सर्वदर्शनसंग्रहमें नकुलीशपाशुपतदर्शन समाप्त ।

अथ शैवदर्शनम् ॥ ७ ॥

तमिमं परमेश्वरः कर्मादिनिरपेक्षः कारणमिति पक्षं वैषम्यनैर्घृण्यदोषदूषितत्वात् प्रतिक्षिपन्तः केचन माहेश्वराः शैवागमसिद्धान्ततत्त्वं यथावदीक्षमाणाः कर्मादिसापेक्षः परमेश्वरः कारणमिति पक्षं कक्षीकुर्वाणाः पक्षान्तरमुपाक्षिपन्ति पतिपशुपाशभेदात् त्रयः पदार्था इति ॥ १ ॥

कर्म्मादिनिरपेक्ष ईश्वरको कारणत्व स्वीकार करनेवाले नाकुलीशके मतमें–वैषम्य नैर्घृण्य (निन्दनीयत्व) दूषित होनेसे उक्त पक्षको दूषित करके शैवसिद्धान्तको सम्यक् विचारकर कर्म्मादिसापेक्ष ईश्वरको कारण माननेवाले कोई माहेश्वर मतान्तर निरासपूर्वक पति, पशु और पाशभेदसे तीन तत्त्वोंको व्यवस्थापन करते हैं ॥ १ ॥

तदुक्तं तन्त्रतत्त्वज्ञैः । "त्रिपदार्थं चतुष्पादं महातन्त्रं जगद्गुरुः । सूत्रेणैकेन संक्षिप्य प्राह विस्तरतः पुनः ॥" इति । अस्यार्थः–उक्तास्त्रयः पदार्था यस्मिन् सन्ति तत्त्रिपदार्थं विद्याक्रियायोगचर्य्याख्याश्चत्वारः पादा यस्मिन् तच्चतुश्चरणं महातन्त्रमिति। तत्र पशूनामस्वतन्त्रत्वात् पाशानामचैतन्यात् तद्विलक्षणस्य पत्युः प्रथममुद्देशः चेतनत्वसाधर्म्यात् पशूनां तदानन्तर्य्यम् । अवशिष्टानां पाशानामन्ते विनिवेश इति क्रमनियमः ॥ २ ॥

अतएव तन्त्रतत्त्वज्ञोंनें कहा है जगद्गुरुने तीन पदार्थ चार चरणोंसे युक्त महातन्त्रको एकही सूत्र द्वारा संक्षेपसे कहकर पुनः विस्तारसे वर्णन किया तात्पर्य जिस तन्त्रमें उक्त तीनों पदार्थ और विद्या, क्रिया, योग, चर्यारूप चार पाद हों वह महातन्त्र है । पशु परतन्त्र और पाश अचेतन होनेसे सर्वश्रेष्ठ पतिका प्रथम निर्देश किया चेतनत्व धर्म समान होनेसे अनन्तर पशुका निर्देश किया और अन्तमें पाशका निर्देश किया है ॥ २ ॥

दीक्षायाः परमपुरुषार्थहेतुत्वात् तस्याश्च पशुपाशेश्वरस्वरूपनिर्णयोपायभूतेन मन्त्रमन्त्रेश्वरादिमाहात्म्यनिश्चायकेन ज्ञानेन

विना निष्पादयितुमशक्यत्वात् तदेव बोधकस्य विद्यापादस्य प्राथम्यम् । अनेकविधसाङ्गदीक्षाविधिप्रदर्शकस्य क्रियापादस्य तदानन्तर्य्यम् । योगेन विना नाभिमतप्राप्तिरिति साङ्गयोगज्ञापकस्य योगपादस्य तदुत्तरत्वम् । विहिताचरणनिषिद्धवर्जनरूपां चर्य्यां विना योगोऽपि न निर्वहतीति तत्प्रतिपादकस्य चर्य्यापादस्य चरमत्वमिति विवेकः ॥ ३ ॥

मोक्षका कारण दीक्षा है वह दीक्षा पशु पाश और ईश्वर• इन तीनोंके स्वरूप निर्णयके उपायभूत मन्त्र मन्त्रेश्वरादि माहात्म्य ज्ञानके निश्चायक विना असम्भव होनेसे तद्बोधक विद्यापादका प्रथम उपादान है नानाविध दीक्षाविधिप्रदर्शक क्रियापादके अनन्तर उपन्यास एवं योगके विना अभिमतप्राप्ति न होनेसे साङ्गयोगबोधक योगपादके पश्चात् उपन्यास किया है । विहितानुष्ठान निषिद्ध त्यागरूप चर्याके विना योगभी अकार्यकर होनेसे तत्प्रतिपादक चर्याको सबके अन्तमें उपादान किया ॥ ३ ॥

तत्र पतिपदार्थः शिवोऽभिमतः । मुक्तात्मनां विद्येश्वरादीनाञ्च यद्यपि शिवत्वमस्ति तथापि परमेश्वपारतन्त्र्यात् स्वातन्त्र्यं नास्ति । ततश्च तदनुकरणभुवनादीनां भावानां सन्निवेशविशिष्टत्वेन कार्य्यत्वमवगम्यते । तेन च कार्य्यत्वेनैषां बुद्धिमत्पूर्वकत्वमनुमयित इत्यनुमानवशात्परमेश्वरप्रासिद्धिरुपपद्यते॥४॥

यहां पशुपदार्थ शिव विवक्षित है यद्यपि मुक्त और विद्या ईश्वरादिको भी शिवत्व है तथापि परमेश्वर परतन्त्र होनेसे स्वातन्त्र्य नहीं । अनन्तर भुवनादिके अवयवसन्निवेश विशिष्ट (सावयव) होनेसे कार्यत्व अनुमित होता है जो कार्य होता है वह उपादानसम्प्रदानादि बुद्धिमत्कर्तृक होताहै ईदृश विस्तृत भुवनादिका उपादानादि ज्ञानवान् ईश्वरसे अन्य न हो सकनेसे अनुमानद्वारा परमेश्वर सिद्धि होती है ॥ ४ ॥

ननु देहस्यैव तावत्कार्य्यत्वमसिद्धम् । न हि क्वचित् केनचित् कदाचिद्देहः क्रियमाणो दृष्टचरः । सत्यं तथापि न केनचित्क्रियमाणत्वं देहस्य दृष्टमिति कर्तृदर्शनापह्नवो न युज्यते तस्यानुमेयत्वेनाप्युपपत्तेः । देहादिकं कार्य्यं भवितुमर्हति सन्नि-

वेशविशिष्टत्वात् विनश्वरत्वाद्वा घटादिवत् तेन च कार्य्यत्वेन बुद्धिमत्पूर्वकत्वमनुमातुं सुकरमेव। विमतं सकर्तृकं कार्य्यत्वात घटवत् यदुक्तसाधनं तदुक्तसाध्यं न यदेवं न तदेवं यथात्मादि । परमेश्वरानुमानप्रामाण्यसाधनानुमानमन्यत्रकारीत्युपरम्यते ॥ ५ ॥

यदि कहो—पहिले देहहीका कार्यत्व सिद्ध नहीं कहींभी देहके बनानेवालेको किसीने नहीं देखा सत्य कहते हो तो भी देहके बनाते हुए किसीको नहीं देखनेसेही कर्ताका निषेध नहीं कर सकते क्योंकि अनुमानसेभी कर्ता सिद्ध हो सकता है। सावयव और अनित्य होनेसे घटादिकी समान देहादिक कार्य है । देहादिक कार्य होनेसे सकर्तृक है इत्यादि अनुमानसे कर्ता सिद्ध होजानेपर बुद्धिमत्कर्तृकत्वभी सुकर है इसी प्रकार विमत (विवादास्पद) भुवनादिकभी घटादिके समान कार्य होनेसे सकर्तृक है जो जो उक्त साधन (कार्य) हो वह सब सकर्तृक है जो सकर्तृक नहीं वह कार्यभी नहीं जैसे आत्मा परमेश्वरानुमानका प्रामाण्य अन्यत्र कुसुमाञ्जल्यादि ग्रंथमें दिखाया है अतः विराम लेताहूं ॥ ५ ॥

"अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः । ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ॥" इति न्यायेन प्राणिकृतकर्मापेक्षया परमेश्वरस्य कर्तृत्वोपपत्तेः । न च स्वातन्त्र्यविहतिरितिवाच्यं करणापेक्षया कर्तुः स्वातन्त्र्यविहतेरनुपलम्भात् कोषाध्यक्षापेक्षस्य राज्ञः प्रसादादिना दानवत् । यथोक्तं सिद्ध गुरुभिः—"स्वतन्त्रस्याप्रयोज्यत्व करणादिप्रयोक्तृता । कर्त्तुः स्वातन्त्र्यमेतद्धि नच कर्माद्यपेक्षता ॥" इति ॥ ६ ॥

जीव अज्ञ और अपने सुखदुःखकी निवृत्तिके लियेभी समर्थ नहीं है ईश्वरकी प्रेरणासे स्वर्ग अथवा नरक जाता है। इत्युक्त प्रकार प्राणी कर्म्मकी अपेक्षासे ईश्वरका कर्तृत्व है । यदि कहो स्वतन्त्रताकी हानि होगी सो ऐसा नहीं कहसकते कारणकी अपेक्षा करनेसे कर्ताके स्वातन्त्र्यकी हानि कहीं दृष्ट नहीं है जिस प्रकार दानादिमें कोषाध्यक्षकी अपेक्षा करनेसे राजाका स्वातन्त्र्य भंग नहीं होता प्रत्युत स्वातन्त्र्य रक्षित होता है यथा सिद्धगुरुने कहा है कि स्वतन्त्रका अप्रयोज्यत्व और करणादिका प्रयोजकत्व यही कर्ताका स्वातन्त्र्य है कर्मादि निरपेक्षता स्वातंत्र्य नहीं है ॥ ६ ॥

तथाच तत्तत्कर्माशयवशाद्भोग तत्साधनतदुपादानादिविशेषज्ञः कर्त्ता अनुमानादिसिद्ध इति सिद्धम् । तदिदमुक्तं तत्रभवद्भिर्बृहस्पतिभिः--"इह भोग्यभोगसाधनतदुपादानादि यो विजानाति तमृते भूतन्नहीदं पुंस्कर्माशयविपाकज्ञम्" इति ॥ अन्यत्रापि-"विवादाध्यासितं सर्वं बुद्धिमत्पूर्वकर्तृकम् । कार्य्यत्वादावयोः सिद्धं कार्य्यं कुम्भादिकं यथा॥"इति । सर्वात्मकत्वादेवास्य सर्वज्ञत्वं सिद्धम् अज्ञस्य करणासम्भवात् । उक्तञ्च श्रीमन्मृगेन्द्रैः--"सर्वज्ञः सर्वकर्तृत्वात् साधनाङ्गफलैः सह । यो यज्जानाति कुरुते स तदेवेति सुस्थितम् ॥" इति ॥ ७ ॥

एवञ्च तत्तत्कर्म्माशयवश भोग, भोगसाधन, तदुपायको जाननेवाला कर्ता अनुमान सिद्ध है अतएव बृहस्पतिने कहा है भोग्य भोगोपकरण और भोगोपादानको जो जानता है उसके अतिरिक्त पुरुष कर्माशयका ज्ञाता अन्य नहीं है (अन्यत्रापि) विवादास्पद कार्य उपादान सम्प्रदान प्रयोजन ज्ञातृकर्तृक है । घटादिवत् सावयव होनेसे दोनोंके मतमें कार्यत्वभी सिद्ध है । अतः सर्वात्मक होनेसे सर्वज्ञत्वभी सिद्ध हुआ अज्ञको कर्तृत्व नहीं हो सकता है सर्वका कर्ता होनेसे सर्वज्ञ है जो जिसका साधन फलादि जानता है सोई उसको करता है यह सिद्ध है ॥ ७ ॥

अस्तु तर्हि स्वतन्त्र ईश्वर कर्त्ता स तु तावदशरीरः घटादिकार्यस्य शरीरवता कुलालादिना क्रियमाणत्वदर्शनात् । शरीरवत्त्वे चास्मदादिवदीश्वरः क्लेशयुक्तोऽसर्वज्ञः परिमितशक्तिः प्राप्नुयादिति चेन्मैवं मंस्थाः अशरीरस्याप्यात्मनःस्वशरीरस्पन्दादा कर्तृत्वदर्शनादभ्युपगम्यापि ब्रूमहे शरीरवत्त्वेऽपि भगवतो न प्रागुक्तदोषानुषङ्गः परमेश्वरस्य हि मलकर्मादिपाशजालासम्भवेन प्राकृतं शरीरं न भवति किन्तु शाक्तं शक्तिरूपैरीशानादिभिः पञ्चभिर्मन्त्रैर्मस्तकादिकल्पनायामीशानमस्तकस्तत्पुरुषवक्त्रो ऽघोरहृदयो वामदेवगुह्यः सद्योजातपाद ईश्वर इति प्रसिद्ध्या यथाक्रमानुग्रहतिरोभावादानलक्षणस्थितिलक्षणो-

द्भवलक्षणकृत्यपञ्चककारणं स्वेच्छानिर्मितं तच्छरीरं न चास्म-च्छरीरसदृशम् । तदुक्तं श्रीमन्मृगेन्द्रैः--"मलाद्यसम्भवाच्छाक्तं वपुर्नैतादृशं प्रभोः " इति। अन्यत्रापि--"तद्वपुः पञ्चभिर्मन्त्रैः पञ्चकृत्योपयोगिभिः। ईशतत्पुरुषाघोरवामाद्यैर्मस्तकादिमत्॥" इति ॥ ८ ॥

अनुमानसे स्वतन्त्र ईश्वर कर्ता सिद्ध हो परन्तु अशरीरी कर्ता कहीं दृष्ट नहीं है सर्वत्र घटादि कर्ता कुलालादि शरीरवान् ही दृष्ट है यदि ईश्वरकोभी शरीरी मानो तो ईश्वरभी अस्मदादिवत् क्लेशकर्मादियुक्त परिमितशक्तिमान् अल्पज्ञ हो जायगा यहभी नहीं कह सकते क्योंकि जिस समय प्रथम आत्मा शरीरमें प्रवेश करता है उस समय आत्मा अशरीर होते हुएभी शरीर प्रवेश और चलनादिमें कर्ता रहता है अतः सशरीर ही कर्ता होता है इसमें कोई प्रबल युक्ति नहीं है ईश्वरको सकर्तृक मानभी लो तोभी पूर्वोक्त दोष नहीं आसकता कारण मलकर्मादि पाश जाल न होनेसे ईश्वरका प्राकृत शरीर नहीं किन्तु शक्तिकल्पित है शक्तिरूप ईशानादि मन्त्रपञ्चकसे मस्तकादि अंग यथा "ईशानः सर्वविद्यानाम्" इससे मस्तक तथा 'तत्पुरुषाय' इत्यादिसे मुख ' अघोरेभ्योथघोरघोरतरेभ्यः ' इत्यादिसे हृदय, वामदेवमंत्रसे गुह्य ' सद्योजातं ' इत्यादिसे पादयुक्त ईश्वर कल्पित होनेपरभी यथाक्रम अनुग्रह, तिरोभाव, आदान, लक्षण स्थितिलक्षण पाञ्च कार्यके हेतु स्वेच्छानिर्मित ईश्वरशरीर अस्मदादि शरीरके समान नहीं है । मृगेन्द्रनेभी कहा है कि प्रभुका शरीर पापरहित होनेसे प्राकृत शरीर सदृश नहीं है । अन्यत्रापि, ईश्वर शरीर पञ्च कृत्योंके उपयोगी ईश, तत्पुरुष, अघोर, वाम इत्यादि पञ्च मन्त्रोंसे कल्पित मस्तकादिमान् है ॥ ८ ॥

ननु पञ्चवक्त्रस्त्रिपञ्चदृगित्यादिना आगमेषु परमेश्वरस्य मुख्यत एव शरीरेन्द्रियादियोगः श्रूयत इति चेत् सत्यं निराकारे ध्यान-पूजाद्यसम्भवेन भक्तानुग्रहकरणाय तत्तदाकारग्रहणाविरोधात् । तदुक्तं श्रीमत्पौष्करे--"साधकस्य तु रक्षार्थं तस्य रूपमिदं स्मृतम्" इति । अन्यत्रापि--आकारवांस्त्वं नियमादुपास्यो न वस्त्वनाकारमुपैति बुद्धिः " इति ॥ ९ ॥

यदि कहो पञ्चवक्त्रादि मन्त्रोंसे वेदमें परमेश्वरका शरीरेन्द्रियादि सम्बन्ध वास्तविक प्रतिपादन करते हैं अतः कल्पित मानना अयुक्त है सत्य है निराकारका

ध्यान पूजनादि असम्भव होनेसे केवल भक्तोंके अनुग्रहार्थ तत्तदवयव युक्त आकार ग्रहण किया है अतएव पौष्करमें ' उपासककी रक्षार्थ ईश्वरका रूप वर्णन हैं ' ऐसा कहा है अन्यत्रापि साकार (रूपविशिष्ट) ही सदा उपासना करने योग्य है क्योंकि निराकार वस्तुको बुद्धि अवलम्बन नहीं कर सकती ॥ ९ ॥

कृत्यपञ्चकं च प्रपञ्चितं भोजराजेन--"पञ्चविधं तत्कृत्यं सृष्टिस्थितिसंहारतिरोभावाः । तद्वदनुग्रहकरणं प्रोक्तं सततोदितस्यास्य ॥" इति। एतच्च कृत्यपञ्चकं शुद्धाध्वविषये साक्षाच्छिवकर्तृकं कृच्छ्राध्वविषये त्वनन्तादिद्वारेणेति विवेकः । तदुक्तं श्रीमत्करणे"--शुद्धेऽध्वनि शिवः कर्त्ता प्रोक्तोऽनन्तोऽहिते प्रभोः" इति ॥ एवञ्च शिवशब्देन शिवत्वयोगिनां मन्त्रेश्वरमहेश्वरमुक्तात्मशिवानां सवाचकानां शिवत्वप्राप्तिसाधनेन दीक्षादिनोपायकलापेन सह पतिपदार्थसंग्रहः कृत इति बोद्धव्यम् । तदित्थं पतिपदार्थो निरूपितः ॥ १० ॥

कृत्यपञ्चकको भी भोजने वर्णन किया है—निरन्तर प्रकाशमान ईश्वरके सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव, और अनुग्रहकरण ये पांच कृत्य हैं शुद्धाध्वविषयमें कृत्यपञ्चक साक्षात् शिवकर्तृक है और कृच्छ्राध्वविषयमें अनन्तादिद्वारा कृत है इस बातको श्रीमत्करणमेंभी कहा है । एवञ्च शिवशब्दसे कल्याणगुण, योगी मन्त्र ईश्वर महेश्वर मुक्तात्मा शिवादि वाचकोंको शिवत्वप्राप्तिसाधक दीक्षादि उपाय कलापसहित प्रतिपदार्थका संग्रह किया ॥ १० ॥

सम्प्रति पशुपदार्थो निरूप्यते । अनणुक्षेत्रज्ञादिपदवेदनीयो जीवात्मा पशुः न तु चार्वाकादिवद्देहादिरूपः 'नान्यदृष्टं स्मरत्यन्यः' इति न्यायेन प्रातिसन्धानानुपपत्तेः। नापि नैयायिकादिवत् प्रकाश्यः अनवस्थाप्रसङ्गात् । तदुक्तम्—"आत्मा यदि भवेन्मेयस्तस्य माता भवेत् परः । पर आत्मा तदानीं स्यात् स परो यदि दृश्यते॥" इति । न च जैनवदव्यापकः नापि बौद्धवत् क्षणिकः देशकालाभ्यामनवच्छिन्नत्वात् । तदप्युक्तम्

"अनवच्छिन्नसद्भावं वस्तु यद्देशकालतः । तन्नित्यं विभु चेच्छन्तीत्यात्मनो विभुनित्यता ॥" इति ॥ ११ ॥

आगे पशुपदार्थ निरूपण करते हैं—अणुपरिमाणसे भिन्न अर्थात् व्यापक क्षेत्रज्ञादि पदवाच्य जीवात्मा पशु है चार्वाकके समान देह आत्मा नहीं है यदि ऐसा होता तो अन्य दृष्ट वस्तुका अन्य स्मर्ता न हो सकनेसे कालान्तर दृष्टका कालान्तरमें स्मरण न होगा. नैयायिकादिके समान ज्ञानसे प्रकाश्यभी नहीं क्योंकि उनके मतसे आत्मा जड और ज्ञानादिक आगन्तुक गुण हैं 'अहं सुखी' इत्यादि ज्ञानसे आत्मप्रकाश होता है एकविंशति दुःखध्वंसरूप मुक्तिके अनन्तर शुष्ककाष्ठवत् रहता है परन्तु प्रकाशकके लिये प्रकाशकान्तर, उसके लिये पुनः प्रकाशकान्तर इस प्रकार अनवस्था होगी । अतएव ' आत्मा यदि परिमेय हो तो परिमाणकर्ता कोई अन्य अवश्य होगा तब तो जो पर है वही आत्मा होगा' इत्यादि ग्रन्थकारोंने कहा है जैनके समान देहपरिमाण और बौद्धवत् क्षणिकभी नहीं कह सकते क्योंकि शास्त्रमें ' देशकालसे अपरिच्छिन्न सत्तावान् आत्मा कहा है, अतः देशपरिच्छिन्न न होनेसे व्यापक और कालपरिच्छिन्न न होनेसे नित्य सिद्ध होता है ॥ ११ ॥

नाप्यद्वैतवादिनामिवैकः भोगप्रतिनियमस्य पुरुषबहुत्वज्ञापकस्य सम्भवात् नापि सांख्यानामिवाकर्त्ता पाशजालापोहने नित्यनिरतिशयदृक्क्रियारूपचैतन्यात्मकशिवत्वश्रवणात् । तदुक्तं श्रीमन्मृगेन्द्रैः "पाशान्ते शिवताश्रुतेरिति । 'चैतन्यं दृक्क्रियारूपं तदस्यात्मानि सर्वदा । सवतश्च यतो मुक्तौ श्रूयते सर्वतोमुखम् ॥ " इति ॥ तत्त्वप्रकाशेपि " मुक्तात्मानोऽपि शिवाः किन्त्वेते तत्प्रसादतो मुक्ताः । सोऽनादिमुक्त एको विज्ञेयः पञ्चमन्त्रतनुः ॥" इति ॥ १२ ॥

अद्वैतियोंके समान एक आत्मवादभी नहीं ऐसे हो तो सुखदुःखादि भोगव्यवस्था अनुपपन्न होगी । सांख्यादिवत् कर्तृत्व भोक्तृत्वादिशून्यभी नहीं कर्म्मपाश नष्ट होनेसे नित्य निरतिशय ज्ञानक्रियादिरूप चैतन्यात्मक शिवत्व शास्त्रमें प्रतिपादन किया है अतएव मृगेन्द्रने कहा है कि पाशके नष्ट होनेपर शिवत्व श्रुतिने प्रतिपादन किया है आत्मामें सर्वदा सर्वत्र ज्ञानक्रियारूप चैतन्य रहता है । यतः मुक्तावस्थामेंभी आविर्वाद श्रुति उक्तरूपको प्रतिपादन करती है इसी प्रकार तत्त्वप्रकाशमें कहा है कि

शिवप्रसादसे मुक्तभी शिव हैं केवल पूर्वोक्त पञ्चमन्त्रात्मक शरीर एक अनादि मुक्त शिव है ॥ १२ ॥

पशुस्त्रिविधः विज्ञानाकलप्रलयाकलसकलभेदात् तत्र प्रथमो विज्ञानयोगसंन्यासैर्भोगेन वा कर्मक्षये सति कर्मक्षयार्थस्य कलादिभोगबन्धस्याभावात् केवलमलमात्रयुक्तो विज्ञानाकल इति व्यपदिश्यते । द्वितीयस्तु प्रलयेन कलादेरुपसंहारात् मल-कर्मयुक्तः प्रलयाकल इति व्यवह्रियते । तृतीयस्तु मलमाया-कर्मात्मकबन्धत्रयसहितः सकल इति संलप्यते ॥ १३ ॥

उक्त पशु विज्ञानाकल प्रलयाकल और सकल भेदसे तीन प्रकार हैं। प्रथम विज्ञान, योग, संन्यासद्वारा या भोगसे कर्मक्षय होनेपर कर्मनाशोपयोगी भोगबन्ध शून्य होनेसे केवल मलयुक्त विज्ञानाकल है । द्वितीय प्रलयादिसे कलाका उपसंहार होनेपर मल और कर्म दोनोंसे युक्त प्रलयाकल है । तृतीय मलमायाकर्मात्मक बन्धत्रयसहित होनेसे सकल ऐसा व्यवहार योग्य होता है ॥ १३ ॥

तत्र प्रथमो द्विप्रकारो भवति समाप्तकलुषासमाप्तकलुषभेदात् । तत्राद्यान् कालुष्यपरिपाकवतः पुरुषधौरेयान् अधिकारयोग्या-ननुगृह्यानन्तादिविद्येश्वराष्टपदं प्रापयति । तद्विद्येश्वराष्टकं निर्दिष्टं बहुदैवत्ये-"अनन्तश्चैव सूक्ष्मश्च तथैव च शिवोत्तमः । एकनेत्रस्तथैवैकरुद्रश्चापि त्रिमूर्त्तिकः । श्रीकण्ठश्च शिखण्डी च प्रोक्ता विद्येश्वरा इमे ॥" अन्त्यान् सप्तकोटिसङ्ख्यातान् मन्त्रा-ननुग्रहकरणान् निधत्ते । तदुक्तं तत्त्वप्रकाशे-"पशवस्त्रिविधाः प्रोक्ता विज्ञानप्रलयकेवलौ सकलः । मलयुक्तस्तत्राद्यो मलकर्मयुतो द्वितीयः स्यात् ॥ मलमायाकर्मयुतः सकलस्तेषु द्विधा भवेदाद्यः । आद्यः समाप्तकलुषोऽसमाप्तकलुषो द्वितीयः स्यात् ॥ आद्या-ननुगृह्य शिवो विद्येशत्वे नियोजयत्यष्टौ । मन्त्रांश्च करोत्य-परान् ते चोक्ताः कोटयः सप्त ॥ " इति ॥ १४ ॥

उनमें समाप्तकलुष असमाप्तकलुषभेदसे प्रथम दो प्रकार है प्रथमको नष्टकल्मष अधिकारयोग्य पुरुष श्रेष्ठको अनुग्रहकर अनन्तविद्येश्वरादि अष्ट पद प्रदान करते हैं विद्येश्वराष्टक इस प्रकार कहा है। अनन्त १ सूक्ष्म २ शिवोत्तम ३ एकनेत्र ४ एकरुद्र ५ श्रीकण्ठ ६ त्रिमूर्ति ७ और शिखण्डी ८ (द्वितीय) सप्तकोटिसंख्यात असमाप्त कलुषको मन्त्रके अनुग्रहयोग्य करते हैं । इसीको पशवस्त्रिविधा इत्यादि तत्राद्य इत्यन्त श्लोकोंसे प्रतिपादन किया है ॥ १४ ॥

सोमशम्भुनाप्यभिहितम्–विज्ञानाकलनामैको द्वितीयः प्रलयाकलः। तृतीयः सकलः शास्त्रेऽनुग्राह्यस्त्रिविधो मतः॥ तत्राद्यो मलमात्रेण युक्तोऽन्ये मलकर्मभिः । कलादिभूमिपर्य्यन्तततत्त्वैस्तु सकलो युतः ॥" इति ॥प्रलयाकलोऽपि द्विविधः पक्वपाशद्वयः तद्विलक्षणश्च । तत्र प्रथमो मोक्षं प्राप्नोति, द्वितीयस्तु पुर्य्यष्टकयुतः कर्मवशान्नानाविधजन्मभाग् भवति । तदप्युक्तं तत्त्वप्रकाशे–"प्रलयाकलेषु येषामपक्वमलकर्मणी व्रजन्त्येते । पुर्य्यष्टकदेहयुता योनिषु निखिलासु कर्मवशात् ॥ " इति ॥ पुर्यष्टकमपि तत्रैव निर्दिष्टम्–स्यात् पुर्य्यष्टकमन्तःकरणधीः कर्म करणानीति ॥ विवृतं चाघोरशिवाचार्य्येण-पुर्य्यष्टकं नाम प्रतिपुरुषनियतः सर्गादारभ्य कल्पान्तं मोक्षान्तं वा स्थितः पृथिव्यादिकलापर्य्यन्तस्त्रिंशत्तत्त्वात्मकः सूक्ष्मो देहः । तथा चोक्तं तत्त्वसंग्रहे--वसुधाद्यस्तत्त्वगणः प्रतिपुन्नियतः कलान्तोऽयम् । पर्यटति कर्मवशाद्भुवनजदेहेष्वयञ्च सर्वेषु ॥" इति ॥१५॥

पक्व पाश और तद्विपरीत भेदसे प्रलयाकल दो प्रकार है प्रथम मुक्तिको पाते हैं और द्वितीय अष्टपुर्य्युक्त होनेसे कर्म्मवश नाना प्रकारके जन्मोंको पाते हैं । अघोरशिवाचार्यने पुर्यष्टकका विवरण इस प्रकार किया है प्रत्येक जीवको सृष्टिसे लेकर प्रलयपर्यन्त अथवा मोक्षपर्यन्त नियमसे वर्तमान पृथिव्यादि कलापर्यन्त तीस तत्त्वरूप सूक्ष्म देह पुर्य्यष्टक हैं । कर्म्मवश पृथिव्यादि देहमें जीव भ्रमण किया करते हैं ॥ १५ ॥

तथा चायमर्थः समपद्यत अन्तःकरणशब्देन मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्तवाचिना अन्यान्यपि पुंसो भोगक्रियायामन्तरङ्गाणि कलाकालनियतिविद्यारागप्रकृतिगुणाख्यानि सप्त तत्त्वानि उपलक्ष्यन्ते । धीकर्मशब्देन ज्ञेयानि पञ्च भूतानि तत्करणानि च तन्मात्राणि विवक्ष्यन्ते । करणशब्देन ज्ञानकर्मेन्द्रियदशकं संगृह्यते ॥ १६ ॥

यह निष्कर्ष हुआ कि मन १ बुद्धि २ अहंकार ३ और चित्त ४ वाची अन्तः-करण शब्दसे पुरुषके भोग क्रियाके अन्तरङ्ग साधन कला १ काल २ नियति ३ विद्या ४ राग ५ प्रकृति ६ गुण ७ रूप सात तत्त्व औरभी उपलक्षित होते हैं धीकर्म पदसे ज्ञातव्य पृथिव्यादि पञ्चभूत उसका करण पञ्चतन्मात्रा मिलकर १० लक्षित होते हैं करण पदसे पञ्च कर्मेन्द्रिय और पञ्च ज्ञानेन्द्रिय लक्षित होती हैं ॥ १६ ॥

ननु श्रीमत्कालोत्तरे-"शब्दः स्पर्शस्तथा रूपं रसो गन्धश्च पञ्चकम् । बुद्धिर्मनस्त्वहङ्कारः पुर्य्यष्टकमुदाहृतम् ॥" इति श्रूयते तत्कथमन्यथा कथ्यते।अद्धा अतएव च तत्रभवता रामकण्ठेन तत्सूत्रं शक्तत्वपरतया व्याख्यायीत्यलमतिप्रपञ्चेन । तथापि कथं पुनरस्य पुर्य्यष्टकत्वम् । भूततन्मात्रबुद्धीन्द्रियकर्मेन्द्रियान्तःकरणसंज्ञैः पञ्चभिर्वर्गैस्तत्करणेन प्रधानेन कलादिपञ्चकात्मना वर्गेण चारब्धत्वादित्यविरोधः ॥ तत्र पुर्य्यष्टकयुतान् विशिष्टपुण्यसम्पन्नान् कांश्चिदनुगृह्य भुवनपतित्वमत्र महेश्वरोऽनन्तः प्रयच्छति । तदुक्तम्-कांश्चिदनुगृह्य वितरति भुवनपतित्वं महेश्वरस्तेषामिति ॥ १७ ॥

श्रीमत्कालोत्तरमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मन, बुद्धि, और अहंकारको पुर्य्यष्टक कहते हैं इसके विपरीत आप कैसे कहते हो ? अंग ! सुनो इसीलिये पूज्यपाद रामकण्ठने उसको सामर्थ्यपरत्वेन वर्णन किया है । अस्तु• इसकी पुर्यष्टकसंज्ञा कैसी हुई ? सो भी सुनो पञ्च तन्मात्रा पञ्च भूत पंच ज्ञानेन्द्रिय और कर्मइन्द्रियादि समुदायसे आरब्ध होनेसे उक्त संज्ञा हुई है पुर्यष्टकयुत उत्तम पुण्यशालीको अनन्त महेश्वर भुवनपतित्व (राज) प्रदान करते हैं यही बात अभियुक्तोंनेभी कही है ॥ १७ ॥

सकलोऽपि द्विविधः पक्ककलुषापक्ककलुषभेदात् । तत्राद्यान् परमेश्वरस्तत्परिपाकपरिपाट्या तदनुगुणशक्तिपातेन मण्डल्याद्यष्टादशोत्तरशतं मन्त्रेश्वरपदं प्रापयति । तदुक्तम्--"शेषा भवन्ति सकलाः कलादियोगादहर्मुखे काले । शतमष्टादश तेषां कुरुते स्वयमेव मन्त्रेशान्॥ तत्राष्टौ मण्डलिनः क्रोधाद्यास्तत्समाश्च वीरेशः । श्रीकण्ठः शतरुद्राः शतमित्यष्टादशाभ्याधिकम् " ॥ इति ॥ १८ ॥

पक्ककलुष, अपक्ककलुष भेदसे सकलभी दो प्रकार है । परमेश्वर पक्ककलुषोंको कलुषपाकानुगुण शक्ति प्रदान कर मण्डल्यादि अष्टादशोत्तरशत ११८ मन्त्रेश्वर पदको प्रदान करते हैं इसी बातको अभियुक्तोंने 'शेषा भवन्ति इत्यादि पद्यसे कहा है । आठ मंडली अष्ट क्रोधादि वीरेश श्रीकंठ और शतरुद्र मिलाकर ११८ होते हैं ॥ १८ ॥

तत्परिपाकाधिक्यनिरोधेन शक्त्युपसंहारेण दीक्षाकरणेन मोक्षप्रदो भवत्याचार्यमूर्तिमास्थाय परमेश्वरः । तदप्युक्तम्--"परिपक्कमलानेतानुत्सादनशक्तिपातेन । योजयति परे तत्त्वे स दीक्षयाचार्यमूर्तिस्थः ॥"इति ।श्रीमन्मृगेन्द्रोऽपि–'पूर्वं व्यत्यासितस्याणोः पाशजालमपोहति' इति ॥ व्याकृतश्च नारायणकण्ठेन तत्सर्वं तत एवावधार्य्यम् । अस्माभिस्तु विस्तरभिया न प्रस्तूयते ॥ १९ ॥

कलुष परिपाकाधिक्य शक्तिका उपसंहार कर परमेश्वर आचार्यरूप होकर दीक्षा द्वारा मोक्ष प्रदान करते हैं आचार्यमूर्तिस्थ होकर परिपक्क मलोंको शक्तिनिरोधपूर्वक दीक्षाद्वारा परतत्त्व मोक्षसे युक्त करते हैं ऐसा अभियुक्तोंनेभी कहा है मृगेन्द्रनेभी कहा है कि पूर्वविपरीत कर्मपाशको प्राप्त जीवका पाशजालको नष्ट करते हैं (इत्यादि कहा है) ॥ १९ ॥

अपक्ककलुषान् बद्धानणून् भोगभाजो विधत्ते परमेश्वरः कर्मवशात् । तदप्युक्तम्--"बद्धान् शेषानपरान् विनियुङ्क्ते भोगभु-

क्त्ये पुंसः । तत्कर्मणामनुगमादित्येवं कीर्तिताः पशवः ॥"
इति ॥ २० ॥

अपक्वकलुष बद्ध जीवको कर्मपाशवश भोगयुक्त करते हैं परमेश्वर अवशिष्ट बद्ध जीवोंको तत्तत्कर्म्मानुगुण विषयभोगमें नियुक्त करते हैं इस प्रकार पशुपदार्थ निरूपण किया है ॥ २० ॥

अथ पाशपदार्थः कथ्यते । पाशश्चतुर्विधो मलकर्ममायारोधशक्तिभेदात् । ननु शैवागमेषु मुख्यं पतिपशुपाशा इति क्रमात्रितयम् । तत्र पतिः शिव उक्तः, पशवो ह्यणवोऽर्थपञ्चकं पाशा इति पाशः पञ्चविधः कथ्यते तत् कथं चतुर्विध इति गण्यते । उच्यते बिन्दोर्मायात्मनः शिवतत्त्वपदवेदनीयस्य शिवपदप्राप्तिलक्षणपरममुक्त्यपेक्षया पाशत्वेऽपि तद्योगस्य विद्येश्वरादिपदप्राप्तिहेतुत्वेनापरमुक्तित्वात् पाशत्वेनानुपादानमित्यविरोधः । अतएवोक्तं तत्त्वप्रकाशे--पाशाश्चतुर्विधाः स्युरिति ॥ २१ ॥

अब पाशपदार्थ कहते हैं—मल, कर्म, माया, और रोधशक्तिभेदसे पाशके चार भेद हैं । शैवसिद्धान्तोंमें पति, पशु, और पाश, भेदसे मुख्य तीन तत्त्व प्रतिपादित हैं पात शिवको कहते हैं पशु अणुको और अर्थपञ्चकको पाश कहते हैं उनके विरुद्ध चतुर्विध कस कहते हो ? सो सुनो शिवतत्त्व पद वेदनीय मायात्मक बिन्दुको शिवपदप्राप्ति लक्षण परम मुक्तिकी अपेक्षा पाशत्व होनेपरभी शिवत्वादियुक्त विद्येश्वरादिपद प्राप्तिरूप अपर मुक्ति होनेसे पाशत्व व्यवहार न होनेके कारण कोई विरोधही नहीं अतएव तत्त्वप्रकाशमें चतुर्विध पाश कहा है ॥ २१ ॥

श्रीमन्मृगेन्द्रोऽपि-"प्रावृतीशौ बलं कर्म मायाकार्यं चतुर्विधम् । पाशजालं समासेन धर्मनाम्नैव कीर्त्तिता ॥" इति । अस्यार्थः, प्रावृणोति प्रकर्षेणाच्छादयत्यात्मनो दृक्क्रिये इति प्रावृतिः स्वाभाविक्यशुचिर्मलः । स च ईष्टे स्वातन्त्र्येणेति । तदुक्तम्--"एको ह्यनेकशक्तिदृक्क्रिययोश्छादको मलः पुंसः । तुषतण्डु-

त्वज्ज्ञेयस्ताम्राश्रितकालिमावद्धा ॥ " इति । बलं रोधशक्तिः अस्याः शिवशक्तेः पाशाधिष्ठानेन पुरुषतिरोधायकत्वादुपचारेण पाशत्वम् । तदुक्तम्-"तासामहं वरा शक्तिः सर्वानुग्राहिका शिवा। धर्मानुवर्त्तनादेव पाश इत्युपचर्य्यते ॥ " इति ॥ क्रियते फलार्थिभिरारात कर्म धर्माधर्मात्मकं बीजाङ्कुरवत्प्रवाहरूपेणानादि यथोक्तं श्रीमत्किरणे-"यथानादिर्मलस्तस्य कर्माल्पकमनादिकम् । यद्यनादिरसंसिद्धं वैचित्र्यं केन हेतुना ॥ " इति । यात्यस्यां शक्त्यात्मना प्रलये सर्वं जगत् सृष्टौ व्यक्तं यतीति माया । यथोक्तं श्रीमत्सौरभेये-"शक्तिरूपेण कार्याणि तल्लीनानि महाक्षये । विकृतौ व्यक्तिमायाति सा कार्येण कलादिना ॥" इति । यद्यप्यत्र बहु वक्तव्यमस्ति तथापि ग्रन्थभूयस्त्वभयादुपरम्यते । तदित्थं पतिपशुपाशपदार्थास्त्रयः प्रदर्शिताः । "पतिविद्ये तथाविद्या पशुः पाशश्च कारणम् । तन्निवृत्ताविति प्रोक्ताः पदार्थाः षट् समासतः ॥ " इत्यादिना प्रकारान्तरं ज्ञानरत्नावल्यादौ प्रसिद्धम् । सर्वं तत एवावगन्तव्यमिति सर्वं समञ्जसम् ॥ २२ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहे शैवदर्शनं समाप्तम् ॥ ७ ॥

मृगेन्द्रनेभी कहा है आच्छादनात्मक मल स्वतंत्रताभिमानी, बल, कर्म, माया और चतुर्विध कार्यरूप पाशजालको संक्षेपतः धर्मशब्दसे कहा है इसके अर्थको ग्रंथकारने स्वयं वर्णन करते हैं आत्माकी ज्ञान क्रियाको प्रकृष्टरूपसे जो आच्छादन करे सो प्रकृति अर्थात् स्वाभाविक अशुचि मल है उसका स्वातन्त्र्याभिमानी प्रावृतीश है । कहाभी है-जिस प्रकार भूसी तण्डुलको आच्छादन करती है जिस प्रकार ताँबेके पात्रको कालिमा आच्छादन करती है तिसी प्रकार एक मल पुरुषोंके अनेक शक्तिका ज्ञान और क्रियाका आच्छादक होता है निरोधशक्तिका नाम बल है यह पाशसम्बद्ध होकर पुरुषकी तिरोधानकर्त्री होनेसे लक्षणया पाश कहाती है उक्त शक्तियोंमें मैं सबों पर अनुग्रह करनेवाली श्रेष्ठ शिवाशक्ति हूं । धर्ममें सम्बद्ध

होनेसे पाशशब्द औपचारिक है फल चाहनेवाले जो करते हैं वह कर्म्म हैं वह धर्म्मा-धर्म्मात्मक द्विविध प्रवाहरूपसे अनादि है जिस प्रकार मल अनादि है उसी प्रकार उसका कर्मभी अनादि है यदि कर्म अनादि न होता तो जगत्का वैचित्र्य कैसे होता ? प्रलयकालमें सम्पूर्ण जगत् शक्तिसहित जिसमें लीन हो और सृष्टिके समय जिसमें व्यक्त हो वह माया है अतएव सौरभेयमें कहा है कि महाक्षय (प्रलय) में शक्तिके साथ कार्यलीन और विकृति (सृष्टि) में कलादि कार्यरूपसे व्यक्त होते हैं यद्यपि इस विषयमें बहुत कहना है तथापि ग्रन्थविस्तर भीतिसे छोडे देता हूं। पतिशब्दार्थ विद्या अविद्या इस प्रकार पति पशु और पाशरूप पदार्थ त्रयका दिग्दर्शन किया । पति, विद्या, अविद्या, पशु, पाश और पाशनिवृत्तिका कारण संक्षेपसे ये छः पदार्थ निरूपण किये हैं । ये सब ज्ञानरत्नावल्यादिमें प्रसिद्ध है । अतः उससे जान लेना.

इति सर्वदर्शनसंग्रहे शैवदर्शन समाप्त ।

अथ प्रत्यभिज्ञादर्शनम् ॥ ८ ॥

अत्रापेक्षाविहीनानां जडानां कारणत्वं दूष्यतीत्यपरितुष्यन्तो मतान्तरमन्विष्यन्तः परमेश्वरेच्छावशादेव जगन्निर्माणं परिघुष्यन्तः स्वसंवेदनोपपत्त्यागमसिद्धप्रत्यगात्मतादात्म्ये नानाविधमानमेयादिभेदाभेदशालिपरमेश्वरोऽनन्यमुखप्रेक्षित्वलक्षणस्वातन्त्र्यभाक् स्वात्मदर्पणे भावात् प्रतिबिम्बवदभासयादिति भणन्तो बाह्याभ्यन्तरचर्य्याप्राणायामादिक्लेशप्रयासकलवैधुर्येण सर्वसुलभमभिनवं प्रत्यभिज्ञामात्रं परापरसिद्ध्युपायमभ्युपगच्छन्तः परे माहेश्वराः प्रत्यभिज्ञाशास्त्रमभ्यस्यान्ति ॥ १ ॥

निरपेक्ष जडका कारणत्व असम्भव है इत्यादि वादमें असन्तोष प्रकट करके मतान्तर स्थापनेच्छासे ईश्वरकी इच्छावश जगत्की सृष्टि होती है इस प्रकार उद्घोष करते हुए आत्मसंवेदन युक्ति और शास्त्र बलसे सिद्ध जो प्रत्यगात्माका अभेद उसमें अनेक विध प्रमाण प्रमेयादिके साथ भिन्नाभिन्नरूप परमेश्वर अन्यके अनपेक्षरूप स्वातन्त्र्ययुक्त आत्मरूपी दर्पणमें प्रतिबिम्बके समान भासित होते हैं इस प्रकार कहते हुए बाह्य चर्या (सेवा) आन्तर प्राणायामादिक्लेशके विना ही सबको सुलभ

धर्मार्थ काम मोक्ष सिद्धिके उपाय अभिनव प्रत्यभिज्ञामात्र माननेवाले कोई माहेश्वर लोग प्रत्यभिज्ञाशास्त्रका वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

तस्येयत्तापि न्यरूपि परीक्षकैः "सूत्रं वृत्तिर्विवृतिर्लघ्वी बृहती त्युभे विमर्शिन्या। प्रकरणविवरणपञ्चकमिति शास्त्रं प्रत्यभिज्ञायाः॥" ॥ २ ॥

उन्होंने उस प्रत्यभिज्ञाशास्त्रका परिमाणभी दिखाया है । सूत्र वृत्ति विवृति प्रकरण, विवरण पञ्चक इतनाही प्रत्यभिज्ञाशास्त्रहै ॥ २ ॥

तत्रेदं प्रथमं सूत्रम्--"कथञ्चिदासाद्य महेश्वरस्य दास्यं जनस्याप्युपकारमिच्छन् । समस्तसम्पत्समवाप्तिहेतुं तत्प्रत्यभिज्ञामुपपादयामि॥" इति ॥ ३ ॥

उसमें प्रथमसूत्र (कथञ्चिदित्यादि) किसी प्रकार महेश्वरके दासत्वको प्राप्त कर लोककाभी उपकार करनेकी इच्छा करता हुआ (मैं) संपूर्ण संपत्तियोंकी प्राप्तिके हेतुभूत प्रत्यभिज्ञादर्शनका प्रतिपादन करता हूं। (यह इस श्लोकका शब्दार्थ है) इसका विस्तृत अर्थ मूलहीमें करते हैं ॥ ३ ॥

कथञ्चिदिति परमेश्वराभिन्नगुरुचरणारविन्दयुगलसमाराधनेन परमेश्वरघटितेनैवेत्यर्थः। आसाद्येति आ समन्तात् परिपूर्णतया सादयित्वा स्वात्मोपभोग्यतां निरर्गलां गमयित्वा तदनेन विदितवेद्यत्वेन परार्थशास्त्रकरणेऽधिकारो दर्शितः अन्यथा प्रतारणमेव प्रसज्येत ॥ ४ ॥

(कथञ्चित्) परमेश्वरस्वरूप गुरुचरणारविन्द शुश्रूषासे किंवा परमेश्वराराधनसे (आसाद्य) परिपूर्णरूपसे निर्विघ्न आत्मोपभोग्यताको प्राप्त करके इन दोनों पदोंसे सर्वज्ञको परार्थके लिये शास्त्र निर्म्माणमें हेतु कहा गया अन्यथा वञ्चना हो जाती ॥ ४ ॥

मायोत्तीर्णा अपि महामायाधिकृता विष्णुविरिञ्चाद्या यदीयैश्वर्य्यलेशेनेश्वरीभूताः स भगवाननवच्छिन्नप्रकाशानन्दस्वातन्त्र्यपरमार्थो महेश्वरः । तस्य दास्यं दीयतेऽस्मै स्वामिना सर्वं

यथाभिलषितमिति दासः परमेश्वरस्वरूपस्वातन्त्र्यपात्रमित्यर्थः । जनशब्देनाधिकारिविषयनियमाभावः प्रादर्शि । यस्य यस्य हीदं स्वरूपकथनं तस्य तस्य महाफलं भवति प्रधानस्यैव परमार्थफलत्वात् ॥ ५ ॥

ईश्वरस्य–मायासे परे होनेपरभी महामायाके अधिष्ठानभूत ब्रह्म विष्णु आदि जिनके ऐश्वर्यलेशसे ईश्वर हो गये हैं वही अनवच्छिन्न (अप्रतिहत) प्रकाश आनन्द स्वातन्त्र्ययुक्त भगवान् महेश्वर हैं उनके दास्य अर्थात् स्वामी अभिलषित सम्पूर्ण वस्तु जिसके लिये दे वह परमेश्वरस्वरूपका स्वातन्त्र्यपात्र दास है । जन इस पदसे अधिकारीविशेषका अनियम दिखाया जिन २का यह स्वरूपकथन हो उन सबको महाफल होता है प्रधानकोही परमार्थ फल होता है ॥ ५ ॥

तथोपदिष्टं शिवदृष्टौ परमगुरुभिर्भगवत्सोमानन्दनाथपादैः-- एकवारं प्रमाणेन शास्त्राद्वा गुरुवाक्यतः । ज्ञाते शिवत्वे सर्वस्थे प्रतिपत्त्या दृढात्मना ॥ करणेन नास्ति कृत्यं क्वापि भावनया सकृत् । ज्ञाते सुवर्णे करणं भावनां वा परित्यजेत् ॥" इति ॥ अपिशब्देन स्वात्मनस्तदभिन्नतामाविष्कुर्वता पूर्णत्वेन स्वात्मनि परार्थसम्पत्त्यतिरिक्तप्रयोजनान्तरावकाशश्च पराकृतः । परार्थश्च प्रयोजनं भवत्येव तल्लक्षणयोगात् न ह्ययं देवशापः स्वार्थ एव प्रयोजनं न परार्थ इति । अत एवोक्तमक्षपादेन-- 'यमर्थमधिकृत्य प्रवर्त्तते तत् प्रयोजनम्' इति ॥ ६ ॥

शिवदृष्टिमें सोमानन्दनाथने वैसाही उपदेश किया है–एक वार प्रमाण (प्रत्यक्षादि) शास्त्रद्वारा अथवा गुरुवाक्यसे अथवा दृढ युक्तियोंसे सर्वभावस्थ शिवत्वज्ञान होनेपर पुनः साधनोंका और भावनाका प्रयोजन नहीं है सुवर्णवर्णवस्तुका यथार्थ ज्ञान होनेपर उसके साधन कसोटी आदिको त्याग दिया जाता है । अपिशब्दसे अपनी आत्माको शिवके साथ अभेद प्रतिपादन होनेसे पूर्णतया स्वात्मामें परार्थसम्पत्तिसे अतिरिक्त प्रयोजनान्तरके प्रसंगका निषेध किया । प्रयोजन लक्षणसमन्वित होनेसे परार्थ प्रयोजन होताही है प्रयोजन स्वार्थही होता है परार्थ नहीं ऐसा कोई देवताका

शापमी नहीं है । अतएव अक्षपादने कहा है कि ' जिस उद्देश्यसे प्रवृत्त हो वही फल है ॥ ६ ॥

उपशब्दः सामीप्यार्थः । तेन जनस्य परमेश्वरसमीपताकरणमात्रं फलम् । अतएवाह समस्तेति, परमेश्वरतालाभे हि सर्वाः सम्पदस्तन्निष्यन्दमय्यः सम्पन्ना एव रोहणाचललाभे रत्नसम्पद इव। एवं परमेश्वरतालाभे किमन्यत् प्रार्थनीयम् । तदुक्तमुत्पलाचार्यैः—"भक्तिलक्ष्मीसमृद्धानां किमन्यदुपयाचितम् । एनया वा दरिद्राणां किमन्यदपयाचितम् ॥ " इति ॥ ७ ॥

उपशब्द सामीप्यार्थक है इससे परमेश्वरकी समीपताकरणमात्रही फल सूचित किया । अतएव कहा है कि (समस्तसंपत्समवाप्ति इति) जिस प्रकार रोहण पर्वतपर चढनेसे रत्नसम्पात्ति प्राप्त होती हैं उसी प्रकार महेश्वरप्राप्तिसे समस्त सम्पत्तियें प्राप्त होजाती हैं । अतएव उत्पलाचार्यने कहा है भक्तिरूपी लक्ष्मीसे सम्पन्नोंको याचनीय अन्य वस्तु क्या है अर्थात् कुछभी नहीं सब प्राप्त है भक्तिसे जो दरिद्र (शून्य) है उसको अयाचनीय क्या है अर्थात् सब याचनीय है ॥ ७ ॥

इत्थं षष्ठीसमासपक्षे प्रयोजनं निर्दिष्टम् ॥ बहुव्रीहिपक्षेतूपायः समस्तस्य बाह्याभ्यन्तरस्य नित्यसुखादेर्या सम्पत्सिद्धिः तथात्वप्रकाशः तस्याः सम्यगवाप्तिर्यस्याः प्रत्याभिज्ञाया हेतुः । सा तथोक्ता तस्य महेश्वरस्य प्रत्यभिज्ञा प्रतिमाभिमुख्येन ज्ञानम्। लोके हि स एवायं चैत्र इति प्रतिसन्धानेनाभिमुखीभूते वस्तुनि ज्ञानं प्रत्यभिज्ञेति व्यवह्रियते।इहापि प्रसिद्धपुराणसिद्धागमानुमानादिज्ञातपरिपूर्णशक्तिके परमेश्वरे सति स्वात्मन्यभिमुखीभूते तच्छक्तिप्रतिसन्धानेन ज्ञानमुदेति नूनं स एवेश्वरोहमिति। तामेतां प्रत्यभिज्ञामुपपादयामि । उपपत्तिः सम्भवः सम्भवतीतितत्समर्थाचरणेन प्रयोजनव्यापारेण सम्पादयामीत्यर्थः ॥ ८ ॥

षष्ठीसमास पक्षमें प्रयोजन दिखाकर अब बहुव्रीहि समाससे उपाय दिखाते हैं बाह्याभ्यन्तर ज्ञान सुखादि समस्त सम्पत्तियोंकी सिद्धि और तत्त्व प्रकाश तथा

उसकी सम्यक् प्राप्ति जिस प्रत्याभिज्ञासे हो ऐसे महेश्वरकी प्रतिमाके अभिमुखज्ञानका नाम प्रत्यभिज्ञा है यह बहुव्रीहिसमासमें उत्तरार्धका अर्थ है। लोकमें सोयं चैत्र इत्यादि प्रतिसंधानमें अभिमुख वस्तु विषयके जो ज्ञान है उसको प्रत्यभिज्ञा कहेत हैं। इस शास्त्रमेंभी प्रसिद्ध पुराण आगम अनुमानादिसे ज्ञातपरिपूर्ण शक्तिमान् परमेश्वर अभिमुख होनेपर स्वकीय आत्माके विषयमें परमेश्वर शक्तिका अनुसन्धानद्वारा अवश्य वही परमेश्वर मैं हूं ऐसा जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसी प्रत्यभिज्ञाको उपपादन करता हूं॥ ८॥

यदीश्वरस्वभाव एवात्मा प्रकाशते तर्हि किमनेन प्रत्यभिज्ञाप्रदर्शनप्रयासेनेतिचेत्-तत्रायं समाधः। स्वप्रकाशतया सततमवभासमानेऽप्यात्मानि मायावशाद्भागेन प्रकाशने पूर्णतावभासिद्धये दृक्क्रियात्मकशक्त्याविष्करणेन प्रत्यभिज्ञा प्रदर्श्यते। तथा च प्रयोगः अयमात्मा परमेश्वरो भवितुमर्हाति ज्ञानक्रियाशक्तिमत्त्वात् यो यावति ज्ञाता कर्त्ता च स तावतीश्वरः प्रसिद्धेश्वरवत् राजवद्वा आत्मा च विश्वज्ञाता कर्त्ता च तस्मादीश्वरोऽयमिति अवयवपञ्चकस्याश्रयणं मायावादेन नैयायिकमतस्य कक्षिकारात् ॥ ९॥

शंका-यदि ईश्वर स्वभावही प्रकाशमान आत्मा है तो प्रत्यभिज्ञाशास्त्र प्रदर्शन क्लेशभी विफल है। समाधान-सदा प्रकाशस्वरूप होनेपरभी आत्मामें मायाबलसे यत्किञ्चित् आकारसे प्रकाश होता है पूर्णरूपसे नहीं अतः पूर्णरूपसे अवभाससिद्धिके लिये और ज्ञान क्रिया शक्तिके आविष्करणार्थ प्रत्यभिज्ञाप्रदर्शन आवश्यक है ज्ञान क्रिया और शक्तिमान् होनेसे आत्मा परमेश्वर है जो जबतक ज्ञाता और कर्ता रहता है वह तबतक ईश्वर रहता है प्रसिद्ध ईश्वरके समान अथवा राजाके समान आत्माभी जगत्का ज्ञाता और कर्ता है अतः ईश्वर है यद्यपि सिद्धान्तमें प्रतिज्ञा हेतु और उदाहरण है अथवा उदाहरण, उपनय, निगमन रूप अवयवत्रयही माना है तथापि अवयवपञ्चकका जो आश्रयण किया सो मायावादमें नैयायिक पक्ष स्वीकार करके किया है ॥ ९॥

तदुक्तमुदयकरसूनुना-'कर्त्तरि ज्ञातरि स्वात्मन्यादिसिद्धे महेश्वरे। अजडात्मा निषेधं वा सिद्धिं वा विदधीत कः॥ किन्तु मोह-

वशादस्मिन्दृष्टेऽप्यनुपलक्षिते । शक्त्याविष्करणेनेयं प्रत्यभिज्ञोपदर्श्यते'॥तथाहि--'सर्वेषामिह भूतानां प्रतिष्ठाजीवदाश्रया। ज्ञानं क्रिया च भूतानां जीवतां जीवनं मतम्॥ तत्र ज्ञानं स्वतः सिद्धं क्रिया कर्त्राश्रिता सती । परैरप्युपलक्ष्येत तयान्यज्ज्ञानमुच्यते"॥ इति ॥ या चैषां प्रतिभा तत्तत्पदार्थक्रमरूपिता । अक्रमानन्दचिद्रूपः प्रमाता स महेश्वरः ॥ " इति च ॥१०॥

उक्तार्थमें उदयंकरपुत्रकी सम्मतिभी कहते हैं आदिसिद्ध महेश्वर ज्ञाता तथा कर्ता आत्मामें कर्तृत्व ईश्वरत्वादिको कौनसा अजडात्मा अर्थात् बुद्धिमान् निषेध और विधान करेगा अर्थात् सिद्धका निषेध नहीं हो सकता है एवं विधानभी व्यर्थ है तथापि स्वयंप्रकाशकतया प्रत्यक्षदर्शन होनेपरभी अविद्यावश अनुपलक्षित (अप्रत्यक्ष) आत्मामें शक्तिके आविर्भावार्थ प्रत्यभिज्ञाशास्त्रका उपदेश करते हैं सम्पूर्ण प्राणियोंकी प्रतिष्ठा जीवनके आधीन है ज्ञान और क्रिया जीनेवालोंका जीवन है उनमें ज्ञान स्वतःसिद्ध है क्रिया कर्तामें आश्रित होनेसे अन्यकोभी उपलक्षित (प्रतीत) होता है ज्ञान दूसरेके उपलक्षित नहीं होता है आत्माकी प्रतिभा तत्तत्पदार्थके कर्माधीन है अर्थात् जिस कालमें अन्तः करणवृत्ति यदाकार परिणत होगी उसकी प्रतिभा होगी महेश्वरका ज्ञान सदा प्रकाशित रहनेसे अक्रम आनन्द चिद्रूप और ज्ञाता है ॥ १० ॥

सोमानन्दनाथपादैरपि-"सदा शिवात्मना वेत्ति सदा वेत्ति सदात्मना " इत्यादि ॥ ज्ञानाधिकारपरिसमाप्तावपि-" तदैक्येन विना नास्ति संविदां लोकपद्धतिः । प्रकाशैक्यात्तदेकत्वं मातैकः स इति स्थितः ॥ स एवार्थभृशत्वेन नियतेन महेश्वरः । विमर्श एव देवस्य शुद्धे ज्ञानाक्रियेयतः॥"इति॥विवृतं चाभिनवगुप्ताचार्य्यैः । तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदंविभातीतिश्रुत्या प्रकाशं चिद्रूपमहिम्ना सवस्य भावजातस्य भासकत्वमभ्युपेयते । ततश्च विषयप्रकाशस्य नीलप्रकाशः पीतप्रकाश इति विषयोपरागभेदाद्भेदः । वस्तुतस्तु देशका-

लाकारसङ्कोचवैकल्यादभेद एव । स एव चैतन्यरूपः प्रकाशः प्रमातेत्युच्यते ॥ ११ ॥

निरन्तर शिवरूप और सदा सद्रूप जाने इति वस्तुके साथ एकताके विना लोकमें ज्ञानका व्यवहार नहीं होता है प्रकाशका ऐक्य होनेसे एकत्व प्रमाताके साथ भी एकत्व है यही सिद्धान्त है प्रकाश व जिनके प्रकाशसे समस्त प्रकाशित होते हैं इत्यादि श्रुतियोंसे प्रकाश चिदानन्द ईश्वरकी महिमासे सम्पूर्ण पदार्थका प्रकाशकत्व है एवञ्च विषय प्रकाशका नीलपीतादि विषयोपरागभेदहीसे भेद है वस्तुतः देश काल और वस्तुसंकोच न होनेसे अभेद है वही चैतन्यरूप प्रकाश प्रमाता कहा जाता है ॥ ११ ॥

तथा च पठितं शिवसूत्रेषु "चैतन्यमात्मेति" । तस्य चिद्रूपत्वमनवच्छिन्नविमर्शत्वमन्योन्मुखत्वमानन्दैकघनत्वं माहेश्वर्य्यमिति पर्यायः । स एव ह्ययं भावात्मा विमर्शः शुद्धे पारमार्थिक्यौ ज्ञानक्रिये । तत्र प्रकाशरूपता ज्ञानं स्वतो जगन्निर्मातृत्वं क्रिया । तच्च निरूपितं क्रियाविकारे-- "एष चानन्द शक्तित्वादेवमाभासयत्यमून् । भावानिच्छावशादेषा क्रियानिर्मातृताऽस्य सा॥" इति । उपसंहारेऽपि-- "इत्थं तथा घटपटाद्याकारजगदात्मना । तिष्ठासोरेवमिच्छैव हेतुकर्तृकता क्रिया" ॥ इति । "तस्मिन् सतीदमस्तीति कार्य्यकारणताप्रिया । सा व्यपेक्षाविहीनानां जडानां नोपपद्यते" ॥ १२ ॥

चैतन्य आत्माके चिद्रूपत्व अपरिमिति विमर्श (ज्ञान) त्वअन्योन्मुखत्व आनन्दैकस्वरूपत्व महेश्वरत्व इत्यादि सब पर्याय शब्द हैं शुद्ध स्वरूपमें ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति पारमार्थिक है प्रकाशरूपत्व ज्ञान है स्वतः जगन्निर्म्मातृत्व क्रिया है 'ईश्वर आनन्दशक्तिमान् होनेसे स्वेतर सब भावको प्रकाश करते हैं स्वेच्छाधीन निर्म्मातृता क्रिया है इस प्रकार घटपटादि जगत्रूपसे स्थित चाहनेवालेकी इच्छा और कर्तृत्व क्रिया है उन महेश्वरकी सत्तासे (जगत्की सत्ता) है जगत्की जो कार्य और कारणता है वह निरपेक्ष जडको नहीं हो सकते ॥ १२ ॥

इति न्यायेन यतो जडस्य कारणता न वा अनीश्वरस्य चेतनस्यापि तस्मात्तेन तेन जगद्गतजन्मस्थित्यादिभावविकारतत्तद्भेदक्रियासहस्ररूपेण स्थातुमिच्छोः स्वतन्त्रस्य भगवतो महेश्वरस्येच्छैवोत्तरोत्तरमुच्चस्वभावा क्रिया विश्वकर्तृत्वं वोच्यत इति। इच्छामात्रेण जगन्निर्माणमित्यत्र दृष्टान्तोऽपि स्पष्टं निर्दिष्टः। "योगिनामपि मृद्बीजे विनैवेच्छावशेन यत्। घटादि जायते तत्तत् स्थिरस्वार्थक्रियाकरम् ॥" इति ॥ १३ ॥

अतः जड अथवा अनीश्वर चेतनमें कारणता नहीं है अतः संसारके अन्तर्गत तत्तद्वस्तुकी उत्पत्ति स्थिति लय आदि भावविकार तद्भेदहेतु क्रियाद्वारा स्थिति चाहनेवाले स्वतन्त्र भगवान् महेश्वरकी इच्छामात्रसे उत्तरोत्तर उत्कृष्ट स्वभाव अथवा विश्वकर्तृत्व क्रिया है इच्छामात्रसेही जगत्का निर्माण होता है इसमें दृष्टान्तभी कहा है मृत्तिका बीजादि कारणके विनाही योगियोंकी इच्छामात्रसे घटादि कार्य उत्पन्न हो जाता है अतः स्वार्थक्रियाकरत्व स्थिर है ॥ १३ ॥

यदि घटादिकं प्रति मृदाद्येव परमार्थतः कारणं स्यात् तर्हि कथं योगीच्छामात्रेण घटादिजन्म स्यात्। अथोच्यते अन्य एव मृद्बीजादिजन्मा घटांकुरादयो योगेच्छाजन्यास्त्वन्या एवेति। तत्रापि बोध्यसे सामग्रीभेदात्तावत् कार्य्यभेद इति सर्वजनप्रसिद्धम्। ये तु वर्णयन्ति नोपादानं विना घटाद्युत्पत्तिरिति ॥ योगी त्विच्छया परमाणून् व्यापारयन् सङ्घट्टयतीति। तेऽपि बोधनीयाः यदि परिदृष्टकार्य्यकारणभावविपर्ययो न लभ्येत तर्हि घटमृद्दण्डचक्रादिदेहे स्त्रीपुरुषसंयोगादिसर्वमपेक्षेत तथा च योगीच्छासमनन्तरसञ्जातघटदेहादिसम्भवो दुःसमर्थ एव स्यात् चेतन एव तु तथा भाति भगवान् भूरिभगो महादेवो नियत्यनुवर्त्तनोल्लङ्घनतरस्वान्तन्त्र्य इति पक्षे न काचिदनुपपत्तिः। अत एवोक्तं वसुगुप्ताचार्यैः-" निरुपादानस-

म्भारमभित्तावेव तन्वते । जगच्चित्रं नमस्तस्मै कलाश्लाघ्याय शूलिने ॥" इति ॥ १४ ॥

यदि घटादि कार्यके प्रति मृदादि परमार्थतः कारण होता तो योगियोंकी इच्छामात्रसे कैसे घटादि उत्पन्न होते ? यदि कहो मृदादिसे जायमान घटादि कार्य कुछ अन्य है और योगियोंकी इच्छासे उत्पन्न कार्य अन्य है उसमेंभी कारणभेदसे कार्य भेद प्रसिद्ध है जो लोग कहते हैं उपादान (समवायिकारण) के विना कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती । योगीलोग इच्छासे परमाणुको संघटित करते हैं उनसे कहना चाहिये कि प्रसिद्ध कार्यकारणभावका विपर्यय होता तो घटमृत्पिण्डचक्रादि देहके लिये स्त्रीपुरुषसंयोगादिकी भी अपेक्षा होगी एवश्च योगियोंकी इच्छामात्रसे तत्काल घटादिकी उत्पत्ति कथमविसम्भवित न होगी तथाच महाऐश्वर्यशाली भगवान् महादेव प्रारब्धकोभी उल्लंघनरूप स्वातन्त्र्ययुक्त कार्य करते हैं इस पक्षमें कोई झगडा ही नहीं है वसुगुप्ताचार्यनेभी कहा है उपादानादि सामग्री और भित्तिके विना जो संसाररूप चित्रका विस्तार करते हैं ऐसे कलाकुशल शूलीके लिये नमस्कार है ॥ १४ ॥

ननु प्रत्यगात्मनः परमेश्वराभिन्नत्वे संसारसम्बन्धः कथं भवेदिति चेत्तत्रोक्तमागमाधिकारे-"एष प्रमाता मायान्धः संसारी कर्मबन्धनः । विद्यादिज्ञापितैश्वर्यश्चिद्घनो मुक्त उच्यते ॥" इति ॥ ननु प्रमेयस्य प्रमातृभिन्नत्वे बन्धमुक्त्योः प्रमेयं प्रति को विशेषः अत्राप्युत्तरमुक्तं तत्त्वार्थसंग्रहाधिकारे-"मेयं साधारणं मुक्तः स्वात्माभेदेन मन्यते । महेश्वरो यथा बद्धः पुनरत्यन्तभेदवत् ॥" इति ॥ १५ ॥

जीवात्मा यदि परमेश्वरसे अभिन्न हो तो संसारका सम्बन्ध कैसे होगा ? परमेश्वर विनिर्मुक्त है इस शंकाका समाधान आगमाधिकारमें कहा है कि उक्त प्रमाता (चेतन) मायासे अज्ञानी होकर पुण्यपापरूप कर्मबन्धनयुक्त संसारी होता है विद्यासे स्वरूप और ऐश्वर्यादि बोधित होनेपर चिद्घनानन्द मुक्त होते हैं ? यदि प्रमेय (विषय) प्रमातासे भिन्न हो तो बन्ध और मोक्ष दशामें प्रमेयका विशेषही क्या होगा ? उत्तर-यद्यपि मेय उभयसाधारण है तथापि मुक्त महेश्वर अपनेसे अभिन्नरूपसे मानते हैं बद्ध संसारी अत्यन्त भेदरूपसे मानते हैं ॥ १५ ॥

नन्वात्मनः परमेश्वरत्वं स्वाभाविकं चेन्मार्थः प्रत्यभिज्ञाप्रार्थनया न हि बीजमप्रत्यभिज्ञातं सति सहकारिसाकल्ये अंकुरं नोत्पादयति। तस्मात् कस्माद्वात्मप्रत्यभिज्ञाने निर्बन्ध इति चेत् ॥ १६ ॥

यदि आत्माका परमेश्वरत्व धर्म्म स्वाभाविक है तो प्रत्याभिज्ञाकी प्रार्थना विफल है क्योंकि पृथिवी जलादि सहकारीके संयोग होनेपरभी प्रत्यभिज्ञा न होनेके कारण बीज अंकुरको नहीं उत्पादन करेगा ऐसा कोई नियम नहीं दृष्ट होता है अतः प्रत्यभिज्ञाका निर्बन्धमें क्या हेतु है ॥ १६ ॥

उच्यते। शृणु तावदिदं रहस्यं, द्विविधा ह्यर्थक्रिया बाह्यांकुरादिका प्रमातृविश्रान्तिचमत्कारसारा प्रीत्यादिरूपा च। तत्राद्या प्रत्यभिज्ञानं नापेक्षते, द्वितीया तु तदपेक्षत एव। इहाप्यहमीश्वर इत्येवम्भूतचमत्कारसारा परापरसिद्धिलक्षणजीवात्मैकत्वशक्तिविभूतिरूपार्थक्रियेति स्वरूपप्रत्यभिज्ञानमपेक्षणीयम् ॥ १७ ॥

इसका रहस्य सुनो अर्थ क्रिया बाह्य आन्तरभेदसे दो प्रकार है अङ्कुरादि काय बाह्य है उसमें प्रत्यभिज्ञाकी अपेक्षा नहीं। द्वितीय प्रमाताका विश्रामका चमत्कार प्रधान प्रीतिरूप है इसमें प्रत्याभिज्ञाकी अपेक्षा होती है यहांभी मैं ईश्वर हूं इत्यादि चमत्कारसार् परापर सिद्धिलक्षण जीवात्मैकत्व शक्तिविभूतिरूप कार्य है अतः स्वरूपप्रत्यभिज्ञान अवश्य चाहिये ॥ १७ ॥

ननु प्रमातृविश्रान्तिसारार्थक्रिया प्रत्यभिज्ञानेन विना दृष्टा सती तस्मिन् दृष्टेति क्व दृष्टम्। अत्रोच्यते, नायकगुणगणसंश्रवणप्रवृद्धानुरागा काचन कामिनी मदनविह्वला विरहक्लेशमसहमाना मदनलेखावलम्बनेन स्वावस्थानिवेदनानि विधत्ते तथा वेगात् तन्निकटमटत्यपि तस्मिन्नवलोकितेऽपि तदवलोकनं तदीयगुणपरामर्शाभावे जनसाधारणत्वं प्राप्ते हृदयङ्गमभावं न लभते। यदा तु मूर्त्तिवचनात् तदीयगुणपरामर्शं

करोति तदा तत्क्षणमेव पूर्णभावमत्येति । एवं स्वात्मनि विश्वेश्वरात्मना भासमनिऽपि तन्निर्भासनं तदीयगुणपरामर्श-विरहसमयं पूर्णं भावं न सम्पादयति । यदा तु गुरुवचनादिना सर्वज्ञत्वसर्वकर्तृत्वादिलक्षणपरमेश्वरोत्कर्षपरामर्शो जायते तदा तत्क्षणमेव पूर्णात्मतालाभः ॥ १८ ॥

शंका–प्रमाताके विश्रान्तिसारभूत कार्य प्रत्यभिज्ञानके विना नहीं होता है, प्रत्यभिज्ञान होनेसे होता है, ऐसा नियम क्या कहीं दृष्ट है ? उत्तर–जिस प्रकार नायकके गुणोंको सुन अत्यन्त अनुरागवाली नायिका कामातुर हो विरहपीडाके सहनेमें असमर्थ मदनलेखाका अवलम्बन करके अपनी अवस्थाको निवेदन करती है और आतुरतासे नायकके समीप जाकर उनको अवलोकन करनेपरभी पूर्व अपरिचित और जन साधारणसे बोधित न होनेके कारण अपने हृदयके भावको नहीं प्रकट करसकती है । जब किसीके द्वारा ‘ तुम्हारा अभिमत पुरुष यही है ’ ऐसा विदित हो जाय तब अपने हृदयके भावको उससे प्रकट करती है उसी प्रकार विश्वेश्वररूपसे आत्मा प्रकाशित होनेपरभी वह प्रकाश उनके गुणपरामर्शके विना पूर्णभावको संपादन नहीं कर सकता जब गुरुवचनादिसे सर्वज्ञत्व सर्वकर्तृत्वादि परमेश्वरका उत्कर्ष ज्ञात होता है तब पूर्णतया आत्मस्वरूप प्राप्त होजाता है ॥ १८ ॥

तदुक्तं चतुर्थे विमर्शे–“ तैस्तैरप्युपयाचितैरुपनतस्तस्याः स्थितोऽप्यन्तिके कान्तो लोकसमान एवमपरिज्ञातो न रन्तुं यथा । लोकस्यैष तथानपेक्षितगुणः स्वात्मापि विश्वेश्वरो नैवायं निजवैभवाय तदियं तत्प्रत्यभिज्ञोदिता ॥” इति ॥ अभिनवगुप्तादिभिराचार्यैर्विहितप्रतानोऽपि अयमर्थः संग्रहमुपक्रममाणैरस्माभिर्विस्तरभिया न प्रतानित इति सर्वं शिवम् ॥ १९ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहे प्रत्यभिज्ञादर्शनं समाप्तम् ॥ ८ ॥

जिस प्रकार नायक अनेक प्रार्थनाओंद्वारा आकर नायिकाके समीपमें स्थितभी हो किंतु अपरिचित होनेके कारण अन्य पुरुषकी समान नायिकाके रमण करने योग्य नहीं होता है उसी प्रकार आत्मस्वरूपसे प्रकाशमान विश्वेश्वरभी पूर्व अपरिचित होनेसे लोकोंको स्वकीय वैभव प्रकट करने योग्य नहीं होते हैं अतः प्रत्यभिज्ञाशास्त्रकी आवश्यकता है । यह सब अभिनवगुप्ताचार्यादिके ग्रंथोंमें प्रपञ्चित है यहाँ केवल दिग्दर्शन मात्र है ॥ १९ ॥

इति प्रत्यभिज्ञादर्शन समाप्त ।

अथ रसेश्वरदर्शनम् ॥ ९ ॥

अपरे माहेश्वराः परमेश्वरतादात्म्यवादिनोऽपि पिण्डस्थैर्ये सर्वाभिमता जीवन्मुक्तिः सेत्स्यतीत्यास्थाय पिण्डस्थैर्योपायं पारदादिपदवेदनीयं रसमेव सङ्गिरन्ते। रसस्य पारदत्वं संसारपरपारप्रमाणहेतुत्वेन। तदुक्तम्–' संसारस्य परं पारं दत्तेऽसौ पारदः स्मृतः ॥ ' इति ॥ १ ॥

कोई माहेश्वर परमेश्वरके साथ तादात्म्य मानते हुए भी शरीरको स्थिरता होनेहोसे सर्वाभिमत जीवन्मुक्ति होसकती है ऐसा मानकर शरीरकी स्थिरताके उपायभूत पारदरस (पारे) को मानते हैं संसारसे जो पार करदे उसको पारद कहते हैं ॥ १ ॥

रसार्णवेऽपि–पारदो गदितो यस्मात्परार्थं साधकोत्तमैः । सुप्तोऽयं मत्समो देवि मम प्रत्यङ्गसम्भवः ॥ मम देहरसो यस्माद्रसस्तेनायमुच्यते ॥ " इति ॥ २ ॥

रसार्णवमेंभी कहाहै–हे पार्वति ! हमारे अंगसे उत्पन्न और शोधन होनेपर हमारे समान फलदायी है इस कारण श्रेष्ठ साधकोंने उत्कृष्ट प्रयोजनके लिये पारदहीको कहा है । मेरी देहका रस (वीर्य) होनेसे पारद रस कहाता है ॥ २ ॥

प्रकारान्तरेणापि जीवन्मुक्तियुक्तौ नेयं वाचो युक्तिर्युक्तिमतीति चेन्न षट्स्वपि दर्शनेषु देहपातानन्तरं मुक्तेरुक्ततया तत्र विश्वासानुपपत्त्या निर्विचिकित्सप्रवृत्तेरनुपपत्तेः । तदप्युक्तं तत्रैव–"षड्दर्शनेऽपि मुक्तिस्तु दर्शिता पिण्डपातने । करामलकवत्सापि प्रत्यक्षा नोपलभ्यते । तस्मात्तं रक्षयेत्पिण्डं रसैश्चैव रसायनैः ॥" इति । गोविन्दभगवत्पादाचार्यैरपि–"इति धनशरीरभोगान्मत्वा नित्यान्सदैव यतनीयम् । मुक्तौ सा च ज्ञानात्तच्चाभ्यासात्स च स्थिरे देहे ॥ " इति ॥ ३ ॥

यदि कहो जब प्रकारान्तरसेभी मुक्ति होती है तो यह युक्ति ठीक नहीं सोभी नहीं कह सकते षड्दर्शनोंमें शरीर नाशके अनन्तर मुक्ति कही है परन्तु मरनेपर मुक्ति होती है इसमें विश्वास न होनेसे उस विषयमें निःसन्देह प्रवृत्तिभी असम्भव है

अतएव कहा है छः दर्शनोंमें मरनेके बाद मुक्ति कही है परन्तु सोभी हाथके आमलेकी समान प्रत्यक्ष नहीं होती । जीवन्मुक्ति सबको प्रत्यक्ष है अतः रस और रसायनोंसे शरीरकी रक्षा करे । गोविन्दभगवत्पादाचार्यनेभी लिखा है धन शरीर और भोगको नित्य जानकर मुक्तिके लिये सदा यत्न करें मुक्तिभी ज्ञानसे होती है ज्ञान अभ्याससे होता है और अभ्यास शरीरकी स्थिरतासे होता है ॥ ३ ॥

ननु विनश्वरतया दृश्यमानस्य देहस्य कथं नित्यत्वमनुमीयतइति चेन्मैवं मंस्थाः, षाट्कौशिकस्य शरीरस्यानित्यत्वे रसाभ्रकपदाभिलप्यहरगौरीसृष्टिजातस्य नित्यत्वोपपत्तेः । तथा च रसहृदये- "ये चात्यक्तशरीरा हरगौरीसृष्टिजान्तरं प्राप्ताः । वन्द्यास्ते रससिद्धा मन्त्रगणः किङ्करो येषाम् ॥ " इति ॥ तस्माज्जीवन्मुक्तिं समीहमानेन योगिना प्रथमं दिव्यतनुर्विधेया हरगौरीसृष्टिसंयोगजनितत्वञ्च रसस्य हरजत्वेनाभ्रकस्य गौरीसम्भवत्वेन तत्तदात्मकत्वमुक्तम् । "अभ्रकस्तव बीजं तु मम बीजं तु पारदः । अनयोर्मेलनं देवि मृत्युदारिद्र्यनाशनम् ॥" इति ॥ ४ ॥

यदि कहो शरीरका नाश प्रत्यक्ष उपलब्ध होनेसे उसको नित्य मानना अतीव असंगत है यहभी नहीं कह सकते क्योंकि षाट्कौशिक शरीर अनित्य होनेपरभी रस अभ्रकपदवाच्य हर गौरी सृष्टिसे उत्पन्न शरीरको नित्य माननेमें अनुपपत्ति नहीं है । रसहृदयमेंभी कहा है जिन्होंने शरीरको त्याग नहीं किया हो और हरगौरीसे कल्पान्तरसे प्राप्त हों मन्त्रगण जिनके किङ्कर हों ऐसे रससिद्ध अत्यन्त वन्दनीय है अतः जीवन्मुक्ति चाहनेवाले योगियोंको प्रथम दिव्य शरीर सम्पादन करना चाहिये रस हरसे और अभ्रक गौरीसे उत्पन्न होनेके कारण हरगौरी सृष्टि संयोगजनित कहाते हैं । हे ! पार्वति अभ्रक (अबरक) तुम्हारा बीज है और पारा मेरा बीज है इन दोनोंका संमेलन मृत्यु और दारिद्र्य नाशक होता है ॥ ४ ॥

अत्यल्पमिदमुच्यते देवदैत्यमुनिमानवादिषु बहवो रससामर्थ्याद्दिव्यं देहमाश्रित्य जीवन्मुक्तिमाश्रिताः श्रूयन्ते । रसेश्वरसिद्धान्ते-"देवाः केचिन्महेशाद्या दैत्याःकंसपुरःसराः । मुनयो

वालखिल्याद्या नृपाः सोमेश्वरादयः ॥ गोविन्दभगवत्पादाचार्यो गोविन्दनायकः । चर्वटिः कपिलो व्यालिः कापालिः कन्दलायनः ॥ एतेऽन्ये बहवः सिद्धा जीवन्मुक्ताश्चरन्ति हि । तनुं रसमयीमाप्य तदात्मककथाचणाः॥" इति ॥ ५ ॥

यह तो बहुतही अल्प बात है रसेश्वरसिद्धान्तमें देव, दैत्य, मनुष्य और मुनियोंमें अनेक रसप्रभावसे जीवन्मुक्त वर्णित हैं यथा महेशादि देव, कंसादि असुर, वालखिल्यादि मुनि और सोमेश्वरादि नृप रसके प्रभावसे जीवन्मुक्त होगये हैं । गोविन्दभगवत्पाद, गोविन्दनायक, चर्वटि इत्यादि अनेक सिद्ध रसायनिक कथामें निपुण रसमय शरीर प्राप्त कर जीवन्मुक्त होकर विचरते हैं ॥ ५ ॥

अयमेवास्यार्थः परमेश्वरेण परमेश्वरीं प्रति प्रपञ्चितः । "कर्मयोगेन दवेशि प्राप्यते पिण्डधारणम् । रसश्च पवनश्चेति कर्मयोगो द्विधा स्मृतः ॥ मूर्च्छितो हरति व्याधीन्मृतो जीवयति स्वयम् । बद्धः खेचरतां कुर्याद्रसो वायुश्च भैरवि ॥ " इति । मूर्च्छितस्वरूपमप्युक्तम्–" नानावर्णो भवेत्सूतो विहाय घनचापलम् । लक्षणं दृश्यते यस्य मूर्च्छितं तं वदन्ति हि ॥ आर्द्रत्वञ्च घनत्वञ्च तेजो गौरवचापलम् । यस्यैतानि न दृश्यन्ते तं विद्यान्मृतसूतकम् ॥" इति ॥ अन्यत्र बद्धस्वरूपमप्यभ्यधायि--"अक्षतश्च लघुद्रावी तेजस्वी निर्मलो गुरुः । स्फोटनं पुनरावृत्तौ बद्धसूतस्य लक्षणम्॥" इति ॥ ६ ॥

हे पार्वति ! कर्मयोगसे शरीरकी स्थिरता होती है रस और पवनभेदसे कर्म्मयोग दो प्रकार है । हे पार्वति ! रस और वायु मूर्छित होनेसे रोगोंको हरण करते हैं और मृत शुद्ध होनेसे स्वयं जिलाते हैं तथा बद्ध होनेसे गगनचारी बनाते हैं । मूर्छित स्वरूपको कहते हैं कि घन चापलको छोडकर नानावर्ण जब होते हैं तब उसको मूर्छित कहते हैं । आर्द्रत्व, घनत्व, तेज, गौरव, चापल ये जिसमें न हों उसको मृत सूतक जानना । बद्धस्वरूप कहते हैं–अक्षत, लघुद्रावी, तेजस्वी, निर्म्मल, गुरु पुनरावृत्तिमें स्फोटन, बद्धसूतका लक्षण है ॥ ६ ॥

ननु हरगौरीसृष्टिसिद्धौ पिण्डस्थैर्यमास्थातुं पार्यते तत्सिद्धिरेव कथमिति चेन्न अष्टादशसंस्कारवशात्तदुपपत्तेः । तदुक्तमाचार्यैः--"तस्य हि साधनविधौ सुधियां प्रति कर्म निर्मलाः प्रथमम् । अष्टादश संस्कारा विज्ञातव्याः प्रयत्नेन ॥" इति । ते च संस्कारा निरूपिताः "स्वेदनमर्दनमूर्च्छनस्थापनपातननिरोधनियमाश्च । दीपनगमनग्रासप्रमाणमथ जारणापिधानम् ॥ गर्भद्रुतिबाह्यद्रुतिक्षारणसरागसारणाश्चैव । क्रामणवेधौभक्षणमष्टादशधेति रसकर्म ॥" इति । तत्प्रपञ्चस्तु गोविन्दभगवत्पादाचार्यसर्वज्ञरामेश्वरभट्टारकप्रभृतिभिः प्राचीनैराचार्यैर्निरूपित इति ग्रन्थभूयस्त्वभयादुदास्यते ॥ ७ ॥

हरगौरीसृष्टि सिद्ध होगी तो शरीरभी स्थिर होगा परन्तु सिद्धि कैसे होती है सो कहते हैं । अष्टादश संस्कारोंसे सिद्धि होती है उसके साधनविधिमें प्रथम १८ उत्तम संस्कार बुद्धिमानोंको जान लेने चाहिये । संस्कार-स्वेदन, मूर्च्छन, स्थापन पातन, निरोधन, नियम, दीपन, गमन, ग्रासप्रमाण, जारण, पिधान, गर्भद्रुति, बाह्यद्रुति, क्षारण, सराग, सारण, क्रामण, वेध, और भक्षण ये अष्टादश रसकर्म हैं । इसका विस्तृत वर्णन गोविन्दभगवत्पदाचार्यप्रभृति प्राचीनाचार्योंने किया है ॥ ७ ॥

न च रसशास्त्रं धातुवादार्थमेवेति मन्तव्यं देहबन्धद्वारा मुक्तेरेव परमप्रयोजनत्वात् । तदुक्तं रसार्णवे-लोहबंधस्त्वया देव यद्दत्तः परमीशितः । त्वं देहवेधमाचक्ष्व येन स्यात् खेचरी गतिः ॥ यथा लोहे तथा देहे कर्त्तव्यः सूतकः सता ॥ समानं कुरुते देवि प्रत्ययं देहलोहयोः। पूर्वं लोहे परीक्षेत पश्चाद् देहे प्रयोजयेत्॥" इति ॥ ८ ॥

यह न समझना कि आचार्योंने रसायनशास्त्र केवल धातुपुष्टि प्रतिपाद कही है, किन्तु देहरक्षाद्वारा मुक्तिहीका परम प्रयोजक है । हे देव आपने लोहबन्ध तो दिया अब जिससे आकाशमार्गमें गमन हो वह देहबन्ध बताइये देह और लोहमें समान

सूतक करना चाहिये । हे देवि लोहे और देहमें समान विश्वास करें प्रथम लोहेमें परीक्षा करें पश्चात् देहमें प्रयोग करें ॥ ८ ॥

ननु सच्चिदानन्दात्मकपरतत्त्वस्फुरणादेव मुक्तिसिद्धौ किमनेन दिव्यदेहसम्पादनप्रयासेनेति चेत्तदेतदवार्तं वार्त्तशरीरालाभे तद्वार्त्ताया अयोगात् । तदुक्तं रसहृदये-"गलितानल्पविकल्पः सर्वाध्वविवक्षितश्चिदानन्दः । स्फुरितोऽप्यस्फुरिततनोः करोति किं जन्तुवर्गस्य॥ इति। " यं जरया जर्जरितं काशश्वासादिदुःखविशदश्च। योग्यं तं न समाधौ प्रतिहतबुद्धीन्द्रियप्रसरम् ॥ बालः षोडशवर्षौ विषयरसास्वादलम्पटः परतः । यातविवेको वृद्धो मर्त्यः कथमाप्नुयान्मुक्तिम् ॥ " इति च ॥ ९ ॥

सच्चिदानन्द आत्मतत्त्व प्रकाशसे ही मुक्ति हो जायगी दिव्यदेहप्राप्तिसे क्या प्रयोजन है ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि वार्तशरीर (दिव्यशरीर) न होनेसे मुक्तिकी वार्ताभी असम्भव है । रसहृदयमें कहा है सम्पूर्ण विकल्प जालसे रहित हो और सर्व तीर्थकरोंका अभिमत चिदानन्द आत्मतत्त्व प्रकाशित होनेपरभी अप्रकाशित शरीरका क्या कर सकता है अर्थात् कुछभी नहीं कर सकता जो जरावस्थासे जर्जरित हो खाँसी श्वास आदि दुःखसे पीडित हो बुद्धि और इन्द्रियोंके व्यापारसे कुण्ठित हो वह समाधिके योग्य नहीं है, बालक, सोलह वर्षका युवा, विषयभोगमें लम्पट और अप्राप्तविवेक वृद्ध मनुष्य किस प्रकार मुक्ति पासकते हैं ॥ ९ ॥

ननु जीवत्वं नाम संसारित्वं तद्विपरीतत्वं मुक्तत्वं तथा च परस्परविरुद्धयोः कथमेकायतनत्वमुपपन्नं स्यादिति चेत्तदनुपपन्नं विकल्पानुपपत्तेः । मुक्तिस्तावत् सर्वतीर्थकरसम्मता । सा किं ज्ञेयपदे निविशते न वा चरमे शशविषाणकल्पा स्यात् । प्रथमे न जीवनं वर्जनीयमजीवतो ज्ञातृत्वानुपपत्तेः । तदुक्तं रसेश्वरसिद्धान्ते-"रसाङ्कमेयमार्गोक्तो जीवमोक्षोऽस्त्यधोमनाः । प्रमाणान्तरवादेषु युक्तिभेदावलम्बिषु ॥ ज्ञानज्ञेयमिदं विद्धि सर्वतन्त्रेषु संमतम् । न जीवन् ज्ञास्याति ज्ञेयं यदतोऽस्त्येव जीवनम् ॥ " इति ॥ १० ॥

यदि कहो जीवित संसारी होता है संसाररहित मुक्त कहा जाता है तब परस्पर विरुद्ध जीवत्व मुक्तत्व एकमें कैसे रहेगा ? यह ठीक नहीं है मुक्ति सब दर्शनकारोंकी अभिमत है वह मुक्ति ज्ञानका विषय है या नहीं ? यदि न हो तो खरगोशके सींगके समान तुच्छ होगी । ज्ञानका विषय मानो तो जीवनके विना ज्ञातृत्व असम्भव होनेसे जीवन्मुक्तिभी सिद्ध होगी यह रसेश्वरसिद्धान्तमें प्रसिद्ध है रसाङ्कसिद्धान्तमें प्रतिपादित जीवन्मोक्षसे भिन्न २ मुक्ति और प्रमाणान्तरवादी विमुख रहते हैं परन्तु मुक्तिको सब सिद्धान्तवादियोंके ज्ञानका विषय कहा है जीवनके विना ज्ञान नहीं हो सकता और ज्ञानके विना ज्ञेयभी नहीं हो सकता है अतः जीवन्मोक्ष अवश्य मानना होगा ॥ १० ॥

न चेदमदृष्टचरमिति मन्तव्यं विष्णुस्वामिमतानुसारिभिः नृपञ्चास्यशरीरस्य नित्यत्वोपपादनात् । तदुक्तं साकारसिद्धौ- "सच्चिन्नित्यनिजाचिन्त्यपूर्णानन्दैकविग्रहम् ॥ नृपञ्चास्यमहं वन्दे श्रीविष्णुस्वामिसम्मतम् ॥" इति ॥ ११ ॥

यह किसी सिद्धान्तमें नहीं देखा गया है ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि विष्णुस्वामिमतानुयायियोंने नृसिंहशरीरको नित्य माना है और साकारसिद्धिमें कहा है कि सत् चित् नित्य स्वकीय अचिन्त्य परिपूर्ण ज्ञान और आनन्दस्वरूप श्रीविष्णुस्वामीके सम्मत नरसिंहका मैं वन्दना करता हूं ॥ ११ ॥

नन्वेतत् सावयवं रूपवदवभासमानं नृकण्ठीरवाङ्गं सदिति न सङ्गच्छत इत्यादिनाक्षेपपुरःसरं सनकादिप्रत्यक्षं सहस्रशीर्षा पुरुष इत्यादि श्रुतिः, तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शङ्खगदार्युदायुधम् इत्यादिपुराणलक्षणेन प्रमाणत्रयेणसिद्धं नृपञ्चाननाङ्गं कथमसत् स्यादिति । सदादीनि विशेषणानि गर्भश्रीकान्तमिश्रैः विष्णुस्वामिचरणपरिणतान्तःकरणैः प्रतिपादितानि । तस्मादस्मादिष्टदेहनित्यत्वमत्यन्तादृष्टं न भवतीति पुरुषार्थकामुकैः पुरुषैरेष्टव्यम् ॥ १२ ॥

रूपवान्के समान प्रतीयमान सावयव नृसिंह शरीर सत्य नहीं हो सकता इत्यादि आक्षेपोंका समाधानभी सनकादिकोंके प्रत्यक्ष, सहस्र शीर्षेति श्रुति (अनेक

शिर, पाद, नेत्र, अनेक पादवान् पुरुष) पुरुषसूक्त, तथा विकसित कमलके समान जिनके नेत्र चार भुजासे युक्त शंख, चक्र, गदादि आयुधोंको धारण किये पीताम्बर कौस्तुभ श्रीवत्सादि भूषणोंसे भूषित अद्भुत बालकको श्रीवसुदेवजी देखते हुए इत्यादि पुराण प्रमाणोंसे सिद्ध नरसिंह शरीर असत् नहीं हो सकता अतः हमारा अभिमत देहनित्यत्व अत्यन्त अदृष्ट न होनेसे मोक्षार्थियोंको रसायनसे शरीर स्थैर्यही सम्पादन करना चाहिये ॥ १२ ॥

अतएवोक्तम्-"आयतनं विद्यानां मूलं धर्मार्थकाममोक्षाणाम् । श्रेयःपरं किमन्यच्छरीरमजरामरं विहायैकम्॥" इति ।अजरामरीकरणसमर्थश्च रसेन्द्र एव । तदाह-"एकोऽसौ रसराजः शरीरमजरामरं कुरुते" इति ॥ किं वर्ण्यते रसस्य माहात्म्यं दर्शनस्पर्शनादिनापि महत्फलं भवति । तदुक्तं रसार्णवे- "दर्शनात् स्पर्शनात्तस्य भक्षणात् स्मरणादपि । पूजनाद्रसदानाच्च दृश्यते षड्विधं फलम् ॥ १३ ॥

अतएव कहा है कि विद्याका स्थान धर्म अर्थ काम और मोक्षका मूल परमश्रेष्ठ अजर अमर शरीरको छोडकर अन्य श्रेष्ठ क्या हो सकता है अजर और अमरका साधक केवल रसेन्द्रही है रसका माहात्म्य कहाँतक वर्णन करें। दर्शन, स्पर्शन, भक्षण, स्मरण, पूजन और रसदानसे षड्विध फल होते हैं ॥ १३ ॥

केदारादीनि लिङ्गानि पृथिव्यां यानि कानिचित् । तानि दृष्ट्वा तु यत्पुण्यं तत्पुण्यं रसदर्शनात् ॥" इत्यादिना॥ अन्यत्रापि- "काश्यादिसर्वलिङ्गेभ्यो रसलिंगार्चनं शिवम् । प्राप्यते येन तल्लिङ्गं भोगारोग्यामृतामरम् ॥ " इति ॥ १४ ॥

पृथिवीमें केदारनाथ और विश्वनाथ प्रभृति जो शिवलिङ्ग हैं उनके दर्शनसे जो पुण्य होता है वह रसके दर्शनसे हो जाता है । काशीविश्वनाथादि शिवलिङ्गके अर्चनकी अपेक्षा रसलिंगका अर्चन बहुत श्रेष्ठ है । क्योंकि रसलिङ्गसे भोग आरोग्य और अमृत (मोक्ष) तीनों प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥

रसनिन्दायाः प्रत्यवायोऽपि दर्शितः । " प्रमादाद्रसनिन्दायाः श्रुतावेनं स्मरेत् सुधीः । द्राक् [illegible]नेन्निन्दकं नित्यं निन्दया

पूरितोऽशुभम् ॥ " इति । तस्मादस्मदुक्तया रीत्या दिव्यं देहं सम्पाद्य योगाभ्यासवशात् परतत्त्वे दृष्टे पुरुषार्थप्राप्तिर्भवति । तदा-" भ्रूयुगमध्यगतं यत् शिखिविद्युत्सूर्य्यवज्जगद्भासि । केषाञ्चित् पुण्यदृशामुन्मीलति चिन्मयं ज्योतिः ॥ १५ ॥

रसकी निन्दा करनेका प्रायश्चित्त कहते हैं प्रमादवश रसकी निन्दा सुने तो रसका सम्यक् प्रकार ध्यान करे और निन्दकको त्याग दे क्योंकि निन्दायुक्त अशुभ होता है । अतः हमारे कथनानुसार दिव्य शरीर प्राप्त कर योगाभ्यासद्वारा साक्षात्कार करनेसे मुक्त होते हैं पुण्यशालियोंको पुण्यवश भ्रुकुटिके मध्यमें प्राप्त अग्नि बिजली और सूर्यके समान जगत्को प्रकाश करनेवाली चिन्मयज्योति विकसित होती है ॥ १५ ॥

परमानन्दैकरसं परमं ज्योतिः स्वभावमविकल्पम् । विगलितसकलक्लेशज्ञेयं शान्तं स्वसंवेद्यम् ॥ तस्मिन्नाधाय मनः स्फुरदखिलं चिन्मयं जगत् पश्यन् । उत्सन्नकर्मबन्धो ब्रह्मत्वमिहैव चाप्नोति ॥ " इति । श्रुतिश्च-' रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति' ॥ इति ॥ १६ ॥

परमानन्दैकरस परमज्योति समस्त विकल्प और समस्त क्लेशोंसे रहित स्वसम्वेद्य रसतत्त्वमें ध्यानादि द्वारा चित्त लगाकर जगत्को प्रकाशमान चिन्मय देखनेवाले कर्म्मबन्धनसे रहित होकर इस संसारमेंही ब्रह्मरूप होजाते हैं । रस (आस्वादन करने योग्य) ईश्वर है रस प्राप्तिसे पुरुष आनन्दवान् होता है ॥ १६ ॥

तदित्थं भवेदन्यदुःखभरतरणोपायो रस एवेति सिद्धम् । तथा च रसस्य परब्रह्मणा साम्यमिति प्रतिपादकः श्लोकः । "यः स्यात् प्रावरणाविमोचनधियां साध्यः प्रकृत्या पुनः सम्पन्नो सहते न दीव्यति परं वैश्वानरे जाग्रति । जातो यद्यपरं न वेदयाति च स्वस्मात् स्वयं द्योतते यो ब्रह्मैव स दैन्यसंसृतिभयात् पायादसौ पारदः ॥ " इति ॥ १७ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहे रसेश्वरदर्शनं समाप्तम् ॥ ९ ॥

इस प्रकार अन्यके दुःखभारके नाश करनेमें समर्थ रसही है यह सिद्ध हुआ । यह पारद संसारबन्धनसे मुक्ति चाहनेवालोंको स्वभावसे साधनीय है जिस प्रकार

प्रचण्ड वैश्वानरके सामने अन्यवस्तुका प्रकाश नहीं होता है उसी प्रकार सिद्ध (शोधित) पारदके सन्मुख अन्य सब रसायन निस्तेज हो जाती हैं। जिस पारदसे अभिनव शरीर प्राप्त पुरुष दूसरेको नहीं जानता है और स्वयं प्रकाशमान रहता है और जो पारद साक्षात् ब्रह्म है वह पारद संसार भयसे रक्षा करे ॥ १७ ॥

सर्वदर्शनसंग्रहान्तर्गत रसेश्वरदर्शन समाप्त ॥

अथौलुक्यदर्शनम् ॥ १० ॥

इह खलु निखिलप्रज्ञावन्निसर्गप्रतिकूलवेदनीयतया निखिलात्मसंवेदनसिद्धं दुःखं जिहासुस्तद्धानोपायं जिज्ञासुः परमेश्वरसाक्षात्कारमुपायमाकलयति । "यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयन्तीह मानवाः । तदा शिवमविज्ञाय दुःखान्ता न भविष्यति ॥" इत्यादिवचननिचयप्रामाण्यात् ॥ १ ॥

संसारमें समस्त विवेकियोंको प्रतिकूलरूपसे प्रसिद्ध दुःखको त्यागनेकी इच्छासे दुःखनाशका उपाय ईश्वर साक्षात्कार कहते हैं । जिस प्रकार चर्मवत् आकाशका वेष्टन असम्भव है जिसी प्रकार ईश्वरज्ञानके विना दुःखनिवृत्ति असम्भव है इत्यादि वचन उसमें प्रमाण हैं ॥ १ ॥

परमेश्वरसाक्षात्कारश्च श्रवणमननभावनाभिर्भावनीयः । यदाह—"आगमेनानुमानेन ध्यानाभ्यासबलेन च । त्रिधा प्रकल्पयन् प्रज्ञां लभते योगमुत्तमम् ॥" इति ॥ २ ॥

ईश्वरसाक्षात्कार श्रवण मनन निदिध्यासनसे होता है । कहा है आगम, अनुमान और ध्यानाभ्यास इन तीनों प्रकारोंसे प्रज्ञाको स्थिर करनेपर उत्तम योग प्राप्त होता है ॥ २ ॥

तत्र मननमनुमानाधीनम्, अनुमानञ्च व्याप्तिज्ञानाधीनं,व्याप्तिज्ञानञ्च पदार्थविवेकसापेक्षम्—अतः पदार्थषट्कम् । 'अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः' इत्यादिकायां दशलक्षण्यां कणभक्षेण भगवता व्यवस्थापि। तत्राह्निकद्वयात्मके प्रथमेऽध्याये समवेताशेषपदार्थकथनमकारि । तत्रापि प्रथमाह्निके जातिमन्निरूप-

णम्, द्वितीयाह्निके जातिविशिष्टयोर्निरूपणम्, आह्निकद्वययुक्त द्वितीयेऽध्याये द्रव्यनिरूपणम् । तत्रापि प्रथमाह्निके भूतविशेषणलक्षणम्, द्वितीये दिक्कालप्रतिपादनम् । आह्निकद्वययुक्ते तृतीये आत्मान्तःकरणलक्षणम् । तत्राप्यात्मलक्षणं प्रथमे, द्वितीये अन्तःकरणलक्षणम् । आह्निकद्वययुक्ते चतुर्थे शरीरतदुपयोगिविवेचनम् । तत्रापि प्रथमे तदुपयोगिविवेचनं, द्वितीये शरीरविवेचनम् । आह्निकद्वयवति पञ्चमे कर्मप्रतिपादनम् । तत्रापि प्रथमे शरीरसम्बन्धिकर्मचिन्तनम्, द्वितीये मानसकर्मचिन्तनम् । आह्निकद्वयशालिनि षष्ठे श्रौतधर्मनिरूपणम् । तत्रापि प्रथमे दानप्रतिग्रहधर्मविवेकः, द्वितीये चातुराश्रम्योचितधर्मनिरूपणम् । तथाविधे सप्तमे गुणसमवायप्रतिपादनम् । तत्रापि प्रथमे बुद्धिनिरपेक्षगुणप्रतिपादनं, द्वितीये तत्सापेक्षगुणप्रतिपादनं, समवायप्रतिपादनञ्च । अष्टमे निर्विकल्पकसविकल्पकप्रत्यक्षप्रमाणाचिन्तनम् । नवमे बुद्धिविशेषप्रतिपादनम् । दशमे अनुमानभेदप्रतिपादनम् ॥ ३ ॥

श्रुतअर्थका स्थिरत्वप्रयोजक मनन अनुमानके आधीन है अनुमान व्याप्तिज्ञानके आधीन है व्याप्ति ज्ञानपदार्थज्ञानके आधीन है इसलिये 'अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः' इत्यादि दश अध्यायात्मक ग्रन्थमें भगवान् कणादने छः पदार्थोंका व्यवस्थापन किया है प्रथमाध्यायके प्रथमाह्निकमें जातिमान्‌का निरूपण, द्वितीयाह्निकमें जातिविशिष्टका, आह्निक द्वयात्मक द्वितीयाध्यायमें द्रव्यका निरूपण, उसमेंभी प्रथम आह्निकमें भूतविशेष पृथिव्यादि पाञ्चका लक्षण, द्वितीयमें दिक् कालका प्रतिपादन, तृतीयाध्यायके प्रथम आह्निकमें आत्माका लक्षण; द्वितीयमें अन्तःकरणका लक्षण, एवम् आह्निकद्वयात्मक चतुर्थाध्यायके प्रथमाह्निकमें शरीरोपयोगीका विचार, द्वितीयमें शरीर निरूपण, एवं पञ्चमाध्यायके प्रथम आह्निकमें शरीर सम्बन्धी कर्मके विचार द्वितीयमें मानसकर्मका विचार, षष्ठाध्याय प्रथमाह्निकमें दानप्रतिग्रह और धर्मका विचार, द्वितीयमें ब्रह्मचर्यादि आश्रमधर्मका विचार सप्तमाध्याय प्रथमाह्निकमें बुद्धि निरपेक्ष गुणोंका प्रतिपादन, द्वितीयमें बुद्धिसापेक्ष गुण तथा समवायका प्रतिपादन, अष्टमाध्यायमें निर्विकल्पक और सविकल्पक

प्रत्यक्ष प्रतिपादन, नवमाध्यायमें बुद्धिविशेष प्रतिपादन और दशम अध्यायमें अनुमानभेदका प्रतिपादन है ॥ ३ ॥

तत्र उद्देशो लक्षणं परीक्षा चेति त्रिविधास्य शास्त्रस्य प्रवृत्तिः । ननु विभागापेक्षया चातुर्विध्ये वक्तव्ये कथं त्रैविध्यमुक्तमिति चेन्मैवं मंस्थाः विभागस्य विशेषोद्देश एवान्तर्भावात् । तत्र द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवाया भावा इति षडेव ते पदार्था इत्युद्देशः॥ किमत्र क्रमनियमे कारणम्। उच्यते समस्तपदार्थायतनत्वेन प्रधानस्य द्रव्यस्य प्रथममुद्देशः । अनन्तरं गुणत्वोपाधिना सकलद्रव्यवृत्तेर्गुणस्य तदनु सामान्यवत्त्वसाम्यात् कर्मणः पश्चात्तात्रितयाश्रितस्य सामान्यस्य तदनन्तरं समवायाधिकरणस्य विशेषस्य अन्ते अवशिष्टस्य समवायस्येति क्रमनियमः ॥ ४ ॥

उद्देश, लक्षण, परीक्षा रूप प्रकारत्रयसे शास्त्रकी प्रवृत्ति है यद्यपि विभाग मिलाकर चार प्रकार कहना उचित था तथापि सामान्य धर्मका व्याप्य परस्पर विरुद्ध धर्मकथनरूप विभाग उद्देशहीमें अन्तर्भूत होनेसे पृथक् नहीं कहा केवल वस्तुका नाम मात्र कथन करना उद्देश है । यथा द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवायरूप छः भावरूप पदार्थ हैं । उक्त क्रमसे पाठमें नियमभी यह है कि, गुणादि समस्त पदार्थोंका आश्रय होनेसे प्रथम द्रव्यका उपादान है । अनन्तर गुणत्वरूप उपाधि सम्पूर्ण द्रव्यवृत्ति होनेसे गुणका उपादान है । पश्चात् सामान्यवत्त्व साधर्म्य होनेसे कर्मका उपादान है अनन्तर तीनोंमें रहनेवाले सामान्यका उपादान है अनन्तर समवायका आश्रयविशेषका उपादान है और अन्तमें समवायका उपादान है ॥ ४ ॥

ननु षडेव पदार्थाः इति कथं कथ्यते अभावस्यापि सद्भावादिति चेन्मैवं वाचः, नञर्थानुल्लिखितधीविषयतया भावरूपतया षडेवेति विवक्षितत्वात् । तथापि कथं षडेवेति नियम उपपद्यते विकल्पानुपपत्तेः । तथाहि नियमव्यवच्छेद्यं प्रमितं न वा प्रमितत्वे कथं निषेधः अप्रमितत्वे कथन्तरां, न हि कश्चित्

प्रेक्षावान् मूषिकविषाणं प्रतिषेद्धुं यतते । ततश्चानुपपत्तेर्नो नियम इति चेन्मैवं मंसीष्ठाः सप्तमतया प्रमिते अन्धकारादौ भावत्वस्य भावतया प्रमिते शक्तिसंख्यादौ सप्तमत्वस्य च निषेधादिति कृतं विस्तरेण ॥ ५ ॥

यद्यपि अभावको लेकर सात पदार्थ होनेसे छःका कथन अयुक्त है तथापि नञर्थ रहित भावरूप पदार्थ छः ही हैं ऐसे अभिप्रेत होनेसे अनुपपत्ति नहीं होगी अस्तु तथापि छःही है ऐसा नियम नहीं हो सकता क्योंकि नियमसे व्यावर्तनीय (हटाने योग्य) सप्तम अष्टमादि पदार्थ प्रसिद्ध है या अप्रसिद्ध है ? प्रसिद्ध है तो निषेध नहीं हो सकता । यदि अप्रसिद्ध मानो तो सुतरां निषेध व्यर्थ है । कोई बुद्धिमान् मूषिकश्रृंगका निषेध नहीं करते अप्रसिद्ध प्रतियोगिक अभावभी नहीं मानते एवञ्च उभयतः पाशारज्जु न्यायवत् नियम अनुपपन्न है तथापि सप्तमत्वेन प्रसिद्ध अन्धकारमें भावत्व एवं भावत्वेन प्रसिद्ध शक्तिसादृश्यादिमें सप्तमत्वके व्यावर्तनार्थ नियम चरितार्थ होता है ॥ ५ ॥

तत्र द्रव्यादित्रितयस्य द्रव्यत्वादिर्जातिर्लक्षणम् । द्रव्यत्वं नाम गगनसमवेतत्वे सत्यरविन्दसमवेतत्वे सति नित्यत्वे सति गन्धासमवेतत्वम् । गुणत्वं नाम समवायिकारणासमवायिकारणभिन्नसमवेतसत्तासाक्षाद्व्याप्यजातिः । कर्मत्वं नाम नित्यसमवेतत्वसहितसत्तासाक्षाद्व्याप्यजातिः । सामान्यं तु प्रध्वंसप्रतियोगित्वरहितमनेकसमवेतम् । विशेषो नामान्योन्याभावविरोधिसामान्यरहितः समवेतः । समवायस्तु समवायरहितः सम्बन्ध इति षण्णां लक्षणानि व्यवस्थितानि ॥ ६ ॥

द्रव्य, गुण, कर्मका लक्षण द्रव्यत्वादि जातिमत्त्व है आकाशमें समवेत हो अरविंदमें समवेत हों नित्य हो और गन्धमें आवृत्ति हो वही द्रव्यत्व है समवायिकारण असमवायि कारणसे भिन्न जो ज्ञानेच्छादि उसमें समवेत सत्ताका साक्षात् व्याप्य जातिमत्त्व गुणत्वका लक्षण है । कर्मत्वका लक्षण नित्य समवेतत्वसहित सत्ताका साक्षात् व्याप्यजातित्व है । सामान्यका लक्षण ध्वंसके अप्रतियोगी अनेक वस्तुओंमें समवाय सम्बन्धसे वर्तमान है । अन्योन्याभावविरोधी सामान्यसे शून्य समवेत विशेष पदार्थ है समवायरहित सम्बन्धविशेष समवाय है ॥ ६ ॥

द्रव्यं नवविधम्-पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसीति। तत्र पृथिव्यादिचतुष्टयस्य पृथिवीत्वादिजातिर्लक्षणम् । पृथिवीत्वं नाम पाकजरूपसामानाधिकरण्यद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिः । अप्त्वं नाम सरित्सागरसमवेतत्वे सति सलिलसमवत सामान्यम् । तेजस्त्वं नाम चन्द्रचामीकरसमवेतत्वे सति ज्वलनसमवेतं सामान्यम् । वायुत्वं नाम त्वगिन्द्रियसमवेतद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिः । आकाशकालदिशामेकत्वादपरजात्यभावे पारिभाषिक्यस्तिस्रः सज्ञा भवन्ति, आकाशः कालो दिगिति । संयोगाजन्यजन्यविशेषगुणसमानाधिकरणविशेषाधिकरणमाकाशम् । विभुत्वे सति दिगसमवेतपरत्वासमवायिकारणाधिकरणः कालः । अकालत्वे सत्यविशेषगुणा महती दिक् । आत्ममनसोरात्मत्वमनस्त्वे । आत्मत्वं नाम अमूर्त्तसमवेतद्रव्यत्वापरजातिः । मनस्त्वं नाम द्रव्यसमवायिकारणत्वरहिताणुसमवेतद्रव्यत्वापरजातिः ॥ ७ ॥

पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा, और मन यह नौ द्रव्य हैं। पृथिवीत्वजातिमत्त्व पृथिवीका लक्षण और जलत्वजातिमत्त्व जलका, तेजस्त्व जातिमत्त्व तेजका, वायुत्वजातिमत्त्व वायुका लक्षण है । पाकजरूप अर्थात् विजातीय तेजके संयोगसे जायमान रूप जिसमें हो उसमें रहनेवाली द्रव्यत्वकी साक्षात् व्याप्यजातित्व पृथिवीत्व है साक्षात् व्याप्य उसको कहते हैं जो स्वव्याप्यका व्याप्य न हो यथा घटत्व द्रव्यत्वका साक्षात् व्याप्य नहीं है कारण द्रव्यत्वका व्याप्य पृथिवीत्व-का व्याप्य होगया पृथिवीत्वादि साक्षाद्व्याप्य है जलमें समवेत और जलसे भिन्नमें असमवेतसामान्य जलत्व है । चन्द्रमरकतादिसमवेतत्वविशिष्ट वह्निसमवेतसामान्य तेजस्त्व जाति है। त्वगिन्द्रियमें समवेतद्रव्यत्व साक्षात् व्याप्यजाति वायुत्व है आकाश काल दिक् एक एक व्यक्ति होनेसे एक मात्र व्यक्तिसमवेतमें जातित्व न होनेके कारण द्रव्यत्व छोडकर उसमें अन्यजाति नहीं रहती है संयोगसे अजन्यविशेष गुण (शब्द) का आश्रय आकाश है । विभुत्वसमानाधिकरणपरत्वका असमवायिकारण संयोगका अधिकरण काल है । कालभिन्नत्व समानाधिकरणविशेष गुण शून्यत्वविशिष्ट विभुत्ववान् दिक् है। आत्मा और मनका आत्मत्व जातिमत्त्व और मनस्त्वजा-

तिमत्त्व लक्षण है । मूर्तिभिन्न द्रव्यसमवेत जाति आत्मत्व है । मनस्त्व द्रव्यसमवायिकारणत्वसे भिन्न अणुसमवेतद्रव्यत्व व्याप्य जाति है ॥ ७ ॥

रूपरसगन्धस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वबुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्च कण्ठोक्ताः सप्तदश चशब्दसमुच्चिताः गुरुत्वद्रव्यत्वस्नेहसंस्काराद्दष्टशब्दाः सप्तैवेत्येवं चतुर्विंशतिर्गुणाः । तत्र रूपादिशब्दान्तानां रूपत्वादिजातिर्लक्षणम् । रूपत्वं नाम नीलसमवेतगुणत्वापरजातिः । अनया दिशा शिष्टानां लक्षणानि द्रष्टव्यानि ॥ कर्म पञ्चविधम्—उत्क्षेपणाकुञ्चनप्रसारणगमनभेदात् । भ्रमणरेचनादीनां गमन एवान्तर्भावः । उत्क्षेपणादीनामुत्क्षेपणत्वादिजातिर्लक्षणम् । तत्र उत्क्षेपणत्वं नाम ऊर्द्ध्वदेशसंयोगासमवायिकारणप्रमेयसमवेतकर्मत्वांपरजातिः । एवमवक्षेपणादीनां लक्षणं कर्त्तव्यम् ॥ ८ ॥

रूपादि १७ गुण सूत्रमें कण्ठतः पठित हैं सूत्रस्थ चशब्दसे गुरुत्वादि सात गुणका संग्रह है सब मिलकर २४ गुण हैं । पूर्वोक्त प्रकार रूपत्वादि जातिमत्त्व इनका लक्षण है। नीलवर्णमें समवायसम्बन्धसे विद्यमान गुणत्व साक्षात् व्याप्यजाति है इस प्रकार अन्यकाभी लक्षण समझलेना। उत्क्षेपणादि भेदोंसे कर्म पांच प्रकार हैं भ्रमण, रेचन, स्यन्दन, ऊर्ध्वज्वलन और तिर्यग्गमन, यह पाँचों गमनहीमें अन्तर्भूत हैं उत्क्षेपणत्व उर्ध्वदेश संयोगका असमवायिकारण वस्तुसमवेत कर्मत्व व्याप्यजाति है इसी प्रकार अपक्षेपणादिकाभी लक्षण है ॥ ८ ॥

सामान्यं द्विविधं परमपरञ्च । परं सत्ता द्रव्यगुणसमवेता गुणकर्मसमवेता वा, अपरं द्रव्यत्वादि तल्लक्षणं प्रागेवोक्तम् । विशेषाणामनन्तत्वात् समवायस्य चैकत्वाद्विभागो न सम्भवति । तल्लक्षणञ्च प्रागेवावादि ॥ ९ ॥

परत्व अपरत्व भेदसे सामान्य दो प्रकार है । द्रव्य गुण कर्मसमवेत सत्ता जाति पर सामान्य अपर पूर्वोक्त द्रव्यत्वादि है विशेषण असंख्य और समवाय एक होनेसे उसका विभाग असम्भव है ॥ ९ ॥

"द्वित्वे च पाकजोत्पत्तौ विभागे च विभागजे । यस्य न स्खलिता बुद्धिस्तं वै वैशेषिकं विदुः ॥ " इति आभाणकस्य

सद्भावात् द्वित्वाद्युत्पत्तिप्रकारः प्रदर्श्यते । तत्र प्रथममिन्द्रियार्थसन्निकर्षस्तस्मादेकत्वसामान्यज्ञानं, ततोऽपेक्षाबुद्धिः, ततो द्वित्वोत्पत्तिस्ततो द्वित्वसामान्यज्ञानं तस्माद्द्वित्वगुणज्ञानं ततः संस्कारः ॥ १० ॥

द्वित्वसंख्याकी किस प्रकार उत्पत्ति है. पाकजरूपादिकी उत्पत्ति एव विभाग विभागज विभाग कैसे होते हैं, इत्यादि जाननेमें जिसकी बुद्धि कुण्ठित न हो उसको वैशेषिक कहते हैं इत्यादि लोकोक्ति है । अतः द्वित्वादिकी उत्पत्तिका क्रम कहते हैं प्रथम इन्द्रियका अर्थके साथ सम्बन्ध अनन्तर एकत्वज्ञान (अयमेकः अयमपि एक इति) अनन्तर अपेक्षाबुद्धि (एतदेकत्वविशिष्टोऽयमेकः) अनन्तर द्वित्वकी उत्पत्ति (इमौ द्वौ) अनन्तर द्वित्वत्वसामान्य ज्ञान पश्चात् द्वित्वगुणज्ञान और तदनन्तर संस्कार कहा है ॥ १० ॥

तदाह–"आदाविन्द्रियसन्निकर्षघटनादेकत्वसामान्यधीरेकत्वोभयगोचरा मतिरतोद्वित्वं ततो जायते । द्वित्वत्वप्रमितिस्ततोऽनुपरतो द्वित्वप्रमानन्तरं द्वे द्रव्ये इति धीरियं निगदिता द्वित्वोदयप्रक्रिया ॥" इति ॥ ११ ॥

प्रथम इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष होनेसे एकत्वसामान्यका ज्ञान होता है अनन्तर एकत्व दोनोंमें है ऐसा ज्ञान होता है अनन्तर द्वित्वकी उत्पत्ति तदुत्तर द्वित्वत्वका ज्ञान अनन्तर द्वित्वगुणज्ञान तदुत्तर दो द्रव्य हैं ऐसी बुद्धि होती है यही दित्वोत्पत्तिप्रक्रिया है ॥ ११ ॥

द्वित्वादेरपेक्षाबुद्धिजन्यत्वे किं प्रमाणम् । अत्राहुराचार्य्याः–अपेक्षाबुद्धिर्द्वित्वादेरुत्पादिका भवितुमर्हति व्यञ्जकत्वानुपपत्तेः । तेनानुविधीयमानत्वात् शब्दं प्रति संयोगवदिति ॥ वयं तु ब्रूमः द्वित्वादिकमेकत्वद्वयविषयानित्यबुद्धिव्यङ्ग्यं न भवति अनेकाश्रितगुणत्वात् पृथक्त्वादिवदिति ॥ १२ ॥

द्वित्वादिकी अपेक्षा बुद्धिजन्यत्वमें युक्तिभी उदयनाचार्यने कही है–कारण उत्पादक व्यञ्जक भेदसे दो प्रकार हैं । द्वित्वादिके प्रति अपेक्षा बुद्धि व्यञ्जक नहीं हो सकती अतः उत्पादिका है यथा दण्डभेर्यादि संयोगानन्तर उत्पन्नशब्दके प्रति

संयोगकारण है एवम् अपेक्षा बुद्धिके अनन्तर उत्पन्न द्वित्वके उक्त प्रति अपेक्षाबुद्धि उत्पादिका है मैं कहता हूं द्वित्वादि एकत्वद्वय (एक एक) विषय अनित्यबुद्धि व्यङ्ग नहीं हो सकती क्योंकि पृथक्त्वादिवत् अनेकमें रहनेवालागुण है ॥ १२ ॥

निवृत्तिक्रमो निरूप्यते । अपेक्षाबुद्धित एकत्वसामान्यज्ञानस्य द्वित्वोत्पत्तिसमकालं निवृत्तिः, अपेक्षाबुद्धेर्द्वित्वसामान्यज्ञानात् द्वित्वगुणबुद्धिसमसमयं, द्वित्वस्यापेक्षाबुद्धिनिवृत्तेर्द्रव्यबुद्धिसमकालं, गुणबुद्धेः, द्रव्यबुद्धितः संस्कारोत्पत्तिसमकालं द्रव्यबुद्धेस्तदनन्तरं संस्कारादिति ॥ १३ ॥

निवृत्तिक्रम कहते हैं–अपेक्षाबुद्धिसे द्वित्वोत्पत्तिकालमें एकत्वसामान्यज्ञानकी निवृत्ति होती है । द्वित्वत्वसामान्यज्ञानके अनन्तर द्वित्वगुणसमकालमें द्वित्वोत्पादक अपेक्षाबुद्धिकी निवृत्ति होती है अपेक्षाबुद्धिनाशके अनन्तर द्रव्यगुण समकालमें द्वित्वकी निवृत्ति है द्रव्यबुद्धिसे संस्कारोत्पत्तिकालमें गुणबुद्धिकी निवृत्ति होती है अनन्तर संस्कारसे द्रव्यबुद्धिकी निवृत्ति होती है ॥ १३ ॥

तथा च संग्रहश्लोकाः । "आदावपेक्षाबुद्ध्या हि नश्येदेकत्वजातिधीः । द्वित्वोदयसमं पश्चात् सा च तज्जातिबुद्धितः ॥ द्वित्वाख्यगुणधीकाले ततो द्वित्वं निवर्त्तते । अपेक्षाबुद्धिनाशेन द्रव्यधीजन्मकालतः ॥ गुणबुद्धिर्द्रव्यबुद्ध्या संस्कारोत्पत्तिकालतः ॥ द्रव्यबुद्धिश्च संस्कारादिति नाशक्रमो मतः ॥ "इति ॥ बुद्धेर्बुद्ध्यन्तरविनाश्यत्वे संस्कारविनाश्यत्वे च प्रमाणं विवादाध्यासितानि ज्ञानानि उत्तरोत्तरकार्यविनाश्यानि क्षणिकविभुविशेषगुणत्वात् शब्दवत् । द्रव्यारम्भकसंयोगप्रतिद्वन्द्विविभागजनककर्मसमकालमेकत्वसामान्यचिन्तया आश्रयनिवृत्तेरेव द्वित्वनिवृत्तिः कर्मसमकालमपेक्षाबुद्धिचिन्तनादुभाभ्यामिति संक्षेपः । अपेक्षाबुद्धिर्नाम विनाशकविनाशप्रतियोगिनी बुद्धिरीति बोद्धव्यम् ॥ १४ ॥

इसीका संग्रह श्लोकोंमें किया है प्रथम अपेक्षाबुद्धिसे द्वित्वोत्पत्तिसमकालमें एकत्व बुद्धिका नाश होता है इत्यादि सब पूर्वोक्तही अर्थ है पूर्वपूर्व ज्ञानके उत्तरोत्तर ज्ञान

और संस्कारसे विनाशमें प्रमाण यह है कि शब्दवत् व्यापकद्रव्यका क्षणिकविशेष गुण होनेसे विवादग्रस्त ज्ञान स्वोत्तर उत्पद्यमान कार्य (गुण) से नष्ट होता है इत्यादि अनुमान है द्रव्यके आरम्भक संयोगके विरोधी विभागोत्पादक कर्म्मके समकालमें एकत्वज्ञानसे आश्रयकी निवृत्ति होती है कर्म समकालमें अपेक्षाबुद्धि-संस्कारसे अपेक्षाबुद्धि और आश्रयबुद्धि दोनोंकी निवृत्ति होती है। विनाशककी विनाशक बुद्धि अपेक्षाबुद्धि है। मुक्तावलीमें अनेक एकत्व (अयमेक अयमेक इत्यादि) बुद्धिको अपेक्षाबुद्धि मानी है ॥ १४ ॥

अथ द्व्यणुकनाशमारभ्य कतिभिः क्षणैः पुनरन्यद्द्व्यणुकमुत्पद्य रूपादिमद्भवतीति जिज्ञासायामुत्पत्तिप्रकारः कथ्यते। नोदनादिक्रमेण द्व्यणुकनाशः, नष्टे द्व्यणुके परमाणावग्निसंयोगात् श्यामादीनां निवृत्तिः, निवृत्तेषु श्यामादिषु पुनरन्यस्मादग्निसंयोगाद्रक्तादीनामुत्पत्तिः उत्पन्नेषु रक्तादिषु अदृष्टवदात्मसंयोगात् परमाणौ द्रव्यारम्भणाय क्रिया, तया पूर्वदेशाद्विभागः, विभागेन पूर्वदेशसंयोगनिवृत्तिः, तस्मिन्निवृत्ते परमाण्वन्तरेण संयोगोत्पत्तिः, संयुक्ताभ्यां परमाणुभ्यां द्व्यणुकारम्भः, आरब्धे द्व्यणुके कारणगुणादिभ्यः कार्यगुणादीनां रूपादीनामुत्पत्तिरिति यथाक्रमं नव क्षणाः। दशक्षणादिप्रकारान्तरं विस्तरभयान्नेह प्रतन्यते। इत्थं पीलुपाकप्रक्रिया। पीठपाकप्रक्रिया तु नैयायिकधीसम्मता ॥ १५ ॥

अब द्व्यणुकनाशसे लेकर कितने क्षणमें द्व्यणुकान्तर उत्पन्न होकर रूपवान् होता है इस जिज्ञासाशान्तिके लिये उत्पत्तिक्रम कहते हैं–अग्निसंयोगानन्तर क्रिया पूर्वसंयोगनाशक्रमसे द्व्यणुकका नाश होता है १ द्व्यणुक नाश होनेपर अग्निसंयोग वश श्यामरूपकी निवृत्ति होती है २ श्यामतानिवृत्तिके अनन्तर पुनः अग्निसंयोगसे रक्तादिरूपोंकी उत्पत्ति होती है ३ रक्तोत्पत्तिके अनन्तर अदृष्टवान् (पुण्यपापयुक्त) आत्म संयोगसे परमाणुमें द्रव्यारम्भक क्रिया होती है ४ उसी क्रियासे पूर्वदेशसे विभाग होता है ५ विभागोत्तर पूर्वसंयोगका नाश होता है ६ अनन्तर परमाण्वन्तरसे संयोग होता है ७ संयुक्तपरमाणुद्वयसे द्व्यणुकका आरम्भ होता है ८ द्व्यणुकोत्पत्तिके अनन्तरकारण (परमाणु) गुणसे कार्यगुणकी उत्पत्ति होती है ९ एवं नव क्षण होते हैं

दशक्षण एकादशक्षणादि क्रम मुक्तावल्यादिग्रन्थोंमें स्पष्ट हैं यही पीलुपाक (परमाणुपाक) वादियोंकी प्रक्रिया है। इनके मतमें परमाणुसेही रूपनाशपूर्वक रूपान्तरोत्पत्ति होती है पिठर (द्व्यणुकादि अवयवी) पाकवादियोंकी प्रक्रिया नैयायिकोंके सम्मत है ॥ १५ ॥

विभागजविभागो द्विविधः । कारणमात्रविभागजः कारणाकारणविभागजश्च । तत्र प्रथमः कथ्यते । कार्यव्याप्ते कारणे कर्मोत्पन्नं यदावयवान्तराद्विभागं विधत्ते न तदाकाशादिदेशाद्विभागः ।यदात्वाकाशादिदेशाद्विभागः न तदावयवान्तरादिति स्थितिनियमः कर्मणो गगनविभागाकर्तृत्वस्य द्रव्यारम्भकसंयोगविरोधिविभागारम्भकत्वेन धूमस्य धूमध्वजवर्गेणैव व्यभिचारानुपलम्भात् ततश्चावयवकर्म अवयवान्तरादेव विभागं करोति नाकाशादिदेशात् तस्माद्विभागाद्द्रव्यारम्भकसंयोगनिवृत्तिः। ततः कारणाभावात् कार्य्याभाव इति न्यायादवयविनिवृत्तिः, निवृत्तेऽवयविनि तत्कारणयोरवयवयोर्वर्त्तमानो विभागः कार्य्यविनाशविशिष्टं कालं स्वतन्त्रं वावयवमपेक्ष्य सक्रियस्यैवावयवस्य कार्य्यसंयुक्तादाकाशदेशाद्विभागमारभते न निष्क्रियस्य कारणाभावात् ॥ १६ ॥

कारणमात्र विभागज और कारणाकारणविभागज भेदसे विभागज विभाग दो प्रकार है उसमें प्रथम इस भाँति है कि कार्यसे व्याप्त कारणमें उत्पन्न कर्म्म जिस समय अवयवसे विभाग उत्पन्न करता है उस समय आकाशदेशसे विभाग नहीं होता जब आकाशदेशसे विभाग होगा तब अवयवान्तरसे न होगा ऐसा स्थितिका नियम है जिस प्रकार धूमका वह्निके साथ व्यभिचार नहीं होता है अर्थात् वह्निके अभावस्थलमें नहीं रहता है तिसी प्रकार द्रव्यका आरम्भक संयोगविरोधी विभाग आरम्भक होनेसे गगनादि विभाग कर्तृत्व कर्मका नहीं रहता है । इसलिये अवयवका कर्म अवयवान्तरसे विभागोत्पादन करता है आकाशदेशसे नहीं करता अतः विभागसे द्रव्यके आरम्भकसंयोगकी निवृत्ति होती है अनन्तर कारण न होनेसे कार्यभी नहीं होता है इस न्यायसे अवयवी (कार्य) की निवृत्ति होती है अवयवकी

निवृत्ति होनेसे उसके कारण अवयव द्वयमें वर्तमान विभाग कार्य विनाशसहकृत कालकी अथवा स्वतन्त्र अवयवकी अपेक्षा कर क्रियायुक्त अवयवको कार्यसंयुक्त आकाश देशसे विभाग उत्पन्न करता है निष्क्रियका कारणत्व नहीं है ॥ १६ ॥

द्वितीयस्तु हस्ते कर्मोत्पन्नमवयवान्तराद्विभागं कुर्वत् आकाशादिदेशेभ्यो विभागानारभते । ते कारणाकारणविभागाः कर्म यां दिशं प्रति कार्य्यारम्भाभिमुखं तामपेक्ष्य कार्य्याकार्य्यविभागमारभते यथा हस्ताकाशविभागाच्छरीराकाशविभागः । न चासौ शरीरक्रियाकार्य्यस्तदा तस्य निष्क्रियत्वात् नापि हस्तक्रियाकार्य्यः व्यधिकरणस्य कर्मणो विभागकर्तृत्वानुपपत्तेः । अतः पारिशेष्यात् कारणाकारणविभागस्य कारणत्वमङ्गीकरणीयम् ॥ १७ ॥

कारणाकारणविभागज हस्तमें उत्पन्न कर्म अवयवान्तरसे विभाग करते हुए आकाशदेशसेभी विभाग करता है वे विभाग कारणाकारणविभाग है । जिस देशके प्रति कार्योन्मुख कर्म हो उसी देशकी अपेक्षा कार्याकार्यविभागारम्भ होता है । जैसे हाथ और वे आकाशके विभागसे शरीर आकाशका विभाग होता है यह विभाग शरीरक्रियाजन्य नहीं है क्योंकि उस कालमें शरीर निष्क्रिय है न तो हस्तक्रियाजन्य है भिन्न अधिकरणवृत्तिकर्म्म अन्यका विभागजनक नहीं हो सकता अतः परिशेषात् कारणाकारणविभागकोभी अवश्य कारण मानना चाहिये ॥ १७ ॥

यद्वादि अन्धकारादौ भावत्वं निषिध्यत इति तदसङ्गतं तत्र चतुर्द्धा विवादसम्भवात्। तथाहि द्रव्यं तम इति भट्टाः वेदान्तिनश्च भणन्ति। आरोपितं नीलरूपमिति श्रीधराचार्याः, आलोकज्ञानाभाव इति प्रभाकरैकदेशिनः, आलोकाभाव इति नैयायिकादयः इति चेत्तत्र द्रव्यत्वपक्षो न घटते विकल्पानुपपत्तेः। द्रव्यं भवदन्धकारं द्रव्याद्यन्यतममन्यद्वा। नाद्यः यत्रान्तर्भावोऽस्य तस्य यावन्तो गुणास्तावद्गुणकत्वप्रसङ्गात् । न च तमसो

द्रव्यबहिर्भाव इति साम्प्रतं निर्गुणस्य तस्य द्रव्यत्वासम्भवेन द्रव्यान्तरत्वस्य सुतरामसम्भवात् ॥ १८ ॥

पहिले जो कहा कि अन्धकारमें भावत्वका निषेध करते हैं सो असङ्गत है क्योंकि उसमें चार प्रकारके विवाद हो सकते हैं (तथाहि) मीमांसकमतावलम्बी भट्ट और वेदान्ती लोग तमको द्रव्य कहते हैं। श्रीधराचार्य नीलरूपको आरोपित कहते हैं। आलोकज्ञानाभाव तम है ऐसे प्रभाकरके अनुयायी कहते हैं। नैयायिक लोग आलोकाभावको तम कहते हैं। द्रव्यपक्ष असङ्गत है क्योंकि द्रव्य मानो तो प्रसिद्ध षड्द्रव्यके अन्तर्गत मानोगे, किंवा उससे अतिरिक्त मानोगे ? अन्तर्गत मानो तो जिसमें अन्तर्भाव हो उसके सब गुण होने चाहिये परन्तु वे गुण उसमें नहीं है । अतिरिक्तभी नहीं मान सकते जब निर्गुण उक्त द्रव्य नहीं तो अतिरिक्तत्व कैसे होगा ॥ १८ ॥

ननु तमालश्यामलत्वेनोपलभ्यमानं तमः कथं निर्गुणं स्यादिति नीलं नभः इतिवत् भ्रान्तिरेवेत्यलं वृद्धवीवधया । अतएव नारोपितरूपं तमः अधिष्ठानप्रत्ययमन्तरेणारोपायोगात् बाह्यालोकसहकारिरहितस्य चक्षुषो रूपारोपे सामर्थ्यानुपलम्भाच्च । न चायमचाक्षुषः प्रत्ययः तदनुविधानस्यानन्यथासिद्धत्वात् । न च विधिप्रत्ययवेद्यत्वायोगो भावे इति साम्प्रतं प्रलयविनाशावधानादिषु व्यभिचारात् । अतएव नालोकज्ञानाभावः अभावस्य प्रतियोगिग्राहकेन्द्रियग्राह्यत्वनियमेन मानसत्वप्रसङ्गात् । तस्मादालोकाभाव एव तमः न चाभावे भावधर्माध्यारोपो दुरुपपादः । दुःखाभावे सुखत्वारोपस्य संयोगाभावे विभागत्वाभिमानस्य च दृष्टत्वात् ॥ १९ ॥

यदि कहो तमालके समान श्यामवर्ण उपलब्ध होनेसे निर्गुण कैसे है यहभी नहीं कह सकते अन्धकारमें नीलत्वकी प्रतीति केवल भ्रम है आरोपित नीलरूपभी नहीं कहसकते क्योंकि अधिकरणका प्रत्यक्षके विना आरोप असम्भव है । चाक्षुष प्रत्यक्षके लिये आलोक संयोगकी अपेक्षा रहती है अन्धकार प्रत्यक्ष आलोक शून्य चक्षुसे होता है अतः आलोकसहकारी निरपेक्ष चक्षुरूपके आरोपमें असमर्थ है ।

अन्धकारका प्रत्यक्ष चक्षुरिन्द्रियादिजन्यभी नहीं मान सकता चक्षुःसंयोगान्तर भावी होनेसे अनन्यथासिद्ध है । अस्ति इत्यादि विधिसत्ताप्रतीतिका अयोग्य भाव अंधकार है ऐसा कहनाभी असंगत है प्रलयविनाशादिमेंभी अतिप्रसक्ति हो जायगी आलोक ज्ञानाभावपक्षभी अयुक्त है जिस इन्द्रियसे जिस वस्तुका ग्रहण होता है उसी इन्द्रियसे उसके अभावकाभी ग्रहण होता है ऐसा नियम है अतः ज्ञानको मानसप्रत्यक्ष होनेसे तदभावरूप अन्धकारकोभी मानसत्व प्रसङ्ग होगा–अतः तमः आलोकाभावही है । यदि अभावरूप होगा तो अभावमें नीलत्वादि भावधर्मका आरोप असम्भव होगा यहभी नहीं कह सकते जिस प्रकार भारादिके उतार देनेसे दुःखाभावमें मैं सुखी हूं इत्यादि सुखत्वका और संयोगके अभावमें विभागका अभिमान होता है उसी प्रकार अभावरूप अन्धकारमेंभी भावधर्मके आरोपमें बाधक नहीं है ॥ १९ ॥

न चालोकाभावस्य घटाद्यभाववद्रूपवदभावत्वेनालोकसापेक्षचक्षुर्जन्यज्ञानविषयत्वं स्यादित्येषितव्यं यद्ग्रहे यदपेक्षं चक्षुस्तदभावग्रहेऽपि तदपेक्षत इति न्यायेनालोकग्रहे आलोकापेक्षाया अभावेन तदभावग्रहेऽपि तदपेक्षाया अभावात् । न चाधिकरणग्रहणावश्यम्भावः अभावप्रतीतावधिकरणग्रहणावश्यम्भावानङ्गीकारादपरथा निवृत्तः कोलाहल इति शब्दप्रध्वंसप्रत्यक्षो न स्यादिति अप्रामाणिकं तव वचनम् । परं तत्सर्वमभिसन्धाय भगवान् कणादः प्रणिनाय सूत्रं 'द्रव्यगुणकर्मनिष्पत्तिवैधर्म्यादभावस्तमः' इति प्रत्ययवेद्यत्वेनापि निरूपितम् ॥ २० ॥

आलोकका अभाव तम है तो जिस प्रकार घटादि रूपवान्के प्रत्यक्षमें आलोककी अपेक्षा है उसी प्रकार आलोकाभावप्रत्यक्षमेंभी आलोककी अपेक्षा होनी चाहिये यहभी नहीं कह सकते क्योंकि जिस वस्तुके ग्रहणमें जो अपेक्षित हो उसके अभावमेंभी उसकी अपेक्षा होती है ऐसा नियम है आलोकके प्रत्यक्षमें आलोकान्तरकी अपेक्षा न होनेसे आलोकाभावके प्रत्यक्षमेंभी आलोककी अपेक्षा नहीं होगी अभावप्रत्यक्षमें अधिकरणप्रत्यक्षकीभी आवश्यकता नहीं है अतएव कोलाहल नष्ट होगया इत्यादि स्थलमें शब्दध्वंसका प्रत्यक्ष होता है अन्यथा यह अप्रामाणिक होजायगा । इसी अभिप्रायसे भगवान् कणादमुनिनेभी द्रव्यादिके धर्मसे विलक्षण होनेके कारण तमको अभाव माना है ॥ २० ॥

अभावस्तु निषेधमुखप्रमाणगम्यः सप्तमो निरूप्यते । स चास-मवायवत्त्वे सत्यसमवायः संक्षेपतो द्विविधः संसर्गाभावान्योन्या-भावभेदात् । संसर्गाभावोऽपि त्रिविधः प्राक्प्रध्वंसात्यन्ता-भावभेदात् । तत्रानित्यो अनादितमः प्रागभावः उत्पत्तिमान् । अविनाशी प्रध्वंसः प्रतियोग्याश्रयोऽभावोत्यन्ताभावः अत्य-न्ताभावव्यतिरिक्तत्वे सत्यनवधिरभावोऽन्योन्याभावः ॥ २१ ॥

अभाव निषेध प्रमाण बोध्य है समवाय और समवायवान् दोनोंसे भिन्न अभाव है वह संक्षेपतः संसर्गाभाव अन्योन्याभाव भेदसे दो प्रकार है । प्रागभाव प्रध्वंसाभाव अत्यन्ताभाव भेदसे प्रथम तीन प्रकार है अनित्य तथा विनाशी प्रागभाव, उत्पत्ति-मान्, अविनाशी प्रध्वंसाभाव प्रतियोगीकी अपेक्षासहकृत अभाव अत्यन्ताभाव है अत्यन्ताभावसे भिन्न अनवधि अभाव अन्योन्याभाव है ॥ २१ ॥

नन्वन्योन्याभाव एवात्यंताभाव इति चेत् अहो राजमार्ग एव भ्रमः । अन्योन्याभावो हि तादात्म्यप्रतियोगिकः प्रतिषेधः यथा घटः पटात्मा न भवतीति संसर्गप्रतियोगिकः प्रतिषेधोऽ त्यन्ताभावः यथा वायौ रूपसम्बन्धो नास्तीति । न चास्य पुरुषार्थौपयिकत्वं नास्तीत्याशङ्कनीयं दुःखात्यन्तोच्छेदापरप-र्यायनिःश्रेयसरूपत्वेन परमपुरुषार्थत्वात् ॥ २२ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहे औलुक्यदर्शनं समाप्तम् ॥ १० ॥

शंका-अन्योन्याभावहीको अत्यन्ताभाव क्यों नहीं माना जाय ? उत्तर-यह स्फुरत् प्रकाश विस्तृत राजमार्गमेंभी भ्रमके समान है ? अन्योन्याभाव तादात्म्यसम्बन्ध प्रतियोगिक अभाव है यथा घट पट नहीं यहां पर तादात्म्यसे पटमें घट नहीं अर्थात् पटत्वरूपसे पटमें घट नहीं संसर्ग (सम्बन्ध) प्रतियोगिक निषेध अत्यन्ताभाव है यथा वायुमें रूप नहीं अर्थात् वायु रूपसम्बन्धी नहीं है वैशेषिकशास्त्रको मोक्षानुप-योगीभी नहीं कह सकते दुःखके अत्यन्तनिवृत्तिरूप मोक्षका प्रयोजक है यह शास्त्र है ॥ २२ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहमें वैशेषिकदर्शन समाप्त ।

अथाक्षपाददर्शनम् ॥ ११ ॥

तत्त्वज्ञानाद्दुःखात्यन्तोच्छेदलक्षणं निःश्रेयसं भवतीति समानतन्त्रेऽपि प्रतिपादितम् तदाह सूत्रकारः 'प्रमाणप्रमेयेत्यादितत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः' इति। इदं न्यायशास्त्रस्यादिमं सूत्रं न्यायशास्त्रञ्च पञ्चाध्यायात्मकम्, तत्र प्रत्यध्यायस्याह्निकद्वयम् । तत्र प्रथामाध्यायस्य प्रथमाह्निके भगवता गौतमेन प्रमाणादिपदार्थनवकलक्षणनिरूपणं विधाय द्वितीये वादादिसप्तपदार्थलक्षणनिरूपणं कृतम् । द्वितीयस्य प्रथमे संशयपरीक्षणं प्रमाणचतुष्टयाप्रामाण्यशङ्कानिराकरणञ्च, द्वितीये अर्थापत्त्यादेरन्तर्भावनिरूपणम् । तृतीयस्य प्रथमे आत्मशरीरेन्द्रियार्थपरीक्षणं द्वितीये बुद्धिमनःपरीक्षणम् । चतुर्थस्य प्रथमे प्रवृत्तिदोषप्रेत्यभावफलदुःखापवर्गपरीक्षणम्, द्वितीये दोषनिमित्तकत्वानिरूपणम् अवयव्यादिनिरूपणञ्च । पञ्चमस्य प्रथमे जातिभेदनिरूपणम् द्वितीये निग्रहस्थानभेदनिरूपणम् ॥ १ ॥

तत्वज्ञानसे दुःखकी अत्यन्तनिवृत्तिरूप निश्रेयस होता है यह समानतन्त्र (नैयायिकसिद्धान्तमें) भी प्रतिपादित है। सूत्रकारनेभी प्रमाणादि तत्त्वज्ञानसे निश्रेयसकी प्राप्ति कही है यह न्यायशास्त्रका प्रथम सूत्र है । न्यायशास्त्र पञ्च अध्यायात्मक है प्रत्येकाध्यायोंमें दो दो आह्निक हैं । प्रथमाध्यायके प्रथमाह्निकमें प्रमाणादि नौ पदार्थोंका लक्षण निरूपण करके द्वितीयाह्निकमें वादछलादि सात पदार्थोंका लक्षणका निरूपण किया॰ द्वितीयाध्यायका प्रथमाह्निकमें संशयपरीक्षा और प्रमाणचतुष्टयका अप्रामाण्यकी शंकाका निराकरण है। द्वितीयमें अर्थापत्त्यादिप्रमाणान्तरका उक्त प्रमाणमें अन्तर्भाव वर्णन है । तृतीध्यायके प्रथमाह्निकमें आत्मा इन्द्रिय और शरीरका विचार है द्वितीय आह्निकमें बुद्धि और मनका विचार चतुर्थके प्रथमाह्निकमें प्रवृत्तिदोष पुनर्जन्म फल, दुःख और अपवर्गका परीक्षण है । च॰द्वि॰ दोषके निमित्त निरूपण और अवयवीकी निरूपण है । पञ्चमके प्र॰ जातिभेदनिरूपण है । प॰द्वि॰ आ॰ निग्रहस्थानका निरूपण है ॥ १ ॥

मानाधीना मेयसिद्धिरिति न्यायेन प्रमाणस्य प्रथममुद्देशे तद-नुसारेण लक्षणस्य कथनीयतया प्रथमोद्दिष्टस्य प्रमाणस्य प्रथमं लक्षणं कथ्यते ॥ साधनाश्रयाव्यतिरिक्तत्वे सति प्रमाव्याप्तं प्रमाणम् । एवञ्च प्रतितन्त्रसिद्धान्तमिह परमेश्वरप्रामाण्यं संगृहीतं भवति । यदकथयत् सूत्रकारः ' मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात् ' इति ॥ तथाच न्यायपारावारपारदृश्वा विश्वविख्यातकीर्तिरुदयनाचार्योऽपि कुसुमाञ्जलौ चतुर्थस्तबके-" मितिः सम्यक्परिच्छित्तिस्तद्वत्ता च प्रमातृता । तदयोगव्यवच्छेदः प्रामाण्यं गौतमे मते ॥ " इति ॥ " साक्षात्कारिणि नित्ययोगिनि परद्वारानपेक्षस्थितौ भूतार्थानुभवे निविष्टनिखिलप्रस्ताविवस्तुक्रमः । लेशादृष्टिनिमित्तदुष्टिविगमप्रभ्रष्टशङ्कातुषः शङ्कोन्मेषकलङ्किभिः किमपरैस्तन्मे प्रमाणं शिवः ॥" इति ॥ २ ॥

प्रमाणके आधीन प्रमेयकी सिद्धि होनेसे उद्देशमें प्रथम प्रमाणका उपादान किया है अतः उद्देशके अनुगुण लक्षणका कथन उचित होनेके कारण प्रथम प्रमाणका लक्षण कहते हैं (साधनाश्रय इत्यादि) प्रमाणस्य प्रथमं लक्षणं कथ्यते इति प्रमाणका साधन और प्रमाके आश्रय इन दोनोंसे अभिन्न होकर जो प्रमासे नित्य सम्बद्ध हो वह प्रमाण है ईश्वरभी प्रमासे नित्य सम्बद्ध होनेके कारण प्रमाण है जीव प्रमासे नित्य सम्बद्ध न होनेसे प्रमाण न हुआ एतादृश लक्षण करनेसे नैयायिकसिद्धान्तसिद्ध ईश्वर प्रामाण्यभी उपपन्न हो गया । जिस प्रकार मन्त्र आयुर्वेदादिक आप्तके उच्चरित होनेसे प्रमाण है तिसी प्रकार ईश्वर आप्ततम होनेसे स्वतः प्रमाण है उक्त प्रमाणलक्षणमें उदयनाचार्यकी सम्मति कहते हैं (तथाचेति) मिति सम्यक्ज्ञान है सम्यक् ज्ञानवत्त्व प्रमातृत्व है तादृश प्रमातृत्वका नित्य सम्बन्ध गौतमके मतमें प्रमाण है साक्षात्कारविषय नित्य सम्बद्ध इतरके निरपेक्ष सिद्ध वस्तुके अनुभवमें निविष्ट हैं समस्तकवस्तु जिसमें सर्वात्मना दर्शनसे नष्ट है शंकारूप कलंक जिनके एवंभूत शिवही प्रमाण है ॥ २ ॥

तच्चतुर्विधं प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दभेदात् । प्रमेयं द्वादशप्रकारम्, आत्मशरीरेन्द्रियार्थबुद्धिमनःप्रवृत्तिदोषप्रेत्यभावफल-

दुःखापवर्गभेदात् ॥ अनवधारणात्मकं ज्ञानं संशयः स त्रिविधः साधारणधर्मासाधारणधर्मविप्रतिपत्तिलक्षणभेदात् ॥ ३ ॥

प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्दभेदसे प्रमाण चार प्रकार है। प्रमेयभी आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दुःख और अपवर्ग भेदसे द्वादश प्रकार है आत्मा ज्ञानका आधिकरण है भोगका स्थान शरीर है ज्ञानका साधन मनके साथ संयुक्त और शब्दसे भिन्न अद्भुतविशेषगुणका आश्रय जो न हो वह इन्द्रिय है। समस्त व्यवहारोंकी असाधारण कारण बुद्धि है। प्रेत्यभाव पुनर्जन्म है, अनिश्चयात्मक ज्ञान सशय है, वह साधारणधर्म्म असाधारणधर्म्म, विप्रातिपत्तिलक्षण भेदसे तीन प्रकार है ॥ ३ ॥

यमधिकृत्य प्रवर्त्तन्ते पुरुषास्तत्प्रयोजनम्। तद्विविधं दृष्टादृष्टभेदात् ॥ व्याप्तिसंवेदनभूमिर्दृष्टान्तः । स द्विविधः साधर्म्यवैधर्म्यभेदात् ॥ ४ ॥

जिस उद्देशसे पुरुष प्रवृत्त हो वह प्रयोजन है वह दृष्ट और अदृष्ट भेदसे दो प्रकार है व्याप्तिज्ञानका स्थल दृष्टान्त है साधर्म्य (समानधर्म्म) विरुद्ध धर्म्मभेदसे वहभी दो प्रकार है ॥ ४ ॥

प्रामाणिकत्वेनाभ्युपगतोऽर्थः सिद्धान्तः। स चतुर्विधः सर्वतन्त्रप्रतितन्त्राधिकरणाभ्युपगमभेदात् ॥ परार्थानुमानवाक्यैकदेशोऽवयवः । स पञ्चविधः प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनभदात् ॥ व्याप्यारोपे व्यापकारोपस्तर्कः । स चैकादशविधः व्याघातात्माश्रयेतरेतराश्रयचक्रकाश्रयानवस्थाप्रतिबन्धिकल्पनालाघवकल्पनागौरवोत्सर्गापवादवैजात्यभेदात् ॥ ५ ॥

प्रामाणिक रूपसे अंगीकृत अर्थ सिद्धान्त है वह सर्वतन्त्र, प्रतितन्त्र, अधिकरण और अभ्युपगमभेदसे चार प्रकार है। परार्थानुमानवाक्यके एकदेश अवयव है यह प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन भेदसे पाँच प्रकार है । व्याप्यका आरोपसे व्यापकका आरोपरूपतर्क ११ प्रकार है–व्याघात, आत्माश्रय, इतरेतराश्रय, चक्रक, अनवस्था, प्रतिबन्दी, लाघवकल्पना, गौरव, उत्सर्ग, अपवाद और वैजात्य भेद है ॥ ५ ॥

यथार्थानुभवपर्याया प्रमितिर्निर्णयः । स चतुर्विधः साक्षात्कृत्यनुमित्युपमितिशाब्दभेदात् ॥ तत्त्वनिर्णयफलः कथाविशेषोवादः ॥ उभय साधनवती विजिगीषुकथा जल्पः ॥ स्वपक्षस्थापनाहीनः कथाविशेषो वितण्डा ॥ कथा नाम वादिप्रतिवादिनोः पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहः ॥ असाधको हेतुत्वेनाभिमतो हेत्वाभासः । स पञ्चविधः सव्यभिचारविरुद्धप्रकरणसमातीतकालभेदात ॥ ६ ॥

यथार्थानुभवके पर्याय प्रमा निर्णय है । वह प्रत्यक्ष अनुमान, उपमान, और शब्दभेदसे चार प्रकार है । तत्त्वनिर्णयके लिये जो विचार है वह वाद है । दोनों पक्ष समर्थन करनेवाले विजिगीषुओंके विचारनेका नाम जल्प है । स्वपक्षस्थापन शून्य परपक्षखण्डन रूप कथा वितण्डा है । वादी और प्रतिवादी दोनोंके परस्पर पक्ष प्रतिपक्ष स्वीकारके नाम कथा है । साध्यका असाध्यक हो हेतुके समान भासमान है वह हेत्वाभास है । वह सव्यभिचार, विरुद्ध, प्रकरण, सम और कालात्यय भेदसे पाँच प्रकार है ॥ ६ ॥

शब्दवृत्तिव्यत्ययेन प्रतिषेधहेतुश्छलम् । तत्रिविधमभिधानतात्पर्य्योपचारवृत्तिव्यत्ययभेदात॥स्वव्याघातकमुत्तरं जातिः सा चतुर्विंशतिविधा । साधर्म्यवैधर्म्योत्कर्षापकर्षवर्ण्यावर्ण्यविकल्पसाध्यप्राप्त्यप्राप्तिप्रसङ्गप्रतिदृष्टान्तानुत्पत्तिसंशयप्रकरणाहेत्वर्थापत्तिविशेषापत्त्युपलब्ध्यनुपलब्धिनित्यानित्यकार्य्यसमभेदात् ॥ ७ ॥

शब्द वृत्ति (शक्तिको) व्यत्यास करके प्रतिषेध हेतु छल है वह अभिधानवृत्तिव्यत्यय, तात्पर्यवृत्तिव्यत्यय और लक्षणावृत्तिव्यत्ययभेदसे तीन प्रकार है । स्वपक्षका विघातक उत्तर जाति है वह साधर्म्य १ वैधर्म्य २ उत्कर्ष ३ अपकर्ष ४ वर्ण्य ५ अवर्ण्य ६ विकल्प ७ साध्य ८ प्राप्ति ९ अप्राप्ति १० प्रसङ्ग ११ प्रति-

---

१ जैसे किसीके नूतन कम्बलके तात्पर्यसे 'नवकम्बलो देवदत्तः' ऐसा उच्चारण किया तहांपर नवशब्दके नूतन अर्थमें जो शक्ति है उसको हटाकर नौसंख्यामें वृत्ति मानकर 'कथं नवकम्बलो देवदत्तः एक एव कम्बलः' अर्थात् ९ कम्बल कहां है एकही कम्बल है ऐसा कहना सर्व शब्दके वृत्तिके व्यत्यासरूप कहा है ।

दृष्टान्त १२ अनुत्पात्ति १३ संशय १४ प्रकरण १५ अहेतु १६ अर्थापत्ति १७ विशेषापत्ति १८ उपलब्धि १९ अनुपलब्धि २० नित्य २१ अनित्य २२ कार्य २३ और सम २४ इन भेदोंसे २४ प्रकारके हैं ॥ ७ ॥

पराजयनिमित्तं निग्रहस्थानम् । तद्द्वाविंशतिप्रकारं प्रतिज्ञाहानिप्रतिज्ञान्तरप्रतिज्ञाविरोधप्रतिज्ञासन्न्यासहेत्वन्तरार्थान्तर-निरर्थकाविज्ञातार्थापार्थकाप्राप्तकालन्यूनाधिकपुनरुक्तानुभाषणाज्ञानाप्रतिभाविक्षेपमतानुज्ञापर्य्यनुयोज्योपक्षणनिरनुयोज्यानुयोगापसिद्धान्तहेत्वाभासभेदात् ॥ अत्र सर्वान्तर्गणिकस्तु विशेषस्तत्र शास्त्रे विस्पष्टोऽपि विस्तरभिया न प्रस्तूयते ॥ ८ ॥

पराजयनिमित्त वाक्य निग्रहस्थान है वह २२ प्रकारके हैं इनके अवान्तर भेद और लक्षणादि सब न्यायदर्शनादिमें स्पष्ट हैं ॥ ८ ॥

ननु प्रमाणादिपदार्थषोडशके प्रतिपाद्यमाने कथमिदं न्यायशास्त्रमिति व्यपदिश्यते । सत्यं, तथाप्यसाधारण्येन व्यपदेशा भवन्तीति न्यायेन न्यायस्य परार्थानुमानापरपर्यायस्य सकलविद्यानुग्राहकतया सर्वकर्मानुष्ठानसाधनतया प्रधानत्वेन तथा व्यपदेशो युज्यते ॥ तथाभाणि सर्वज्ञेन, सोऽयं परमो न्यायः विप्रतिपन्नपुरुषप्रतिपादकत्वात् तथा प्रवृत्तिहेतुत्वाच्चेति ॥ पक्षिलस्वामिना च "सेयमान्वीक्षिकी विद्या प्रमाणादिभिः पदार्थैः प्रविभज्यमाना–" प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम् । आश्रयः सर्वधर्माणां विद्योद्देशे परीक्षिते ॥ " इति ॥ ९ ॥

शंका–इस शास्त्रमें प्रमाणादि षोडश पदार्थका प्रतिपादन है तो इसको न्यायशास्त्र क्यों कहा जाता है? उत्तर–यद्यपि पदार्थ प्रतिपादक है तथापि प्रधान व्यपदेश न्यायसे परार्थानुमानके अपरपर्यायन्याय सकलशास्त्रके उपकार और सर्वकर्मानुष्ठानका साधक होनेके कारण न्यायशास्त्र व्यवहार होता है। सूत्रकारनेभी कहा है विप्रतिपन्न पुरुषकी विप्रतिपत्तिके निराकरण साधन और प्रवृत्तिहेतु होनेसे न्यायही प्रधान है। पक्षिलस्वामीनेभी कहा है कि प्रमाणादि पदार्थोंसे विभक्त इस विद्याको आन्वीक्षकी विद्या कहते हैं। संपूर्ण विद्याके प्रकाशकप्रदीप समस्त कर्मका उपाय, और समस्त धर्मका आश्रय

विद्याके उद्देशमें विमृष्ट है प्रत्यक्ष प्रमाणसे ईक्षित होनेपर आन्वीक्षकी कही जाती है ॥ ९ ॥

ननु तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसं भवतीत्युक्तं तत्र किं तत्त्वज्ञानादनन्तरमेव निःश्रेयसं सम्पद्यते नेत्युच्यते किन्तु तत्त्वज्ञानाद्दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तराभाव इति ॥ तत्र मिथ्याज्ञानं नामानात्मनि देहादावात्मबुद्धिः तदनुकूलेषु रागः तत्प्रतिकूलेषु द्वेषः वस्तुतस्त्वात्मनः प्रतिकूलमनुकूलं वा न किञ्चित्समस्ति । परस्परानुबन्धत्वाच्च रागादीनां मूढो रज्यति रक्तो मुह्यति मूढः कुप्यति कुपितो मुह्यतीति । ततस्तैर्दोषैः प्रेरितः प्राणी प्रतिषिद्धानि शरीरेण हिंसास्तेयादीन्याचरति वाचा अनृतादीनि मनसा परद्रोहादीनि सेयं पापरूपा प्रवृत्तिरधर्ममावहतीति ॥ १० ॥

तत्त्वज्ञानसे मुक्ति होती है इस प्रकार कहा है सो वह क्या तत्त्वज्ञानसे अव्यवहित उत्तरकालमेंही होती हैं उत्तर तत्त्वज्ञानके अनन्तर नहीं तत्त्वज्ञानसे दुःख, जन्म प्रवृत्ति, दोष मिथ्याज्ञानके उत्तर उत्तरके नाश द्वारा पूर्व पूर्वके नाश होनेसे होती है । अनात्मभूत देहेन्द्रियादिमें आत्मबुद्धि मिथ्या ज्ञान है तादृश देहानुकूल वस्तुमें राग और प्रतिकूल वस्तुमें द्वेष होता है वस्तुतः आत्माका न कुछभी प्रातिकूल है न अनुकूल है रागमोहादि परस्पर सम्बन्ध होनेसे होते हैं यथा मूढ अनुरक्त होता है अनुरक्त मुग्ध होता है मूढ क्रुद्ध होता है और क्रुद्ध मुग्ध हो जाता है । अतः तत्तद्दोषोंसे प्रेरित पुरुष शरीरसे निषिद्ध हिंसादि करते हैं वचनसे मिथ्याभाषणादि करते हैं और मनसे परद्रोहादि करते हैं । ऐसी पापरूप प्रवृत्तिसे अधर्म उत्पन्न होता है ॥ १० ॥

शरीरेण प्रशस्तानि दानपरपरित्राणादीनि वाचा हितसत्यादीनि मनसा अहिंसादीनि सेयं पुण्यरूपा प्रवृत्तिधर्मः ॥ सेयमुभयी वृत्तिः ततः स्वानुरूपं प्रशस्तं निन्दितं वा जन्म पुनः शरीरादेः प्रादुर्भावः । तस्मिन् सति प्रतिकूलवेदनीयतथा वासनात्मकं दुःखं भवति । त इमे मिथ्याज्ञानादयो

दुःखान्ता अविच्छेदेन प्रवर्त्तमानाः। संसारशब्दार्थो घटीचक्रवन्निरवधिरनुवर्त्तते ॥ ११ ॥

शरीरसे उत्तम दान और प्राणियोंकी रक्षा प्रभृति कर्म होते हैं, वचनसे सत्य और प्रिय भाषण और मनसे अहिंसादि होते हैं यह सब पुण्यरूप प्रवृत्तिके धर्म है। यह पुण्य पापरूप दो प्रकारकी प्रवृत्ति है उनसे पुण्य और पापरूप कर्मानुसार प्रशस्त अथवा निन्दित जन्म प्राप्त होते हैं। पश्चात् शरीरेन्द्रियादिका प्रादुर्भाव होता है शरीर सम्बन्ध-वश प्रतिकूलवेदनीय दुःख होता है एवंभूत मिथ्याज्ञानादि दुःखान्त निरन्तर प्रवर्त्तमान होता हुआ संसार घटीयन्त्रकी समान घूमता रहता है ॥ ११ ॥

यदा कश्चित् पुरुषधौरेयः पुराकृतसुकृतपरिपाकवशादाचार्योपदेशेन सर्वमिदं दुःखायतनं दुःखानुषक्तं च पश्यति तदा तत्सर्वं हेयत्वेन बुध्यते । ततस्तन्निर्वर्त्तकमविद्यादि निवर्त्तयितुमिच्छति, तन्निवृत्त्युपायश्च तत्त्वज्ञानमिति ॥ १२ ॥

जब कोई महापुरुष पूर्वकृत पुण्योंके फलसे आचार्यके उपदेशद्वारा संसारको दुःखका आलय और दुःखसे मिलेहुए देखते हैं तब उनको समस्त वस्तुओंमें त्याज्यबुद्धि होती है। अतः संसारनिर्वर्तक (प्रापक) अविद्यादिसे छूटनेकी इच्छा करते हैं अविद्यानिवृत्तिका उपाय तत्त्व ज्ञान है ॥ १२ ॥

कस्यचिच्चतसृभिर्विद्याभिर्विभक्तं प्रमेयं भावयतः सम्यग्दर्शनपदवेदनीयतया तत्त्वज्ञानं जायते, तत्त्वज्ञानान्मिथ्याज्ञानमपैति मिथ्याज्ञानापाये दोषाः अपयान्ति, दोषापाये प्रवृत्तिरपैति प्रवृत्त्यपाये जन्मापैति, जन्मापाये दुःखमत्यन्तं निवर्त्तते, सात्यन्तिकी निवृत्तिरपवर्गः। निवृत्तेरात्यन्तिकत्वं नाम निवर्त्यसजातीयस्य पुनस्तत्रानुत्पाद इति ॥ तथाच पारमर्षं सूत्रम् 'दुःखजन्यप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तराभावादपवर्गः' इति ॥ १३ ॥

आन्वीक्षकी आदि चार विद्याओंसे विभक्त प्रमेयकी भावना करनेवाले किसीको सम्यक् दर्शन पर्याय तत्त्वज्ञान होता है तत्त्वज्ञानसे मिथ्याज्ञानकी निवृत्ति होती है उससे दोषोंका नाश, दोषनाशसे प्रवृत्तिनाश, प्रवृत्तिनाशसे जन्मनाश, जन्मनाशसे

दुःखका अत्यन्त उच्छेद होता है। दुःखात्यन्तनिवृत्तिहीका नाम अपवर्ग (मोक्ष) है निवर्तनीय दुःखके समान दुःखान्तरकी अनुत्पत्तिके नाम आत्यन्तिक निवृत्ति है अर्थात् वासनासहितका उच्छेद हो । सूत्रार्थ पहिले लिख चुका हूं ॥ १३ ॥

ननु दुःखात्यन्तोच्छेदोऽपवर्ग इत्येतदद्यापि कफोणिगुडायितं वर्त्तते तत्कथं सिद्धवत्कृत्य व्यवह्रियत इति चेन्मैवं सर्वेषां मोक्षवादिनामपवर्गदशायामात्यन्तिकी दुःखनिवृत्तिरस्तीत्यस्यार्थस्य सर्वतन्त्रासिद्धान्तासिद्धतया घण्टापथत्वात् । नह्यप्रवृत्तस्य दुःखं प्रत्यापद्यते इति कश्चित् प्रपद्यते । तथा हि आत्मोच्छेदो मोक्ष इति माध्यमिकमते दुःखोच्छेदोऽस्तीत्येतावत्तावदविवादम् ॥ १४ ॥

शंका–दुःखका अत्यन्त उच्छेद अपवर्ग है यह आजतक कफोणिगुडायितं अर्थात् हाथकी कलाईको गुडके मीठा माननेके समान है जो असिद्ध है उसको प्रत्यक्ष सिद्धवत् कैसे व्यवहार करते हो। उत्तर–मोक्षदशामें दुःखकी अत्यन्त निवृत्ति है इसमें सब मोक्षवादियोंके सिद्धान्त समान होनेसे यह निष्कृष्टक मार्ग है प्रवृत्तिशून्यको दुःखकी प्राप्ति होती है ऐसे कोईभी नहीं मानते हैं यथा आत्मोच्छेदको मोक्ष माननेवाले माध्यमिकोंके मतमें दुःखका उच्छेद निर्विवाद है ॥ १४ ॥

अथ मन्येथाः शरीरादिवदात्मापि दुःखहेतुत्वादुच्छेद्य इति तन्न सङ्गच्छते विकल्पानुपपत्तेः ॥ किमात्मा ज्ञानसन्तानो विवक्षितः तदतिरिक्तो वा । प्रथमे न विप्रतिपत्तिः । कः खल्वनुकूलमाचरति प्रतिकूलमाचरेत् । द्वितीये तस्य नित्यत्वे निवृत्तिरशक्यविधानैव । प्रवृत्त्यनुपपत्तिश्चाधिकं दूषणं, न खलु कश्चित् प्रेक्षावानात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवतीति सर्वतः प्रियतमस्यात्मनः समुच्छेदाय प्रयतते । सर्वो हि प्राणी मुक्त इति व्यवहरति ॥ १५ ॥

यदि कहो शरीरवत् आत्माभी दुःखके हेतु होनेसे उच्छेद्य है वह असंगत है क्योंकि कल्पनासे विरुद्ध है तथाहि आत्मपदसे क्या ज्ञान सन्तान अभिमत है,

किंवा उससे अतिरिक्त ? पहिलेमें कुछ विरोध नहीं, कौन ऐसा होगा अनुकूल आचरण करनेवालेके विषयमें प्रतिकूल आचरण करेगा अतिरिक्तपक्षमें अतिरिक्त आत्माको यदि नित्य मानो तो नित्यकी निवृत्ति असम्भव होगी प्रत्युत प्रवृत्तिकी अनुपपत्ति दोष अधिक रह जाता है आत्माके लिये सब प्रिय होते हैं, इत्यादि सबसे प्रियतम आत्माको उच्छेदके लिये कोई बुद्धिमान् प्रयत्न न करेगा परन्तु सब कोई मुक्तव्यवहार करते हैं अतः मुक्ति आत्मोच्छेदसे अन्य है ॥ १५ ॥

ननु धर्मिनिवृत्तौ निर्मलज्ञानोदयो महोदय इति विज्ञानवादिवादे सामग्र्यभावः सामानाधिकरण्यानुपपत्तिश्च भावनाचतुष्टयं हि तस्य कारणमभीष्टम् । यच्च क्षणभङ्गपक्षे स्थिरैकाधारासम्भवात् लङ्घनाभ्यासादिवदनासादितप्रकर्षं न स्फुटमभिज्ञानमभिजनयितुं प्रभवति सोपप्लवस्य ज्ञानसन्तानस्य बद्धत्वे निरुपप्लवस्य च मुक्तत्वे यो बद्धः स एव मुक्त इति सामानाधिकरण्यं न सङ्गच्छते ॥ १६ ॥

धर्मी आत्माकी निवृत्ति होनेपर निर्म्मल ज्ञानका उदयरूपी मोक्ष है इस प्रकार कहनेवाले विज्ञानवादीके मतमें सामग्रीका अभाव और सामानाधिकरण्यकी अनुपपत्तिरूप दोषद्वय हैं। सर्वम् दुःखं, स्वलक्षणं, क्षणिकं, शून्यं, यह भावनाचतुष्टय उनके मतमें कारण है क्षणभङ्गपक्षमें आधार स्थिर न होनेसे अतिशयारोप जिसमें न हुआ हो उसमें स्फुटतरविज्ञान हो नहीं सकता यथा उपवासादि अभ्यास विना दीर्घकाल नहीं हो सकता सोपप्लव (भ्रान्तियुक्त) बद्ध और निरुपप्लव मुक्त हो तो जो बद्ध है सोई मुक्त है ऐसा सामानाधिकरण्यभी न हो सकेगा ॥ १६ ॥

आवरणमुक्तिर्मुक्तिरिति जैनजनाभिमतोऽपि मार्गो न निर्गतो निरर्गलः । अङ्ग भवान् पृष्टो व्याचष्टां किमावरणं, धर्माधर्मभ्रान्तय इति चेत् इष्टमेव । अथ देहमेवावरणं तथाच तन्निवृत्तौ पञ्जरान्मुक्तस्य शुकस्येवात्मनः सततोर्ध्वगमनं मुक्तिरिति चेत्तदा वक्तव्यं किमयमात्मा मूर्त्तोऽमूर्त्तो वा । प्रथमे निरवयवः सावयवो वा । निरवयवत्वे निरवयवो मूर्त्तः परमाणुरिति परमाणुलक्षणापत्त्या परमाणुधर्मवदात्मधर्माणामतीन्द्रियत्वं प्रसज्येत ॥ सावयवत्वे यत्सावयवं तदनित्यमिति प्रतिबन्धबलेना-

नित्यत्वापत्तौ कृतप्रणाशाकृताभ्यागमौ निष्प्रतिबन्धौ प्रसरेताम् ॥ अमूर्त्तत्वे गमनमनुपपन्नमेव चलनात्मिकायाः क्रियायाः मूर्त्तप्रतिबन्धात् ॥ १७ ॥

आवरणभंग मुक्ति है ऐसा जैनियोंका मत है। यहभी निर्दुष्ट नहीं। क्योंकि आवरण किसको कहते हैं ऐसे किसीके पूछनेपर क्या उत्तर कहोगे ? धर्म्माधर्मकी भ्रान्ति कहो तो इष्टापत्ति है। यदि देहहीको आवरण कहकर देहनिवृत्ति होनेपर पिञ्जरासे छूटे पक्षीके समान सतत ऊर्ध्वगमनही मुक्ति मानो तो कहना होगा। आत्मा क्या मूर्त है या अमूर्त है ? मूर्त माना तो निरवयव, किंवा सावयव है ? निरवयव मानो तो निरवयव मूर्त परमाणु है परमाणुके धर्मरूपादिका प्रत्यक्ष होता नहीं तद्वत् आत्माभी परमाणुरूप होनेसे आत्माके धर्मकाभी प्रत्यक्ष न होगा। सावयव माने तो सावयव अनित्य होनेसे आत्माभी अनित्य होगा तो कृतका विनाश अकृतकी प्राप्ति दुर्निवार हो जायगी अर्थात् दूसरेके किया हुआ कर्मका फल दूसरेको मिलने लगेगा। अमूर्त माने तो निरन्तर ऊर्ध्वगमनभी असम्भव होगा गमनक्रिया मूर्तद्रव्यहीमें होती है ॥ १७ ॥

पारतन्त्र्यं बन्धः स्वातन्त्र्यं मोक्ष इति चार्वाकपक्षेऽपि स्वातन्त्र्यं दुःखनिवृत्तिश्चेदविवाद ऐश्वर्य्यं चेत्सातिशयतया सदृक्षतया च प्रेक्षावतां नाभिमतम् ॥ १८ ॥

परतन्त्रताको बन्ध और स्वतन्त्रताको मोक्ष कहनेवाले चार्वाकोंके मतमेंभी स्वातन्त्र्यको दुःखनिवृत्ति मानो तो आपत्ति नहीं है यदि ऐश्वर्य मानो तो एकसे अधिक ऐश्वर्य दूसरेको उनसेभी अधिक और किसीको होंगे इस प्रकार सातिशय होनेसे बुद्धिमानोंके मन्तव्य नहीं है क्योंकि परायेकी उत्कृष्ट सम्पत्तिको देखकर अल्पसम्पत्तिमान्को दुःख होता है ॥ १८ ॥

प्रकृतिपुरुषान्यत्वख्यातौ प्रकृत्युपरमे पुरुषस्य स्वरूपेणावस्थानं मुक्तिरिति साङ्ख्याख्यातेऽपि पक्षे दुःखोच्छेदोऽभ्युपेयते विवेकज्ञानं पुरुषाश्रयं प्रकृत्याश्रयं वेति एतावदवशिष्यते। तत्र पुरुषाश्रयमिति न श्लिष्यते पुरुषस्य कौटस्थात् स्थाननिरोधापातान्नापि प्रकृत्याश्रयः अचेतनत्वात्तस्याः ॥ किञ्च प्रकृतिः प्रवृत्तिस्वभावा वा निवृत्तिस्वभावा वा । आद्ये अनिर्मोक्षः स्वभावस्यानपायात्। द्वितीये सम्प्रति संसारोऽस्तमियात् ॥१९॥

प्रकृति और पुरुषके भेदज्ञान द्वारा प्रवृत्तिके नष्ट होनेपर पुरुषका स्वस्वरूपसे अवस्थानको मुक्ति माननेवाले सांख्योंके मतमें भी दुःखोच्छेद होतेही है केवल विवेकज्ञान प्रकृतिमें है या पुरुषमें यह विचार अवशिष्ट है । पुरुषाश्रय नहीं कह सकते क्योंकि पुरुष कूटस्थ और निर्विकार है स्थाननिरोध होनेसे प्रकृत्याश्रयभी नहीं कह सकते क्योंकि प्रकृति अचेतन भी है किञ्च प्रकृति प्रवृत्तिस्वभाव है किंवा निवृत्ति स्वभाव है प्रथम पक्षमें स्वभावका नाश न होनेसे अनिर्मोक्ष होगा द्वितीय पक्षमें संसारहीका उच्छेद होगा ॥ १९ ॥

नित्यनिरतिशयसुखाभिव्यक्तिर्मुक्तिरिति भट्टसर्वज्ञाद्याभिमतेपि दुःखनिवृत्तिरभिमतैव । परन्तु नित्यसुखं न प्रमाणपद्धतिमध्यास्ते ॥ श्रुतिस्तत्र प्रमाणमिति चेन्न योग्यानुपलब्धिबाधिते तदनवकाशादवकाशे वा ग्रावप्लावेऽपि तथाभावप्रसङ्गात् ॥ २० ॥

नित्यंनिरतिशयसुखप्राप्तिकी मुक्ति माननेवाले भट्ट और सर्वज्ञ मुनिके मतमें भी दुःखनिवृत्ति अवश्य है परन्तु नित्यसुखप्राप्तिमें प्रमाण नहीं ' सर्वान् कामानवाप्नोति सह ब्रह्मणा विपश्चिता ' ' जानात्येवायं पुरुषः ' इत्यादि श्रुतिभी योग्यानुपलब्धितर्कसे बाधितहैं । अन्यथा ' ग्रावाणः प्लवन्ते ' इत्यादि पाषाणतरणकाभी प्रामाण्य होने लगेगा ॥ २० ॥

ननु सुखाभिव्यक्तिर्मुक्तिरिति पक्षं परित्यज्य दुःखनिवृत्तिरेव मुक्तिरिति स्वीकारः क्षीरं विहायारोचकग्रस्तस्य सौवीररुचिमनुभवतीति चेत्तदेतन्नाटकपक्षपतितं त्वद्वच इत्युपेक्ष्यते । सुखस्य सातिशयतया प्रत्यक्षतया बहुप्रत्यनीकाक्रान्ततया साधनप्रार्थनापरिक्लिष्टतया च दुःखाविनाभूतत्वेन विषानुषक्तमधुवत् दुःखपक्षनिक्षेपात् ॥ २१ ॥

सुखाभिव्यक्तिरूप मुक्तिको छोडकर दुःखनिवृत्तिमात्रकी मुक्ति मानना अरुचिग्रस्तको दूधको छोडाकर काञ्जी या बेरकी रुचि करानेका समान है ऐसा कहना केवल नाटकमात्र है क्योंकि सुख एकसे एक आतिशय युक्त प्रत्यक्ष होता है और अनेक विघ्नोंसे घिरारहता है और साधन चिन्ताओंद्वारा परिक्लिष्ट होनेसे विषसंयुक्त मधुके समान दुःखही है ॥ २१ ॥

नन्वेकमनुसन्धित्सतोऽपरं प्रच्यवते इति न्यायेन दुःखवत् सुखमित्युच्छिद्यत इति अकाम्योऽयं पक्ष इति चेन्मैवं मंस्थाः। सुखसम्पादने दुःखसाधनबाहुल्यानुषङ्गनियमेन तप्तायःपिण्डे तपनीयबुद्ध्या प्रवर्त्तमानेन साम्यापातात् । तथाहि न्यायोपार्जितेषु विषयेषु कियन्तः सुखखद्योताः कियन्ति दुःखदुर्दिनानि अन्यायोपार्जितेषु तु यद्भविष्यति तन्मनसापि चिन्तयितुं न शक्यमित्येतत् स्वानुभवमप्रच्छादयन्तः सन्तो विदांकुर्वन्तु विदांवरा भवन्तः ॥ २२ ॥

एकके अनुसंधानसे दूसरा नष्ट होता है इस न्यायके समान दुःखके समान सुखकामी उच्छेद करना यह पक्ष अयुक्त है ऐसा नहीं कह सकते सुखके सम्पादनमें अनेक दुःखसाधनसम्पर्क होनेसे तप्तलोहमें कनकबुद्धिसे प्रवृत्तिकी समान है तथाहि नीतिसे सम्पादित विषयोंमें कितने सुख खद्योत (जुगुनू) हैं और कितने दुःख दुर्दिन हैं और एवं अन्यायसे सम्पादितोंमें जो हैं उनको मनसे चिन्तवनभी नहीं कर सकते इसको विद्वान्‌लोग विचारलें ॥ २२ ॥

तस्मात् परिशेषात् परमेश्वरानुग्रहवशाच्छ्रवणादिक्रमेणात्मतत्त्वसाक्षात्कारवतः पुरुषधौरेयस्य दुःखनिवृत्तिरात्यन्तिकी निःश्रेयसमिति निरवद्यम् ॥ २३ ॥

अतः परिशिष्ट परमेश्वरके अनुग्रहवश श्रवणमननादि क्रमसे आत्मतत्त्वको साक्षात्कृतपुरुषको आत्यन्तिक दुःखनिवृत्तिरूप मोक्ष होता है यह निर्दुष्ट सिद्ध है ॥२३॥

नन्वीश्वरसद्भावे किं प्रमाणं प्रत्यक्षमनुमानमागमो वा । न तावदत्र प्रत्यक्षं क्रमते रूपादिरहितत्वेनातीन्द्रियत्वात्, नाप्यनुमानं तद्व्याप्तिलिङ्गाभावात्, नागमः विकल्पासहत्वात् ॥ किं नित्योऽवगमयत्यनित्यो वा । आद्ये अपसिद्धान्तापातः । द्वितीये परस्पराश्रयापातः । उपमानादिकमशक्यशङ्कं नियतविषयत्वात् ॥ तस्मादीश्वरः शशविषाणायते इति चेत्तदेतन्न चतुरचेतसां चेतसि चमत्कारमाविष्करोति । विवादास्पदं

नगसागरादिकं सकर्तृकं कार्य्यत्वात् कुम्भवत् न चायम-सिद्धो हेतुः सावयवत्वेन तस्य सुसाधनत्वात् ॥ २४ ॥

प्रत्यक्षादिके मध्यमें ईश्वरसद्भावमें कौनसा प्रमाण है रूपीद्रव्यका प्रत्यक्ष होता है ईश्वर रूपादि शून्य होनेसे अतीन्द्रिय है अतः उसको प्रत्यक्ष नहीं कह सकते व्याप्तिज्ञान न होनेसे अनुमानभी नहीं हो सकता । आगमको मानो तो क्या ईश्वर बोधक वेद नित्य है या अनित्य है ? नित्य माने तो सिद्धान्त विरुद्ध होगा क्योंकि नैयायिकलोग वेदको ईश्वरोच्चारित मानते हैं । अनित्यभी नहीं कह सकते वेदसे ईश्वर सिद्धि होगी ईश्वर सिद्ध होनेपर तदुच्चारित वेदसिद्धि होगी इस प्रकार अन्योन्याश्रय होगा । उपमान दृष्ट वस्तुके सदृशमें होता है अतः वहभी नहीं हो सकता इसलिये ईश्वर खरगोशके शृंगके समान तुच्छ है ऐसा कथन चतुरके हृदयमें चमत्कार पहुँचानेवाला नहीं है । क्योंकि विवादग्रस्त पर्वत मही सागरादिके कर्ता कोई है घटके समान कार्य होनेसे इत्यादि अनुमान ईश्वर साधक है पर्वतादिमें कार्यत्व न होनेसे हेतुकी आश्रयासिद्धिकी आशंका नहीं कर सकते सावयवत्वहेतुसे उसमेंभी कार्यत्व सिद्ध है ॥ २४ ॥

ननु किमिदं सावयवत्वम् अवयवसंयोगित्वम् अवयवसमवायित्वं वा । नाद्यं गगनादौ व्यभिचारात् । न द्वितीयं तन्तुत्वादावनैकान्त्यात् । तस्मादनुपपन्नमिति चेन्मैवं वादीः । समवेतद्रव्यत्वं सावयवत्वमिति निरुक्तेर्वक्तुं शक्यत्वात् । अवान्तरमहत्त्वेन वा कार्य्यत्वानुमानस्य सुकरत्वात् नापि विरुद्धो हेतुः साध्यविपर्य्ययव्याप्तेरभावात् । नाप्यनैकान्तिकः पक्षादन्यत्र वृत्तेरदर्शनात् । नापि कालात्ययापदिष्टः बाधकानुपलम्भात् । नापि सत्प्रतिपक्षः प्रतिभटादर्शनात् ॥ २५ ॥

सावयवत्वहेतुसे पर्वतादिमें जो कार्यत्व साधन किया उसमें सावयवत्वका निर्वचन क्या है ? अवयव संयोगित्व है अथवा अवयवसमवेतत्त्व है कपालादि अवयवका आकाशके साथ संयोग होनेसे अवयवसंयोगित्व हेतु आकाशादिमें व्यभिचरित है तन्तुआदि अवयवमें तन्तुत्व द्रव्यत्वादि समवेत होनेसे अवयव समवायित्वसामान्यादिमें व्यभिचरित होनेके कारण द्वितीयभी नहीं कहसकते अतः सावयवत्व अनुपपन्न है ऐसा नहीं कहसकते हो क्योंकि समवेत (समवाय सम्बन्धसे वर्तमान)

द्रव्यत्व सावयवका निर्वचन हो सकता है सामान्यमें समवेतत्व है परन्तु द्रव्यत्व नहीं आकाशमें द्रव्यत्व है समवेतत्व नहीं इसलिये उसमें व्यभिचार नहीं अवान्तरमहत्त्वसेभी कार्यत्वानुमान हो सकता है अवान्तरमहत्त्व अपकर्षाश्रयमहत्त्व है पर्वतादिमें आकाशकी अपेक्षा अपकर्षभी है अन्यापेक्षा महत्त्वभी है अतः लक्षणसमन्वय होजायगा साध्यविपरीतसे व्याप्त न होनेके कारण हेतु विरुद्धभी नहीं पक्षसे अन्यत्र न रहनेसे अनैकान्तिकभी नहीं बाधकोपलब्धि न होनेसे कालात्ययापदिष्ट (असिद्ध) भी नहीं साध्याभावसाधकहेत्वन्तर न होनेसे सत्प्रतिपक्षभी नहीं ॥ २५ ॥

ननु नगादिकमकर्तृकं शरीराजन्यत्वात् गगनवदिति चेन्नैतत्परीक्षाक्षममीक्ष्यते । न हि कठोरकण्ठीरवस्य कुरङ्गशावः प्रतिभटो भवति अजन्यत्वस्यैव समर्थतया शरीरविशेषणवैयर्थ्यात् । तर्ह्यजन्यत्वमेव साधनमिति चेन्नासिद्धेः । नापि सोपाधिकत्वशङ्काकलङ्कांकुरः सम्भवी अनुकूलतर्कसम्भवात् । यद्ययमकर्तृकः स्यात् कार्य्यमपि न स्यादिह जगति नास्त्येव तत्कार्यं नाम यः कारकचक्रमवधीर्य्यात्मानमासादयेदित्येतदविवादम् ॥ २६ ॥

शरीरसे न जन्य होनेके कारण पर्वतादिक अकर्तृक इत्यादि सत्पतिपक्षभी परीक्षायोग्य नहीं है भयंकर सिंहका प्रतिभट हरिणका बच्चा नहीं होता है अजन्यत्व रूप हेतुसे काम चलहीगा तो शरीरत्वविशेषरूपभी व्यर्थ है तर्हि अजन्यत्वही हेतु रहै यहभी नहीं कह सकते क्योंकि स्वरूपासिद्ध है सोपाधिकत्वरूप शंकाकलङ्कभी नहीं कहसकते कार्यत्व नहीं होता तो सावयवत्वभी नहीं होता ऐसा अनुकूल तर्क रहता है । यदि सकर्तृक न होते तो कार्यभी नहीं होते ऐसे सकर्तृकानुमानमेंभी अनुकूल तर्क है यह निर्विवाद है कि ऐसा संसारमें कोई कार्य नहीं जो कारक कलापको तिरस्कार करके आत्मलाभ प्राप्त करता हो ॥ २६ ॥

तच्च सर्वं कर्तृविशेषोपहितमर्य्यादं कर्तृत्वं चेतरकारकाप्रयोज्यत्वे सति सकलकारकप्रयोक्तृत्वलक्षणं ज्ञानचिकीर्षाप्रयत्नाधारत्वम् एवञ्च कर्तृव्यावृत्तेस्तदुपहितसमस्तकारकव्यावृत्तावकारणककार्य्योत्पादप्रसङ्ग इति स्थूलः प्रमादः ॥ २७ ॥

कर्तृविशेष वृत्ति कर्तृत्व कारकान्तरसे अजन्य हो स्वयं कारकचक्रका प्रयोजकत्व रूप ज्ञान चिकीर्षाका आधार है तथा कर्तासे रहित होनेपर तदधीन सम्पूर्ण कारककी निवृत्ति होनेसे अकारणक कार्योत्पत्ति हो जायगी ॥ २७ ॥

तथा निरटंकि शंकरकिंकरेण । "अनुकूलेन तर्केण सनाथे सति साधने । साध्यव्यापकताभङ्गात् पक्षे नोपाधिसम्भवः ॥ "इति । यदीश्वरः कर्त्ता स्यात्तर्हि शरीरी स्यादित्यादिप्रतिकूलतर्कजातं जागर्त्तीति चेदीश्वरसिद्ध्यसिद्धिभ्यां व्याघातः ॥ तदुदितमुदयनेन । " आगमादेः प्रमाणत्वे बाधनादनिषेधनम् । आभासत्वे तु सैव स्यादाश्रयासिद्धिरुद्धता ॥ " इति । न च विशेषविरोधः शक्यशङ्कः ज्ञातत्वाज्ञातत्वविकल्पपराहतत्वात् ॥ २८ ॥

शंकरमिश्रनेभी कहा है अनुकूल तर्कसे हेतु सनाथ हो जानेपर साध्य व्यापकता न रहनेसे पक्षमें हेतुका उपाधिविशिष्टत्वभी नहीं है इति अर्थात् साध्यका अव्यापक होकर साधनका अव्यापक उपाधि होता है । यदि कहो ईश्वर कर्ता हो तो शरीरीभी होगा इत्यादि प्रतिकूल तर्क विद्यमान है तो ईश्वरसिद्धि और असिद्धि दोनों प्रकारसे व्याहत हैं उदयनाचार्यने कहा है आगमादि ईश्वरमें प्रमाण है तो प्रकरणके बाध होनेसे निषेध नहीं हो सकता प्रमाणाभास मानो तो आश्रयासिद्धि होगी विशेष विरोध भी अशक्य है यदि ईश्वर ज्ञात हो तो निषेध असम्भव है अज्ञात हो तो अप्रसिद्धका निषेधभी व्यर्थ है ॥ २८ ॥

तदेतत्परमेश्वरस्य जगन्निर्माणे प्रवृत्तिः किमर्था स्वार्था परार्था वा । आद्येऽपीष्टप्राप्त्यर्था अनिष्टपरिहारार्था वा । नाद्यः अवाप्तसकलकामस्य तदनुपपत्तेः अत एव न द्वितीयः ॥ द्वितीये प्रवृत्त्यनुपपत्तिः कः खलु परार्थं प्रवर्त्तमानं प्रेक्षावानित्याचक्षीत । अथ करुणया प्रवृत्त्युपपत्तिरित्याचक्षीत कश्चित्तं प्रत्याचक्षीत तर्हि सर्वान् प्राणिनः सुखिन एव सृजेदीश्वरः न दुःखशबलान् करुणाविरोधात् । स्वार्थमनपेक्ष्य परदुःखप्रहरणेच्छा हि कारुण्यम् । तस्मादीश्वरस्य जगत्सर्जनं न युज्यते

तदुक्तं भट्टाचार्यैः–" प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्त्तते । जगच्चासृजतस्तस्य किं नाम न कृतं भवेत् ॥ "इति ॥ २९ ॥

उक्त जगन्निर्माणमें ईश्वरकी प्रवृत्ति स्वार्थ है अथवा परार्थ है ? स्वार्थपक्षमेंभी क्या इष्टप्राप्तिके लिये या अनिष्टनिवृत्तिके लिये ? अवाप्तसमस्तकाम होनेसे दोनों नहीं कह सकते परार्थभी प्रवृत्ति नहीं हो सकती है केवल परार्थ प्रवर्तमानको कौन बुद्धिमान् कहेगा । यदि करुणासे प्रवृत्ति मानो तो ईश्वर समस्त प्राणियोंको सुखी करते दुःखमयसृष्टिही न करते दुःखसृष्टि करना करुणाके विपरीत होता है स्वार्थनिरपेक्ष होकर परदुःखनिवारणकी इच्छाही करुणा है अतः ईश्वरका जगत्कर्तृत्व अनुपपन्न है भट्टाचार्यने भी कहा है कि प्रयोजनके विना मन्दभी नहीं प्रवृत्त होता है जगत्को न रचनेसे ईश्वरको अकृत (अप्राप्त) क्या रहता है अर्थात् कुछभी नहीं ॥ २९ ॥

नास्तिकशिरोमणे तावदीर्ष्याकषायिते चक्षुषी निमील्य परिभावयतु भवान् करुणया प्रवृत्तिरस्त्येव न च निसर्गतः सुखमयसर्गप्रसंगः सृज्यप्राणिकृतसुकृतदुष्कृतपरिपाकविशेषाद्वैषम्योपपत्तेः । न च स्वातन्त्र्यभंगः शङ्कनीयः स्वांगं स्वव्यवधायको न भवतीति न्यायेन प्रत्युत तन्निर्वाहात् एक एव रुद्रो न द्वितीयोवतस्थे इत्यादिरागमस्तत्र प्रमाणम् ॥ ३० ॥

अयि नास्तिकशिरोमणि ! पहिले द्वेषदूषित नेत्रको बन्दकर विचार करो करुणासे प्रवृत्ति हैही यदि कहो सुखमय सृष्टि होनी चाहिये यहभी नहीं सृष्टव्यप्राणियोंके सुकृतदुष्कृतवश विषम सृष्टि होती है अपना अङ्ग अपनेको व्यवधायक नहीं होता इस न्यायसे स्वातन्त्र्यभंगभी नहीं होता प्रत्युत उसका निर्वाहक है एकही रुद्र पूर्व थे द्वितीय कोई नहीं थे इत्यादि आगमभी ईश्वरमें प्रमाण हैं ॥ ३० ॥

यद्येवं तर्हि परस्पराश्रयबाधव्याधिं समाधत्स्वेति चेत् तस्यानुत्थानात् किमुत्पत्तौ परस्पराश्रयः शंक्यते ज्ञप्तौ वा । नाद्यः आगमस्येश्वराधीनोत्पत्तिकत्वेऽपि परमेश्वरस्य नित्यत्वेनोत्पत्तेरनुपपत्तेः । नापि ज्ञप्तौ परमेश्वरस्य आगमाधीनज्ञप्तिकत्वेऽपि तस्यान्यतोऽवगमात् । नापि तदनित्यत्वज्ञप्तौ आगमाऽनित्यत्वस्य तीव्रादिधर्मोपेतत्वादिना सुगमत्वात् ॥ तस्मा-

न्निर्वर्त्तकधर्मानुष्ठानवशादीश्वरप्रसादसिद्धावभिमतेष्टसिद्धिरिति सर्वमवदातम् ॥ ३१ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहे अक्षपाददर्शनं समाप्तम् ॥ ११ ॥

यदि आगम प्रमाण मानो तो पूर्वोक्त अन्योन्याश्रय होगा यहभी नहीं है क्योंकि अन्योन्याश्रयको उत्पत्तिमें कहते हो या ज्ञानमें कहते हो ? आगमकी उत्पत्ति ईश्वराधीन होनेपरभी नित्य ईश्वरकी उत्पत्ति न होनेसे प्रथम पक्ष नहीं कह सकते। ईश्वरका ज्ञान आगमाधीन होनेपरभी आगमज्ञान प्रकारान्तर होनेसे द्वितीय पक्षभी निर्बल है। आगमानित्यत्वज्ञप्तिभी तीव्रमन्दादिधर्मयुक्त होनेसे सुगम है अतः निवर्तक धर्म्मानुष्ठानद्वारा ईश्वरप्रसन्नतासे अभिमत सिद्धि निरापद है ॥ ३१ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहे अक्षपाददर्शनम् ।

अथ जैमिनीयदर्शनम् ॥ १२ ॥

ननु धर्मानुष्ठानवशादभिमतधर्मसिद्धिरिति जेगीयते भवता। तत्र धर्मः किंलक्षणकः किंप्रमाणक इति चेत् उच्यते श्रूयतामवधानेन । अस्य प्रश्नस्य प्रतिवचनं प्राच्यां मीमांसायां प्रादर्शि जैमिनिना मुनिना ॥ सा हि मीमांसा द्वादशलक्षणी॥१॥

धर्मानुष्ठानसे अभिमत धर्मसिद्धि होती है ऐसा उद्घोष करते हैं अतः धर्मका लक्षण और प्रमाण क्या है सो कहते हैं सावधान चित्तसे उत्तर सुनिये इसका उत्तर पूर्वमीमांसामें जैमिनिमुनिने कहा है मीमांसाशास्त्र 'अथातो धर्म्मजिज्ञासा' से आरम्भ कर अन्वाहेत्यन्त द्वादशाध्यायात्मक है ।। १ ।।

तत्र प्रथमेऽध्याये विध्यर्थवादमन्त्रस्मृतिनामधेयार्थकस्य शब्दराशेः प्रामाण्यम् । द्वितीये कर्मभेदोपोद्घातप्रमाणापवादप्रयोगभेदरूपोऽर्थः । तृतीये श्रुतिलिंगवाक्यादिविरोधप्रतिपत्तिकर्मानारभ्याधीतबहुप्रधानोपकारकप्रयाजादियाजमानचिन्तनम्। चतुर्थे प्रधानप्रयोजकत्वाप्रधानप्रयोजकत्वजुहूपर्णतादिफलराजसूयगतजघन्याकांक्षद्यूतादिचिन्ता । पञ्चमे श्रुत्यादिक्रमतद्विशेषवृद्ध्यवर्द्धनप्राबल्यदौर्बल्यचिन्ता । षष्ठे अधिकारित-

द्धर्मद्रव्यप्रतिनिध्यर्थलोपनप्रायश्चित्तसत्रदेयवह्निविचारः । सप्तमे प्रत्यक्षावचनातिदेशेषु नामलिंगातिदेशविचारः । अष्टमे स्पष्टास्पष्टप्रबललिंगातिदेशापवादविचारः । नवमे ऊहविचारारम्भसामोहमन्त्रोहतत्प्रसंगागतविचारः ॥ दशमे बाधहेतुद्वारलोप-विस्तारबाधकारणकार्यैकत्वग्रहादिसामप्रकीर्ण-नञर्थविचारः । एकादशे तन्त्रोपोद्घाततन्त्रावापतन्त्रप्रपञ्चनावापप्रपञ्चनचिन्तनानि । द्वादशे प्रसंगतन्त्रनिर्णयसमुच्चयविकल्पविचारः ॥ २ ॥

प्रथमाध्यायमें विधि अर्थवाद मन्त्रस्मृति नामधेय और शब्दका प्रामाण्य वर्णन किया है । द्वितीयमें कर्मभेद उपोद्घातप्रमाण और अपवादप्रयोग है । तृतीयमें श्रुतिलिंगादिविरोध, प्रतिपत्तिकर्म, अनारभ्याधीत और बहुप्रधानोपकारक प्रयाजादि याजमानचिन्तन है । चतुर्थमें प्रधानप्रयोजकत्व, अप्रधानप्रयोजकत्व, जुहू और पर्णतादिफल राजसूयगतजघन्याङ्ग अक्षद्यूतादिचिन्ता है । पञ्चममें श्रुत्यादिक्रम तद्विशेषवृद्धि अवर्द्धन प्राबल्य दौर्बल्यका विचार है । षष्ठमें अधिकारी और उसका धर्म्म द्रव्य प्रतिनिधि और अर्थलोपप्रायश्चित्त सत्रदेयवह्निविचार है । सप्तममें प्रत्यक्षवचन अतिदेशमें नामलिङ्गका अतिदेशविचार है । अष्टमम स्पष्ट अस्पष्ट प्रबल लिङ्गका अतिदेश अपवादका विचार है, नवममें ऊहाविचारारम्भ सामोह मन्त्रोह तथा तत्प्रसंगप्राप्तका विचार है. दशममें बाधहेतुद्वारलोपविस्तार बाधकारणकार्य एकत्वग्रहादिसाम प्रकीर्णन नञर्थविचार है । एकादशमें तन्त्र उपोद्घाततन्त्र आवापतन्त्र प्रपञ्चन आवापप्रपञ्चन विचार है । द्वादशाध्यायमें प्रसङ्गतन्त्र निर्णय समुच्चय विचार और विकल्प विचार किया है ॥ २ ॥

तत्र 'अथातो धर्मजिज्ञासा' इति प्रथममधिकरणं पूर्वमीमांसारम्भोपपादनपरम् ॥ अधिकरणञ्च पञ्चावयवमाचक्षते परीक्षकाः। ते च पञ्चावयवाः विषयसंशयपूर्वपक्षसिद्धान्तसङ्गतिरूपाः ॥ तत्राचार्यमतानुसारेणाधिकरणं निरूप्यते । 'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' इत्येतद्वाक्यं विषयः ॥ ३ ॥

अथातो धर्म्मजिज्ञासा यह प्रथमाधिकरण पूर्वमीमांसाका आरम्भपरक है और विषय १, संशय २, पूर्वपक्ष ३, सिद्धान्त ४, सङ्गतिरूप पञ्चावयव अधिकरण है । प्रथम

कुमारिलमतके अनुसार अधिकरणार्थका विचार करते हैं-(स्वाध्यायेति) अध्याायका अर्थ वेद है स्वकीय अध्याय स्वाध्याय है यहां स्वत्व विवक्षित है तथा च "वेदानधीत्य वेदौ वेत्यादि" मनुवचनसे यद्यपि वेदचतुष्टयका अध्ययन प्रतीत होता है तथापि "शाखाखण्डःसविज्ञेय इत्यादि" वचनोंसे शाखान्तरका अध्ययन निषिद्ध होनेके कारण स्वकीय वेदमें स्वशाखामात्रका अध्ययन और वेदान्तरका यथावकाश अध्ययनका कर्तव्यबोधक उक्त वाक्यविषय है ॥ ३ ॥

चोदनालक्षणोऽर्थो धर्म इत्यारभ्यान्वाहार्ये च दर्शनादित्येतदन्तं जैमिनीयं धर्मशास्त्रमनारभ्यमारभ्यं वेति सन्देहः ॥ ४ ॥
मीमांसाशास्त्र आरम्भणीय है, या नहीं ? इस प्रकार संशय है ॥ ४ ॥

अध्ययनविधेरदृष्टार्थदृष्टार्थत्वाभ्यां तत्रानारभ्यमिति पूर्वः पक्षः । अध्ययनविधेरर्थावबोधलक्षकदृष्टफलकत्वानुपपत्तेरर्थावबोधार्थमध्ययनविधिरिति वदन् वादी प्रष्टव्यः किमत्यन्तमप्राप्तमध्ययनं विधीयते किंवा पाक्षिकमवघातवन्नियम्यत इति ॥ न तावदाद्यः, विवादपदं वेदाध्ययनमर्थावबोधहेतुः अध्ययनत्वाद्भारताध्ययनवदित्यनुमानेन विध्यनपेक्षतया प्राप्तत्वात् ॥ अस्तु तर्हि द्वितीयः यथा नखविदलादिना तण्डुलनिष्पत्तिसम्भवात् अवघातनिष्पन्नैरेव तण्डुलैः पिष्टपुरोडाशादिकरणे अवान्तरापूर्वद्वारा दर्शपूर्णमासौ परमापूर्वमुत्पादयतः नापरथा अतः अपूर्वमवघातस्य नियमहेतुः प्रकृते लिखितपाठजन्येनाध्ययनजन्येन वार्थावबोधेन क्रत्वनुष्ठानसिद्धेरध्ययनस्य नियमहेतुर्नास्त्येव । तस्मादर्थावबोधहेतुविचारशास्त्रस्य वैधत्वं नास्तीति । तर्हि श्रूयमाणस्य विधेः का गतिरिति चेत् स्वर्गफलकोऽक्षरग्रहणमात्रविधिरिति भवान् परितुष्यतु ॥ ५ ॥

अध्ययनविधि अदृष्टार्थ हो, या दृष्टार्थपर हो, उभयथापि विचारशास्त्रका आरम्भ न करना चाहिये यह पूर्वपक्ष है अध्ययनविधि अर्थावबोधनरूप दृष्टफलक नहीं हो सकता अतः अर्थावबोधनार्थ अध्ययनाविधि है ऐसे कहनेवाले वादीसे पूछना चाहिये अत्यन्त अप्राप्त अध्ययनका विधान करता है व्रीहीन् अवहन्ति इतिवत् पक्षमें प्राप्तको नियम

करता है विवादाध्यासित वेदाध्ययन विधिभी भारतका अध्ययनवत् अर्थावबोधक है इत्यादि अनुमानद्वारा सिद्ध होनेसे प्रथम पक्षको कह नहीं सकते 'व्रीहीनवहन्ति' इत्यादि स्थलमें हननविधि जैसा नियम करता है अवहननसे निष्पन्न तण्डुलद्वारा सम्पादित हविष्यसे उत्पन्न अवान्तर अपूर्वद्वारा दर्शपूर्णमासयागमें परम अपूर्व होता है अन्यथा नहीं इत्यादि अपूर्व अवघातके नियमपरत्वमें कारण है । यहांपर लिखित पाठजन्य अर्थज्ञानसे किंवा अध्ययनजन्य अर्थज्ञानसे यज्ञका अनुष्ठान सिद्ध है अतः अध्ययनविधिको नियमपरत्वमें कोई हेतु नहीं है अतः अर्थावबोधक विचारशास्त्र विधिसिद्ध नहीं है । श्रूयमाण अध्ययन विधिकी क्या दशा होगी अक्षरराशिमात्रग्रहण-रूप अध्ययनविधिको स्वर्गसाधक मानकर संतोष करो ॥ ५ ॥

विश्वजिन्न्यायेनाश्रुतस्यापि कल्पयितुं शक्यत्वात् यथा स स्वर्गः सर्वान् प्रत्यविशिष्टत्वादिति विश्वजित्यश्रुतमप्यधि-कारिणं सम्पादयता तद्विशेषणं स्वर्गः फलं युक्त्या निरणायि तद्वदध्ययनेऽप्यस्तु ॥ तदुक्तम्-"विनापि विधिना दृष्टलाभान्न हि तदर्थता । कल्प्यास्तु विधिसामर्थ्यात् स्वर्गो विश्वजिदा-दिवत् ॥" इति ॥ ६ ॥

यदि कहो स्वर्ग अध्ययनविधिमें उद्देश्यरूपसे श्रुत न होनेके कारण फलरूपसे स्वर्गकी कल्पना नहीं कर सकते हैं सो भी नहीं कह सकते जिस प्रकार 'विश्वजि-ता यजेत' इति विश्वजित्यागमें फल अश्रुत होनेपरभी सबके कामनाविषय होनेसे स्वर्गफलकी कल्पना होती है तिसी प्रकार यहांपरभी होगा । अध्ययनविधिके विनाभी अर्थज्ञानरूप फल निगमनिरुक्तादिद्वारा सम्भव होनेसे अध्ययनविधि अर्थज्ञानार्थ नहीं हो सकता एवञ्च विधिके सार्थकताके लिये विश्वजिन्न्यायवत् स्वर्गादि फलकी कल्पना करनी होगी ॥ ६ ॥

एवञ्च सति वेदमधीत्य स्नायादिति स्मृतिरनुगृहीता भवति । अत्र हि वेदाध्ययनसमावर्त्तनयोरव्यवधानमवगम्यते ॥ तावके मते त्वधीतेऽपि वेदे धर्मविचाराय गुरुकुले वस्तव्यं तथा सत्य-व्यवधानं बाध्येत । तस्माद्विचारशास्त्रस्य वैधत्वाभावात् पाठमात्रेण स्वर्गसिद्धेः समावर्तनशास्त्राच्च धर्मविचारशास्त्रमना-रम्भणीयम् इति पूर्वपक्षसंक्षेपः ॥ ७ ॥

अतएव वेदाध्ययनानन्तर समावर्तन (गृहस्थाश्रमग्रहण) विधिभी उपपन्न होता है यह विधि अध्ययन और समावर्तनका अव्यवहित पूर्वोत्तरकाल निर्णय करती है आपके मतमें वेदाध्ययन करके धर्मविचारके लिये गुरुकुलमें निवास करना होगा तब तो अव्यवधान बाधित होगा अतः विचारशास्त्र विधिविषय न होनेसे अक्षर-पाठमात्रसेही स्वर्गसिद्धि होनेके कारण और समावर्तन शास्त्रबलसे धर्मविचार (मीमांसा) शास्त्र अनारम्भणीय है ॥ ७ ॥

सिद्धान्तस्त्वन्यतः प्राप्तत्वादप्राप्तविधित्वं मास्तु नियमविधित्वपक्षस्तु वज्रहस्तेनापि नापहस्तयितुं पार्यते ॥ तथाहि स्वाध्यायोध्येतव्य इति तव्यप्रत्ययः प्रेरणापरपर्यायां पुरुषवृत्तिरूपार्थभावनाभाव्यामभिधाभावनां प्रत्याययति । सा ह्यर्थभावनासहितमनुबद्धं भाव्यमाकांक्षति न तावत्समानपदोपात्तमध्ययनभाव्यं परिरभते ॥ अध्ययनशब्दार्थस्य स्वाधीनोच्चारणक्षमत्वस्य वाङ्मनसव्यापारस्य क्लेशार्थकस्य भाव्यत्वासम्भवात् । नापि समानवाक्योपात्तः स्वाध्यायः स्वाध्यायशब्दार्थस्य वर्णराशेर्नित्यत्वेन विभुत्वेन चोत्पत्त्यादीनां चतुर्णां क्रियाफलानामसम्भवात् । तस्मात्सामर्थ्यप्राप्तोऽर्थावबोधो भाव्यत्वेनावतिष्ठते ॥ ८ ॥

(सिद्धान्त इति) प्रकारान्तरद्वारा प्राप्त होनेसे अप्राप्तविधि न हो परन्तु नियमविधिपक्षको वज्रपाणिभी नहीं हटा सकते हैं (तथाहि इति) शाब्दी और आर्थी भेदसे दो प्रकारकी भावना होती है लिङ् लेट् लोट् तव्यप्रत्ययादिवाच्यभावना शाब्दी कही जाती है शब्दभावना निष्पाद्य पुरुषनिष्ठ प्रवृत्तिरूप भावना आर्थी है प्रत्येक भावनामें साध्यसाधन इतिकर्तव्यतारूप अंशत्रय रहते हैं । एवञ्च अध्येतव्यमें तव्यप्रत्यय प्रेरणापर्याय पुरुषप्रवृत्तिरूप अर्थ भावना भाव्य शब्दभावनाको बोध करता है वही भावना अर्थभावनासहित भाव्यकी अपेक्षा करती है उसमें एकपदोपात्त अध्ययन भाव्य नहीं हो सकता क्योंकि अध्ययनशब्दार्थ स्वाधीनोच्चारणक्षम क्लेशजनक वाङ्मनोव्यापार है अतः उसका भाव्यत्व असम्भव है समान वाक्योपात्त स्वाध्यायभी भाव्य नहीं हो सकता । क्योंकि स्वाध्यायशब्दवाच्य अक्षरराशिको नित्य मानो तो उसमें उत्पत्ति वृद्धि अपक्षय और नाशरूप चतुर्विध क्रियाफल असम्भव है अतः सामर्थ्यप्राप्त अर्थावबोध भाव्यतयासम्बन्ध हो सकता है ॥ ८ ॥

'अर्थी समर्थो विद्वानधिक्रियते' इति न्यायेन दर्शपूर्णमासादि-विषयावबोधमवेक्षमाणाः तत्त्वबोधे स्वाध्यायं विनियुञ्जते । अध्ययनविधिश्च लिखितपाठादिव्यावृत्त्या अध्ययनसंस्कृतत्वं स्वाध्यायस्यावगमयति । तथाच यथा दर्शपूर्णमासादिजन्यं परमापूर्वम् अवघातादिजन्यस्यावान्तरापूर्वस्य कल्पकं तथा समस्तक्रतुजन्यमपूर्वजातं क्रतुज्ञानसाधनाध्ययननियमजन्यम-पूर्वं कल्पयिष्यति नियमादृष्टानिष्टौ विधिश्रवणवैफल्यमापद्येत। न च विश्वजिन्न्यायेन फलकल्पनावकल्प्यते अर्थावबोधे दृष्टे फले सति फलान्तरकल्पनायाः अयोगात् ॥ ९ ॥

अर्थी समर्थ और विद्वान् अधिकारी होता है ऐसा नियम है दर्शपूर्णमासादिवि-षयनिर्णयाभिलाषी तत्त्वबोधमें स्वाध्यायविधिको विनियोग करते हैं अध्ययनविधि लिखितपाठको व्यावृत्ति करक अध्ययन सहकृतत्व बोधन करता है यथा दर्शपूर्ण-मासादिजन्यपरमापूर्व अवघातादिजन्य अवान्तर अपूर्वको कल्पना करता है तथा समस्त क्रतुजन्य अपूर्वजाति क्रतुज्ञानसाधन अध्ययननियमजन्य अपूर्वको कल्पना करेगा नियमजन्य अपूर्वको न मानो तो विधिही व्यर्थ हो जायगा विश्वजिन्न्यासे स्वर्गफल-कल्पना अयुक्त है क्योंकि अर्थावबोधरूप दृष्टफल सम्भव हो तो अदृष्टफलकल्पना अन्याय है ॥ ९ ॥

तदुक्तम्–"लभ्यमाने फले दृष्टे नादृष्टफलकल्पना । विधेस्तु नियमार्थत्वान्नानर्थक्यं भविष्यति ॥ "इति ॥ १० ॥

दृष्टफल प्राप्त हो तो अदृष्टकल्पना नहीं होती है अध्ययनविधिकी नियमार्थता सम्भव होनेसे वैयर्थ्य नहीं ॥ १० ॥

ननु वेदमात्राध्यायिनोऽर्थावबोधानुदयेऽपि साङ्गवेदाध्यायिनः पुरुषस्यार्थावबोधसम्भवात् । विचारशास्त्रस्य वैफल्यमिति चेत्तदसमञ्जसम्, बोधमात्रसम्भवेऽपि निर्णयस्य विचाराधीन-त्वात् । तद्यथा, अक्ताः शर्करा उपदधातीत्यत्र घृतेनैव न तैलादिनेत्यर्थनिर्णयो व्याकरणेन निगमेन निरुक्तेन वा न लभ्यते,

विचारशास्त्रेण तु 'तेजो वै घृतम्' इति वाक्यशेषवशादर्थनिर्णयो लभ्यते । तस्माद्विचारशास्त्रस्य वैधत्वं सिद्धम् ॥ ११ ॥

यदि कहो केवलवेदमात्राध्ययन करनेवालोंको अर्थ बोध न होनेपरभी सांगवेदाध्ययन करनेवालोंको अर्थबोध अवश्य हो जायगा अतः विचारशास्त्र व्यर्थ है ऐसा कथन अयुक्त है क्योंकि अर्थबोध होनेपरभी विचारशास्त्र जिस प्रकार चयनप्रकरणमें पठित अक्ताःशर्करा स्निग्धद्रव्यसे अश्वित पाषाणखण्डको कहता है परन्तु वह स्निग्धद्रव्य तैल या घृत इस प्रकारकी शंकाका निर्णय व्याकरणादिसे नहीं हो सकता है विचारशास्त्रसे तो तेजो वै इत्यादि घृतस्तुतिलिंगसे घृतसेही स्निग्ध करना ऐसा निर्णय होता है अतः विचारशास्त्रके वैधत्वसिद्ध है ॥ ११ ॥

न च वेदमधीत्य स्नायादिति शास्त्रं गुरुकुलनिवृत्तिपरं व्यवधानप्रतिबन्धकं बाध्येतेति मन्तव्यं स्नात्वा भुङ्क्ते इतिवत् पूर्वापरीभावसमानकर्तृकत्वमात्रप्रतिपत्त्या अध्ययनसमावर्त्तनयोर्नैरन्तर्य्यप्रतिपत्तेः । तस्माद्विधिसामर्थ्यादेवाधिकरणसहस्रात्मकपूर्वमीमांसाशास्त्रमारम्भणीयम् । इदं चाधिकरणं शास्त्रेणोपोद्घातत्वेन सम्बध्यते ॥ तदाह-"चिन्तां प्रकृतसिद्धार्थामुपोद्घातं प्रचक्षते "इति ॥ १२ ॥

वेदाध्ययनानन्तर समावर्तनाविधिका विरोध होगा ऐसा नहीं कह सकते यथा स्नान करके भोजन करे इत्यादि स्थलमें केवल पूर्वोत्तरकाल और एककर्तृकत्वमात्र त्वा प्रत्ययसे प्रतिपादित होता है न अव्यवहितत्वादि तथा वेदाध्ययन और समावर्तनको पूर्वोत्तरकालमात्र बोधन करेगा अव्यवहितत्वादिका बोध नहीं करेगा अतः विधिबलात् अधिकरणसहस्रात्मक मीमांसाशास्त्र आरम्भणीय है यह अधिकरणशास्त्रका उपोद्घातकरूप है । प्रकृत सिद्ध अर्थकी चिन्ताको उपोद्घात कहते हैं ॥ १२ ॥

इदमेवाधिकरणं गुरुमतमनुसृत्योपन्यस्यते । अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयीत तमध्यापयीतेत्यत्राध्यापनं नियोगविषयः प्रतिभासते । नियोगश्च नियोज्यमपेक्षते । कश्चात्र नियोज्य इति चेदाचार्यककाम एव सम्माननेत्यादिना पाणिन्यनुशासनेनाचार्य्यकरणेष्यमाणे नयतेर्धातोरात्मनेपदस्य विधानात् उपनयने यो नियोज्यः स एवाध्यापनेपि तयोरेकप्रयोगत्वात् ॥ १३ ॥

इसी अधिकरणको प्रभाकरके मतसे योजना करते हैं अष्टवर्षके ब्राह्मणको उपनयन करके उसको अध्यापन करावे इस श्रुतिमें अध्यापनविधिका विषय प्रतीत होता है नियोग नियोज्य सापेक्ष है (कार्यको स्वकीयत्वेन जाननेवाला नियोज्य होता है) क्योंकि कहा है ' नियोज्यः स तु कार्यं यः स्कीयत्वेन बुध्यते " नियोज्य कौन होगा ऐसा विचार उपस्थित होनेपर जो आचार्य कामनावान् है वही नियोज्य हैं (सम्माननोत्सञ्जनाचार्यकरणज्ञानभृतिविगनणव्ययेषु नियः) इस सूत्रसे आचार्य करण अर्थमें नी धातुसे आत्मनेपदप्रत्ययका विधान होता है उपनयनमें जो नियोज्य हो वही अध्यापनमेंभी नियोज्य होगा क्योंकि दोनों एककर्तृक हैं ॥ १३ ॥

अत एवोक्तं मनुना मुनिना-"उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्द्विजः । सांगं च सरहस्यं च तमाचार्य्यं प्रचक्षते ॥" इति ॥ १४ ॥

अतएव मनुजीने कहा है जो ब्राह्मण शिष्यको उपनयन कराकर सांग सरहस्य वेदाध्ययन कराता है वही आचार्य है ॥ १४ ॥

ततश्चाचार्यकर्तृकमध्यापनं माणवककर्तृकेणाध्ययनेन विना न सिद्ध्यतीत्यध्यापनविधिप्रयुक्त्यैवाध्ययनानुष्ठानं सेत्स्याति प्रयोज्यकव्यापारमन्तरेण प्रयोजकव्यापारस्यानिर्वाहात् ॥ तर्ह्यध्येतव्य इत्यस्य विधित्वं न सिध्यतीति चेन्मासैत्सीत् का नो हानिः पृथगध्ययनविधेरभ्युपगमे प्रयोजनाभावाद्विधित्वस्य नित्यानुवादत्वेनाप्युपपत्तेः । तस्मादध्ययनविधिमुपजीव्य पूर्वमुपन्यस्तौ पूर्वोत्तरपक्षौ प्रकारान्तरेण प्रदर्शनीयौ विचारशास्त्रमवैधत्वेनानारब्धव्यमिति पूर्वपक्षः । वैधत्वेनारब्धव्यमिति राद्धान्तः ॥ १५ ॥

अतः आचार्यकर्तृक अध्यापन बालककर्तृक अध्ययनके विना असम्भव होनेसे अध्यापनविधिसे अर्थापत्त्या अध्ययनभी सिद्ध होगा प्रेर्यव्यापारके विना प्रेरकव्यापार अनुपपन्न होता है । यदि कहो उक्त क्रम माने तो अध्ययनको विधित्व सिद्ध न होगा न सिद्ध हो हानि क्या है अध्ययनका पृथक् विधानमें प्रयोजन न होनेसे अनुवाद माननेसेभी अध्ययनविधि उपपन्न होती है अतः अध्ययन विधिको लेकर पूर्वोक्त पूर्वोत्तर पक्षको प्रकारान्तरसे योजना करना चाहिये अवैध होनेसे विचारशास्त्र

अनारम्भणीय है ऐसा पूर्वपक्ष है सिद्धान्त वैध है अतः अध्ययनाविधिका आरम्भ करना चाहिये ॥ १५ ॥

तत्र वैधत्वं वदता वदितव्यं किमध्यापनविधिर्माणवकस्यार्थावबोधमपि प्रयुङ्क्ते किं वा पाठमात्रम् । नाद्यः विनाप्यर्थावबोधेनाध्यापनासिद्धेः । न द्वितीयः पाठमात्रे विचारस्य विषयप्रयोजनयोरसम्भवादापाततः प्रतिभातः सन्दिग्धोऽर्थो विचारशास्त्रविषयो भवति । तथा सति यत्रार्थावगतिरेव नास्ति तत्र सन्देहस्य का कथा विचारफलस्य निर्णयस्य प्रत्याशा दूरत एव ॥ तथा च यदसन्दिग्धं प्रयोजनं तत्प्रेक्षावत्प्रतिपित्सागोचरं यथा समनस्केन्द्रियसन्निकृष्टः स्पष्टालोकमध्यमध्यासीनो घट इति न्यायेन विषयप्रयोजनयोरसम्भवेन विचारशास्त्रमनारभ्यमिति पूर्वः पक्षः ॥ १६ ॥

अध्ययनके विधित्ववादीको कहना होगा क्या अध्यापनविधि बालकको अर्थबोधभा करता है या पाठमात्र ? अर्थबोधके विनाभी अध्यापन सम्भव होनेसे प्रथमपक्ष नहीं कह सकते । पाठमात्रपक्षमें विचारका विषय और प्रयोजन असम्भव है यथाकथञ्चित् प्रतीत और संदिग्धअर्थ विचारका विषय होता है जहां अर्थज्ञानही नहीं तहां सन्देहकी बातही क्या है विचारका फल निर्णय तो दूर रहें तथाहि जो असन्दिग्ध प्रयोजन हो वही प्रेक्षावान्‌की प्रतिपत्तिका विषय होता है यथा ' मनोयुक्त इन्द्रिय सन्निकृष्ट विकसितप्रकाशवृत्तिघट ' इस न्यायसे विषय और प्रयोजनके न होनेसे विचारशास्त्र अनारम्भणीय है यह पूर्वपक्ष है ॥ १६ ॥

अध्यापनविधिनाथावबोधो मा प्रयोजि तथापि सांगवेदाध्यायिनो गृहीतपदपदार्थसंगतिकस्य पुरुषस्य पौरुषेयेष्विव प्रबन्धेषु आम्नायेऽप्यर्थावबोधः प्राप्नोत्येव ॥ ननु यथा विषं भुंक्ष्वेत्यत्र प्रतीयमानोऽप्यर्थो न विवक्षते मास्य गृहे भुङ्क्था इति भोजनप्रतिषेधस्य मातृवाक्यविषयत्वात् तथाम्नायार्थस्याविवक्षायां विषयाद्यभावदोषः प्राचीनः प्रादुःष्यादिति चेन्मैवं वोचः दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोर्वैषम्यसम्भवात् । विषभोजन-

वाक्यस्याप्तप्रणीतत्वेन मुख्यार्थपरिग्रहे बाधः स्यादिति विवक्षा नाश्रीयते । अपौरुषेये तु वेदे प्रतीयमानार्थः कुतो न विवक्ष्यते । विवक्षिते च वेदार्थे यत्र यत्र पुरुषस्य सन्देहः स सर्वोऽपि विचारशास्त्रस्य विषयो भविष्यति तन्निर्णयस्य प्रयोजनं तस्माद्ध्यापनविधिप्रयुक्तेनाध्ययनेनावगम्यमानस्यार्थस्य विचारार्हत्वाद्विचारशास्त्रस्य वैधत्वेन विचारशास्त्रमारम्भणीयमिति राद्धान्तसंग्रहः ॥ १७ ॥

अध्ययनविधिसे यद्यपि अर्थबोध न हो तथापि सांगवेदाध्ययनसे गृहीत पदपदार्थ सङ्गतिक पुरुषको पौरुषेय कालिदासादिप्रबन्धवत् वेदमेंभी अर्थबोध हो जायगा । यदि कहो जिस प्रकार विषको भोजन करो इस वाक्यसे प्रतीयमानभी अर्थ विवक्षित नहीं होता है किन्तु अमुकके घरमें भोजन न करो ऐसा वक्ताका तात्पर्य होता है तिसी प्रकार वेदार्थकीभी अविवक्षामें विषयादि न होनेसे पूर्वोक्त दोष तदवस्थ होगा ऐसा कह नहीं सकते क्योंकि दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिक विषम है विष भोजनवाक्य आप्तप्रणीत होनेपरभी मुख्यार्थ ग्रहणमें बाध हो जायगा अतः मुख्यार्थकी विवक्षा नहीं होती है अपौरुषेयवेदमें प्रतीयमान अर्थकी विवक्षा क्यों न होगी विवक्षित हो गई तो जहां २ पुरुषको सन्देह हो तहाँ तहाँ सर्वत्र विचारशास्त्रके विषय होंगे उसका निर्णय प्रयोजनभी होगा अतः अध्यापनविधिप्रयुक्त अध्ययन विधिसे प्रतीयमान अर्थ विचारणीय होनेसे वैधविचारशास्त्र आरम्भणीय है यह सिद्धान्त है ॥ १७ ॥

स्यादेतत्, वेदस्य कथमपौरुषेयत्वमभिधीयते तत्प्रतिपादकप्रमाणाभावात्, कथं मन्येथाः अपौरुषेयाः वेदाः सम्प्रदायाविच्छेदे सत्यस्मर्य्यमाणकर्तृकत्वादात्मवदिति, तदेतन्मंदं विशेषणासिद्धेः पौरुषेयवेदवादिभिः प्रलयसम्प्रदायाविच्छेदस्य कक्षीकरणात् ॥ किञ्च किमिदमस्मर्य्यमाणकर्तृकत्वं नाम अप्रतीयमानकर्तृकत्वमस्मरणगोचरकर्तृकत्वं वा । न प्रथमः कल्पः परमेश्वरस्य कर्तुः प्रमितेरभ्युपगमात् । न द्वितीयः विकल्पासहत्वात् । तथा हि किमेकेनास्मरणमभिप्रेयते सर्वैर्वा । नाद्यः

यो धर्मशीलो जितमानरोष इत्यादिषु मुक्तकोक्तिषु व्यभिचारात्। न द्वितीयः सर्वास्मरणस्य असर्वज्ञदुर्ज्ञानत्वात् पौरुषेयत्वे प्रमाणसम्भवाच्च वेदवाक्यानि पौरुषेयाणि वाक्यत्वात् कालिदासादिवाक्यवत्। वेदवाक्यान्याप्तप्रणीतानि प्रमाणत्वे सति वाक्यत्वात् मन्वादिवाक्यवदिति ॥ १८ ॥

अपौरुषेयसाधक प्रमाण न होनेसे वद अपौरुषेय कैसे होंगे ? यदि कहो अविच्छिन्न सम्प्रदाय होनेपरभी कर्ताका स्मरण नहीं होता है अतः वेद अपौरुषेय हैं इत्यादि अनुमानप्रमाण होगा यहभी अकिञ्चित्कर है क्योंकि सम्प्रदायाविछिन्नरूप विशेषणांश असिद्ध है पौरुषेय वादियोंने प्रलयकालमें सम्प्रदायविच्छेद माने हैं किञ्च क्या अप्रतीयमानकर्तृक अस्मर्य्यमाणकर्तृक है अथवा स्मरणविषयकर्तृक है ? ईश्वरको कर्ता माननेवालोंके मतमें प्रथमपक्ष अयुक्त हैं द्वितीय पक्षमेंभी क्या एकके स्मरणका अविषय कहते हो अथवा सबके स्मरणका अविषय कहते हो प्रथम मुक्तोक्तिमें व्यभिचरित है सर्वास्मरणविषयत्व सर्वज्ञके विना दुर्ज्ञेय होनेसे सर्वास्मरणत्वाभाव होगा वह सर्वस्मरणत्व है प्रत्युत पौरुषेयत्वमें प्रमाण होगा. कालिदासवाक्यवत् वेदवाक्य पौरुषेय है इत्यादि वेदवाक्य आप्तप्रणीत है सप्रमाणकवाक्य होनेसे इत्यादि विपरीतानुमानभी विद्यमान है ॥ १८ ॥

ननु-"वेदस्याध्ययनं सर्वं गुर्वध्ययनपूर्वकम्। वेदाध्ययनसामान्यादधुनाध्ययनं यथा ॥" इत्यनुमानं प्रति साधनं प्रगल्भत इति चेत्तदपि न प्रमाणकोटिं प्रवेष्टुमीष्टे। "भारताध्ययनं सर्वं गुर्वध्ययनपूर्वकम्। भारताध्ययनत्वेन साम्प्रताध्ययनं यथा ॥" इति ॥ १९ ॥

वेदका अध्ययन गुरुके अध्ययनपूर्वक होता है क्योंकि दोनोंके अध्ययनमें विशेष न होनेसे जिस प्रकार आजकलके अध्ययन इत्यादि अनुमानभी अभीष्टसाधक नहीं हो सकता क्योंकि भारताध्ययनमेंभी ऐसाही अनुमान कह सकते हैं ॥ १९ ॥

आभाससमानयोगक्षेमत्वात्। ननु तत्र व्यासः कर्त्तेति स्मर्य्यते। 'को ह्यन्यः पुण्डरीकाक्षान्महाभारतकृद्भवेत्' इत्यादाविति

चेदृत्तदसारम् । ' ऋचः सामानि जज्ञिरे । छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत' इति पुरुषसूक्ते वेदस्य सकर्तृकताप्रतिपादनात् । किञ्चानित्यः शब्दः सामान्यवत्त्वे सति अस्मदादिबाह्येन्द्रियग्राह्यत्वाद्घटवत् ॥ नन्विदमनुमानं स एवायं गकार इति प्रत्यभिज्ञाप्रमाणप्रतिहतमिति चेत् तदतिफल्गु लूनपुनर्जातकेशदलितकुन्दादाविव प्रत्यभिज्ञायाः सामान्यविषयत्वेन बाधकत्वाभावात् ॥ २० ॥

पुण्डरीकाक्षके सिवाय महाभारतको बनानेवाला कौन होगा इत्यादि वचनोंसे भारतादिके कर्ताको उपलब्धक हो तो ऋक्, यजु, साम और छन्द सब परमात्मासे उत्पन्न है इत्यादि पुरुषसूक्तप्रमाणसे वेदकाभी कर्ता प्रतीत है और भी शब्द अनित्य है जातिमान् होकर अस्मदादिके बाह्येन्द्रियग्राह्य होनेसे घटके समान इत्यादि अनुमानभी है। यदि कहो यह वही गकार है इत्यादि प्रत्यभिज्ञासे उक्तअनुमान बाधित है ऐसा कहना बडी स्थूल बात है मुण्डनके अनन्तर नवीन उत्पन्न केशर नूतन पुष्पोंमें जिस प्रकार प्रत्यभिज्ञा होती है तिसी प्रकार सोऽयं गकारः यहांपरभी प्रत्यभिज्ञा जातिनिमित्तक हो सकती है॥ २० ॥

नन्वशरीरस्य परमेश्वरस्य ताल्वादिस्थानाभावेन वर्णोच्चारणासम्भवात् कथं तत्प्रणीतत्वं वेदस्य स्यादिति चेन्न तद्भद्रं स्वभावतोऽशरीरस्यापि तस्य भक्तानुग्रहार्थलीलाविग्रहग्रहणसम्भवात् ॥ तस्माद्वेदस्यापौरुषेयत्ववाचो युक्तिर्न युक्तेति चेत् ॥ २१ ॥

अशरीरी परमेश्वरके ताल्वादि न होनेसे वर्णोच्चारण असंभव है अतः वेद ईश्वर कर्तृक कैसे होंगे यहभी अविचार मूलक है ईश्वरके वास्तवमें शरीर न होनेपरभी भक्तानुग्रहार्थ लीलाविग्रह सम्भव है अतः वेदोंके अपौरुषेयत्वकथन असंगत है ॥ २१ ॥

तत्र समाधानमभिधीयते । किमिदं पौरुषेयत्वं सिसाधयिषितं पुरुषादुत्पन्नत्वमात्रं, यथा अस्मदादिभिरहरहरुच्चार्यमाणस्य वेदस्य प्रमाणान्तरेणार्थमुपलभ्य तत्प्रकाशनाय रचि-

तत्वं वा, यथा अस्मदादिभिरेव निबध्यमानस्य प्रबन्धस्य प्रथमे न विप्रतिपत्तिः, चरमे किमनुमानबलात् तत्साधनमागमबलाद्वा । नाद्यः मालतीमाधवादिवाक्येषु सव्यभिचारत्वात् ॥ अथ प्रमाणत्वे सतीति विशिष्यत इति चेत्तदपि न विपश्चितो मनसि वैशद्यमापद्यते । प्रमाणान्तरागोचरार्थप्रतिपादकं हि वाक्यं वेदवाक्यं, तत्प्रमाणान्तरगोचरार्थप्रतिपादकमिति साध्यमाने मम माता वन्ध्येतिवत् व्याघातापातात् ॥२२ ॥

इसका उत्तर कहते हैं साध्य पौरुषेयत्व क्या अस्मदादिक प्रतिदिन उच्चार्यमाण वेदके समान पुरुषसे उत्पन्नत्वमात्र विवक्षित है, अथवा प्रमाणान्तरसे प्राप्त अर्थको प्रकाशनके लिये रचितत्व विवाक्षित है ? यथा अस्मदादिकोंके कृतप्रबन्ध । प्रथमपक्षमें विरोध नहीं है । द्वितीयपक्षको अनुमानबलसे कहते हो, या शास्त्रबलसे ? मालतीमाधवादिवाक्यमें हेतुव्यभिचरित होनेसे अनुमान नहीं कह सकते यदि प्रमाणत्वविशेषण जोड दे तोभी विद्वानोंके मनको प्रफुल्लित करने योग्य नहीं हो सकता क्योंकि प्रमाणान्तरार्थप्रतिपादक वेदवाक्यको प्रमाणान्तरप्रतिपादक मानना अपनी माताको वन्ध्या कहनेकी समान बाधित है ॥ २२ ॥

किञ्च परमेश्वरस्य लीलाविग्रहपरिग्रहाभ्युपगमेऽप्यतीन्द्रियार्थदर्शनं न सङ्घटीति देशकालस्वभावविप्रकृष्टार्थहरणोपायाभावात् ॥ न च तच्चक्षुरादिकमेव तादृक्प्रतीतिजननक्षममिति मन्तव्यं दृष्टानुसारेणैव कल्पनाया आश्रयणीयत्वात् ॥ तदुक्तं गुरुभिः सर्वज्ञनिराकरणवेलायाम् "यत्राप्यतिशयो दृष्टः स स्वार्थानतिलङ्घनात् । दूरसूक्ष्मादिदृष्टौ स्यान्न रूपे श्रोत्रवृत्तिता " ॥ इति ॥ २३ ॥

परमेश्वरकी लीलाविग्रहको स्वीकार करनेपरभी सूक्ष्मव्यवहितादि अतीन्द्रियार्थ ग्रहणमें उपाय न होनेसे तादृश ज्ञान असम्भव है । यदि कहो परमेश्वरके चक्षुरादिइन्द्रियेंही तादृश अर्थ सबका ग्रहण करते हैं । यहभी नहीं कहसकते दृष्टानुसारी कल्पना होती है विपरीत नहीं अतएव सर्वज्ञनिराकरणप्रकरणमें प्रभाकरगुरुने कहा है

कि कहींभी अतिशय हो वह स्वविषयको अनुल्लंघन करके होगा यथा चक्षुरादि दूर और सूक्ष्मादि रूपग्रहणमें समर्थ होता है किन्तु रूपग्रहणमें श्रोत्र समर्थ नहीं होगा ॥ २३ ॥

अत एव नागमबलात्तत्साधनं तेन प्रोक्तमिति पाणिन्यनुशासने जाग्रत्यपि काठककालापतैत्तिरीयमित्यादिसमाख्या अध्ययनसम्प्रदायप्रवर्त्तकविषयत्वेनोपपद्यते तद्वदत्रापि सम्प्रदायप्रवर्त्तकविषयत्वेनाप्युपपद्यते न चानुमानबलाच्छब्दस्यानित्यत्वसिद्धिः प्रत्यभिज्ञाविरोधात् ॥ न चासत्यप्येकत्वे सामान्यनिबन्धनं तदिति साम्प्रतं सामान्यनिबन्धनत्वमस्य बलवद्बाधकोपनिपातादास्थीयते । क्वचिद्व्यभिचारदर्शनाद्वा तत्र क्वचिद् व्यभिचारदर्शने तदुत्प्रेक्षायामुक्तं स्वतः प्रामाण्यवादिभिः ॥ "उत्प्रेक्षेत हि यो मोहादज्ञातमपि बाधनम् । स सर्वव्यवहारेषु संशयात्मा विनश्यति ॥" इति ॥ २४ ॥

आगमबलसेभी पौरुषेयत्व सिद्ध नहीं होगा। यदि कहो शब्दसाधुत्वबोधक व्याकरण है व्याकरणमें पाणिनिऋषिने काठक तैत्तिरीय आदि शब्दोंके साधुत्वके लिये तेन प्रोक्तम् तित्तिरिवरतन्तु इत्यादि अनुशासन किया है इससे कृतकप्रतीत होते हैं अतः पाणिनिसूत्रके रहते रहते वेदको पौरुषेय नहीं मान सकते क्योंकि काठक, कालाप, तैत्तिरीयादि शब्द तत्तत् शाखाध्ययन सम्प्रदायप्रवर्तक परत्वसे उपपन्न होते हैं। अनुमानबलसे शब्दानित्यत्वसिद्धिभी न होगी क्योंकि प्रत्यभिज्ञाविरोध होता है । प्रत्यभिज्ञाको सामान्यपरत्व नहीं मानसकते सामान्यनिबन्धन प्रत्यभिज्ञा नहीं माना जाता है जहाँ व्यक्तिमें प्रबलबाधक हो कहीं कहीं व्यक्तिमें व्यभिचार देखनेसे जातिनिमित्त प्रत्यभिज्ञा होती है व्यभिचारदर्शन न होनेपरभी सामान्योत्प्रेक्षा माननेवालोंके प्रति स्वतः प्रामाण्यवादियोंने इस प्रकार कहा है—बाधज्ञान न होनेपरभी जो अज्ञानसे बाधककी उत्प्रेक्षा करता है वह समस्त व्यवहारोंमें सन्दिग्ध होनेसे विनष्ट होता है ॥ २४ ॥

नन्विदं प्रत्यभिज्ञानं गत्वादिजातिविषयं न गादिव्यक्तिविषयं तासां प्रतिपुरुषं भेदोपलम्भादन्यथा सोमशर्माधीते इति

विभागो न स्यादिति चेत्तदपि शोभां न बिभर्ति गादिव्यक्ति-भेदे प्रमाणाभावेन गत्वादिजातिविषयकल्पनायां प्रमाणाभा-वात् ॥ यथा गत्वमजानत एकमेव भिन्नदेशपरिमाणसंस्थान-व्यक्त्युपधानवशात् भिन्नदेशमिवाल्पमिव महदिव दीर्घमिव वामनमिव प्रथते तथा गव्यक्तिमजानत एकापि व्यञ्जकभेदात् तत्तद्धर्मानुबन्धिनी प्रतिभासते ॥ २५ ॥

यदि शंका करे प्रत्यभिज्ञा गत्वादिजातिपर है न व्यक्तिपर । व्यक्ति प्रतिपुरुषभिन्न प्रतीत होती है अन्यथा सोमदत्त पढता है इत्यादि भेद व्यवहार न होगा यहभी शोभा नहीं देता गकारादि व्यक्तिभेदमें प्रमाण न होनेसे गत्वादि जातिविषयकल्पना निष्प्रमाणक है । जिस प्रकार गत्वको न जाननेवालेको एकही गत्व भिन्नदेश भिन्नव्यक्ति परिमाण संस्थानोपाधिवश भिन्नदेशवत् तथा अणु महत् दीर्घ वामनादिवत् भासता है उसी प्रकार गव्यक्तिके न जाननेवालेकोभी व्यक्ति एक होनेपरभी व्यञ्ज-कभेद होनेसे तत्तत्व्यञ्जकधर्म्मयुक्त प्रतीत होता है ॥ २५ ॥

एतेन विरुद्धधर्माध्यासात् भेदप्रतिभास इति प्रत्युक्तम् ॥ तत्र किं स्वाभाविको विरुद्धधर्माध्यासो भेदसमधिकत्वेनाभिमतः प्रातीतिको वा । प्रथमे असिद्धिः अपरथा स्वाभाविकभेदा-भ्युपगमाद्दशगकारानुदचारयच्चैत्र इति प्रतिपत्तिः स्यात् । न तु दशकृत्वो गकार इति । द्वितीये तु न स्वाभाविकभेदसिद्धिः । न हि परोपाधिभेदेन स्वाभाविकमैक्यं विहन्यते । मा भून्नभ-सोऽपि कुम्भाद्युपाधिभेदात् स्वाभाविको भेदस्तत्र व्यावृत-व्यवहारो नादनिदानः ॥ तदुक्तमाचार्यैः–"प्रयोजनं तु यज्जा-तेस्तद्वर्णादेव लभ्यते । व्यक्तिलभ्यं तु नादेभ्य इति गत्वादि-धीर्वृथा ॥ "इति । या च–"प्रत्यभिज्ञा यदा शब्दे जागर्त्ति निरवग्रहा । अनित्यत्वानुमानानि सैव सर्वाणि बाधते " ॥२६॥

अतएव भेदप्रतीतिविरुद्धधर्मके अध्याससे होती है ऐसा किसीने कहा सो भी निरस्त हो गया क्या विरुद्धधर्माध्यास स्वाभाविक अभिमत है या प्रातीतिक स्वाभाविकभेद असिद्ध है अन्यथा दश गकारको उच्चारण किया ऐसी प्रतीति होने-

लगेगी दशवार उच्चारण किया ऐसी प्रतीति न होगी द्वितीयपक्षमें स्वाभाविक भेदा- सिद्धि अन्योपाधिभेदसे स्वाभाविक ऐक्यका विघात नहीं होगा आकाशमेंभी घटादि उपाधिभेदसे स्वाभाविक भेद होता है उसमें व्यावृत्ति नादमूलक है। आचार्योंने कहा है जाति माननेसे जो प्रयोजन है वह वर्णसेभी सिद्ध होता है व्यक्तिलाभ नादसे होगा अतः जात्याश्रयण व्यर्थ है (स एव अयं गकारः) ऐसी प्रत्याभिज्ञा वर्णवि- षयमें निर्बाध विद्यमान है तो वही प्रत्यभिज्ञा सम्पूर्ण अनित्यत्वानुमानको बाधती है ॥ २६ ॥

एतेनेदमपास्तम् । यद्वादि वागीश्वरेण मानमनोहरे अनित्यः शब्दः इन्द्रियविशेषगुणत्वाच्चक्षूरूपवदिति। शब्दद्रव्यत्ववादिनां प्रत्यक्षसिद्धेः ध्वन्यंशे सिद्धसाधनत्वाच्च अश्रावणत्वोपाधिबा- धितत्वाच्च ॥ उदयनस्तु आश्रयाप्रत्यक्षत्वेऽप्यभावस्य प्रत्य- क्षतां महता प्रबन्धेन प्रतिपादयन् निवृत्तः कोलाहलः उत्पन्नः शब्द इति व्यवहाराचरणे कारणं प्रत्यक्षं शब्दानित्यत्वे प्रमा- णयाति स्म ॥ सोऽपि विरुद्धधर्मसंसर्गस्य औपाधिकत्वोपपा- दनन्यायेन दत्तरक्तबलिनेव तालः समापोहि । नित्यत्वे सर्वदो- पलब्धानुपलब्धिप्रसङ्गो यो न्यायभूषणकारोक्तः सोऽपि ध्वनि- संस्कृतस्योपलम्भाभ्युपगमात् प्रतिक्षिप्तः ॥ २७ ॥

इससे शब्दको पक्षकर रूपदृष्टान्तप्रदर्शनपूर्वक इन्द्रियविशेष गुणत्वहेतुसे अनि- त्यत्वसाधन जो वागीश्वरने कहा सोभी खण्डित हो गया। शब्दको द्रव्य माननेवालोंके मतमें हेतु स्वरूपासिद्ध है ध्वनिविषयमें सिद्धसाधनभी है । अश्रावणत्वरूप उपाधिसे बाधितभी है । उदयनाचार्यने आश्रयप्रत्यक्षाभावमेंभी अभावप्रत्यक्षको महानाडम्बरसे कहकर कोलाहल शान्त हो गया शब्द उत्पन्न हुआ इत्यादि व्यवहारका असाधारण कारण प्रत्यक्षही शब्दानित्यत्वमें प्रमाण कहा यहभी विरुद्धधर्मसंसर्गको औपाधि- कत्वस्वीकारवत् रक्तबलिदानके समान दत्तोत्तर है नित्यत्वमें सदा उपलब्धि या अनु- पलब्धि दोष जो न्यायभूषणकारने कहा वहभी ध्वनिसहकृतकी उपलब्धि पक्षसेही तिरस्कृत हो गया ॥ २७ ॥

यत्तु युगपदिन्द्रियसम्बन्धित्वेन प्रतिनियतसंस्कारकसंस्कार्य्य- भावानुमानं तदात्मन्यनैकान्तिकमसति कलकले ततश्च वेद-

स्यापौरुषेयतया निरस्तसमस्तशंकाकलंकांकुरत्वेन स्वतः सिद्धं धर्मे प्रामाण्यमिति सुस्थितम् ॥ २८ ॥

किसीने युगपत् इन्द्रियसम्बद्धनियत संस्कारकसंस्कार्यभावको अनुमान किया वहभी आत्मामें व्यभिचारित है। अतः वेद अपौरुषेय होनेसे समस्त शंका निष्कलंक होनेके कारण धर्ममें प्रामाण्य स्वतः सिद्ध है ॥ २८ ॥

स्यादेतत्–"प्रमाणत्वाप्रमाणत्वे स्वतः सांख्याः समाश्रिताः। प्रथमं परतः प्राहुः प्रामाण्यं वेदवादिनः ॥ नैयायिकास्ते परतः सौगताश्चरमं स्वतः। प्रमाणत्वं स्वतः प्राहुः परतश्चाप्रमाणताम्॥"इति ॥ वादिविवाददर्शनात् कथङ्कारं स्वतःसिद्धं धर्मप्रामाण्यमिति सिद्धवत्त्वस्य स्वीक्रियते ॥ २९ ॥

(स्यादेतदिति)सांख्यवादी प्रमाणत्व अप्रमाणत्व दोनों स्वतः मानते हैं। नैयायिक दोनों परतः मानते हैं। बौद्ध लोग प्रमाणत्व परतः अप्रमाणत्व स्वतः कहते हैं। वेदवादी स्वतः प्रामाण्य अप्रामाण्य परतः कहते हैं इस प्रकार परस्पर विवाद होनेसे धर्ममें स्वतः प्रामाण्य कैसे मानते हो ॥ २९ ॥

किञ्च किमिदं स्वतःप्रामाण्यं नाम ? किं स्वत एव प्रामाण्यस्य जन्म ? आहोस्वित् स्वाश्रयज्ञानजन्यत्वम् ? किमुत स्वाश्रयज्ञानसामग्रीजन्यत्वम् ? उताहो ज्ञानसामग्रजिन्यज्ञानविशेषाश्रितत्वम् ? किंवा ज्ञानसामग्रीमात्रजन्यज्ञानविशेषाश्रितत्वम् ? तत्राद्यः सावद्यः कार्य्यकारणभावस्य भेदसमानाधिकरणत्वेनैकस्मिन्नसम्भवात्। नापि द्वितीयः गुणस्य सतो ज्ञानस्य प्रामाण्यं प्रति समवायिकारणतया द्रव्यत्वापातात्। नापि तृतीयः प्रामाण्यस्योपाधित्वे जातित्वे वा जन्मायोगात्,स्मृतित्वानधिकरणस्य ज्ञानस्य बाधात्यन्ताभावः प्रामाण्योपाधिः, न च तस्योत्पत्तिसम्भवः अत्यन्ताभावस्य नित्यत्वाभ्युपगमादतएव न जातेरपि जनिर्युज्यते। नापि चतुर्थः ज्ञानविशेषो ह्यप्रमा विशेषसामग्र्यां च सामान्यसामग्री अनुप्रविशति शिंश-

पासामग्र्यामिव वृक्षसामग्री अपरथा तस्याकस्मिकत्वं प्रसज्जेत् । तस्मात् परतस्त्वेन स्वीकृताप्रामाण्यं विज्ञानसामग्रीजन्याश्रितमित्यतिव्याप्तिरापद्येत ॥ ३० ॥

स्वतः प्रामाण्यही किसको कहते हो प्रामाण्यके स्वतः जन्मको १, या स्वाश्रयज्ञानजन्यको २, किंवा स्वाश्रयज्ञानसामग्रीजन्यको ३, अथवा ज्ञानसामग्रीजन्यज्ञानविशेषाश्रितको ४, या ज्ञानसामग्रीमात्रसे जन्यज्ञानविशेषाश्रितको ५ ? कार्यकारणभाव दोनों भेद समानाधिकरण होनेसे एकमें असम्भव हैं अतः प्रथमपक्ष असम्भव है । द्वितीयभी नहीं कहसकता गुणरूपज्ञानको प्रामाण्यके प्रति समवायिकारण मानो तो द्रव्यत्वप्रसङ्ग होगा प्रामाण्यकी जातित्वपक्षमें या उपाधित्वपक्षमें उत्पत्ति न होनेसे तृतीयपक्षभी नहीं हो सकता स्मृतित्वानधिकरणज्ञानको वाधात्यन्ताभाव प्रामाण्यकी उपाधि है अत्यन्ताभाव नित्य होनेसे उसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती इस प्रकार जातिकीभी उत्पत्ति बाधित है । चतुर्थभी नहीं होसकता क्योंकि ज्ञानविशेषही अप्रमा है विशेषसामग्रीके मध्यमें सामान्यसामग्री प्रविष्ट रहती है । जिस प्रकार शिंशपा पदार्थमें वृक्षपदार्थ प्रविष्ट रहता है नहीं तो विशेष अकारणक होगा अतः परतस्त्वेन स्वीकृत अप्रामाण्यको विज्ञानसामग्रीजन्यके आश्रित कहना अतिव्याप्तिग्रस्त है ॥ ३० ॥

पञ्चमविकल्पं विकल्पयामः, किं दोषाभावासहकृतज्ञानसामग्रीजन्यत्वमेव ज्ञानसामग्रीमात्रजन्यत्वम्, किं दोषाभावसहकृतज्ञानसामग्रीजन्यत्वम् । नाद्यः दोषाभावासहकृतज्ञानसामग्रीजन्यत्वमेव परतःप्रामाण्यमिति परतः प्रामाण्यवादिभिरुररीकरणात् । नापि द्वितीयः दोषाभावसहकृतत्वेन सामग्र्यां सहकृतत्वे सिद्धे अनन्यथासिद्धान्वयव्यतिरेकसिद्धतया दोषाभावस्य कारणताया वज्रलेपायमानत्वात् । अभावः कारणमेव न भवतीति चेत्तदा वक्तव्यम्, अभावस्य कार्य्यत्वमस्ति न वा, यदि नास्ति तदा पटप्रध्वंसानुपपत्त्या नित्यताप्रसङ्गः, अथास्ति किमपराद्ध कारणत्वेनेति सेयमुभयतः पाशारज्जुः । तदुदितमुदयनेन-'भावो यथा तथाभावः कारणं कार्यवन्मतम्' इति ॥ ३१ ॥

पञ्चम पक्षमेंभी क्या दोषाभावासहकृत ज्ञानसामग्रीजन्यको ज्ञानसामग्रीनात्र जन्यत्व कहते हो किंवा दोषाभाव सहकृत ज्ञानसामग्रीजन्यको ? प्रथमपक्षको परतः प्रामाण्यवादियोंने परतः प्रामाण्य माना है । द्वितीयपक्षमें दोषाभावसहकृत होनेसे सामग्रीमेंभी सहकृतत्व हो जायगा तो अन्वयव्यतिरेकवश दोषाभावका कारणत्व दुर्निवार होगा । यदि कहो अभाव कारण नहीं होता तो क्या अभाव कार्य होता है या नहीं ? नहीं मानो तो पटध्वंस न होनेसे पटको नित्यत्व प्रसंग होगा, होता हो तो कारण क्या अपराध किया । उदयनाचार्यनेभी कहा है जिस प्रकार भाव कार्य कारणरूप दोनों होते हैं तिसी प्रकार अभावभी होता है ॥ ३१ ॥

तथाच प्रयोगः विमता प्रमा, ज्ञानहेत्वतिरिक्तहेत्वधीना, कार्य्यत्वे सति तद्विशेषत्वात् अप्रमावत् । प्रामाण्यं परतो ज्ञायते अनभ्यासदशायां सांशयिकत्वात् अप्रामाण्यवत् । तस्मादुत्पत्तौ ज्ञप्तौ च परतस्त्वे प्रमाणसम्भवात् स्वतः सिद्धं प्रामाण्यमित्येतत् पूतिकूष्माण्डायत इति चेत् तदेतदाकाशमुष्टिहननायते ॥ ३२ ॥

अनुमानप्रयोग विवादग्रस्त प्रमा, ज्ञानहेतुसे अतिरिक्त हेतुके अधीन है कार्यविशेष होनेसे अप्रमावत्, प्रामाण्य पराधीन ज्ञानविषय है अनभ्यासदशामें संशयजनक होनेसे अप्रामाण्यवत् । अतः उत्पत्तिमें और ज्ञप्तिमें प्रामाण्यको परतस्त्व होनेसे स्वतः सिद्धत्वकथन सडेकूष्मांडके समान है इत्यादि कथनभी आकाशमें मुष्टिप्रहार सदृश है ॥ ३२ ॥

विज्ञानसामग्रीजन्यत्वे सति तदतिरिक्तहेत्वजन्यत्वं प्रमायाः स्वतस्त्वमिति निरुक्तिसम्भवात् । अस्ति चात्रानुमानं विमता प्रमा विज्ञानसामग्रीजन्यत्वे सति तदतिरिक्तजन्या न भवति अप्रमात्वानधिकरणत्वात् घटादिवत् । न चोदयनमनुमानं परतस्त्वसाधकमिति शङ्कनीयं प्रमा दोषव्यतिरिक्तज्ञानहेत्वतिरिक्तजन्या न भवति ज्ञानत्वादप्रमावादिति प्रतिसाधनग्रहग्रस्तत्वात् ज्ञानसामग्रीमात्रादेव प्रमोत्पत्तिसंभवे तदतिरिक्तस्य गुणस्य दोषभावस्य वा कारणत्वकल्पनायां कल्पनागौरवप्रसङ्गाच्च ॥ ३३ ॥

विज्ञानसामग्रीजन्य हों तदतिरिक्तकारणाजन्यत्वही प्रमामें स्वतस्त्वका निर्वचन है अनुमानभी है घटवत् अप्रमात्वका अधिकरण न होनेसे प्रमा विज्ञानसामग्रीसे जन्यहोकर तद्भिन्न सामग्रीजन्य नहीं है । उदयनके अनुमानसे परस्त्वाशंकाभी नहीं कहसकते । प्रमा दोषसे अतिरिक्त ज्ञानहेत्वतिरिक्तजन्य नहीं, ज्ञान होनेसे अप्रमावत् इत्यादि सत्प्रतिपक्षित है ज्ञानसामग्रीमात्रसे प्रमाकी उत्पत्ति सम्भव होनेसे अतिरिक्त गुण अथवा दोषकी कल्पना करना गौरवभी है ॥ ३३ ॥

ननु दोषस्याप्रमाहेतुत्वेन तदभावस्य प्रमां प्रति हेतुत्वं दुर्निवारमिति चेत् न दोषाभावस्याप्रमाप्रतिबन्धकत्वेनान्यथासिद्धत्वात् ॥ "तस्माद् गुणेभ्यो दोषाणामभावस्तदभावतः । अप्रामाण्यद्वयासत्त्वं तेनोत्सर्गो नयोदितः ॥ "इति । तथा प्रमाज्ञप्तिरपि ज्ञानज्ञापकसामग्रीत एव जायते । न च संशयानुदयप्रसङ्गो बाधक इति युक्तं वक्तुं सत्यपि प्रतिभासपुष्कलकारणे प्रतिबन्धकदोषादिसमवधानात् तदुपपत्तेः ॥ किञ्च तावकमनुमानं स्वतः प्रमाणं न वा । आद्ये अनैकान्तिकता, द्वितीये तस्यापि परतः प्रामाण्यमेवं तस्य तस्यापीत्यनवस्था दुरवस्था स्यात् ॥ ३४ ॥

यदि कहो दोष अप्रमाका कारण हुआ तो दोषाभाव प्रमाके प्रति अवश्य कारण होगा यहभी नहीं कह सकते क्योंकि दोषाभाव अप्रमाके प्रतिबन्धक होनेसे अन्यथा सिद्ध है । गुणसे दोषका अभाव तदभावसे अप्रामाण्यद्वयसत्ता प्रमाज्ञानभी ज्ञानज्ञापकसामग्रीसे उत्पन्न होता है । संशयानुदयप्रसंगभी बाधक नहीं कह सकते क्योंकि प्रतिभासका समस्त कारण रहनेपरभी प्रतिबन्धकदोषवश संशय उपपन्न होता है । आपका अनुमान स्वतः प्रमाण है या नहीं ? प्रथम पक्षमें प्रामाण्यका परतस्त्व यहां व्यभिचरित हो गया द्वितीयपक्षमें उक्तानुमानको प्रमाणान्तरसे प्रामाण्य है उसकोभी अन्यसे इत्यादि अनवस्था होगी ॥ ३४ ॥

यदत्र कुसुमाञ्जलावुदयनेन झटिति प्रचुरप्रवृत्तेः प्रामाण्यानिश्चयाधीनत्वाभावमापादयता प्रण्यगादि । प्रवृत्तिर्हीच्छामपेक्षते तत्प्राचुर्य्ये चेच्छाप्राचुर्यम्, इच्छा चेष्टसाधनताज्ञानम्, तच्चेष्ट-

जातीयत्वलिंगानुभवम्, सोऽपीन्द्रियार्थसन्निकर्षं प्रामाण्यग्रहं तु न क्वचिदुपयुज्यत इति तदपि तस्करस्य पुरस्तात् कक्षे सुवर्णमुपेत्य सर्वाङ्गोद्घाटनमिव प्रतिभाति। अतः समीहितसाधनज्ञानमेव प्रमाणतयावगम्यमानमिच्छां जनयतीत्यत्रैव स्फुट एव प्रामाण्यग्रहणस्योपयोगः ॥ ३५ ॥

इस विषयमें कुसुमाञ्जलिमें/ शीघ्र प्रचुरप्रवृत्तिसे प्रामाण्यनिश्चयाधीनत्वाभावोपपादन करते हुए कहा है कि प्रवृत्ति इच्छाकी अपेक्षा करती है प्रवृत्तिप्राचुर्यमें इच्छाप्राचुर्य्य, इच्छा इष्टसाधनताज्ञानकी अपेक्षा रखती है वह इष्टजातीयत्वलिंगानुभवकी वहभी इन्द्रियार्थसन्निकर्षकी प्रामाण्यग्रह कहींभी उपयुक्त नहीं इत्यादि वहभी चोरके सामने काँखमें सुवर्ण छिपाकर सर्वांगको उघाड कर दिखानेकी समान है अतः प्रमाणत्वेन अवगत अभिमतसाधनही इच्छाको उत्पन्न करता है उसमें प्रामाण्यग्रहणका उपयोग स्पष्ट है ॥ ३५ ॥

किञ्च क्वचिदपि चेन्निर्विचिकित्सा प्रवृत्तिः संशयादुपपद्येत तर्हि सर्वत्र तथाभावसम्भवात् प्रामाण्यनिश्चयो निरर्थकः स्यात् अनिश्चितस्य सत्त्वमेव दुर्लभमिति प्रामाण्यं दत्तजलाञ्जलिकं भवेत् इत्यलमतिप्रपञ्चेन ॥ यस्मादुक्तं–"तस्मात् सद्बोधकत्वेन प्राप्ता बुद्धेः प्रमाणता। अर्थान्यथात्वहेतूत्थदोषज्ञानादपोद्यते ॥" इति ॥ ३६ ॥

किञ्च कहींभी निस्संशयप्रवृत्ति होती हो तो सर्वत्र वैसी हो जायगी पुनः प्रामाण्य निश्चयभी निरर्थक है अनिश्चितकी सत्ताभी दुर्लभ होनेसे प्रामाण्यभी दत्तजलाञ्जलि हो जायगा अतः सत्वस्तुबोधनद्वारा प्राप्त बुद्धिकी प्रमाणता अर्थके तद्विपरीतहेतुजन्यदोषज्ञानसे बाधित होती है ॥ ३६ ॥

तस्माद्धर्मे स्वतः सिद्धप्रमाणाभावे ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेतेत्यादिविध्यर्थवादमन्त्रनामधेयात्मके वेदे यजेतेत्यत्र तप्रत्ययः प्रकृत्यर्थोपरक्तां भावनामभिधत्त इति सिद्धे व्युत्पत्तिमभ्युपगच्छतामभिहितान्वयवादिनां भट्टाचार्याणां सिद्धान्तो

यागविषयो नियोग इति कार्यं व्युत्पत्तिमनुसरतामन्विताभिधानवादिनां प्रभाकरगुरूणां सिद्धान्त इति सर्वमवदातम् ॥ ३७ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहे जैमिनीयदर्शनं समाप्तम् ॥ १२ ॥

अतः धर्ममें प्रमाणता स्वतः सिद्ध होनेसे 'स्वर्गकामज्योतिष्टोमयागसे स्वर्गसम्पादन करे' इत्यादि विधि, अर्थवाद, मन्त्र, नामधेयरूप वेदमें यजेत यहां तप्रत्यय प्रकृत्यर्थयुक्त भावनाको कहता है यह सिद्धवस्तुबोधक (घटोस्ति) इत्यादिमें व्युत्पत्ति माननेवाले अभिहितान्वयवादि भट्टाचार्यसिद्धान्त है कार्यव्युत्पत्तिवादी प्रभाकरके मतमें यागविषयनियोग यह सिद्धान्त है ॥ ३७ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहमें जैमिनीयदर्शनम् ।

अथ पाणिनिदर्शनम् ॥ १३ ॥

नन्वयं प्रकृतिभागः अयं प्रत्ययभाग इति प्रकृतिप्रत्ययविभागः कथमवगम्यत इति चेत् पीतपातञ्जलजलानामेतच्चाद्यं चमत्कारं न करोति व्याकरणशास्त्रस्य प्रकृतिप्रत्ययविभागपरतायाः प्रसिद्धत्वात् । तथाहि पतञ्जलेर्भगवतो महाभाष्यकारस्य इदमादिमं वाक्यं 'अथ शब्दानुशासनम्' इति ॥ १ ॥

समस्त शास्त्रज्ञान वाक्यसंधानरूपी डोरीसे ग्रथित है वाक्यभी पदतन्तुसे ग्रथित है प्रकृतिप्रत्यय संघातात्मक पद है । इसमें अमुक प्रकृति और अमुक प्रत्यय है इसका निर्णय कैसे होगा । इस प्रकारका प्रश्न पातञ्जलरूप जलको जो नहीं पान किये हों उनके लिये चमत्कारजनक है । पान किये हुएओंके लिये नहीं, व्याकरणशास्त्रको प्रकृतिप्रत्ययविभागपरता प्रसिद्ध है 'अथ शब्दानुशासनम्' यह भगवान् पतञ्जलिका प्रथम वाक्य है ॥ १ ॥

अस्यार्थः अथेत्ययंशब्दोऽधिकारार्थः प्रयुज्यते अधिकारः प्रस्तावः प्रारम्भ इति यावत् । शब्दानुशासनशब्देन च पाणिनिप्रणीतं व्याकरणशास्त्रं विवक्ष्यते । शब्दानुशासनमित्येतावत्यभिधीयमाने सन्देहः स्यात् किं शब्दानुशासनं प्रस्तूयते न वेति तथा मा प्रसांक्षीदित्यथशब्दं प्रायुङ्क्त । अथशब्दप्रयो-

गबलेनार्थान्तरव्युदासेन प्रस्तूयते इत्यस्यार्थस्याभिधीयमानत्वात् । अनेन हि वैदिकाः शब्दाः शन्नोदेवीरभिष्टय इत्यादयः तदुपकारिणो लौकिकाः शब्दाः गौरश्वः पुरुषो हस्ती शकुनिरित्यादयश्चानुशिष्यन्ते व्युत्पाद्य संस्क्रियन्ते प्रकृतिप्रत्ययविभागवत्तया बोध्यन्त इत्यनुशासनशब्दशासनबलात् कर्मण्येषा षष्ठी विधातव्या ॥ २ ॥

इसका अर्थ अथ यह शब्द अधिकारार्थ प्रयुक्त है । अधिकारका अर्थ प्रस्ताव अर्थात् प्रारम्भ है । शब्दका अनुशासन अर्थात् असाधु शब्दोंसे पृथक् करके कथन जिससे हो, वह शब्दानुशासन है अर्थात् पाणिनीमुनिप्रणीत व्याकरणशास्त्र विवक्षित है शब्दानुशासनमात्र कहते तो आरम्भ करते या नहीं ऐसा सन्देह हो जाता। तन्निवृत्तिके लिये अथशब्दका प्रयोग किया है । इससे अर्थान्तरशंकाका निरासपूर्वक प्रारम्भार्थ प्रतिपादित होता है । इससे ' शन्नोदेवीराभिष्टये ' इत्यादि वैदिक तथा तदुपकारी गौ अश्व और पुरुषादि लौकिक शब्दका व्युत्पादन करके संस्कृत हो अर्थात् प्रकृति प्रत्यय विभाग जिससे बोधित हो वह शब्दानुशासन पदार्थ है इत्यनुशासनशब्दबलसे कर्ममें षष्ठी होती है ॥ २ ॥

तथा च कर्मणि चेति समासप्रतिषेधसम्भवात् शब्दानुशासनशब्दो न प्रमाणपथमवतरतीति॥अत्रायं समाधिरभिधीयते, यस्मिन् कृत्प्रत्यये कर्तृकर्मणोरुभयोः प्राप्तिरस्ति तत्र कर्मण्येव षष्ठीविभक्तिर्भवति न कर्त्तरीति बहुव्रीहिविज्ञानबलान्नियम्यते ॥ तद्यथा आश्चर्यो गवां दोहोऽशिक्षितेन गोपालकेनेति कर्तर्यपि षष्ठी भवतीति केचिद् ब्रुवते । अतएवोक्तं काशिकावृत्तौ—केचिदविशेषेणैव विभाषामिच्छन्ति शब्दानामनुशासनमाचार्येणाचार्यस्य वेति । शब्दानामनुशासनमित्यत्र तु शब्दानामनुशासनं नार्थानामित्येतावतो विवक्षितस्यार्थस्याचार्यस्य कर्तुरुपादानेन विनापि सुप्रतिपादत्वादाचार्योपादानमकिञ्चित्करम्। तस्मादुभयप्राप्तेरभावादुभयप्राप्तौ कर्मणीत्येषा षष्ठी न भवति किन्तु कर्तृकर्मणोः कृतीति कृद्योगे

कर्त्तरि कर्मणि च षष्ठीविभक्तिर्भवतीति कृद्योगलक्षणा षष्ठी भविष्यति । तथा चेध्मप्रव्रश्चनपलाशशातनादिवत् समासो भविष्यति अथवा शेषलक्षणेयं षष्ठी तत्र किमपि चोद्यं नावतरत्येव ॥ ३ ॥

शंका-एवञ्च कर्मषष्ठ्यन्तके साथ समासनिषेध होनेसे शब्दानुशासनपदही अप्रामाणिक होगा । उत्तर-जिस कृत्प्रत्ययके परता कर्ता और कर्म दोनोंमें षष्ठी प्राप्त हो वहां कर्महीमें षष्ठी होती है । कर्तामें नहीं होती है ऐसा नियम बहुव्रीहि समासबलसे होता है । आश्चर्य इत्यादि उदाहरण है. कोई २ अविशेषरूपसे कर्ता और कर्ममें षष्ठीका विकल्प विधान करते हैं ऐसा काशिकावृत्तिमें लिखा है । शब्दानामनुशासनमित्यादि उदाहरणभी दिया है ' उभयप्राप्तौ कर्मणि ' यह निषेध कर्ता और कर्म दोनों जहां प्रयुक्त हों वहां लगता है शब्दानुशासन यहांपर शब्द-हीका अनुशासन है अर्थका नहीं है ऐसा नियम करनेसे तद्दशार्थका कर्ता आचार्य प्रसिद्ध होनेके कारण आचार्यरूप कर्ताका उपादान नहीं है । तथा च ' उभयप्राप्तौ' इसकी प्रवृत्ति न होनेसे कर्तृकर्मणोः कृति ' इस सूत्रसे षष्ठी होती है इसमें कृद्योगलक्षण षष्ठीसमासभी होता है यथा इध्मप्रव्रश्चन इत्यादि उदाहरण है यदि शेषषष्ठी करें तो कोई शंकाही नहीं है ॥ ३ ॥

यद्येवं तर्हि शेषलक्षणायाः षष्ठ्याः सर्वत्र सुवचत्वात् षष्ठीसमासप्रतिषेधसूत्राणामानर्थक्यं प्राप्नुयादिति चेत्-सत्यम्, तेषां स्वरचिन्तायामुपयोगो वाक्यपदीये प्रादर्शि ॥ तदाह महोपाध्यायवर्द्धमानः-"लौकिकव्यवहारेषु यथेष्टं चेष्टतां जनः । वैदिकेषु तु मार्गेषु विशेषोक्तिः प्रवर्त्तताम् ॥ इति पाणिनिसूत्राणामर्थमत्राभ्यधाद्यतः । जनिकर्त्तुरिति ब्रूते तत्प्रयोजक इत्यपि ॥" इति । तथाच शब्दानुशासनापरनामधेयं व्याकरणशास्त्रमारब्धं वेदितव्यमिति वाक्यार्थः सम्पद्यते ॥४॥

यदि कहो शेष लक्षणषष्ठीसे सर्वत्र निर्वाह हो जायगा तो षष्ठीसमासनिषेधक सूत्र सब व्यर्थ हो जायगा सोभी नहीं कह सकते स्वरविशेषसिद्धिके लिये उसका उपयोग है यथा शेषषष्ठीमें "समासस्य" करके अन्तोदात्त होता है अन्यत्र कृदुत्तरपद प्रकृतिस्वर होता है यथा वर्द्धमानाचार्यने कहा है कि लौकिक व्यवहारमें लोग

जैसा चाहें वैसा प्रयोग कर सकते हैं विशेषविधि वैदिकविषयमें प्रवृत्त होता है ऐसा पाणिनिके सूत्रोंका अर्थ वर्णन किया है क्योंकि जनिकर्तु तत्प्रयोजक इत्यादि पाणनि स्वयं कहा है अन्यथा यहांपरभी समास न होता ॥ ४ ॥

तस्यार्थस्य झटिति प्रतिपत्तये अथ व्याकरणमित्येवाभिधीयिताम् । अथ शब्दानुशासनमित्यधिकाक्षरं मुधाभिधीयत इति मैवं शब्दानुशासनमित्यन्वर्थसमाख्योपादाने तदीयवेदांगत्वप्रतिपादकप्रयोजनाख्यानासिद्धेः, अन्यथा प्रयोजनानभिधाने व्याकरणाध्ययने अध्येतॄणां प्रवृत्तिरेव न प्रसज्जेत् ॥ ननु निष्कारणो धर्मः ' षडंगो वेदोऽध्येतव्यः ' इति अध्येतव्यविधानादेव प्रवृत्तिः सेत्स्यतीति चेन्मैवम्, तथा विधानेऽपि तदीयवेदांगत्वप्रतिपादकप्रयोजनानभिधाने तेषां प्रवृत्तेरनुपपत्तेः ॥ ५ ॥

यद्यपि शीघ्र अर्थकी प्रतीतिके लिये अथ व्याकरणम् ऐसे कहदेते शब्दानुशासन ऐसा पढनेमें गौरव होता है. तथापि अन्वर्थक पढनेसे वेदाङ्गत्वप्रतिपादक प्रयोजन भी प्रतिपादित होता है नहीं तो प्रयोजनज्ञान न होनेसे प्रेक्षावान्की व्याकरणाध्ययनमें प्रवृत्ति नहीं होगी ब्राह्मणोंको निष्कारण षडङ्गवेद पढना चाहिये यह विधिभी व्याकरणके वेदाङ्गत्वज्ञानके विना नहीं प्रवृत्त करा सकेगा ॥ ५ ॥

तथाहि–पुराकल्पे एतदासीत् संस्कारोत्तरकालं ब्राह्मणा व्याकरणं स्माधीयेत तेभ्यः तत्तत्स्थानकरणज्ञानाद्यनुप्रदज्ञेभ्यः वादकाः शब्दा उपदिश्यन्ते तदद्यत्वेन वेदमधीत्याध्येतारस्त्वरितवक्तारो भवन्ति ॥ ' वेदान्नो वैदिकाः शब्दाः सिद्धाः लोकाच्च लौकिकाः ' ॥ तस्मादनर्थकं व्याकरणमिति तस्माद्वेदांगत्व मन्यमानास्तदध्ययने प्रवृत्तिमकार्षुः । ततश्चेदानीन्तनानामपि तत्र प्रवृत्तिर्न सिध्येत् । सा

---

१ तेभ्य एवं विप्रतिपन्नबुद्धिभ्य आचार्यः सुहृद्भूत्वा इदं शास्त्रमन्वाचष्टे इमानि प्रयोजानि इत्यध्येयं व्याकरणमिति भाष्ये पाठो दृश्यते।

मा प्रसांक्षीदिति तदीयवेदांगत्वप्रतिपादकं प्रयोजनमन्वाख्येयमेव ॥ ६ ॥

पूर्वकालमें ब्राह्मणोंको संस्कारके अनन्तर व्याकरणाध्ययनसे स्वरवर्णस्थान ज्ञान होनेसे उनको वैदिक शब्दोंका उपदेश होता था आजकल ऐसा नहीं होता वेद पढकर शीघ्र वक्ता हो जाते हैं और कहदेते हैं कि वैदिकशब्द सब वेदसे जान लिये एवं लोकव्यवहारसे लौकिक शब्दभी जान लिये इसलिये अतः व्याकरणका अध्ययन व्यर्थ है ऐसी विपरीत बुद्धिवाले व्याकरणाध्ययनप्रवृत्तिको छोड देंगे सो न हो इसलिये व्याकरणको वेदाङ्गत्वप्रतिपादक प्रयोजन अवश्य कहना होगा ॥ ६ ॥

यद्यन्वाख्यातेऽपि प्रयोजने न प्रवर्त्तेरन् तर्हि लौकिकशब्दसंस्कारज्ञानरहितास्ते यज्ञे कर्मणि प्रत्यवायभाजो भवेयुः । धर्माद्धीयेरन् अतएव याज्ञिकाः पठन्ति–' आहिताग्निरपशब्दं प्रयुज्य प्रायश्चित्तीयां सारस्वतीमिष्टिं निर्वपेत्' इति । अतस्तदीयवेदांगत्वप्रतिपादकप्रयोजनान्वाख्यानार्थमथशब्दानुशासनमित्येव कथ्यते नाथ व्याकरणमिति ॥ ७ ॥

प्रयोजन कहनेपरभी न प्रवृत्त होंगे तो लौकिक शब्द संस्कार ज्ञानरहित होनसे वे यज्ञकर्ममें प्रायश्चित्तभागी होंगे और धर्मसे च्युतभी होंगे क्योंकि याज्ञिक लोग कहते हैं कि आहिताग्नि पुरुष अपशब्दका प्रयोग करे तो प्रायश्चित्तार्थ सारस्वतयाग करें अतः वेदाङ्गत्वप्रतिपादनाय यथोक्त पाठही युक्त है ॥ ७ ॥

भवति च व्याकरणशास्त्रस्य प्रयोजनं (तस्य तदुद्देशेन प्रवृत्तेः प्रयोजनम्) यथा स्वर्गोद्देशेन प्रवृत्तस्य यागस्य स्वर्गः प्रयोजनम्, तस्मात् शब्दानुशिष्टिः संस्कारपदवेदनीया शब्दानुशासनस्य प्रयोजनम् ॥ ८ ॥

व्याकरणका शब्दानुशासन प्रयोजन हो सकता है क्योंकि उसी उद्देशसे प्रवृत्ति है जिस उद्देशसे प्रवृत्ति हों वही उसका फल होता है यथा स्वर्गोद्देशसे प्रवृत्त यागका स्वर्ग प्रयोजन है ॥ ८ ॥

नन्वेवमप्यभिमतं प्रयोजनं न लभ्यते तदुपायाभावात् । अथ प्रतिपदपाठ एवाभ्युपाय इति मन्येथाः तर्हि स

ह्यनभ्युपायः शब्दानां प्रतिपत्तौ प्रतिपदपाठो भवेत् । शब्दापशब्दभेदेनानंत्याच्छब्दानाम्, एवं हि समाम्नायते 'बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यं वर्षसहस्रं प्रतिपदपाठविहितानां शब्दानां शब्दपारायणं प्रोवाच नान्तं जगाम ॥ बृहस्पतिश्च प्रवक्ता, इन्द्रोऽध्येता, दिव्यं वर्षसहस्रमध्ययनकालः । न च पारावाप्तिरभूत् । किमुताद्य यश्चिरं जीवति सोऽब्दशतम्' ॥ ९ ॥

अथापि शब्दसंस्काररूप अभिमत प्रयोजनभी निरुपाय होनेसे असम्भव है क्योंकि प्रतिपदपाठ अर्थात् जितने संसारमें शब्द हों उन सबको एक एक करके पाठ करना यहभी उपाय नहीं है शब्द और अपशब्द कितने हैं इसकी संख्याही नहीं है अतएव कहते हैं बृहस्पति जैसे वक्ताने इन्द्र जैसे विद्यार्थीको देवताओंके वर्षसे हजार वर्षतक प्रतिपदपाठका पारायण कराया तथापि अन्त न हुआ तब आजकलके अल्पायुओंको क्या कहना जो बहुत जीते हैं तो १०० वर्ष जीते हैं ॥ ९ ॥

अधीतिबोधाचरणप्रचारणैश्चतुर्भिरुपायैर्विद्योपयुक्ता भवति । तत्राध्ययनकालेनैव सर्वमायुरुपयुक्तं स्यात्तस्मादनभ्युपायः शब्दान प्रत्तिपत्तौ प्रतिपदपाठ इति प्रयोजनं न सिध्येदिति ॥ इति चेन्मैवं शब्दप्रतिपत्तेः प्रतिपदपाठसाध्यत्वानंगीकारात् । प्रकृत्यादिविभागकल्पनावत्सु लक्ष्येषु सामान्यविशेषरूपाणां लक्षणानां पर्जन्यवत्सकृदेव प्रवृत्तौ बहूनां शब्दानामनुशासनोपलम्भाच्च ॥ १० ॥

अध्ययन चिन्तन अध्यापन और प्रचार आदि चार उपायोंसे विद्या उपयुक्त होती है उसमें (अध्ययनमेंही) सम्पूर्ण आयु बीत जाती है अतः शब्दप्रतिपत्तिके लिये प्रतिपदपाठ उपाय नहीं हो सकता एवञ्च प्रयोजन अनुपपन्न है ऐसे मत कहो क्योंकि शब्दप्रतिपत्तिके लिये प्रतिपदपाठ उपाय मानतेही नहीं हैं किन्तु कल्पितप्रकृतिप्रत्ययविभागवत् लक्ष्यमें सामान्यविशेषरूप लक्षण मेघवत् एकही कालमें प्रवृत्त होनेसे अनेक शब्दोंका अनुशासन हो सकता है ॥ १० ॥

तथाहि कर्मणीत्येकेन सामान्यरूपेण लक्षणेन कर्मोपपदाद्धातुमात्रादण्प्रत्यये कृते कुम्भकारः काण्डलाव इत्यादीनां बहूनां

शब्दानामनुशासनमुपलभ्यते । एवमातोऽनुपसर्गे इति प्रतिपदपाठस्याशक्यत्वप्रतिपादनपरोऽर्थवादः ॥ ११ ॥

यथा 'कर्म्मण्यण्' इति एक सामान्यलक्षण (सूत्र) से कर्मबोधक पद पूर्व रहनेपर धातुमात्रसे अण्प्रत्यय विधान करके कुम्भकार काण्डलाव इत्यादि अनेक शब्दोंका अनुशासन होता है उसका अपवादविशेष 'आतोऽनुपसर्गेकः' इस सूत्रसे उक्त प्रकार आकारान्तधातुसे कप्रत्यय करनेसे गोदः इत्यादि सिद्ध होते हैं। एवं सामान्यविशेष लक्षणसे समस्त शब्दकी प्रतिपत्ति होती है "बृहस्पतिरिन्द्रायेत्यादि" प्रतिपदपाठका अशक्यत्वकथन अत्यन्तमहत्त्वबोधनार्थ अर्थवाद है ॥ ११ ॥

नन्वन्येष्वप्यङ्गेषु सत्सु किमित्येतदेवाद्रियते । उच्यते प्रधानञ्च षट्स्वङ्गेषु व्याकरणम् । प्रधाने च कृतो यत्नः फलवान् भवति ॥ तदुक्तम्–"आसनं ब्रह्मणस्तस्य तपसामुत्तमं तपः । प्रथमं छन्दसामंगमाहुर्व्याकरणं बुधाः"॥ इति । तस्मात् व्याकरणशास्त्रस्य शब्दानुशासनं भवति साक्षात् प्रयोजनं,पारम्पर्येण तु वेदरक्षादीनि । अतएवोक्तं भगवता भाष्यकारेण 'रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम्' इति ॥ १२ ॥

यद्यपि वेदके अन्यभी पाँच अंग हैं तथापि प्रधान अंग व्याकरण है प्रधान विषयमें किया हुआ यत्न सफल होता है अतएव विद्वानोंने व्याकरणको ब्रह्माका मुख तपमें उत्तम तप, और वेदका प्रधान अंग कहा है अतः व्याकरणका साक्षात्प्रयोजन शब्दानुशासन और परम्पराप्रयोजन वेदरक्षादिक हैं अतएव भाष्यकारनेभी वेदकी रक्षा, ऊहा, आगम, लघु और असन्देह प्रयोजन कहा है ॥ १२ ॥

साधुशब्दप्रयोगवशादभ्युदयोऽपि भवति । तथाच कथितं कात्यायनेन–'शास्त्रपूर्वके प्रयोगेऽभ्युदयस्तत्तुल्यं वेदशब्देन' इति । अन्यैरप्युक्तम् एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुष्ठु प्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुग्भवतीति ॥ यथा–"नाकमिष्टसुखं यान्ति सुयुक्तैर्बद्धवाग्रथैः । अथ पत्काषिणो यान्ति येऽचीकमतभाषिणः ॥" ॥ १३ ॥

साधु शब्दके प्रयोगसे पुण्य होता है शास्त्रक्रियाज्ञानपूर्वक प्रयोगसे अभ्युदय होता है वेदमेंभी ऐसा है इत्यादि वचनोंसे वार्तिककारनेभी कहा है। एकभी शब्द सम्यक्ज्ञानपूर्वक सुन्दर प्रयुक्त होनेसे स्वर्ग और लोकमें कामधेनु होता है इत्यादि जो पत्काषी (पदाति) भी अचीक्मतभाषी हो तो सुप्रयुक्तवाक्रथसे युक्त होकर इष्टसुख स्वर्गको जाते हैं ॥ १३ ॥

नन्वचेतनस्य शब्दस्य कथमीदृशं सामर्थ्यमुपपद्यत इति चेन्मैवं मन्येथाः महता देवेन साम्यश्रवणात् । तदाह श्रुतिः "चत्वारि शृङ्गास्त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तासो अस्य। त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ आविवेश" । व्याचकार च भाष्यकारः 'चत्वारि शृंगाणि चत्वारि पदजातानि नामाख्यातोपसर्गनिपातास्त्रयो अस्य पादाः लडादिविषयाः त्रिधा भूतभविष्यद्वर्त्तमानकालाः द्वे शीर्षे द्वौ नित्यानित्यात्मानौ नित्यः कार्यश्च व्यंगव्यञ्जकभेदात् सप्तहस्तासो अस्य तिङा सह सप्त सुब्विभक्तयः त्रिधा बद्धः त्रिषु स्थानेषु उरसि कण्ठे शिरसि च बद्धः वृषभ इति प्रसिद्धवृषभत्वेन रूपणं क्रियते वर्षणाद्वर्षणञ्च ज्ञानपूर्वकानुष्ठानेन फलप्रदत्वं रोरवीति शब्दं करोति रौतिः शब्दकर्मा इह शब्दशब्देन प्रपञ्चो विवक्षितः महो देवो मर्त्याँ आविवेश महादेवः शब्दः मर्त्याः मरणधर्माणो मनुष्यास्तानाविवेशेति महता देवेन परेण ब्रह्मणा साम्यमुक्तं स्यादिति जगन्निदानं स्फोटाख्यो निरवयवो नित्यः शब्दो ब्रह्म वा' इति ॥ १४ ॥

अचेतन शब्दको स्वर्गादिफलसाधनत्वरूप सार्थ कैसे होसकता है तो महान् देवके साथ (ब्रह्मके साथ) साम्यप्रतिपादित होनेसे तादृश सामर्थ्य हो सकता है तथाच चत्वारिशृंगेत्यादि श्रुतिः । उसका व्याख्यान—नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपातरूप चार पद चार शृंग लडादिविषय, भूत भविष्य और वर्तमान ये तीन काल तीनों पादोंकी समान है नित्य और अनित्य दो शब्द दो शिरके समान है सात विभक्ति सात हाथ है उरः, कण्ठ, शिर तीन स्थानमें बद्ध वृषभ प्रसिद्ध वृषभवत् वर्षण

ज्ञानपूर्वकानुष्ठानसे फलप्रद (रोरवीति) शब्द करता है शब्दपदसे प्रपञ्च विवक्षित है महादेवका अर्थ शब्द है मनुष्योंमें प्रवेश किया महादेव परब्रह्मके साथ साम्य होनेके लिये अथवा जगत्का कारण स्फोटाख्य नित्यशब्द ब्रह्म है ॥ १४ ॥

हरिणाभाणि ब्रह्मकाण्डे–"अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम् । विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः ॥" इति ॥१५॥

अनादिनिधन अक्षराख्य शब्दतत्त्व ब्रह्म घटादि अर्थाकार विवर्त होता है जिससे जगत्प्रक्रिया निष्पन्न होती है । तत्त्वतो अन्यथाभाव न होना विवर्त है यथा रज्जुमें सर्प ॥ १५ ॥

ननु नामाख्यातभेदेन पदद्वैविध्यप्रतीतेः कथं चातुर्विध्यमुक्तमिति चेन्मैवं प्रकारान्तरस्य प्रसिद्धत्वात् । तदुक्तं प्रकीर्णके । "द्विधा कैश्चित् पदं भिन्नं चतुर्द्धा पञ्चधापि वा । अपोद्धृत्यैव वाक्येभ्यः प्रकृतिप्रत्ययादिवत् ॥ " इति ॥ १६ ॥

नामका अर्थ प्रातिपदिक है उपसर्गनिपातभी प्रातिपदिक होनेसे यद्यपि नामाख्यात दो पद है तथापि प्रकारान्तरसे चातुर्विध्य प्रसिद्ध है । वाक्यसे पृथक् करके प्रकृति प्रत्ययविभागके समान पदभी किसी २ ने दो प्रकार किसी २ ने चार प्रकार और किसी २ ने पाँच प्रकार पद माने हैं ॥ १६ ॥

कर्मप्रवचनीयेन वै पञ्चमेन सह पदस्य पञ्चविधत्वमिति हेलाराजो व्याख्यातवान् कर्मप्रवचनीयास्तु क्रियाविशेषोपजनितसम्बन्धावच्छेदहेतव इति सम्बन्धविशेषद्योतनद्वारेण क्रियाविशेषद्योतनादुपसर्गेष्वेवान्तर्भवतीत्यभिसन्धाय पदचातुर्विध्यं भाष्यकारेणोक्तं युक्तमिति विवेक्तव्यम् ॥ १७ ॥

कर्मप्रवचनीयसंज्ञा मिलाकर पञ्चमत्व हेलाराजने कहा है कर्मप्रवचनीय क्रियाविशेषसम्बन्धद्योतक होनेसे परंपरया क्रियाविशेष द्योतन होगया अतः उपसर्गहीमें अन्तर्भूत होनेके कारण भाष्यकारने चार प्रकार कहा है ॥ १७ ॥

ननु भवता स्फोटात्मा नित्यः शब्द इति निजागद्यत तन्न मृष्यामहे तत्र प्रमाणाभावादिति केचित् ॥ अत्रोच्यते, प्रत्यक्षमेवात्र प्रमाणम्, गौरित्येकं पदमिति नानावर्णातिरिक्तैकपदा-

वगतेः सर्वजनीनत्वान्न ह्यसति बाधके पदानुभवः शक्यो मिथ्येति वक्तुं पदार्थप्रतीत्यन्यथानुपपत्त्यापि स्फोटोऽभ्युपगन्तव्यः । नच वर्णेभ्य एव तत्प्रत्ययः प्रादुर्भवतीति परीक्षाक्षमं विकल्पासहत्वात् ॥ १८ ॥

आप स्फोटात्मक शब्दको नित्य कहते हैं । परन्तु उसमें प्रमाण न होनेसे अमान्य है इसपर कहते हैं । अनेक वर्ण समुदितमें वर्णसे अतिरिक्त एकं पदम् इत्यादि व्यवहारही शब्दनित्यत्वमें प्रत्यक्ष प्रमाण है । जबतक बाधक न हो तबतक पद प्रत्यक्षको मिथ्या नहीं कहसकते । अर्थप्रतीतिबलसेभी स्फोट पदार्थ मानना होगा । वर्णहीसे अर्थप्रतीति होती है ऐसा माननाभी विकल्प दोष दूषित है ॥ १८ ॥

किं समस्ता व्यस्ता वा अर्थप्रत्ययं जनयन्ति । नाद्यः वर्णानां क्षणिकानां समूहसम्भवात् । नान्त्यः व्यस्तवर्णेभ्योऽर्थप्रत्ययासम्भवात् । न च व्याससमासाभ्यामन्यः प्रकारः समस्तीति । तस्माद्वर्णानां वाचकत्वानुपपत्तौ यद्बलादर्थप्रतिपत्तिः सः स्फोट इति वर्णातिरिक्तो वर्णाभिव्यङ्ग्योऽर्थप्रत्यायको नित्यः शब्दः स्फोट इति तद्विदो वदन्ति । अतएव स्फुटयते व्यज्यते वर्णैरिति स्फोटो वर्णाभिव्यंग्यः स्फुटोभवत्यस्मादर्थ इति स्फोटोऽर्थप्रत्यायक इति स्फोटशब्दार्थमुभयथा निराहुः ॥ १९ ॥

तथाहि क्या वर्ण समुदाय अर्थबोधक हैं, या प्रत्येक अर्थका बोधक है ? वर्ण क्षणिक होनेसे उत्तरोत्तर वर्णोत्पत्तिकालमें पूर्व पूर्व वर्ण नष्ट होनेके कारण समुदायका असम्भव है प्रत्येक पक्षमें प्रत्येक वर्णसे अर्थप्रतीति नहीं होती । एवं द्वितीयादि वर्णोच्चारण वैयर्थ्यभी होगा प्रत्येक और समुदाय छोडकर तीसरा उपायही नहीं है । उभयथापि वर्णोंका वाचकत्व असम्भव है अतः जिससे अर्थप्रतीति होती हो वह वर्णसे अतिरिक्त वर्णसे अभिव्यङ्ग्य नित्यशब्द स्फोट है । वर्णोंसे जो स्फुटित (प्रकाशित) हो अथवा अर्थ जिससे स्फुट हो वह स्फोट है ॥ १९ ॥

तथाचोक्तं भगवता पतञ्जलिना महाभाष्ये 'अथ गौरित्यत्र कः शब्दो येनोच्चरितेन सास्नालांगूलककुद्खुरविषाणिनां सम्प्र-

त्ययो भवति स शब्द इत्युच्यते ' इति ॥ विवृतश्च कैयटेन 'वैयाकरणा वर्णव्यतिरिक्तस्य पदस्य वाचकत्वमिच्छन्ति। वर्णानां वाचकत्वे द्वितीयादिवर्णोच्चारणानर्थक्यप्रसंगादित्यादिना तद्व्यतिरिक्तः स्फोटो नादाभिव्यङ्ग्यो वाचको विस्तरेण वाक्यपदीये व्यवस्थापितः' इत्यन्तेन प्रबन्धेन ॥ २० ॥

अतएव भगवान् पतञ्जलिने गो पदार्थमें प्रतायमान मांसापिण्ड, नीलपीत, चलन स्पन्दन सामान्यादिके मध्यमें कौनसा शब्द है ऐसा पूर्वपक्ष करके जिसके उच्चारण करनेसे सास्ना (गौके गलेमें लटके हुए चर्म) खुर और शृङ्गादिका बोध हो वह शब्द है ऐसा कहा है। कैय्यटभी वैय्याकरण वर्णसे अतिरिक्त पदको वाचक मानते हैं। वर्णको वाचक माने तो द्वितीयादि वर्णोच्चारण व्यर्थ होगा इत्यादि अतः नादसे अभिव्यङ्ग्य स्फोटको वाचकत्व वाक्यपदीयमें व्यवस्थापित है इत्यन्त प्रबन्धसे स्फोट परत्वमें उक्त भाष्यका व्याख्यान किया है ॥ २० ॥

ननु स्फोटस्याप्यर्थप्रत्यायकत्वं न घटते विकल्पासहत्वात्। किमभिव्यक्तः स्फोटोऽर्थं प्रत्याययति अनभिव्यक्तो वा। न चरमः सर्वदा अर्थप्रत्ययलक्षणकार्योत्पादप्रसंगात् स्फोटस्य नित्यत्वाभ्युपगमेन निरपेक्षस्य हेतोः सदा सत्त्वेन कार्यस्य विलम्बायोगात्॥ अथैतद्दोषपरिजिहीर्षया अभिव्यक्तः स्फोटोऽर्थं प्रत्याययतीति कक्षीक्रियते तथाभिव्यञ्जयन्तो वर्णाः किं प्रत्येकमभिव्यञ्जयन्ति संभूय वा। पक्षद्वयेऽपि वर्णानां वाचकत्वपक्षे भवता ये दोषा भाषितास्त एव स्फोटाभिव्यञ्जकत्वपक्षे व्यावर्त्तनीयाः । तदुक्तं भट्टाचार्यैर्मीमांसाश्लोकवार्त्तिके—"यस्यानवयवः स्फोटो व्यज्यते वर्णबुद्धिभिः । सोऽपि पर्यनुयोगेन नैकेनापि विमुच्यते॥ "इति ॥ २१ ॥

विकल्पदूषित होनेसे स्फोट अर्थ बोधक नहीं हो सकता । क्या अभिव्यक्तस्फोट अर्थ बोधक है या अनिभिव्यक्त बोध है। द्वितीय मानो तो सर्वदा अर्थप्रतीति होनेलगेगी क्योंकि स्फोटको नित्य माना है। अन्यानपेक्षहेतु सदा रहता है अतः कार्यका विलम्बभी असह्य होगा । उक्त दोष परिहारार्थ यदि अभि-

व्यक्त स्फोटको अर्थ प्रतिपादक मानो तो क्या अभिव्यञ्जक प्रत्येक वर्ण अभिव्यक्ति करते हैं या समुदाय ? उभयथा वाचकपक्षमें उक्त दोष स्फोट पक्षमेंभी समान है । अतएव कुमारिलभट्टने कहा है कि जिनके मतमें निरवयवस्फोटवर्णसे अभिव्यक्त होता है सो भी उक्तपूर्वपक्षसे मुक्त नहीं ॥ २१ ॥

विभक्त्यन्तेष्वेव वर्णेषु पाणिनिना ते विभक्त्यन्ताः पदमिति गौतमेन च पदसंज्ञाया विहितत्वात् सङ्केतग्रहणेनानुग्रहवशाद्वर्णेष्वेव पदबुद्धिर्भविष्यति तर्हि सर इत्येतस्मिन् पदे यावन्तो वर्णास्तावन्त एव रस इत्यत्रापि एवं वनं नवं नदी दीना रामो मारो राजा जारेत्यादिष्वर्थभेदप्रतीतिर्न स्यादिति चेन्न क्रमभेदेन भेदसम्भवात् । तदुक्तं तौतातितैः–"यावन्तो यादृशा ये च यदर्थप्रतिपादने । वर्णाः प्रज्ञातसामर्थ्यास्ते तथैवावबोधकाः" इति ॥ तस्माद्यश्चोभयोः समो दोषो न तेनैकश्चोद्यो भवतीति न्यायात् वर्णानामेव वाचकत्वोपपत्ता नातिरिक्तस्फोटकल्पनाऽवकल्पते इति चेत् ॥ २२ ॥

गौतम और पाणिनि दोनों विभक्त्यन्तकोही पदसंज्ञा कहे हैं यदि संकेतवश वर्णहीमें पदबुद्धि मानो तो सर इस पदमें जितने वर्ण हैं उतनेही वर्ण रस इस पदमेंभी हैं एवं नदी दीन राम मार राजा जार इत्यादिमें हैं एवञ्च परस्पर अर्थभेद न होगा यहभी नहीं सन्निवेश क्रमभेदसे अर्थभेदभी हो सकता है यादृश आनुपूर्वी युक्त जितने वर्ण यादृश अर्थबोधनमें समर्थ हों वह उसी क्रमसे अर्थको बोधक होते हैं इत्यादि तौतातिति (कश्चित् जैन) नेभी कहा है दोनों पक्षमें समान दोष हो तो एकके ऊपर आक्षेप नहीं किया जाता है इस न्यायसे वर्णको वाचकत्व हो जायगा अतिरिक्त स्फोटकल्पना व्यर्थ है ॥ २२ ॥

तदेतत् काशकुशावलम्बनकल्पनं विकल्पानुपपत्तेः किं वर्णमात्रे पदप्रत्ययावलम्बनं वर्णसमूहे वा । नाद्यः परस्परविलक्षणवर्णमालायामभिन्नं निमित्तं पुष्पेषु विना सूत्रं मालाप्रत्ययवदित्येकं पदमिति प्रतिपत्तेरनुपपत्तेः । नापि द्वितीयः उच्चरितप्रध्वस्तानां वर्णानां समूहभावासम्भवात् । तत्र हि समूहव्य-

पदेशः । ये पदार्था एकस्मिन् प्रदेशे सहावस्थिततया बहवोऽनुभूयन्ते यथा एकस्मिन् प्रदेशे सहावस्थिततयानुभूयमानेषु धवखदिरपलाशादिषु समूहव्यपदेशः यथा वा गजनरतुरगादिषु न च ते वर्णास्तथानुभूयन्ते उत्पन्नप्रध्वस्तत्वात् ॥ २३ ॥

यह जलमें डूबनेवालेको तृणको अवलम्बनके समान है क्योंकि विकल्पासह है क्या वर्णमात्रमें पद प्रत्यय है या वर्णसमूहमें ? प्रथम कह नहीं सकते जिस प्रकार भिन्नभिन्न पुष्पोंके बीचमें सूत्रके विना मालाकी प्रतीति नहीं होती तिसी प्रकार परस्पर विलक्षण वर्णमालामें निमित्तान्तरके विना एक पदप्रतीति असम्भव है । वर्ण क्षणिक होनेसे द्वितीयभी नहीं कह सकते समुदायव्यवहार वहीं होता है जहाँपर पदार्थ एक देशमें स्थित होकर सबके अनुभवविषय हो यथा एकदेशस्थ नाना-वृक्षोंमें समुदाय (वन) व्यवहार जिस प्रकार मनुष्य गज और तुरंगों ये समुदाय (सेना) व्यवहार होता है तिसी प्रकार उत्पन्नविनाशी होनेसे वर्णमें समुदायकी उपलब्धि नहीं होती है ॥ २३ ॥

अभिव्यक्तिपक्षेऽपि क्रमेणैवाभिव्यक्तौ समूहासम्भवात् । नापि वर्णेषु काल्पनिकः समूहः कल्पनीयः परस्पराश्रयप्रसङ्गात् । एकार्थप्रत्यायकत्वसिद्धौ तदुपाधिना वर्णेषु पदत्वप्रतीतिः तत्सिद्धावेकार्थप्रत्यायकत्वसिद्धिरिति । तस्माद्वर्णानां वाचकत्वासम्भवात् स्फोटोऽभ्युपगन्तव्यः ॥ २४ ॥

अभिव्यक्तिपक्षमेंभी क्रमिक होनेसे समूह असम्भव है । काल्पित समूहभी वर्णके विषयमें नहीं मान सकते क्योंकि अन्योन्याश्रयदोष आता है । तद्यथा एकार्थ बोधकत्व सिद्ध होनेपर तादृश उपाधिसे पदत्वासिद्धि होगी, पदत्व सिद्धि होनेपर एकार्थ बोधकत्व सिद्धि होगी अतः वर्णको वाचकत्व असम्भव होनेसे अतिरिक्त स्फोट मानना होगा ॥ २४ ॥

ननु स्फोटवाचकतापक्षेऽपि प्रागुक्तविकल्पप्रसरेण घट्टकुटीप्रभातायितमिति चेत्तदेतन्मनोराज्यविजृम्भणं वैषम्यसम्भवात्॥ तथाहि अभिव्यञ्जकोऽपि प्रथमो ध्वनिः स्फोटमस्फुटमभिव्यनक्ति उत्तरोत्तराभिव्यञ्जकक्रमेण स्फुटं स्फुटतरं स्फुटतमं यथा

स्वाध्यायः सकृत्पठ्यमानो नावधार्यते अभ्यासेन तु स्फुटावसायः यथा वा रत्नतत्त्वं प्रथमप्रतीतौ स्फुटं न चकास्ति चरमे चेतासि यथावदभिव्यज्यते ।"नादैराहितबीजायामन्त्येन ध्वनिना सह ॥ आवृत्तिपरिपाकायां बुद्धौ शब्दोऽवधार्यते ॥" इति प्रामाणिकोक्तेः ॥ २५ ॥

यदि कहो उक्त दोष स्फोटपक्षमेंभी तुल्य होनेसे घाटपरकीकुटीमें दीप जलाकर प्रभात मानना है । यहभी वैषम्य हानस मनोरथ मात्र है अभिव्यञ्जकत्वाविशेष होनेपरभी प्रथम ध्वनि स्फोटको किञ्चित् अभिव्यञ्जन करेगी उत्तरोत्तर स्फुट स्फुटतर यथा एकवार पढनेसे अर्थ ज्ञान नहीं होता परन्तु अभ्याससे स्फुटावबोध होता है जिस प्रकार रत्नपरीक्षामें एकवार देखनेसे सम्यक् परिज्ञान नहीं होता पुनः पुनः देखनेसे यथावत् प्रकाशित होता है । नादसे आहित संस्कार आवृत्तिसे परिपक्व बुद्धिमें अन्त्यध्वनिके साथ शब्द (स्फोट) प्रकाशित होता है इत्यादि प्रामाणिक वचनभी है ॥ २५ ॥

तस्मादस्माच्छब्दादर्थं प्रतिपद्यामह इति व्यवहारवशाद्वर्णानामर्थवाचकत्वानुपपत्तेः प्रथमे काण्डे तत्रभवद्भिर्भर्तृहरिभिरभिहितत्वात् निरवयवमर्थप्रत्यायकं शब्दतत्त्वं स्फोटाभावमभ्युपगन्तव्यमिति ॥ एतत्सर्वं परमार्थसंविल्लक्षणसत्ता जातिरेव सर्वेषां शब्दानामर्थं इति प्रतिपादनपरे जातिसमुद्देशे प्रतिपादितम् ॥ २६ ॥

अतः इस शब्दसे अर्थप्रत्यय होता है इत्यादि व्यवहारसे वर्णको वाचकत्व असम्भव होनेके कारण तथा भर्तृहरिके वचनोंसे निरवयव स्फोट अवगन्तव्य है । यह सब परमार्थ संवितूरूप सत्ताजातिही सभी शब्दोंका अर्थ है इत्येतत्प्रतिपादक जातिसमुद्देशमें स्पष्ट है ॥ २६ ॥

यदि सत्तवै सर्वेषां शब्दानामर्थस्तर्हि सर्वेषां शब्दानां पर्यायता स्यात् तथा च क्वचिदपि युगपत्त्रिचतुरपदप्रयोगायोग इति महच्चातुर्यमायुष्मतः । तदुक्तम्—"पर्यायाणां प्रयोगो हि यौगपद्येन नेष्यते । पर्यायेणैव ते यस्माद्वदन्त्यर्थं न संहताः" इति ॥ तस्मादय पक्षो न क्षोदक्षम इति चेत् ॥ २७ ॥

यदि समस्तशब्दोंका सत्ताही अर्थ हो तो सब पर्याय होनेसे अनेक शब्दोंका प्रयोगही असंगत होगा । अभियुक्तोंनेभी कहा है पर्याय शब्दोंका युगपत् प्रयोग इष्ट नहीं है । यतः पर्याय (एक–एक) अर्थके बोधक होते हैं मिलकरके नहीं होते हैं अतः यह पक्ष विचार योग्यभी नहीं है ॥ २७ ॥

तदेतद्गगनरोमन्थकल्पं नीललोहितपीताद्युपरञ्जकद्रव्यभेदेन स्फटिकमणेरिव सम्बन्धिभेदात् सत्तायास्तदात्मना भेदेन प्रतिपत्तिसिद्धौ गोसत्तादिरूपगोत्वादिभेदनिबन्धनव्यवहारवैलक्षण्योपपत्तेः । तथाचाप्तवाक्यम्–"स्फटिकं विमलं द्रव्यं यथायुक्तं पृथक् पृथक् । नीललोहितपीताद्यैस्तद्वर्णमुपलभ्यते ॥ " इति ॥ २८ ॥

यहभी आकाशचर्वणके समान है क्योंकि नीलपीतादि वस्तुके सन्निधानमें जिस प्रकार नीलपीतादिरूप भासित होता है तिसी प्रकार व्यञ्जकध्वनिभेद होनेसे सत्ताभी उसके साथ भिन्न होकर गोसत्तारूप गोत्वादि व्यवहार वैलक्षण्य हो जाते हैं । आप्तवाक्यभी है कि जिस प्रकार निर्मल स्फटिक नील, लोहित, और पीतादि उपरञ्जक भेदसे तत्तत्वर्ण प्रतीत होता है तिसी प्रकार व्यञ्जकवर्णभेदसे सत्ताजातिभी भिन्न २ रूप प्रतीत होती है ॥ २८ ॥

तथा हरिणाप्युक्तम्–"सम्बन्धिभेदात् सत्तैव भिद्यमाना गवादिषु । जातिरित्युच्यते तस्यां सर्वे शब्दा व्यवस्थिताः ॥ तां प्रातिपदिकार्थं च धात्वर्थं च प्रचक्षते । सा सत्ता सा महानात्मा तामाहुस्त्वतलादयः ॥"इति । आश्रयभूतैः सम्बन्धिभिर्भिद्यमाना कल्पितभेदा गवाश्वादिषु सत्तैव महासामान्यमेव जातिः । गोत्वादिकमपरं सामान्यं परमार्थतस्ततो भिन्नं न भवति । गोसत्तैव गोत्वं नापरमन्वायि प्रतिभासते । एवमश्वसत्ता अश्वत्वमित्यादि वाच्यम् ॥ एवञ्च तस्यामेव गवादिभिन्नायां सत्तायां जातौ सर्वे गोशब्दादयो वाचकत्वेन व्यवस्थिताः प्रातिपदिकार्थश्च सत्तेति प्रसिद्धम् । भाववचनो धातुरिति पक्षे भावः सत्तैवेति धात्वर्थः सत्ता भवत्येव क्रियावचनो

धातुरिति पक्षेऽपि 'जातिमन्ये क्रियामाहुरनेकव्यक्तिवर्त्तिनीम्' इति जातिपदार्थनयानुसारेणानेकव्यक्तिक्रियासमुद्देशे क्रियाया जातिरूपत्वप्रतिपादनात् धात्वर्थः सत्ता भवत्येव तस्य भावस्त्वतलाविति भावार्थे त्वतलादीनां विधानात् सत्तावाचित्वं युक्तं सा च सत्ता उदयव्ययवैधुर्यान्नित्या सर्वस्य प्रपञ्चस्य तद्विवर्त्ततया देशतः कालतो वस्तुतश्च परिच्छेदराहित्यात् सा सत्ता महानात्मेति व्यपदिश्यत इति कारिकाद्वयार्थः ॥ २९ ॥

हरिनेभी कहा है कि आश्रयभूतसम्बन्धी भेदसे कल्पित भेदवाली सत्ताही गवादिमें जाति है । सत्तासे भिन्न गोत्वादि वास्तवमें अन्य नहीं है गोत्वभी गोसत्ताही है अन्य नहीं एवम् अश्वसत्ताही अश्वत्वादि वाच्य है । गवादिभेदसे भिन्न सत्तारूप जातिमें समस्त गवादिशब्दवाचकत्वेन स्थित हैं । प्रातिपदिकार्थ सत्ता प्रसिद्ध है। धातुभाववाचक है इस पक्षमें धात्वर्थभी सत्ता है क्रियावाचकपक्षमें अनेकव्यक्तियोंमें वृत्ति क्रियाको जाति कहते हैं इस न्यायसे धात्वर्थभी सत्ता होती हैं। अतएव भावार्थमें त्वतल विधानसंगत होते हैं वही सत्ता उत्पत्तिविनाशशून्य होनेसे नित्य है । समस्त प्रपञ्च उसके विवर्त होनेसे देश, काल, वस्तुसे अपरिच्छेद्य होनेसे महान् आत्मा कहलाती है ॥ २९ ॥

द्रव्यपदार्थसंविल्लक्षणं तत्त्वमेव सर्वशब्दार्थ इति सम्बन्धसमुद्देशे समर्थितम्–"सत्यं वस्तु तदाकारैरसत्यैरवधार्यते । असत्योपाधिभिः शब्दैः सत्यमेवाभिधीयते ॥ अध्रुवेण निमित्तेन देवदत्तगृहं यथा । गृहीतं गृहशब्देन शुद्धमेवाभिधीयते ॥" इति । भाष्यकारेणापि 'सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे ' इत्येतद्वार्त्तिकव्याख्यानावसरे 'द्रव्यं हि नित्यमित्यनेन ग्रन्थेन असत्योपाध्यवच्छिन्नं ब्रह्मत्वं द्रव्यशब्दवाच्यं द्रव्यशब्दार्थः 'इति निरूपितम् ॥ ३० ॥

सम्बन्ध समुद्देशमेंभी द्रव्यपदार्थ संवित् लक्षणहीको तत्त्वसमर्थन किया तत्तदाकार असत्यवस्तुसे सत्य वस्तुका निर्णय होता है असत्योपाधिरूपशब्दसे सत्यका अभिधान होता है । जिस प्रकार काकवत् देवदत्तगृह इत्यादि स्थलमें अध्रुव काकादि निमित्तसे देवदत्तगृह उपलब्ध होता है। तद्वत् गृहशब्दसेभी शुद्धतत्त्वका अभिधान होता

है। शब्दार्थ सम्बन्ध नित्य है इस वार्त्तिकव्याख्यानावसरमें द्रव्य नित्य है इस ग्रन्थसे असत्योपाधियुक्त ब्रह्मतत्त्वको द्रव्यशब्दार्थ भाष्यकारने कहा है ॥ ३० ॥

जातिशब्दार्थवाचिनो वाजप्यायनस्य मते गवादयः शब्दाः भिन्नद्रव्यसमवेतजातिमाभिदधाति। तस्यामवगाह्यमानायां तत्सम्बन्धात् द्रव्यमवगम्यते शुक्लादयः शब्दा गुणसमवेतां जातिमाचक्षते गुणे तत्सम्बन्धात् । प्रत्ययः द्रव्यसम्बन्धिसम्बन्धात् संज्ञाशब्दानामुत्पत्तिप्रभृत्याविनाशात् शैशव्यकौमारयौवनाद्यवस्थादिभेदेऽपि स एवायमित्यभिप्रत्ययबलात् सिद्धा देवदत्तत्वादिजातिरभ्युपगन्तव्या क्रियास्वपि जातिरालक्ष्यते सैव पठतीत्यादावनुवृत्तप्रत्ययस्य प्रादुर्भावात् ॥ ३१ ॥

जातिशब्दार्थ वाची वाजप्यायनके मतमें गवादिशब्द अनेकव्यक्तियोंसे समवेत जातिको बोधन करते हैं उस जातिके ग्रहण होनेपर तत्सम्बंद्धद्रव्यका ग्रहण होता है शुक्लादिशब्द गुणसमवेत जातिको बोधन करते हैं तत्संबन्धसे गुणग्रहण होता है द्रव्यसम्बन्धी सम्बन्धसे प्रत्ययशब्दभी जातिबोधक है संज्ञाशब्दकोभी उत्पत्तिसे लेकर विनाशपर्यन्त बाल्य यौवन वार्धक्यावस्थाभेदमेंभी स एव अयम् इस प्रत्यभिज्ञासे सिद्ध देवदत्तत्वादि जातिबोधकत्व है क्रियामेंभी पठतीत्यादिमें अनुवृत्त प्रत्ययजनक जाति है ॥ ३१ ॥

द्रव्यपदार्थवादिव्याडिनये शब्दस्य व्यक्तिरेवाभिधेयतया प्रतिभासते । जातिस्तूपलक्षणतयेति नानन्त्यादिदोषावकाशः ३२

द्रव्यपदार्थवादी व्याडीके मतमें शब्दका वाच्य द्रव्यही है जाति उपलक्षणतया प्रतीत होता है एवञ्च जाति एक होनेसे तदुपलक्षित व्यक्तिमेंभी आनन्त्यादि दोष नहीं है ॥ ३२ ॥

पाणिन्याचार्यस्योभयं सम्मतं यतो जातिपदार्थमभ्युपगम्य 'जात्याख्यायामेकास्मिन् बहुवचनमन्यतरस्याम्' इत्यादिव्यवहारः द्रव्यपदार्थमङ्गीकृत्य ' सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ ' इत्यादिः व्याकरणस्य सर्वपार्षदत्वान्मतद्वयाभ्युपगमे न कश्चि-

द्विरोधः ॥ तस्मात् द्वयं सत्यं परं ब्रह्मतत्त्वं सर्वशब्दार्थ इति स्थितम् ॥ ३३ ॥

पाणिनिआचार्यको जाति और द्रव्य दोनों अभिमत हैं जाति पदार्थ मानकर जात्याख्यायामिति सूत्र प्रणयन किये द्रव्य पदार्थ मानकर सरूप सूत्रका आरम्भ किये व्याकरणके सर्वोपियोगित्व होनेसे दोनों पक्षमें कोई विरोध नहीं है अतः परब्रह्मत्वही सम्पूर्ण शब्दका अर्थ है ॥ ३३ ॥

तदुक्तम्—"तस्माच्छक्तिविभागेन सत्यः सर्वः सदात्मकः । एकोऽर्थः शब्दवाच्यत्वे बहुरूपः प्रकाशते ॥" इति । सत्यस्वरूपमपि हरिणोक्तं सम्बन्धसमुद्देशे—"यत्र द्रष्टा च दृश्यं च दर्शनं चाविकल्पितम् । तस्यैवार्थस्य सत्यत्वमाहुस्त्रय्यन्तवेदिनः ॥" इति । द्रव्यसमुद्देशेऽपि—"विकारोपगमे सत्यं सुवर्णं कुण्डलं यथा । विकारापगमो यत्र तामाहुः प्रकृतिं पराम् ॥" इति ॥ अभ्युपगताद्वितीयत्वनिर्वाहाय वाच्यवाचकयोरविभागः प्रदर्शितः । "वाच्या सा सर्वशब्दानां शब्दाच्च न पृथक् ततः । अपृथक्त्वेऽपि सम्बन्धस्तयोर्नानात्मनोरिव ॥" इति ॥ ३४ ॥

अतः जातिव्यक्तिरूप शक्तिभेदसे शब्दका वाच्य एक, सदात्मक, सत्य, अनेक रूपसे प्रतीत होता है जिसमें द्रष्टा, दृश्य, दर्शन, विकल्प न हों उस अर्थको वेदान्ती लोग सत्य कहते हैं । तथाच श्रुतिः 'यत्रत्वस्यसर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत् कं विजानीयादिति' द्रव्यसमुद्देशमेंभी विकारयुक्त होनेसे सत्य सुवर्णका जिस प्रकार कुण्डल होता है विकारशून्य जिस अवस्थामें हो उसीको प्रकृति कहते हैं अद्वितीयत्वरक्षाके लिये वाच्यवाचकका अविभागभी दिखाया है शब्दका वाच्य अर्थ शब्दसे यद्यपि पृथक् नहीं तथापि अनेक आत्माके समान परस्परसम्बन्ध होता है ॥ ३४ ॥

तत्तदुपाधिपरिकल्पितभेदबहुलतया व्यवहारस्याविद्यामात्रकल्पितत्वेन प्रतिनियताकारोपधीयमानरूपभेदं ब्रह्मतत्त्वं सर्वशब्दविषयः अभेदे च पारमार्थिके संवृत्तिवशाद्व्यवहारद-

शायां स्वप्नावस्थावदुच्चावचः प्रपञ्चो विवर्त्तत इति कारिकार्थः। तदाहुर्वेदान्तवादनिपुणाः--"यथा स्वप्नप्रपञ्चोऽयं मयि माया विजृम्भितः । एवं जाग्रत्प्रपञ्चोऽपि मयि माया विजृम्भितः॥" इति ॥ ३५ ॥

तत्तदुपाधिकल्पितभेदवश व्यावहारिक अविद्याकल्पित होनेसे प्रतिनियत आकारसे कल्पितरूप भेद ब्रह्मतत्त्वही समस्त शब्द वाच्य है । पारमार्थिक अद्वितीयमें उच्च नीच प्रपञ्च सब स्वप्न पदार्थवत् हैं आविद्यक विवर्तमात्र है यह कारिका अभिप्राय है ॥ ३५ ॥

तदित्थं कूटस्थे परस्मिन् ब्रह्मणि सच्चिदानन्दरूपे प्रत्यगभिन्नेऽवगते अनाद्यविद्यानिवृत्तौ तादृग्ब्रह्मात्मनावस्थानलक्षणं निःश्रेयसं सेत्स्यति 'शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति' इत्यभियुक्तोक्तेः । तथाच शब्दानुशासनशास्त्रस्य निःश्रेयससाधनत्वं सिद्धम् ॥ ३६ ॥

इस प्रकार जीवाभिन्न सच्चिदानन्द परब्रह्मके ज्ञानसे अविद्याकी निवृत्ति होनेपर ब्रह्मस्वरूपावस्थितिरूप मोक्ष प्राप्त होता है । अभियुक्तोंनेभी शब्दब्रह्ममें निपुण होनेसे परब्रह्मकी प्राप्ति कही है । इसलिये शब्दशास्त्रको मोक्षसाधनत्व सिद्ध हुआ ॥ ३७ ॥

तदुक्तम्--"तद् द्वारमपवर्गस्य वाङ्मलानां चिकित्सितम् । पवित्रं सर्वविद्यानामाधिविद्यं प्रचक्षते ॥" इति । तथा-" इदमाद्यं पदस्थानं सिद्धिसोपानपर्वणाम् । इयं सा मोक्षमार्गाणामजिह्मा राजपद्धतिः ॥ " इति ॥ तस्माद् व्याकरणशास्त्रं परमपुरुषार्थसाधनतयाध्येतव्यमिति सिद्धम् ॥ ३७ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहे पाणिनिदर्शनं समाप्तम् ॥ १३ ॥

वचनके मलको हटानेवाला व्याकरणशास्त्र अपवर्गका द्वार सम्पूर्ण विद्यामें पवित्र और श्रेष्ठ कहा जाता है । सिद्धिकी सिढ्ढीका प्रथम सीढी मोक्षमार्गका ऋजु राजमार्ग व्याकरणशास्त्र है । अतः परमपुरुषार्थ प्राप्तिके लिये व्याकरणशास्त्र अवश्य पढना चाहिये ।

इति सर्वदर्शनसंग्रहे पाणिनिदर्शनं समाप्तम् ।

अथ सांख्यदर्शनम् ॥ १४ ॥

अथ सांख्यैराख्याते परिणामवादे परिपन्थिनि जागरूके कथङ्कारं विवर्त्तवाद आदरणीयो भवेदेष हि तेषामाघोषः । संक्षेपेण हि सांख्यशास्त्रस्य चतस्रो विधाः सम्भाव्यन्ते । कश्चिदर्थः प्रकृतिरेव, कश्चिद्विकृतिरेव, कश्चिद्विकृतिः प्रकृतिश्च; कश्चिदनुभय इति । तत्र केवला प्रकृतिः प्रधानपदेन वेदनीया मूलप्रकृतिः नासावन्यस्य कस्यचिद्विकृतिः ॥ १॥

परिणामवादी सांख्य जबतक जीवित है तबतक शाब्दिकोंका विवर्तवाद कैसे आदरणीय होगा उनका यह डिंडिमा है कि संक्षेपसे सांख्यशास्त्रमें पदार्थके चार क्रम हैं कोई पदार्थ केवल प्रकृति और कोई पदार्थ केवल विकृति कोई २ प्रकृति विकृतिरूप और कोई उभय भिन्न हैं । प्रधानपदबोध्य मूलप्रकृति केवल प्रकृति है वह अन्यका विकार नहीं ॥ १ ॥

प्रकरोतीति प्रकृतिरिति व्युत्पत्त्या सत्त्वरजस्तमोगुणानां साम्यावस्थाया अभिधानात् । तदुक्तं ' मूलप्रकृतिरविकृतिः ' इति । मूलं चासौ प्रकृतिश्च मूलप्रकृतिः । महदादेः कार्यकलापस्यासौ मूलं न त्वस्य प्रधानस्य मूलान्तरमास्ति अनवस्थापातात् । न च बीजांकुरवदनवस्थादोषो न भवतीति वाच्य प्रमाणाभावादिति भावः ॥ २ ॥

अतिशयरूपसे कार्यको करे इत्यर्थक प्रकृतिपद सत्त्वादि गुणत्रयकी न्यूनाधिक भावनापन्न अवस्था विशेषबोधक है मूलरूप प्रकृति अर्थात् महदादि समस्त कार्योंका मूल कारण जिसका कारणान्तर नहीं अन्यथा अनवस्थादोष होगा बीजाङ्कुरन्यायसे अनवस्थादोष परिहार नहीं कर सकते क्योंकि बीजाङ्कुरन्यायाप्रमाणसद्भावमें प्रवृत्त होता है ॥ २ ॥

विकृतयश्च प्रकृतयश्च महदहङ्कारतन्मात्राणि । तदप्युक्तं, महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्तेति । अस्यार्थः प्रकृतयश्च ताः विकृतयश्चेति प्रकृतिविकृतयः सप्त महदादीनि तत्त्वानि ॥

तत्रान्तःकरणादिपदवेदनीयं महत्तत्त्वमहङ्कारस्य प्रकृतिः मूलप्रकृतेस्तु विकृतिः ॥ एवमहङ्कारतत्त्वमभिमानापरनामधेयं महतो विकृतिः प्रकृतिश्च तदेवाहंकारतत्त्वं तामसं सत् पञ्चतन्मात्राणां सूक्ष्माभिधानां तदेव सात्त्विकं सत् प्रकृतिरेकादशेन्द्रियाणां बुद्धीन्द्रियाणां चक्षुःश्रोत्रघ्राणरसनात्वगाख्यानां कर्मेन्द्रियाणां वाक्पाणिपादपायूपस्थाख्यानामुभयात्मकस्य मनसश्च रजसस्तूभयत्र क्रियोत्पादनद्वारेण कारणत्वमस्तीति न वैयर्थ्यम् ॥ ३ ॥

महत्, अहङ्कार, पञ्चतन्मात्रा, प्रकृतिविकृति अर्थात् कार्यकारण उभयरूप है अन्तःकरणपर्य्याय महत्तत्त्व अहङ्कारकी प्रकृति (कारण) मूलप्रकृतिका कार्य है अभिमानपर्याय अहङ्कारतत्त्व महत्तत्त्वकी विकृति है वही अहङ्कार तामस होकर सूक्ष्मावस्थापन्न पञ्चतन्मात्राकी सात्त्विक होकर श्रोत्रादि पञ्च ज्ञानेन्द्रिय हस्तादि पञ्च कर्मेन्द्रिय दोनोंके नियन्ता मनकी प्रकृति है रजोगुण दोनों अवस्थामें क्रियोत्पादनद्वारा कारण है अतः उसका वैयर्थ्य नहीं अतएव सांख्यकारिकामें कहा है अभिमानरूप अहंकारसे दो प्रकार सर्ग होते हैं एकादश इन्द्रिय और पञ्चतन्मात्रा सात्त्विक अहंकारसे सात्त्विक एकादश इन्द्रिय भूतादि (तामस) से तन्मात्रा तैजस (राजस) से उभयविध अहंकार प्रवर्त होता है ॥ ३ ॥

तदुक्तमीश्वरकृष्णेन—"अभिमानोऽहंकारस्तस्माद्द्विविधःप्रवर्त्तते सर्गः । एकादशकश्च गणस्तन्मात्रपञ्चकं चैव ॥ सात्त्विक एकादशकः प्रवर्त्तते वैकृतादहंकारात् । भूतादेस्तन्मात्रः स तामसस्तैजसादुभयम् । बुद्धीन्द्रियाणि चक्षुःश्रोत्रघ्राणरसनत्वगाख्यानि । वाक्पादपाणिपायूपस्थानि कर्मेन्द्रियाण्याहुः ॥" 'उभयात्मकमत्र मनः संकल्पविकल्पकञ्च साधर्म्यात्' इति ॥ विवृतञ्च तत्त्वकौमुद्यामाचार्यवाचस्पतिभिः केवला विकृतिस्तु वियदादीनि पञ्चभूतानि एकादशेन्द्रियाणि च तदुक्तं, षोडशकस्तु विकार इति षोडशसंख्यावच्छिन्नो गणः षोडशको विकार एव न प्रकृतिरित्यर्थः । यद्यपि पृथिव्यादयो गोघटा-

दीनां प्रकृतिस्तथापि न ते पृथिव्यादिभ्यस्तत्त्वान्तरमिति न प्रकृतिः तत्त्वान्तरोपादानत्वं चेह प्रकृतित्वमभिमतं गोघटादीनां स्थूलत्वेन्द्रियग्राह्यत्वयोः समानत्वेन तत्त्वान्तरत्वाभावः । तत्र शब्दस्पर्शरूपरसगन्धतन्मात्रेभ्यः पूर्वपूर्वसूक्ष्मभूतसहितेभ्यः पञ्चभूतानि वियदादीनि क्रमेणैकद्वित्रिचतुः पञ्चगुणानि जायन्ते । इन्द्रियसृष्टिस्तु प्रागेवोक्ता ॥ ४ ॥

आकाशादि पञ्चभूत और एकादश इन्द्रिय मिलाकर षोडशसंख्यक गण केवल विकृति है किसीकीभी प्रकृति नहीं यद्यपि पृथिव्यादि घटादिकी प्रकृति है तथापि घटादि पृथिव्यादिसे भिन्न तत्त्व नहीं प्रकृतिपदेन तत्त्वान्तरोत्पादकत्वही अभिमत है गोघटादिक स्थूलत्व इन्द्रियग्राह्यत्वादि समान होनेसे तत्त्वान्तर नहीं शब्दस्पर्शरूपरस गन्धतन्मात्रसे क्रमशः उत्तरोत्तर एक एक गुणाधिक स्थूल भूत उत्पन्न होता है अर्थात् शब्दगुणक आकाश, शब्दस्पर्शयुक्त वायु, शब्दस्पर्शरूपयुक्त तेज, एवं रसयुक्त जल, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धयुक्त पृथिवी ॥ ४ ॥

तदुक्तम्–" प्रकृतेर्महांस्ततोऽहंकारस्तस्माद्गणश्च षोडशकः । तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्चभूतानि ॥ "इति ॥ अनुभयात्मकः पुरुषः । तदुक्तं, न प्रकृतिन विकृतिः पुरुष इति । पुरुषस्तु कूटस्थनित्योऽपरिणामो न कस्याचित् प्रकृतिर्नापि विकृतिः कस्यचिदित्यर्थः ॥ एतत्पञ्चविंशतितत्त्वसाधकत्वेन प्रमाणत्रयमभिमतम् । तदप्युक्तम्–"दृष्टमनुमानमाप्तवचनञ्च सर्वप्रमाणसिद्धत्वात् । त्रिविधं प्रमाणमिष्टं प्रमेयसिद्धिः प्रमाणाद्धि ॥ " इति ॥ ५ ॥

अतएव कारिकामें प्रकृतिसे महान् उससे अहंकार उससे षोडशगण, उनसे पञ्चभूतोंकी उत्पत्ति कही है पुरुष न प्रकृति है न विकृति है कूटस्थ (अचल) नित्य अपरिणामी है एतादृश २५ तत्त्वके साधक तीन प्रमाणभी कहे हैं । प्रत्यक्ष अनुमान, और आप्तवचन, ये तीन प्रमाण इष्ट हैं इतर उपमानादि इसीमें अन्तर्गत है प्रमाणकी आवश्यकता क्यों है इसका उत्तर देते हैं कि प्रमेयसिद्धि प्रमाणसेही होती है ॥ ५ ॥

इह कार्यकारणभावे चतुर्द्धा विप्रतिपत्तिः प्रसरति । असतः सज्जायत इति सौगताः संगिरन्ते । नैयायिकादयः सतोऽसज्जायत इति । वेदान्तिनः सतो विवर्त्तः कार्यजातं न वस्तु सदिति । सांख्याःपुनः सतःसज्जायत इति । तत्रासतः सज्जायत इति अप्रामाणिकः पक्षः । असतो निरुपाख्यस्य शशविषाणवत्कारणत्वानुपपत्तेः तुच्छातुच्छयोस्तादात्म्यानुपपत्तेश्च । नापि सतोऽसज्जायते कारकव्यापारात् प्रागसतः शशविषाणवत्सत्तासम्बन्धलक्षणोत्पत्त्यनुपपत्तेः । न हि नीलं निपुणतमेनापि पीतं कर्तुं पार्यते । ननु सत्त्वासत्त्वे घटस्य धर्माविति चेत्तदचारु असति धर्मिणि तद्धर्म इति व्यपदेशानुपपत्त्या धर्मिणः सत्त्वापत्तेः । तस्मात्कारकव्यापारात् प्रागपि कार्य्यं सदेव सतश्चाभिव्यक्तिरुपपद्यते । यथा पीडनेन तिलेषु तैलस्य दोहेन सौरभेयीषु पयसः । असतः कारणे किमपि निदर्शनं न दृश्यते ॥ ६ ॥

कार्यकारणभावमें चार प्रकारके मतभेद हैं बौद्ध कहते हैं असत् (अभावसे) सत्कार्य उत्पन्न होता है । तार्किकलोग सत्से असत्की उत्पत्ति मानते हैं । वेदान्ती लोग सत् कारणके विवर्त्तको कार्य कहते हैं वास्तवमें कार्य कुछभी नहीं यथा रज्जु सर्प ऐसे मानते हैं सांख्य सत्से सत्की उत्पत्ति मानते हैं । प्रथम पक्ष अप्रामाणिक है शशशृङ्गके समान तुच्छरूप अभावका कारणत्व अनुपपन्न है तुच्छ और अतुच्छका तादात्म्यभी अनुपपन्न है सत् कारणसे अविद्यमान कार्य होता है यह नैयायिक पक्षभी असंगत है कारकव्यापारसे पूर्व अविद्यमान खरगोशके सिंहके समान सत्तासम्बन्धरूप उत्पत्ति असम्भव है चतुरसे चतुरभी नीलको पीत नहीं कर सकते सत्त्व और असत्त्व घटका धर्म्म माननाभी अयुक्त है क्योंकि धर्मियोंके विना उसका धर्म्म व्यवहारभी असम्भूत होनेसे धर्म्मीकाभी सत्त्व हो जायगा अतः कारक व्यापारसे पूर्वभी कार्य सत्ही है कारकव्यापारसे केवल अभिव्यक्ति होती है यथा पीडनसे (पेरनेसे) तिलसे तेल प्रगट होता है दुहनेसे गौसे दूध प्रगट होता है अविद्यमानके कारणत्वमें कोईभी दृष्टान्त नहीं है ॥ ६ ॥

किञ्च कार्येण कारणं सम्बद्धं तज्जनकम् असम्बद्धं वा। प्रथमे कार्यस्य सत्त्वमायातं सतोरेव सम्बन्ध इति नियमात्। चरमे सर्वं कार्यजातं सर्वस्माज्जायेत असम्बद्धत्वाविशेषात्॥ तदाख्यायि सांख्याचार्यैः-"असत्त्वान्नास्ति सम्बन्धः कारणैः सत्त्वसंगिभिः। असम्बद्धस्य चोत्पत्तिमिच्छतो न व्यवस्थितिः॥" इति॥ ७॥

अथच कारण कार्यसे सम्बद्ध होकर कार्यका उत्पादक होता है या असम्बद्ध होकर ? प्रथमपक्षमें कार्यका सत्व हो जायगा क्योंकि विद्यमानहीका सम्बन्ध होता है। द्वितीय पक्षमें सब कार्य सभीसे होने लगेंगे क्योंकि असम्बद्धता समान है सांख्याचार्यनेभी कहा है कि कार्य असत् होनेसे सत्त्वरूप कारणके साथ सम्बन्ध न हो सकता कारणमें असम्बद्ध कार्यकी उत्पत्ति माने तो सबसे सभी उत्पन्न होने लगेंगे तो कहीं व्यवस्थाभी न होगी॥ ७॥

अथैवं मनुषे असम्बद्धमपि तत् तदेव जनयति यत्र यच्छक्तम् शक्तिश्च कार्यदर्शनोन्नेयेति तन्न संगच्छते तिलेषु तैलजननशक्तिरित्यत्र तैलस्यासत्त्वे सम्बद्धत्वासम्बद्धत्वविकल्पेन तच्छक्तिरिति निरूपणायोगात्। कार्यकारणयोरभेदाच्च कार्यस्य सत्त्वं कारणात् पृथक् न भवति पटस्तन्तुभ्यो न भिद्यते तद्धर्मत्वान्न यदेवं न तदेवं यथा गोरश्वः तद्धर्मश्च पटस्तस्मान्नार्थान्तरम्॥ ८॥

यदि कहो असम्बद्ध होनेपरभी कारण वही कार्यको उत्पन्न करेगा जिस कारणमें जिस कार्यकी शक्ति हो शक्तिभी कार्यको देखकर अनुमान की जाती है यहभी संगत नहीं क्योंकि तिलमें तैलजननशक्तिभी तैलसम्बन्ध सम्बन्धविकल्पसे निरूपणयोग्य होती है. कार्यकारणको तादात्म्य होनेसे कारणसे पृथक् कार्यकी सत्ताभी नहीं हो सकती तन्तुका धर्म्म होनेसे पट तन्तु (सूत्र) से भिन्न नहीं है जिसमें जिसका धर्म्म नहीं वह उससे अभिन्नभी नहीं है जिस प्रकार अश्व गौ नहीं पट तन्तु धर्म होनेसे अर्थान्तर नहीं है॥ ८॥

तर्हि प्रत्येकं त एव प्रावरणकार्यं कुर्युरिति चेत् संस्थानभेदेनाविर्भूतपटभावानां प्रावरणार्थक्रियाकारित्वोपपत्तेः। यथा हि

कूर्मस्यांगानि कूर्मशरीरे निविशमानानि तिरोभवन्ति निःसर न्ति चाविर्भवन्ति एवं कारणस्य तन्त्वादेः पटादयो विशेषा निःसरन्त आविर्भवन्त उत्पद्यन्त इत्युच्यन्ते निविशमानास्तिरोभवन्तो विनश्यन्तीत्युच्यन्ते न पुनरसतामुत्पत्तिः सतां वा विनाशः । यथोक्तं भगवद्गीतायाम्—"नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः" इति ॥ ततश्च कार्यानुमानात् तत्प्रधानसिद्धिः ॥ ९ ॥

यदि सूतही पट है तो एक एक सूतसे ओढने बिछौनेका कार्य होना चाहिये यहभी नहीं कह सकते आतानवितानरूप सन्निवेशविशेषसे आविर्भूत पटही आच्छादन कार्यक्षम होता है जिस प्रकार कछुएका अङ्ग शरीरमें प्रविष्ट होनेसे तिरोहित और बाहर निकलनेसे आविर्भूत होता है तिसी प्रकार पटादि आविर्भूत होनेसे उत्पद्यमान कहाते हैं तिरोधानदशामें नष्ट कहे जाते हैं न असत्की उत्पत्ति है और न सत्का विनाशही है । गीतामेंभी कहा है कि असत्वस्तुकी उत्पत्ति और सत्वस्तुका विनाश नहीं होता है अतः कार्यद्वारा कारणानुमानसे प्रधानकी सिद्धि होती है ॥ ९ ॥

तदुक्तम्—"असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात् । शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम् ॥" इति ॥ नापि सतो ब्रह्मतत्त्वस्य विवर्त्तःप्रपञ्चः बाधानुपलम्भात् आधिष्ठानारोप्ययोश्चिज्जडयोः कलधौतरूप्यादिवत् सारूप्याभावेनारोपासम्भवाच्च ॥ १० ॥

असत्कार्यका करना असम्भव होनेसे उपादानग्रहण अर्थात् घटके प्रति मृत्तिकाहीको उपादान करते हैं पटके लिये सूतहीको उपादान करते हैं अन्यको नहीं करते इससे सबसे सबकी उत्पत्ति न होनेसे कारणमें शक्त कार्यको करते हैं इन हेतुओंसे और कारणभावसे कार्य सत् है सत् जो ब्रह्मतत्त्व उसका विवर्त प्रपञ्च नहीं है क्योंकि बाधक उपलब्ध नहीं होता अधिष्ठान आरोप्य जो चित् और जड है उनका परस्पर शुक्तिरजतके समान सारूप्य न होनेसे आरोपही असम्भवही है ॥ १० ॥

तस्मात् सुखदुःखमोहात्मकस्य तथाविधकारणमवधारणीयं तथा च प्रयोगः विमतं भावजातं सुखदुःखमोहात्मककारणकं

तदन्वितत्वात् यद्द्येनान्वीयते तत्तत्कारणकं यथा रुचकादिकं सुवर्णान्वितं सुवर्णकारणकं तथाचेदं तस्मात्तथेति ॥ ११ ॥

अतः सुखदुःखमोहात्मक जगत्का तादृश कारणभी होना चाहिये अनुमान-प्रयोगभी है कि विवादास्पद वस्तुजात सुखदुःखमोहात्मक कारणजन्य है तादृश धर्मयुक्त होनेसे, जो जिस धर्म्मयुक्त हो वह तादृशकारणक होता है जिस प्रकार कटककुण्डलादि सुवर्णधर्मयुक्त होनेसे सुवर्ण कारणक है ॥ ११॥

तत्र जगत्कारणे येयं सुखात्मकता तत् सत्त्वं, या दुःखात्मकता तद्रजः, या च मोहात्मकता तत्तम इति त्रिगुणात्मककारणसिद्धिः । तथाहि प्रत्येकं भावास्त्रैगुण्यवन्तोऽनुभूयन्ते यथा मैत्रदारेषु सत्यवत्यां मैत्रस्य सुखमाविरस्ति तं प्रति सत्त्वगुणप्रादुर्भावात् तत्सपत्नीनां दुःखम् । तां प्रति रजोगुणप्रादुर्भावात् तामलभमानस्य चैत्रस्य मोहो भवति तं प्रति तमोगुणसमुद्भवात् एवमन्यदपि घटादिकं लभ्यमानं सुखं करोति परैरपि ह्रियमाणं दुःखाकरोति उदासीनस्योपेक्षाविषयत्वेनोपतिष्ठते उपेक्षाविषयत्वं नाम मोहः मुह वैचित्त्येत्यस्माद्धातोर्मोहशब्दनिष्पत्तेः उपेक्षणीयेषु चित्तवृत्त्यनुदयात्॥१२॥

जगत्के कारणमें जो सुखात्मकता है वह सत्त्वगुण है । जो दुःखात्मकता है वह रजोगुण है और जो मोहात्मकता है वह तमोगुण है । एवं त्रिगुणात्मक कारण सिद्ध है । प्रत्येक वस्तु त्रिगुणात्मक उपलब्ध होता है जिस प्रकार मैत्रनामक एक पुरुषके अनेक भार्याओंमें एकके विषयमें प्रेमाधिक होनेसे मैत्रको सुख प्रकट होता है उसके प्रति सत्त्वगुण प्रकट हुआ है अन्य सपत्नीको दुःख प्रकट होता है क्योंकि उनके प्रति रजोगुण अधिक आविर्भूत हो गया है । सत्यवतीके अलाभसे चैत्रको मोह होता है क्योंकि अलाभसे तमोगुण उत्पन्न हो जाता है । इसी प्रकार अन्य-घटादि जिसको मिल जाता है उसको सुख होता है और उसीके नष्ट होनेसे दुःख होता है । उदासीनके उपेक्षाविषय होता है उसका नाम मोह है मुहधातु वैचित्यार्थक है वैचित्यका अर्थ चित्तविकार है उपेक्षणीयविषयमें चित्तवृत्ति नहीं होती है ॥ १२ ॥

तस्मात् सर्वं भावजातं सुखदुःखमोहात्मकं त्रिगुणप्रधानकारणकमवगम्यते । तथाच श्वेताश्वतरोपनिषदि श्रूयते- "अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजा जनयन्तीं सरूपाः । अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोन्यः" इति ॥ अत्र लोहितशुक्लकृष्णशब्दा रञ्जकत्वप्रकाशकत्वावरकत्वसाधर्म्यात् रजःसत्त्वतमोगुणत्वप्रतिपादनपराः ॥ १३ ॥

अतः सुख, दुःख मोहात्मक पदार्थमात्र त्रिगुणात्मक प्रधानकारणक प्रतीत होता है । श्रुतिनेभी कहा है कि ' अज (नित्य) लोहित' शुक्ल, कृष्ण, रञ्जक, प्रकाशक, आवरक धर्मवान् रजोगुण, सत्त्वगुण तमोगुणयुक्त सुखदुःखमोहात्मक समानरूप अनेकविध सृष्टि करनेवालीको एक अज (जीव) प्रकृतिपुरुष विवेकज्ञानशून्य अतएव सेवन करनेवाला बद्ध होता है । अन्य प्रकृतिपुरुष विवेकज्ञानवान् भोग भोगचुकनेसे उस प्रकृतिको त्याग देते हैं ॥ १३ ॥

नन्वचेतनं प्रधानं चेतनानधिष्ठितं महदादिकार्य्ये न व्याप्रियते । अतः केनाचिच्चेतनेनाधिष्ठात्रा भवितव्यं तथा च सर्वार्थदर्शी परमेश्वरः स्वीकर्त्तव्यः स्यादिति चेत् तदसंगतम् अचेतनस्यापि प्रधानस्य प्रयोजनवशेन प्रवृत्त्युपपत्तेः । दृष्टं च अचेतनं चेतनानधिष्ठितं पुरुषर्थाय यथा वत्सवृद्ध्यर्थमचेतनं क्षीरं प्रवर्त्तते यथा जलमचेतनं लोकोपकाराय प्रवर्त्तते तथा च प्रकृतिरचेतनापि पुरुषविमोक्षाय प्रवर्त्स्यति ॥ तदुक्तम्-- "वत्सविवृद्धिनिमित्तं क्षीरस्य यथा प्रवृत्तिरज्ञस्य । पुरुषविमोक्षनिमित्तं तथा प्रवृत्तिः प्रधानस्य ॥" इति ॥ १४ ॥

अचेतनप्रधान अधिष्ठाता कोई चेतनके विना महदादिकार्यको नहीं कर सकता अतः अधिष्ठाता चेतन अवश्य होना चाहिये तथाच सर्वज्ञ परमेश्वर स्वीकार्य होगा यहभी अयुक्त है । अचेतनभी प्रयोजनवश प्रवृत्त होता है देखाभी गया है कि वत्सकी वृद्धिके लिये अचेतन क्षीर चेतनाधिष्ठानके विना प्रवृत्त होता है यथा वा अचेतन जल पुरुषोपकारके लिये प्रवृत्त होता है उसी प्रकार अचेतन प्रकृतिभी पुरुषके मोक्षके लिये प्रवृत्त होगी । इसी बातको वत्सविवृद्धीत्यादिसे कहा है ॥ १४ ॥

यस्तु परमेश्वरः करुणया प्रवर्तक इति परमेश्वरास्तित्ववादिनां डिण्डिमः स प्रायेण गतः विकल्पानुपपत्तेः। स किं सृष्टेः प्राक् प्रवर्त्तते सृष्ट्युत्तरकाले वा । आद्ये शरीराद्यभावेन दुःखानुत्पत्तौ जीवानां दुःखग्रहणेच्छानुपपत्तिः। द्वितीये परस्पराश्रयप्रसंगः करुणया सृष्टिः सृष्ट्या च कारुण्यमिति ॥ तस्मादचेतनस्यापि चेतनानाधिष्ठितस्य प्रधानस्य महदादिरूपेण परिणामः पुरुषार्थप्रयुक्तः प्रधानपुरुषसंयोगनिमित्तः ॥ १९ ॥

परमेश्वर करुणासे प्रवर्तक है यह जो ईश्वरास्तित्ववादियोंका उद्घोष है । वहभी वक्ष्यमाण विकल्पानुपपत्तिसे परास्त है । तथाहि ईश्वर सृष्टिके पूर्व प्रवृत्त होते हैं या उत्तर कालमें प्रवृत्त होते हैं ? प्रथम पक्षमें शरीरेन्द्रियादि न होनेके कारण जीवको दुःखोत्पत्ति न होनेसे दुःखनाशकी इच्छाही अनुपपन्न है । द्वितीयपक्षमें करुणासे सृष्टि, सृष्टिसे करुणा इस प्रकार अन्योन्याश्रय होगा । अतः चेतनानधिष्ठित अचेतन प्रधानकोभी प्रधानपुरुषसंयोगनिमित्त पुरुषार्थके लिये महदादिरूपस परिणाम मानना होगा ॥ १९ ॥

यथा निर्व्यापारस्याप्ययस्कान्तस्य सन्निधानेन लोहस्य व्यापारः तथा निर्व्यापारस्य पुरुषस्य सन्निधानेन प्रधानव्यापारो युज्यते । प्रकृतिपुरुषसम्बन्धश्च पङ्ग्वन्धवत्परस्परापेक्षानिबन्धनः ॥ प्रकृतिर्हि भोग्यतया भोक्तारं पुरुषमपेक्षते । पुरुषोऽपि भेदाग्रहाद्बुद्धिच्छायापत्त्या तद्गतं दुःखत्रयं वारयमाणः कैवल्यमपेक्षते । तत् प्रकृतिपुरुषविवेकनिबन्धनं न च तदन्तरेण युक्तमिति कैवल्यार्थं पुरुषः प्रधानमपेक्षते । यथा खलु कौचित् पंग्वन्धौ पथि सार्धेन गच्छन्तौ दैवकृतादुपप्लवात् परित्यक्तसार्थौ मन्दमन्दमितस्ततः परिभ्रमन्तौ भयाकुलौ दैववशात् संयोगमुपगच्छेतां तत्र चान्धेन पंगुः स्कन्धमारोपितः ततः पंगुदर्शितेन मार्गेणान्धः समीहितं स्थानं प्राप्नोति । पंगुरपि स्कन्धाधिरूढः तथा परस्परापेक्षप्रधानपुरुषनिबन्धनः सर्गः ॥ यथोक्तम्--"पुरुषस्य दर्शनार्थं

कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य । पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि सम्बन्ध-स्तत्कृतः सर्गः ॥ " इति ॥ १६ ॥

जिस प्रकार व्यापारशून्य अयस्कान्त (चुम्बक) के संयोगसे लोहेमें व्यापार होता है तिसी प्रकार निर्व्यापार पुरुषके सन्निधानसे प्रधानमें व्यापार उत्पन्न होता है। प्रकृतिपुरुषका सम्बन्धभी पंगु और अन्धके संबन्धवत् परस्पर प्रयोजनसे होता है प्रकृति भोग्य होनेसे भोक्ता पुरुषकी अपेक्षा करती है। बुद्धि प्रतिबिम्बित होनेसे भेदज्ञान न होनेके कारण पुरुषभी दुःखत्रयनिवारणार्थे कैवल्यकी अपेक्षा करते हैं। कैवल्य प्रकृतिपुरुषाविवेकनिबन्धन है उसके विना नहीं हो सकता यथा एक अंध और एक पंगु दोनों साथही राजमार्गसे जा रहे दैव-दुर्विपाकसे मार्ग छुट गया अनन्तर भयसे इतस्ततः घूमते हुये भाग्यवश दोनों मिलगये पुनः दोनों सम्मति कर अन्धने पंगुको अपने कन्धेपर चढालिया और पंगुके दिखाये मार्गसे अन्ध अपने स्थानपर पहुंच गया पंगुभी कन्धेपर चढकर स्वस्थान पहुंचा इस प्रकार परस्परापेक्ष प्रधान पुरुष निमित्त सृष्टि होती है। पुरुषके दर्शनार्थ तथा कैवल्यार्थ प्रधानकी प्रवृत्ति है पंगु अन्धवत् दोनोंका सम्बन्ध है एत-न्मूलही सृष्टि है ॥ १६ ॥

ननु पुरुषार्थनिबन्धना भवतु प्रकृतेः प्रवृत्तिःनिवृत्तिस्तु कथमुपप-द्यत इति चेदुच्यते यथा भर्त्रा दृष्टदोषा स्वैरिणी भर्त्तारं पुन-र्नोपैति यथा वा कृतप्रयोजना नर्त्तकी निवर्तते तथा प्रकृति-रपि ॥ यथोक्तम्–"रंगस्य दर्शयित्वा निवर्त्तते नर्त्तकी यथा नृत्यात् । पुरुषस्य तथात्मानं प्रकाश्य विनिवर्त्तते प्रकृतिः ॥" इति । एतदर्थं निरीश्वरसांख्यशास्त्रप्रवर्त्तककपिलानुसारिणां मतमुपन्यस्तम् ॥ १७ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहे सांख्यदर्शनं समाप्तम् ॥ १४ ॥

पुरुषार्थ निमित्त प्रधानकी प्रवृत्ति हो परन्तु निवृत्ति कैसे हो सकती है, सो कहते हैं जिस प्रकार जिसके दोष पतिने देखे हैं ऐसी व्यभिचारिणी स्त्री पुनः पतिके पास नहीं जाती है यथा वा नृत्य समाप्त होनेसे नर्तकी रङ्गस्थानसे निवृत्त होती है तिसी प्रकार प्रकृतिभी कृतकृत्य होकर निवृत्त होती है इस विषयमें निरीश्वर सांख्यशास्त्र-प्रवर्तक कापिलका मत मैंने दिखाया ॥ १७ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहमें सांख्यदर्शनं समाप्तम् ।

अथ पातञ्जलदर्शनम् ॥ १५ ॥

साम्प्रतं सेश्वरसांख्यप्रवर्त्तकपतञ्जलिप्रभृतिमुनिमतमनुवर्त्तमानानां मतमुपन्यस्यते ॥ तत्र सांख्यप्रवचनापरनामधेयं योगशास्त्रं पतञ्जलिप्रणीतं पादचतुष्टयात्मकम् । तत्र प्रथमे पादे अथ योगानुशासनमिति योगशास्त्रारम्भप्रतिज्ञां विधाय योगश्चित्तवृत्तिनिरोध इत्यादिना योगलक्षणमभिधाय समाधिं सप्रपञ्चं निरादिक्षत् भगवान् पतञ्जलिः । द्वितीये तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोग इत्यादिना व्युत्थितचित्तस्य क्रियायोगं यमादीनि पञ्च बहिरंगानि साधनानि । तृतीये देशबन्धश्चित्तस्य धारणेत्यादिना धारणाध्यानसमाधित्रयमन्तरंगं संयमपदवाच्यं तत्रावान्तरफलं विभूतिजातम् । चतुर्थे जन्मौषधिमन्त्रतपःसमाधिजाः सिद्धय इत्यादिना सिद्धिपञ्चकप्रपञ्चनपुरस्सरं परमं प्रयोयनं कैवल्यम् ॥ १ ॥

सम्प्राति सेश्वरसांख्यशास्त्रप्रवर्तक पतञ्जलिप्रभृतिके मत कहते हैं–इसके लिये सांख्यप्रवचनापरनामक योगशास्त्र पादचतुष्टयात्मक और पतञ्जलिप्रणीत है प्रथम पादमें योगशास्त्रारम्भकी प्रतिज्ञा कर चित्तवृत्तिनिरोधात्मक योगलक्षण तथा सविस्तार समाधिस्वरूपको भगवान् पतञ्जलिने कहा । द्वितीय पादमें व्युत्थितचित्तको क्रियायोग यमादि पांच बाहिरङ्गसाधन, तृतीयमें धारण ध्यानसमाध्यादि विभूतिजात और चतुर्थमें सिद्धिपञ्चकका प्रदर्शनपुरस्सर और परमपदकैवल्यका निर्देश किया ॥ १ ॥

प्रधानादीनीति पञ्चविंशति तत्त्वानि प्राचीनान्येव सम्मतानि षड्विंशस्तु परमेश्वरः क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषः स्वेच्छया निर्माणकायमधिष्ठाय लौकिकवैदिकसम्प्रदायप्रवर्त्तकः संसारांगारे तप्यमानानां प्राणभृतामनुग्राहकश्च ॥ २ ॥

प्रकृत्यादि २५ तत्त्व पूर्वतन्त्रोक्त है २६ मा तत्त्व क्लेशादिशून्य स्वेच्छासे निर्म्माण कायको अधिष्ठान कर लौकिक और वैदिक सम्प्रदायप्रवर्तक संसाराग्निसे दग्ध प्राणियोंपर अनुग्रहकर्ता पुरुषविशेष ईश्वर है ॥ २ ॥

नतु पुष्करपलाशवन्निर्लेपस्य तस्य तापः कथमुपपद्यते येन परमेश्वरोऽनुग्राहकतया कक्षीक्रियते इति चेदुच्यते तापकस्य रजसः सत्त्वमेव तप्यं बुद्ध्यात्मना परिणमते इति सत्त्वे परितप्यमाने तमोवशेन तदभेदावगाहिपुरुषोऽपि तप्यत इत्युच्यते ॥ तदुक्तमाचार्यैः-"सत्त्वं तप्य बुद्धिभावेन वृत्तं भावा ते वा राजसास्तापकास्ते। तप्याभेदग्राहिणी तामसी वा वृत्तिस्तस्यां तप्य इत्युक्तमात्मा ॥" इति ॥ ३ ॥

कमलके पत्तेके समान निर्लेप पुरुषको तापही कैसे हो सकते हैं जिससे अनुग्राहक परमेश्वरकी अपेक्षा हों सो कहते हैं (सत्त्वमेवेति) तापकर जो गुणके तप्य सत्त्वगुणही बुद्धिरूपसे परिणत होता है अतः सत्त्व तप्त होनेपर तमोगुणवश सत्त्वके साथ अभेदसे प्रतीयमान पुरुषभी तप्त कहा जाता है । " बुद्धिरूपसे परिणत सत्त्व तप्य है राजसभाव सब तापक है तप्यके साथ अभेद ग्रह करनेवाली तामसवृत्ति होनेसे आत्माभी तप्य कहाता है ॥ ३ ॥

पतञ्जलिनाप्युक्तम् । अपरिणामिनी हि भोक्तृशक्तिरप्रतिसंक्रमा च परिणामिनीत्यर्थे प्रतिसंक्रान्तेव तद्वृत्तिमनुभवतीति ॥ भोक्तृशक्तिरिति चिच्छक्तिरुच्यते। सा चात्मैव परिणामीत्यर्थे बुद्धितत्त्वे प्रतिसंक्रान्तेव प्रतिबिम्बिते तद्वृत्तिमनुभवतीति बुद्धौ प्रतिबिम्बिता सा चिच्छक्तिर्बुद्धिच्छायापत्त्या बुद्धिवृत्त्यनुकारवतीति भावः। तथा शुद्धोऽपि पुरुषः प्रत्ययं बौद्धमनुपश्यति तमनुपश्यन्नतदात्मापि तदात्मक इव प्रतिभासत इति ॥ ४ ॥

पतञ्जलिनेभी कहा है कि स्वयं अपरिणामी और असंक्रमणशील चिच्छक्ति (आत्मा) परिणामी बुद्धितत्त्वमें प्रतिबिम्बित होनेपर अर्थात् बुद्धिमें प्रतिबिम्बित चिच्छक्ति बुद्धिछायासे बुद्धिवृत्तिको अनुकरण करती है। तथा पुरुष शुद्ध हो तोभी बुद्धिका भोगको भोगता है उसको अनुभव करते हुए बुध्यात्मा पुरुष तत्तद्विषयाभेदसे प्रतीत होता है ॥ ४ ॥

इत्थं तप्यमानस्य पुरुषस्यादरनैरन्तर्यदीर्घकालानुबन्धियमनियमाद्यष्टांगयोगानुष्ठानेन परमेश्वरप्रणिधानेन च सत्त्वपुरुषान्यताख्यातावनुपप्लवायां जातायामविद्यादयः पञ्च क्लेशाः समूलकाषंकषिता भवन्ति । कुशलाकुशलाश्च कर्माशयाः समूलघातं हता भवन्ति । ततश्च पुरुषस्य निर्लेपस्य कैवल्येनावस्थानं कैवल्यमिति सिद्धम् ॥ ५ ॥

इस प्रकार तप्यमान पुरुषको दीर्घकालतक निरन्तर आदरातिशयपूर्वक यमनियमाद्यष्टाङ्गयोगके अनुष्ठानसे परमेश्वराराधन वश प्रकृति पुरुषान्यत्व दृढ होजानेपर अविद्यास्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेशरूप क्लेशपञ्चक समूल उच्छिन्न होता है अनन्तर निर्लेप पुरुषको कैवल्यलक्षण मोक्ष होता है ॥ ५ ॥

तत्राथ योगानुशासनमिति प्रथमसूत्रेण प्रेक्षावत्प्रवृत्त्यङ्गं विषयप्रयोजनसम्बन्धाधिकारिरूपमनुबन्धचतुष्टयं प्रतिपाद्यते ॥ अत्राथशब्दोऽधिकारार्थः स्वीक्रियते ॥ ६ ॥

प्रथमसूत्रसे विचारशीलकी प्रवृत्तिके उपयोगी अवश्यापेक्षित विषय, प्रयोजन, सम्बन्ध और अधिकारी रूप अनुबन्ध चतुष्टयका प्रतिपादन किया इसी सूत्रमें अथशब्दको अधिकारार्थक मानते हैं ॥ ६ ॥

अथशब्दस्यानेकार्थत्वे संभवति कथमारम्भार्थत्वपक्षे पक्षपातः सम्भवेत् । अथशब्दस्य मङ्गलाद्यनेकार्थत्वं नामलिंगानुशासनेनानुशिष्टं 'मंगलानन्तरारम्भप्रश्नकार्त्स्न्येष्वथो अथ' इति ॥ ७ ॥

शंका—अथशब्दके मंगल, अनन्तर, आरम्भ प्रश्न और कार्त्स्न्य आदि अनेक अर्थका कोशकारोंने प्रतिपादन किये हैं तब केवल आरम्भार्थ कही है इस प्रकारका पक्षपात कैसा संगत होगा ॥ ७ ॥

अत्र प्रश्नकार्त्स्न्ययोरसम्भवेऽपि पूर्वप्रकृतापेक्षानन्तर्यमंगलारम्भलक्षणानामर्थानां सम्भवादारम्भार्थत्वानुपपत्तिरितिचेन्मैवं मंस्थाः विकल्पासहत्वात् आनन्तर्यमथशब्दार्थ इति पक्षे यतः

कुतश्चिदानन्तर्यं पूर्ववृत्तिभावसाधारणात् कारणादानन्तर्यं वा। न प्रथमः, न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृदिति न्यायेन सर्वो जन्तुः किञ्चित् कृत्वा किञ्चित् करोत्येवेति तस्याभिधानमन्तरेणापि प्राप्ततया तदर्थाथशब्दप्रयोगवैयर्थ्य-प्रसक्तेः । न चरमः, शमाद्यनंतरं योगस्य प्रवृत्तावपि तस्या-नुशासनप्रवृत्त्यनुबन्धतया शब्दतः प्राधान्याभावात् ॥८॥

यद्यपि प्रश्न और कात्स्न्यर्यरूप अर्थ असम्भव है तथापि अवशिष्ट अर्थका सम्भव हो सकते हैं एवञ्च केवल आरंभार्थकत्व कथन अयुक्त है। समाधान–आनन्तर्य अथ शब्दका अर्थ है तो क्या नहीं कहींसे आनन्तर्य है या पूर्ववृत्त साधारणकारणसे आनन्तर्य हैं । कोई एक क्षणभी विना कर्मके नहीं रह सकता है इस न्यायसे प्राणि-मात्र कुछ करके कुछ करते रहेंगे उसमें विधिके विनापि आनन्तर्य प्राप्त रहेगा अतः तथा अथशब्दका आरम्भ व्यर्थ है । क्योंकि " अनन्यलभ्यो हि शब्दार्थः " इस न्यायसे जो प्रकारान्तरसे प्राप्त न हो सके वही शब्दका अर्थ हो सकता है। आनन्तर्य स्वतः सिद्ध है । द्वितिय पक्षमें शमदमाद्यनन्तर योगशास्त्र प्रवृत्त होनेपरभी योगा-नुशासनमें शमादिक अनुबन्धकोटि प्रविष्ट होनेसे अनुशासनप्राधान्य होनेके कारण शब्दतः योगमें प्राधान्य नहीं रहेगा ॥ ८ ॥

न च शब्दतः प्रधानभूतस्यानुशासनस्य शमाद्यानन्तर्य-मथशब्दार्थः किं न स्यादिति वदितव्यम् । अनुशासनमिति हि शास्त्रमाह अनुशिष्यते व्याख्यायते लक्षणभेदोपायफलस-हितो योगो येन तदनुशासनमिति व्युत्पत्तेः । अनुशासनस्य च तत्त्वज्ञानचिख्यापयिषानन्तरभावित्वेव शमदमाद्यानन्तर्य-नियमाभावात् जिज्ञासाज्ञानयोस्तु शमाद्यानन्तर्यमाम्नायते । तस्माच्छान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः श्रद्धान्वितः समाहितो भूत्वात्मन्येवात्मानं पश्येदित्यादिना । नापि तत्त्वज्ञानचिख्या-पयिषानन्तर्यमथशब्दार्थः तस्य सम्भवेऽपि श्रोतृप्रतिपत्तिप्र-वृत्त्योरनुपयोगेनानभिधेयत्वात् ॥ ९ ॥

यदि कहो शब्दतः प्रधानभूत अनुशासनका शमाद्यानन्तर्य अथशब्दार्थ क्यों न होगा सो नहीं कह सकते क्योंकि लक्षणभेद, उपाय, फलसहित योगका व्याख्यान जिससे न किया जाय इस व्युत्पत्तिसे निष्पन्न अनुशासन शब्दशास्त्रको कहता है अनुशासनकी तत्त्वज्ञानप्रकटनेच्छा उत्तरकालिक होनेसे शमदमाद्यानन्तर्य नियम नहीं हो सकता है जिज्ञासा और ज्ञानके शमाद्यनन्तरभावित्वका श्रुतिप्रतिपादन करती है कि शान्त इति बाह्याभ्यन्तरेन्द्रियनियमनपूर्वक तितिक्षु होकर हृदयमें आत्माको देखें इत्यादि तत्त्वज्ञान प्रकटनेच्छाके अनन्तरभी अथशब्दार्थ न हो सकता क्योंकि सम्भव हो तोभी श्रोताका विश्वास और प्रवृत्तिके अनुपयोग होनेसे वैयर्थ्य प्रसङ्ग है ॥९॥

तथापि निःश्रेयसहेतुतया योगानुशासनं प्रमितं न वा । आद्ये तदभावेऽपि उपादेयत्वं भवेत् । द्वितीये तदभावेऽपि हेयत्वं स्यात् । प्रमितं चास्य निःश्रेयसनिदानत्वम् 'अध्यात्मयोगाधिगमेन चैवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाती' ति श्रुतेः । 'समाधाव चला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसी' ति स्मृतेश्च । अतएव शिष्यप्रश्नतपश्चरणरसायनाद्युपयोगानन्तर्यं पराकृतम् ॥ १० ॥

(तथापीति) क्या मोक्षसाधनत्व योगानुशासनमें ज्ञात है या नहीं ? प्रथमपक्षमें अथ शब्दक विनाभी उपादेय हो जायगा । द्वितिय पक्षमें अथशब्द रहनेपरमी अनुपादेय होजायगा । 'अध्यात्मयोगद्वारा ध्यान करके धीर योगी पुरुष हर्ष शोकसे छूट जाता है' इत्यादि श्रुतियोंसे मोक्षसाधनत्वयोगमें प्रमित है । समाधिमें निश्चल बुद्धि होनेसे योग प्राप्त होता है ऐसी स्मृतिभी है इसीसे शिष्य प्रश्न तपश्चरणाद्यानन्तर्यभी तिरस्कृत हो गया ॥ १० ॥

अथातो ब्रह्मजिज्ञासेत्यत्र तु ब्रह्मजिज्ञासायाः अनधिकार्यत्वेनाधिकार्यार्थत्वं परित्यज्य साधनचतुष्टयसंपत्तिविशिष्टाधिकारिसमर्पणाय शमदमादिवाक्यविहिताच्छमादेरानन्तर्यमथशब्दार्थं इति शङ्कराचार्यैर्निरटङ्कि ॥ ११ ॥

ब्रह्मजिज्ञासासूत्रमें अथ जिस प्रकार आनन्तर्यार्थक है तिसी प्रकार योगानुशासनशास्त्रमेंभी क्यों न होगा इस आशंकाका परिहार करते हैं (अथात इति) अथातो ब्रह्मजिज्ञासा " इत्यादि स्थलमें ब्रह्मजिज्ञासा अनधिकार्य होनेसे अधिकारार्थको त्याग कर शमदमादिसाधनचतुष्टययुक्त अधिकारिविशेषद्योतनार्थ शमाद्यानन्तर्यार्थकत्व शंकराचार्यने कहा है ॥ ११ ॥

अथ मा नाम भूदानन्तर्यार्थोऽथशब्दः मङ्गलार्थः किं न स्यात् न स्यान्मंगलस्य वाक्यार्थे समन्वयाभावात् । अगर्हिताभीष्टावाप्तिर्मङ्गलम् । अभीष्टं च सुखावाप्तिदुःखपरिहाररूपतयेष्टं योगानुशासनस्य च सुखदुःखनिवृत्त्योरन्यतरत्वाभावान्न मंगलता । तथा च योगानुशासनं मंगलमिति न संपद्यते मृदंगध्वनेरिवाथशब्दश्रवणस्य कार्यतया मंगलस्य वाच्यत्वलक्ष्यत्वयोरसंभवाच्च यथार्थिकार्थो वाक्यार्थे निविशते तथा कार्यमपि निविशेत अपदार्थत्वाविशेषात् । पदार्थे पदार्थ एव हि वाक्यार्थे समन्वीयते अन्यथा शब्दप्रमाणकानां शाब्दी ह्याकांक्षा शब्देनैव पूर्यैति मुद्राभंगकृतो भवेत् ॥ १२ ॥

यद्यपि अथशब्द आनन्तर्य्यार्थिक न हो तथापि मंगलार्थक क्यों न माना जाय ? यहभी नहीं हो सकता मगलका वाक्यार्थमें अन्वयही नहीं होगा क्योंकि अनिन्दित और अभीष्टप्राप्ति मंगल है तत्र दुःखपरिहारपूर्वक सुखकी प्राप्ति अभीष्ट है योगानुशासन सुखप्राप्ति दुःखनिवृत्ति दोनोंमेंसे एकभी न होनेसे मंगल नहीं हो सकता योगानुशासन मंगल है ऐसा वाक्यार्थ न हो सकता क्योंकि मृदङ्गध्वनिके समान अथशब्दका श्रवणकार्य होनेसे मंगलवाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ दोनोंमेंसे एकभी नहीं हो सकता जिस प्रकार आर्थिकार्थ वाक्यार्थमें निविष्ट नहीं होता है उसी प्रकार कार्यभी वाक्यार्थमें न मिल सकेगा पदार्थही वाक्यार्थमें सम्बद्ध होता है यदि आर्थिकार्थकोभी वाक्यार्थमें अन्वयमानो तो शाब्दी आकांक्षा शब्दहीसे शान्त होती है यह सिद्धकाभी भंग होगा ॥ १२ ॥

ननु प्रारिप्सितप्रबन्धपरिसमाप्तिपरिपन्थिप्रत्यूहव्यूहशमनाय शिष्टाचारपरिपालनाय च शास्त्रारम्भे मंगलाचरणमनुष्ठेयम् । मंगलादीनि मंगलमध्यानि मंगलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते आयुष्मत्पुरुषकाणि वीरपुरुषकाणि च भवन्तीत्यभियुक्तोक्तेः । भवति च मंगलार्थोऽथशब्दः । "ओंकारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा । कण्ठं भित्वा विनिर्यातौ तस्मान्मांगलिकावु-

भौ ॥" इति स्मृतिसम्भवात् । तथाच वृद्धिरादैजित्यादौ वृद्ध्यादिशब्दवदथशब्दो मंगलार्थः स्यादिति चेत् ॥ १३ ॥

यदि कहो आरम्भ करनेके अभिमतप्रबन्धकी परिसमाप्तिके प्रतिबन्धक दुरितपुञ्जका उपशमनके लिये एवं शिष्टाचारपरिपालनके लियेभी शास्त्रका आरम्भमें मंगल अवश्य अनुष्ठेय है अतएव भाष्यकारने कहाभी है कि जिस शास्त्रका आरम्भमें मंगल हो और मध्य तथा अन्तमें मंगल हो वह अत्यन्त प्रसिद्ध (विस्तृत) होता है ऐसे शास्त्रको बनानेवाले पुरुष आयुष्मान् (दीर्घजीवी) होते हैं वीर होते हैं इत्यादि । अथशब्दके मंगलार्थकत्व स्मृतिमेंभी कहा है " ओंकार और अथशब्द दोनों ब्रह्माके कण्ठको भेदन करके निकले हैं अतएव दोनों मांगलिक हैं " अतः वृद्धिशब्दवत् अथशब्दभी मंगलार्थक होगा ॥ १३ ॥

मैवं भाषिष्ठाः । अर्थान्तराभिधानाय प्रयुक्तस्याथशब्दस्य वीणावेण्वादिध्वनिवच्छ्रवणे मंगलफलत्वोपपत्तेः ॥ अथार्थान्तरारम्भवाक्यार्थधीफलकस्याथशब्दस्य कथमन्यफलकतेति चेन्न अन्यार्थनीयमानोदकुम्भोपलम्भवत् तत्सम्भवात् । न च स्मृतिव्याकोपः मांगलिकाविति मंगलप्रयोजकत्वविवक्षया प्रवृत्तेः । नापि पूर्वप्रकृतापेक्षोऽथशब्दः फलत आनन्तर्याव्यतिरेकेण प्रागुक्तदूषणानुषङ्गात् ॥ १४ ॥

यहभी नहीं कह सकता अर्थान्तरतात्पर्यसे प्रयुक्तभी अथशब्द श्रवणमात्रसे मंगलार्थ हो सकता है यथा वीणा वन्शी आदिका शब्द श्रवणमात्रसे मंगलप्रद है यथा वा अन्यदीय दध्यादिका दर्शनमात्रसे मंगल होता है । यदि कहो अर्थान्तरारम्भक वाक्यार्थ ज्ञानफलका अथशब्दभी मंगलफलक कैसा होगा सो सुनो जिस प्रकार यात्रादिसमयमें दूसरेके लिये ले जाते हुये भरे घटको देखनेसे शुभ होता है तिसी प्रकार अथशब्दभी स्वरूपतः मंगल होगा । स्मृतिविरोधभी नहीं होगा क्योंकि उसमें मांगलिक पद है उसका अर्थ मंगल प्रयोजन है पूर्वप्रकृतापेक्षभी न होगा क्योंकि ऐसे होनेसे पूर्वोक्त विकल्पदोष तदवस्त होता है ॥ १४ ॥

किमयमथशब्दोऽधिकारार्थः अथानन्तर्यार्थ इत्यादिविमर्शवाक्ये पक्षान्तरोपन्यासे तत्सम्भवेऽपि प्रकृते तदसम्भवाच्च ।

तस्मात्पारिशेष्याद्धिकारपदवेदनीयप्रारम्भार्थोऽथशब्द इति विशेषो भाष्यते ॥ १५ ॥

यह अथशब्द क्या अधिकारार्थक है अथ आनन्तर्यार्थक? इत्यादि विचारस्थलमें जो द्वितीय पक्षका उपन्यास हो वहाँ प्रश्नार्थकत्व सम्भव होनेपरभी यहाँ वह सम्भव नहीं है अतः परिशेष अधिकारपदबोध्य प्रारम्भार्थक अथ शब्द है ॥ १५ ॥

अथैष ज्योतिरथैष विश्वज्योतिरित्यत्राथशब्दः क्रतुविशेषप्रारम्भार्थः परिगृहीतो यथा अथशब्दानुशासनमित्यत्राथशब्दो व्याकरणशास्त्राधिकारार्थः। तद्भाषि व्यासभाष्ये योगसूत्रविवरणपरे 'अथेत्ययमधिकारार्थः प्रयुज्यते' इति तद् व्याचख्यौ वाचस्पतिः। तस्मादयमथशब्दोऽधिकारद्योतको मंगलार्थश्चेति सिद्धमिति॥ १६ ॥

अथ एष ज्योति इत्यादि स्थलमें जिस प्रकार क्रतुविशेष प्रारम्भार्थक अथशब्द है जिस प्रकार अथ शब्दानुशासनमित्यादिमें अथशब्द व्याकरणशास्त्रका अधिकारार्थक है तिसी प्रकार योगसूत्रविवरणपर योगभाष्यमेंभी अथशब्दको अधिकारार्थक कहा है। वाचस्पतिमिश्रनेभी इसी प्रकार व्याख्यान किया है अतः अथशब्द अधिकारार्थक और स्वरूपतः मंगलार्थकभी है यह सिद्ध हुआ ॥ १६ ॥

तदित्थममुष्याथशब्दस्याधिकारार्थत्वपक्षे शास्त्रेण प्रस्तूयमानस्य योगस्योपवर्त्तनात् समस्तशास्त्रतात्पर्यव्याख्यानेन शास्त्रस्य सुखावबोधप्रवृत्तिरास्तामित्युपपन्नम् ॥ १७ ॥

इस प्रकार अथशब्द अधिकारार्थक होनेसे आरम्भमाण योगशास्त्रका उपक्रम करके समस्तशास्त्रतात्पर्य व्याख्यानद्वारा शास्त्रका सुखावगमप्रवृत्तिभी सिद्ध हुई ॥ १७ ॥

ननु 'हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः' इति याज्ञवल्क्यस्मृतेः पतञ्जलिः कथं योगस्य शासितेति चेदद्धा अतएव तत्र तत्र पुराणादौ विशिष्य योगस्य विप्रकीर्णतया दुर्ग्राह्यार्थत्वं मन्यमानेन भगवता कृपासिन्धुना फणिपतिना सारं सञ्जिघृक्षुणा अनुशासनमारब्धं न तु साक्षाच्छासनम् ॥ १८ ॥

शंका–याज्ञवल्क्यस्मृतिमें योगशास्त्रके प्रवर्तक हिरण्यगर्भको कहा है उसके विपरीत पतञ्जलिको शास्त्रप्रवर्तक कैसे कहते हो ? सो सुनो ब्रह्माजीने तत्तत्पुराणोंमें प्रकीर्णरूपसे संक्षेपतः कहा है इस लिये उक्त योग विशेषरूपसे दुर्बोध हानेके कारण परमदयालु शेषावतार पतञ्जलिने सारको संग्रह करके अनुशासन (पश्चादुपदेश) किया है साक्षात् शासन (उपदेश) नहीं किया ॥ १८ ॥

यदायमथशब्दोऽधिकारार्थः तदैवं काव्यार्थः सम्पद्येत योगानुशासनं शास्त्रमाधिकृतं वेदितव्यमिति तत्र शास्त्रे व्युत्पाद्यमानतया योगः ससाधनः सफलो विषयः तद्व्युत्पादनमवान्तरफलं व्युत्पादितस्य योगस्य कैवल्यं परमप्रयोजनं शास्त्रयोगयोः प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावलक्षणः सम्बन्धः योगस्य कैवल्यस्य च साध्यसाधनाभावलक्षणः सम्बन्धः । स च श्रुत्यादिप्रसिद्ध इति प्रागेवावादिषम् । मोक्षमपेक्षमाणाः श्रवणाधिकारिण इत्यर्थसिद्धम् ॥ १९ ॥

(यदायमथशब्द) इति अथके अधिकारार्थपक्षमें योगानुशासनको आरब्ध जानना ऐसा वाक्यार्थ होता है शास्त्रमें व्युत्पाद्य मानेसे साधन और फलसहित योग इस शास्त्रका विषय है उसका व्युत्पादन अवान्तर फल है व्युत्पादित योगका कैवल्य (मोक्ष) परम प्रयोजन है शास्त्र और योगका प्रतिपाद्यप्रतिपादक भाव सम्बन्ध है कैवल्य और योगका साध्यसाधनभाव सम्बन्ध है वह 'अध्यात्मयोगाधिगमेनेत्यादि' पूर्वोक्तश्रुत्यादि सिद्ध है मोक्षार्थी श्रवणके अधिकारी है एवम् अनुबन्धचतुष्टयभी उपपन्न हुआ ॥ १९ ॥

न चाथातो ब्रह्मजिज्ञासेत्यादावधिकारिणोऽर्थतः सिद्धिराशंकनीया तत्राथशब्देनानन्तर्याभिधाने प्रणाडिकया अधिकारिसमर्पणसिद्धावार्थिकत्वशङ्कानुदयात् । अत एवोक्तं 'श्रुतिप्राप्ते प्रकरणादीनामनवकाशः' इति । अस्यार्थः यत्र हि श्रुत्या अर्थो न लभ्यते तत्रैव प्रकरणादयोऽर्थं समर्पयन्ति नेतरत्र । यत्र तु शब्दादेवार्थस्योपलम्भः तत्र नेतरस्य सम्भवः ॥ २० ॥

जिस प्रकार योगशास्त्रमें अश्रुतभी कैवल्याभिलाषीरूप अधिकारी अर्थात् लब्ध होता है तिसी प्रकार ब्रह्म जिज्ञासादिमें अधिकारीको अर्थतः सिद्धत्व नहीं कह

सकते क्योंकि तहांपर अथशब्द शमाद्यानन्तर्यप्रतिपादक होनेसे शमादियुक्त अधिकारीका समर्पण होता है अतः आर्थिकत्व शंकाही नहीं । श्रुतिसिद्ध अर्थमें प्रकरणादिका अवकाश नहीं श्रुतिसे अर्थ न लब्ध हों वही प्रकरणादि नियामक होते हैं अन्यत्र नहीं हैं ॥ २० ॥

शीघ्रबोधिन्या श्रुत्या बोधितेऽर्थे तद्विरुद्धार्थं प्रकरणादि समर्पयति अविरुद्धं वा ! न प्रथमः विरुद्धार्थबोधकस्य तस्य बाधितत्वात् । न चरमः वैयर्थ्यात्तदाह श्रुतिलिङ्गवाक्यप्रकरणस्थानसमाख्यानां समवाये पारदौर्बल्यमर्थविप्रकर्षादिति ॥ २१ ॥

क्योंकि झटित्यर्थावबोधक श्रुति बोधित अर्थसे विरुद्ध अर्थको प्रकरणादिका बोधन करते हैं या अविरुद्ध अर्थका ? बाधित होनेसे विरुद्धार्थका बोधन नहीं कर सकते व्यर्थतापत्त्या अविरुद्धार्थकोभी नहीं बोधन कर सकते अतएव कहा है श्रुति, लिङ्ग, वाक्य, प्रकरण, स्थान, समाख्यामें पूर्व पूर्वक प्रति पर पर दुर्बल होते हैं क्योंकि उत्तरोत्तरसे अर्थबोधनमें विलम्ब होता है श्रुति निरपेक्ष वेदशब्द होनेसे दूसरेके अपेक्षा नहीं करती लिङ्ग श्रुतिकी कल्पना कर श्रुतिद्वारा अर्थबोधन करेगा वाक्यलिङ्ग श्रुति दोनोंकी कल्पना करके एवं प्रकरणादिकभी पूर्वपूर्वको कल्पना करेगा इसीसे उत्तरोत्तरमें विलम्ब होता है ॥ २१ ॥

"बाधिकैव श्रुतिर्नित्यं समाख्या बाध्यते सदा । मध्यमानां तु बाध्यत्वं बाधकत्वमपेक्षया ॥" इति च । तस्माद्विषयादिमत्त्वाद् ब्रह्मविचारकशास्त्रवद् योगानुशासनं शास्त्रमारम्भणीयमिति स्थितम् ॥ २२ ॥

श्रुति नित्यही बाधिक बाध करनेवाली होती है अर्थात् श्रुतिका बाधक कोई नहीं होता । समाख्या नित्यही पूर्वपूर्वसे बाधित रहती है लिंगादिक पूर्वपूर्वका बाध्य और उत्तरोत्तरका बाधक होते हैं । अतः विषयप्रयोजनादिक होनेसे ब्रह्मविचारशास्त्रवत् योगानुशासनभी आरम्भणयि है । यह सिद्ध हुआ ॥ २२ ॥

ननु व्युत्पाद्यमानतया योग एवात्र प्रस्तुतो न शास्त्रमिति चेत् सत्यं प्रतिपाद्यतया योगः प्राधान्येन प्रस्तुतः स च तद्विषयेण शास्त्रेण प्रतिपाद्यत इति तत्प्रतिपादने करणं शास्त्रं करणगोरश्च कर्तृव्यापारा न कर्मगोचरतामाचरति ॥ यथा छेत्तुर्देवद-

त्तस्य व्यापारभूतमुद्यमननिपातनादिकर्मकरणभूतपरशुगोचरं न कर्मभूतवृक्षादिगोचरं तथा च वक्तुः पतञ्जलेः प्रवचनव्यापारापेक्षया योगविषयस्याधिकृतता करणस्य शास्त्रस्याभिधानव्यापारापेक्षया तु योगस्य वेति विभागः । ततश्च योगशास्त्रस्यारम्भः सम्भावनां भजते ॥ २३ ॥

यदि कहो विवेचनीयरूपसे योगका प्रस्ताव किया है शास्त्रका नहीं पुनः शास्त्रका आरम्भणीयत्व कैसे कहते हो । उत्तर–सत्य है प्रधानतया योगही प्रस्तुत है वह योगशास्त्रसे व्युत्पादित होता है इसलिये योगप्रतिपादनमें शास्त्र करण है करणगोचर कर्तृव्यापार कर्मगोचरपरक न हो सकता जिस प्रकार छेदन करनेवाले देवदत्तका व्यापारभूत उठाना गिराना करणभूत कुठारगोचर है कर्मभूतवृक्षादि गोचर नहीं तिसी प्रकार वक्ता पतञ्जलिका प्रवचनव्यापारापेक्षा योगविषय अधिकृत है । करणभूत शास्त्रका अभिधानव्यापारापेक्षा योग आधिकृत है । यह विभाग है । अतो योगशास्त्रारम्भ सम्भावनिक है ॥ २३ ॥

अत्र चानुशासनीयो योगश्चित्तवृत्तिनिरोध इत्युच्यते । ननु 'युजिर् योगे' इति संयोगार्थतया परिपठितात् युजेर्निष्पन्नो योगशब्दः संयोगवचन एव स्यान्न तु निरोधवचनः । अतएवोक्तं याज्ञवल्क्येन–'संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनोः' इति ॥ २४ ॥

क्लिष्टाक्लिष्टादि पाञ्च प्रकारकी चित्तकी वृत्तिको रोकना योग है यदि कहो संयोगार्थक युजधातुसे निष्पन्न योगशब्द संयोगार्थकही होगा नहीं कि निरोधार्थक अत एव याज्ञावल्क्यनेभी कहा है कि जीवात्मा और परमात्माका संयोगको योग कहते हैं इति ॥ २४ ॥

तदेतद्वार्तं जीवपरयोः संयोगे कारणस्यान्यतरकर्मादेरसम्भवादजसंयोगस्य कणभक्षाक्षचरणादिभिः प्रतिक्षेपाच्च । मीमांसकमतानुसारेण तदंगीकारेऽपि नित्यसिद्धस्य तस्य साध्यत्वाभावेन शास्त्रवैफल्यापत्तेश्च धातूनामनेकार्थत्वेन युजेः समाध्यर्थत्वोपपत्तेश्च ॥ २५ ॥

यह असंगत है जीवेश्वरसंयोगके कारण जीव अथवा ईश्वर एकका भी कर्म्म नहीं है । व्यापक अजका संयोगका नैयायिकों और वैशेषिकोंने प्रत्याख्यानभी किये हैं " अप्राप्तयोस्तु या प्राप्तिः सैव संयोग ईरितः " इति । मीमांसक रीतिसे माने तोभी जीवेश्वर संयोग नित्य सिद्ध होनेसे सिद्धसाधनतापत्त्या शास्त्रही विफल होगा। और धातुको अनेकार्थ होनेसे समाध्यर्थकभी हो सकता है ॥ २५ ॥

तदुक्तम्-"निपाताश्चोपसर्गाश्च धातवश्चेति ते त्रयः । अनेकार्थाः स्मृताः सर्वे पाठस्तेषां निदर्शनम् ॥" इति । अतएव केचन युजिं समाधावपि पठन्ति 'युज समाधौ' इति । नापि याज्ञवल्क्यवचनव्याकोपः तत्रस्थस्यापि योगशब्दस्य समाध्यर्थत्वात् । "समाधिः समतावस्था जीवात्मपरमात्मनोः । ब्रह्मण्येव स्थितिर्या सा समाधिः प्रत्यगात्मनः ॥ " इति तेनैवोक्तत्वाच्च । तदुक्तं भगवता व्यासेन 'योगः समाधिः' इति ॥ २६ ॥

कहाभी है निपात, उपसर्ग और धातु यह तीनों अनेकार्थक हैं तत्तत् अर्थनिर्देश उपलक्षणमात्र है । कोई कोई युजधातुको समाधि अर्थमेंभी पढते हैं याज्ञवल्क्य-वचनविरोधभी नहीं क्योंकि तत्रत्य योगशब्दभी समाधिअर्थक है जीवात्मा परमात्माकी समताको समाधि कहते हैं । जीवात्माको ब्रह्मभावमें जो स्थिति है वही जीवात्माका समाधि है इत्यादि उन्होंने कहा है । व्यास भगवान्‌नेभी समाधिको योग कहा है ॥ २६ ॥

यद्येवमष्टाङ्गयोगे चरमस्यांगस्य समाधित्वमुक्तं पतञ्जलिना यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारध्यानधारणासमाधयोऽष्टांगानि योगस्येति । न चांग्येवांगतां गन्तुमुत्सहते उपकार्योपकारकभावस्य दर्शपूर्णमासप्रयाजादौ भिन्नायतनत्वेनात्यन्तभेदादतः समाधेरपि न योगशब्दार्थो युज्यते ॥ २७ ॥

यदि कहो अष्टाङ्गयोगमें आन्तिम क्रियाको योग कहा । पतञ्जलिने यमनियमादि समाध्यन्त आठ योगके अङ्ग कहे अङ्गी कदापि अङ्ग नहीं हो सकता अङ्गी होता है उपकार्य अङ्ग है उपकारक. यह दोनों दर्शपूर्णमासादिमें अत्यन्त भेदसे प्रतीत है अतः योगशब्दका अर्थ समाधिभी युक्त नहीं है ॥ २७ ॥

इति चेत्तन्न युज्यते व्युत्पत्तिमात्राभिधित्सया तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिरिति निरूपितचरमांगवाचकेन समाधिशब्देनांगिनो योगस्याभेदविवक्षया व्यपदेशोपपत्तेः । न च व्युत्पत्तिबलादेव सर्वत्र शब्दः प्रवर्त्तते तथात्वे गच्छतीति गौरिति व्युत्पत्तेः तिष्ठन् गौर्न स्यात् गच्छतो देवदत्तस्य स्यात् ॥ २८ ॥

यहभी अयुक्त है क्योंकि युज्यते इति व्युत्पत्तिमात्र विवक्षित है वही स्वरूप शून्य अर्थमात्र निर्भासक उक्त अन्तिम अङ्गरूप समाधिको अङ्गीरूप योगके साथ अभेद विवक्षा होनेसे योगशब्द व्यवहार होता है व्युत्पत्तिबलसेही सर्वत्र शब्द प्रवर्त होता है ऐसा नियम नहीं अन्यथा गच्छति ऐसी गौकी व्युत्पत्ति होनेसे स्थिति और शयनकालमें गौ नहीं कह सकेगी चलने समय देवदत्तकीभी गौसंज्ञा होने लगेगी ॥ २८ ॥

प्रवृत्तिनिमित्तश्च प्रागुक्तमेव चित्तवृत्तिनिरोध इति तदुक्तं योगश्चित्तवृत्तिनिरोध इति । ननु वृत्तीनां निरोधश्चेद्योगोऽभिमतस्तासां ज्ञानत्वेवात्माश्रयतया तन्निरोधोऽपि प्रध्वंसपदवेदनीयस्तदाश्रयो भवेत् प्रागभावप्रध्वंसयोः प्रतियोगिसमानाश्रयत्वनियमात् । ततश्चोपपन्नस्त्वयं धर्मो विकरोति हि धर्मिणमिति न्यायेनात्मनः कौटस्थ्यं विहन्येतेति चेत्तदपि न घटते निरोधानां प्रमाणविपर्य्ययविकल्पनिद्रास्मृतिस्वरूपाणां वृत्तीनामन्तःकरणाद्यपरपर्य्यायचित्तधर्मत्वांगीकारात् । कूटस्थनित्या चिच्छक्तिरपरिणामिनी विज्ञानधर्माश्रयो भवितुं नार्हत्येव ॥ २९ ॥

योगपदका प्रवृत्तिनिमित्त पूर्वोक्त चित्तवृत्तिको रोकना है यदि वृत्तिका निरोधही योग हो तो वृत्ति ज्ञानरूप होनेसे आत्माश्रित होगी उसका निरोध होगा प्रध्वंस तादृश प्रध्वंसकाभी आश्रय आत्मा होगा प्रागभाव, प्रध्वंस दोनों स्वप्रतियोगीके अधिकरणवृत्ति होते हैं यथा भूतलवृत्ति घटका प्रध्वंसभी भूतलवृत्ति होता है एवश्च ध्वंसरूप धर्म्म रहनेसे धर्म्म धर्म्मीको विकारयुक्त करता है इस नियमसे आत्माका

कूटस्थत्व नष्ट होगा यहभी संगत नहीं है क्योंकि निरोधनीय प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, और स्मृतिरूप वृत्तिको अन्तःकरणपर्याय चित्तके धर्म माने हैं अतः कूटस्थ, नित्य और अपरिणामी चित् शक्ति विज्ञानधर्मका आश्रय नहीं हो सकती है ॥ २९ ॥

न च चितिशक्तेरपरिणामित्वमसिद्धमिति मन्तव्यम्, चितिशक्तिरपरिणामिनी सदा ज्ञातृत्वात् न यदेवं न तदेवं यथा चित्तादि इत्याद्यनुमानसम्भवात् तथा यद्यसौ पुरुषः परिणामी स्यात्तदा परिणामस्य कादाचित्कत्वात्तासां चित्तवृत्तीनां सदा ज्ञातृत्वं नोपपद्येत चिद्रूपस्य पुरुषस्य सदैवाधिष्ठातृत्वेनावस्थितस्य यदन्तरंगनिर्मलं सत्त्वं तस्यापि सदैव स्थितत्वात् येन येनार्थेनोपरक्तं भवति तस्य दृश्यस्य सदैव चिच्छायापत्त्या भानोपपत्त्या पुरुषस्य निःसंगत्वं सम्भवाति। ततश्च सिद्धं तस्य सदाज्ञातृत्वामीति न काचित् परिणामित्वाशंकावतराति ॥ ३० ॥

शंका—चिच्छक्ति अपरिणामिनी है इसमें कोई प्रमाणही नहीं। समाधान—ऐसाभी नहीं कह सकते क्योंकि चिच्छक्ति अपरिणामी है सदा ज्ञाता होनेसें जो अपरिणामी नहीं वह सदा ज्ञाताभी जैसे चित्त इत्यादि अनुमानही प्रमाण है तथा यदि पुरुष पीरणामी होते तो परिणाम कादाचित्क होनेसे चित्तवृत्तियोंको सदा ज्ञातृत्व उपपन्न नहीं होता सदा अधिष्ठातृत्वसे अवस्थित चिद्रूपपुरुषका अन्तरंग निर्मल सत्त्वभी सदा स्थित होनेसे जिस जिस वस्तुसे चित्त उपरक्त हो उस दृश्यका पुरुष प्रतिबिम्बमात्रसे भान होनेसे पुरुष असंगभी होते हैं अतः सदा ज्ञातृत्व सिद्ध होनेसे परिणामित्व शंकाभी नहीं रही ॥ ३० ॥

चित्तं पुनर्येन विषयेणोपरक्तं भवति स विषयो ज्ञातः, यदुपरक्तं न भवति तदज्ञातमिति वस्तुनोऽयस्कान्तमणिकल्पस्य ज्ञानाज्ञानकारणभूतोपरागानुरागधर्मित्वादयः सधर्मकं चित्तं परिणामि इत्युच्यते ॥ ३१ ॥

चित्त जिस विषयसे उपरक्त हो वह ज्ञात होता है जिससे उपरक्त न होता हो वह अज्ञात होता है अतः लोहचुम्बकके समान वस्तुके ज्ञानाज्ञान कारणभूत

उपरांगानुपराग धर्मी होनेसे लोहाके समान धर्म्मवाला चित्त परिणामी कहता है ॥ ३१ ॥

ननु चित्तस्येन्द्रियाणां चाहंकारिकाणां सर्वगतत्वात् सर्वविषयैरस्ति सदा सम्बन्धः तथा च सर्वेषां सर्वदा सर्वत्र ज्ञान प्रसज्येत। सर्वगतत्वेऽपि चित्तं यत्र शरीरे वृत्तिमत् तेन शरीरेण सह सम्बन्धो येषां विषयाणां तेष्वेवास्य ज्ञानं भवति नेतरेष्वित्यतिप्रसंगाभावादत एवायस्कान्तमणिकल्पा विषयाः अयःसधर्मकं चित्तमिन्द्रियप्रणालिकयाभिसम्बध्योपरञ्जयन्ति। तस्माच्चित्तस्य धर्मा वृत्तयो नात्मनः। तथा च श्रुतिः 'कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धा अश्रद्धा धृतिरधृतिरित्येतत्सर्वं मन एव' इति ॥ ३२ ॥

यदि कहो चित्त और आहंकारिक इन्द्रिय सब सर्वगत होनेसे सभी वस्तुके साथ सदा सम्बन्ध रहेगा अतः सदा सबका ज्ञानका प्रसंग होगा सोभी नहीं चित्त सर्वगत होनेपरभी जिस शरीरमें रहता है उसी शरीरसे सम्बन्ध जिन विषयोंका हो उन्ही विषयका ज्ञान होता है अन्यका नहीं अतः सर्वज्ञानप्रसंगरूप अतिव्याप्ति नहीं एवञ्च लोहचुम्बकके समान विषय लोहाका समान चित्तको इन्द्रियप्रणालिद्वारा सम्बद्ध होकर उपरक्त करते हैं अतः वृत्ति चित्तका धर्म्म है आत्माका नहीं श्रुतिभी कामसंकल्पादिको चित्तका धर्म्म कहती है ॥ ३२ ॥

चिच्छक्तेरपरिणामित्वं पञ्चशिखाचार्य्यैराख्यायि अपरिणामिनी भोक्तृशक्तिरिति पतञ्जलिनापि सदाज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणामित्वादिति चित्तपरिणामित्वेऽनुमानमुच्यते। चित्तं परिणामि ज्ञाताज्ञातविषयत्वात् श्रोत्रादिवदिति ॥ ३३ ॥

चिच्छक्तिको अपरिणामी पञ्चशिखाचार्यने और पतञ्जलि दोनोंने कहे हैं चित्तके अधिष्ठाता पुरुष अपरिणामी होनेसे सदा ज्ञाता है चित्तका अपरिणामित्वमें श्रोत्रके समान ज्ञाताज्ञातविषय होनेसे चित्त परिणामि है इत्यादि अनुमानभी है ॥ ३३ ॥

परिणामश्च त्रिविधः प्रसिद्धः धर्मलक्षणावस्थाभेदात् । धर्मिणाश्चित्तस्य निलाद्यालोचनं धर्मपरिणामः । यथा कनकस्य कटकमुकुटकेयूरादिधर्मस्य वर्त्तमानत्वादिर्लक्षणपरिणामः । नीलाद्यालोचनस्य स्फुटत्वादिरवस्थापरिणामः । कनकादेस्तु नवपुराणत्वादिरवस्थापरिणामः । एवमन्यत्रापि यथासम्भवं परिणामत्रितयमूहनीयम् । तथा च प्रमाणादिवृत्तीनां चित्तधर्मत्वात्तन्निरोधोऽपि तदाश्रय एवेति न किञ्चिदनुपपन्नम् ॥ ३४ ॥

धर्मपरिणाम, लक्षणपरिणाम, अवस्थापरिणाम भेदसे परिणाम तीन प्रकारके हैं। धर्म्मी चित्तका नीलादि ज्ञान धर्मपरिणाम है । सुवर्णको कटककुण्डलत्वादि धर्मवत्त्व लक्षणपरिणाम है। कनकको नूतनत्व पुरातनत्वादि अवस्थापरिणाम है । नीलादिज्ञानमें स्फुटत्वादि अवस्थापरिणाम है इस प्रकार सर्वत्र परिणामत्रैविध्य स्वयं जान लेना । अतः प्रमाणादि वृत्ति चित्तधर्म्म होनेसे उसका निरोधभी चित्ताश्रितही है ॥ ३४ ॥

ननु वृत्तिनिरोधो योग इत्यंगीकारे सुषुप्त्यादौ विक्षिप्तमूढादिचित्तवृत्तीनां निरोधसम्भवाद्योगत्वप्रसंगः । न चैतद्युज्यते क्षिप्ताद्यवस्थासु क्लेशप्रहाणादेरसम्भवान्नःश्रेयसपरिपन्थित्वाच्च । तथा हि क्षिप्तं नाम तेषु तेषु विषयेषु क्षिप्यमाणमस्थिरं चित्तमुच्यते । तमःसमुद्रे मग्नं निद्रावृत्तिमच्चित्तं मूढमिति गीयते क्षिप्ताद्विशिष्टं चित्तं विक्षिप्तमिति गीयते । विशेषो नाम 'चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्' इति न्यायेनास्थिरस्यापि मनसः कादाचित्कसमुद्भूतविषयस्थैर्यसम्भवेन स्थैर्य्यम् । अस्थिरत्वञ्च स्वाभाविकं व्याध्याद्यनुशयजनितं वा । तदाह 'व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः' इति ॥ ३५ ॥

प्रवृत्तिनिरोधको योग कहोगे तो सुषुप्तिदशामेंभी विक्षिप्त मूढादिवृत्तियोंका निरोध सम्भव होनेसे उसकोभी योगत्वप्रसंग होगा ऐसा कहना अयुक्त है क्योंकि

क्षिप्ताद्यवस्थामें क्लेशप्रणाशकत्वका असम्भव है और कैवल्यका विरोध भी है तत्तद्विषयमें विचलित अस्थिर चित्तको क्षिप्त कहते हैं तमोगुणके समुद्रमें मग्न निद्रावृत्ति चित्तको मूढ कहते हैं क्षिप्तसेभी अधिक चञ्चल चित्तको विक्षिप्त कहते हैं अस्थिरस्वभाव चित्तकोभी कदाचित् विषयस्थैर्यवश उत्पन्न स्थैर्यको विशेष कहते हैं । अस्थिरत्व स्वाभाविक अथवा व्याध्यादि खेदसे उत्पन्न होता है अतएव व्याध्यादिके चित्तविक्षेप और योगका अन्तराय कहा है ॥ ३५ ॥

तत्र दोषत्रयवैषम्यानिमित्तो ज्वरादिर्व्याधिः, चित्तस्याकर्मण्यत्वं स्त्यानं विरुद्धकोटिद्वयावगाहि ज्ञानं संशयः, समाधिसाधनानामभावनं प्रमादः, शरीरवाक्चित्तगुरुत्वादप्रवृत्तिरालस्यं विषयाभिलाषोऽविरतिः अतस्मिंस्तद्बुद्धिर्भ्रान्तिदर्शनं कुतश्चिन्निमित्तात् समाधिभूमेरलाभोऽलब्धभूमिकत्वं लब्धायामपि तस्यां चित्तस्याप्रतिष्ठा अनवस्थितत्वमित्यर्थः । तस्मान्न वृत्तिविरोधो योगपक्षानिक्षेपमर्हति इति चेन्मैवं वोचः हेयभूतक्षिप्ताद्यवस्थात्रये वृत्तिविरोधस्य हेयत्वसम्भवेऽप्युपादेययोरेकाग्रविरुद्धावस्थयोर्वृत्तिनिरोधस्य योगत्वसम्भवात् एकतानं चित्तमेकाग्रमुच्यते निरुद्धसकलवृत्तिकं संस्कारमात्रशेषं चित्तं निरुद्धमिति भण्यते ॥ ३६ ॥

वात, पित्त, श्लेष्मके वैषम्यसे उत्पन्न ज्वरादि व्याधि है चित्तका अकर्मण्यता (सुस्थि) स्थान है । स्थाणु है या पुरुष इत्यादि विरुद्धकोटि ज्ञानको संशय कहते हैं । समाधिके साधनोंका चिन्तन न करना प्रमाद है मनोवाक्कायका गुरुतासे अप्रवृत्ति आलस्य है । विषयका तृष्णा अविरति है । अन्य वस्तुमें अन्य बुद्धि भ्रान्ति है । किसी कारणसे समाधिकी काष्ठा न प्राप्त होना अलब्धभूमिकत्व है । समाधि भूमि प्राप्त होनेपरभी चित्तकी अप्रतिष्ठा अनवस्थिति है अतः वृत्तिनिरोधको योग नहीं कह सकते ऐसे नहीं कह सकते क्योंकि हेयभूत क्षिप्तादि अवस्थात्रयमें वृत्तिविरोध हेय होनेपरभी उपादेयभूत एकाग्र और विरुद्धावस्थामें वृत्तिनिरोध योग हो सकता है चित्तका एक रूप रहना एकाग्र है समस्त वृत्ति निरुद्ध होनेसे संस्कार मात्र चित्तको निरुद्ध कहते हैं ॥ ३६ ॥

स च समाधिर्द्विविधः सम्प्रज्ञातासम्प्रज्ञातभेदात् । तत्रैकाग्रचेतसि यः प्रमाणादिवृत्तीनां बाह्यविषयाणां निरोधः स सम्प्र-

ज्ञातसमाधिः सम्यक् प्रज्ञायतेऽस्मिन् प्रकृतेर्विविक्ततया चित्तमिति व्युत्पत्तेः । स चतुर्विधः सवितर्कादिभेदात् । समाधिर्नाम भावना, सा च भाव्यस्य विषयान्तरपरिहारेण चेतसि पुनः पुनर्निवेशनम् । भाव्यश्च द्विविधम् ईश्वरस्तत्त्वानि च । तान्यपि द्विविधानि जडाजडभेदात् । जडानि प्रकृतिमहदहंकारादीनि चतुर्विंशतिः अजडः पुरुषः ॥ ३७ ॥

सम्प्रज्ञात असम्प्रज्ञात भेदसे समाधि दो प्रकार है एकाग्रचित्तमें बाह्यविषय प्रमाणादि वृत्तिका निरोध सम्प्रज्ञात समाधि है प्रकृतिसे प्रथक् करके चित्तको सम्यक प्रकार जिसमें जाना जाय यह सम्प्रज्ञात समाधिकी व्युत्पत्ति है सवितर्कादि भेदसे सम्प्रज्ञात चार प्रकार है । भावनाको समाधि कहते हैं वह विषयान्तरको त्यागकर भाव्यको पुनः पुनः चित्तमें स्थिर करना है। ईश्वर और तत्त्वभेदसे तत्त्व दो प्रकारके हैं जड और अजडभेदसे तत्त्वभी दो प्रकारके हैं जड प्रकृति महदादि २४ पूर्वोक्त हैं अजड पुरुष है ॥ ३७ ॥

तत्र यदा पृथिव्यादीनि स्थूलानि विषयत्वेनादाय पूर्वापरानुसन्धानेन शब्दार्थोल्लेख्यसम्भेदेन भावना प्रवर्त्तते स समाधिः सवितर्कः, यदा तन्मात्रान्तःकरणलक्षणं सूक्ष्मं विषयमालम्ब्य देशाद्यवच्छेदेन भावना प्रवर्त्तते तदा सविचारः, यदा रजस्तमोलेशानुविद्धं चित्तं भाव्यते तदा सुखप्रकाशं यस्य सत्त्वस्योद्रेकात् सानन्दः, यदा रजस्तमोलेशानभिभूतं शुद्धसत्त्वमालम्बनीकृत्य या प्रवर्त्तते भावना तदा तस्यां सत्त्वस्य न्यग्भावाच्चितिशक्तेरुद्रेकाच्च सत्त्वमात्रावशेषत्वेन सास्मितः समाधिः वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात् सम्प्रज्ञात इति सर्ववृत्तिनिरोधे त्वसम्प्रज्ञातः समाधिः ॥ ३८ ॥

स्थूल पृथिव्यादि वस्तुको लक्ष्य करके पूर्वापरानुसन्धानपूर्वक घटादि शब्दार्थोल्लेखसे भावना करते हैं उसको सवितर्क समाधि कहते हैं जिस प्रकार तीर चलानेवाले प्रथम स्थूलवस्तुका लक्ष्य करके निशाना लगाते हैं अनन्तर सूक्ष्म सूक्ष्मतरके लगाते हैं तिसी प्रकार योगाभ्यास करनेवालेभी प्रथमस्थूल साकारवस्तुको लक्ष्य करके

भावना करते हैं अनन्तर सूक्ष्मपरमाण्वादि एवं क्रमसे निरालम्बन समाधि कर सकते हैं जब अन्तःकरण लक्षण सूक्ष्मतन्मात्राको आलम्बन कर पूर्वादि देश-कालपरिच्छेदसे भावना होती है तब सविचार समाधि कहते हैं जब रजोगुण तमोगुण-का लेशमात्रसे युक्त अतएव सत्त्ववृद्धि होनेसे सुख प्रकाश चित्तको भाव्य (लक्ष्य) करके भावना प्रवृत्त होती है तब सानन्द समाधि कहाते हैं जब रजस्तमोलेशरहित शुद्धसत्त्वको आलम्बन करके भावना प्रवृत्त होती है उस भावनामें सत्त्वका न्यग्भाव (तिरोभाव) चितिशक्तिका उद्रेक (वृद्धि) होनेसे सत्त्वमात्र अवशिष्ट होनेसे सास्मित समाधि कहाता है। समस्तवस्तुनिरोध होनेसे असम्प्रज्ञात समाधि कहाता है ॥ ३८ ॥

ननु सर्ववृत्तिनिरोधो योग इत्युक्ते सम्प्रज्ञाते व्याप्तिर्न स्यात् तत्र सत्त्वप्रधानायाः सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिलक्षणाया वृत्ते-रनिरोधादिति चेत्तदेतद्वार्त्तं क्लेशकर्मविपाकाशयपरिपन्थिचि-त्तवृत्तिनिरोधो योग इत्यङ्गीकारात् । क्लेशाः पुनः पञ्चधा प्रसिद्धाः अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः ॥ ३९ ॥

समस्त वृत्तिका निरोधको योग मानो तो सम्प्रज्ञातसमाधिमें अव्याप्ति होगी उसमें सत्त्वप्रधान सत्वपुरुषको अन्यत्वज्ञान लक्षणवृत्तिका निरोध नहीं होता है ऐसे नहीं कह सकते क्लेशकर्म विपाकादिके विरोधि चित्तवृत्तिनिरोधको योग मानते हैं अवि-द्यादि पाञ्च क्लेश है ॥ ३९ ॥

नन्वविद्येत्यत्र किमाश्रीयते पूर्वपदार्थप्राधान्यम् अमक्षिकं वर्त्तत इतिवत् उत्तरपदार्थप्राधान्यं वा राजपुरुष इतिवत् अन्य-पदार्थप्राधान्यं वा अमक्षिको देश इतिवत् । तत्र न पूर्वः पूर्व-पदार्थप्रधानत्वे अविद्यायां प्रसज्यप्रतिषेधोपपत्तौ क्लेशादि कारकत्वानुपपत्तेः अविद्याशब्दस्य स्त्रीलिंगत्वाभावापत्तेश्च । न द्वितीयः कस्यचिदभावेन विशिष्टाया विद्यायाः क्लेशादिपरि-पन्थित्वेन तद्बीजत्वानुपपत्तेः । न तृतीयः नञोऽस्त्यर्थानां बहुव्रीहिर्वा चोत्तरपदलोप इति वृत्तिकारवचनानुसारेण अवि-द्यमाना विद्या यस्या सा अविद्या बुद्धिरिति समाधिसिद्धौ

तस्या अविद्यायाः क्लेशादिबीजत्वानुपपत्तेः विवेकख्यातिपूर्वकसर्ववृत्तिसम्पन्नायास्तस्यास्तथात्वाप्रसङ्गाच्च ॥ ४० ॥

अविद्या पद समस्त है इसमें तीन समास हो सकते हैं विद्यायाः अभाव यह अव्ययीभाव समास है इसमें पूर्वपद (नञ् अ) का अर्थ प्रधान रहता है यथा अमाक्षिकम् । दूसरा न विद्या अविद्या यह तत्पुरुष है इसमें उत्तरपद (विद्या) का अर्थ प्रधान रहता है यथा राजपुरुषादि । तृतीय न विद्या यस्य यस्मिन् वा यह बहुव्रीहि है इसमें अन्यपद (यस्य) का अर्थ प्रधान रहता है यथा अमाक्षिक देश इत्यादि । प्रकृतमें तीनोंमेंसे क्या विवक्षित है ? प्रथमपक्षमें अभाव प्रधान होनेसे अभावको क्लेशादिजनकत्व अनुपपन्न होगा अव्ययीभाव समास नियमसे अव्यय होनेसे अविद्या पदमें स्त्रीलिंगत्वभी अनुपपन्न होगा । यत्किञ्चित् प्रतियोगिक अभावविशिष्ट अविद्या क्लेशादिके विरोधी होनेसे क्लेशादिका कारणत्व असम्भव होनेके कारण द्वितीयभी नहीं कह सकते । तृतीय पक्षमेंभी नञोऽस्त्यर्थानाम् इति वार्तिकबलसे अविद्यमान है विद्या जिस बुद्धिकी ऐसा विग्रह कर विद्यमानपदका लोप करनेसे अविद्या पदसेही समाधि बोधित होगा । पुनः अविद्याको क्लेशादिजनकत्व असम्भव है विवेक ख्यातिपूर्वक सर्ववृत्तिसम्पन्न अविद्या उस प्रकार होभी नहीं सकती है ॥ ४० ॥

उक्तञ्च—अस्मितादीनां क्लेशानामविद्यानिदानत्वम् 'अविद्याक्षेत्रत्वमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदारणम्' इति । तत्र प्रसुप्तत्वं प्रबोधसहकार्यभावेनानभिव्यक्तिः, तनुत्वं प्रतिपक्षभावनया शिथिलीकरणं, विच्छिन्नत्वं बलवता क्लेशेनाभिभवः, उदारत्वं सहकारिसन्निधिवशात् कार्यकारित्वम् । तदुक्तं वाचस्पतिमिश्रेण व्यासभाष्यव्याख्यायाम् "प्रसुप्तास्तत्त्वलीनानां तनुदग्धाश्च योगिनाम् । विच्छिन्नोदाररूपाश्च क्लेशा विषयसङ्गिनाम् ॥" इति ॥ ४१ ॥

अविद्याक्षेत्रत्वमुत्तरेषामित्यादि अस्मितादिको अविद्यामूलत्व कहा है प्रबोधका सहकारी न होनेसे अनभिव्यक्ति प्रसुप्तत्व है प्रतिपक्षभावनासे शिथिलीकरण तनुत्व है प्रबलक्लेशसे अभिभव विच्छिन्नत्व है सहकारीके सन्निधानसे कार्यकरत्व उदारत्व है वाचस्पतिमिश्रनेभी व्याख्यान किया है तत्त्वमें लीनोंके लिये प्रसुप्त योगियोंके लिये तनुदग्ध है क्लेश अविषयसंगियोंके लिये विच्छिन्न उदाररूप है इति ॥ ४१ ॥

द्वन्द्ववत् स्वतन्त्रपदार्थद्वयानवगमादुभयपदार्थप्रधानत्वं नाशङ्कितम् । तस्मात पक्षद्वयेऽपि क्लेशादिनिदानत्वमविद्यायाः प्रसिद्धं हीयेतेति चेत् तदपि न शोभनं विभाति पर्युदासशक्तिमाश्रित्याविद्याशब्देन विद्याविरुद्धस्य विपर्ययज्ञानस्याभिधानमिति वृद्धैरंगीकारात् । तदाह—"नामधात्वर्थयोगे तु नैव नञ् प्रतिषेधकः । वदत्यब्राह्मणाधर्मावन्यमात्रविरोधिनौ ॥"इति । वृद्धप्रयोगगम्या हि शब्दार्थाः सर्व एव नः । तेन यत्र प्रयुक्तो यो न तस्मादपनीयते ॥ "इति च ॥ ४२ ॥

धवखादिरादिवत् पदार्थद्वय प्रसिद्ध न होनेसे द्वन्द्वकी आशंका नहीं की अतः पक्षद्वयमेंभी क्लेशादिजनकत्व जो अविद्यामें प्रसिद्ध है वह नहीं रहेगा ऐसे कहो तो यह भी शोभा नहीं देती है क्योंकि पर्य्युदासार्थ मानकर विद्याविरुद्ध विपर्ययज्ञान बोधकत्व वृद्धोंने माना है तदाह प्रतिपदिकार्थके योगमें नञ् प्रतिषेधार्थक नहीं होता है अब्राह्मण अधर्म्म इत्यादिमें ब्राह्मणसे अन्य धर्म्मसे विरुद्धको कहते हैं शब्दका अर्थ वृद्धव्यवहारसे जाना जाता है अतः वृद्धोंने जिस अर्थमें प्रयोग किये हों उस अर्थसे अन्यार्थबोधक नहीं हो सकेगा ॥ ४२ ॥

वाचस्पतिमिश्रैरप्युक्तम् "लोकाधीनावधारणो हि शब्दार्थयोः सम्बन्धः लोके चोत्तरपदार्थप्रधानस्यापि नञ् उत्तरपदाभिधेयोपमर्दकस्य तद्विरुद्धतया तत्र तत्रोपलब्धेरिहापि तद्विरुद्धे प्रवृत्तिः "इति । एतदेवाभिप्रेत्योक्तम् "अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्येति । अतस्मिंस्तद्बुद्धिर्विपर्ययः" इत्युक्तं भवति । तद्यथा अनित्ये घटादौ नित्यत्वाभिमानः अशुचौ कार्यादौ शुचित्वप्रत्ययः ॥ ४३ ॥

कि शब्दार्थसम्बन्ध लोकव्यवहारसे निश्चत होता है लोकमें उत्तरपदार्थप्रधानको भी उत्तरपदार्थको उपमर्दक तद्विरुद्धार्थक नञ् उपलब्ध होता है । अतः यहाँभी तद्विरुद्धार्थमें प्रवृत्ति होगी इस प्रकार वाचस्पतिमिश्रने कहा है इसी अभिप्रायसे अनित्य घटादिमें नित्यत्वाभिमान, अशुचिकार्यमें, शुचित्वप्रतीति दुःखमें सुखाभिमान और अनात्मा देहादिमें आत्माभिमानको अविद्या कहा है । अन्यमें अन्य बुद्धिको विपर्यय कहा है ॥ ४३ ॥

"स्थानाद्बीजादवष्टम्भान्निःष्पन्दान्निधनादपि । कायमाधेयशौचत्वात् पण्डिता ह्यशुचिं विदुः ॥ " इति । परिणामतापसंस्कारैर्गुणवृत्तिनिरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिन इति न्यायेन दुःखे स्रक्चन्दनवनितादौ सुखत्वारोपः अनात्मनि देहादावात्मबुद्धिः । तदुक्तम्- "अनात्मनि च देहादावात्मबुद्धिस्तु देहिनाम् । अविद्या तत्कृतो बन्धस्तन्नाशे मोक्ष उच्यते " ॥ इति । एवमियमविद्या चतुष्पादा भवति ॥ ४४ ॥

पण्डितलोग शरीरको निम्न लिखित हेतुओंसे सदा अशुचि कहते हैं स्थान मलमूत्रादिसे पूरित माताके उदरमें स्थिति होनेसे शुक्रशोणितादिसे उत्पन्न होनेस निष्पन्दसे अर्थात् मलमूत्रादिका निर्गमनद्वार होनेसे नाश होनेसे मलमूत्राद्याधार होनेसे सांसारिक सुख सब विवेकियोंके लिये दुःख है यथा परिणाम यावत्काल विषय भोग करता है तावत्काल सुख प्रतीत होता है अनन्तर भोगतृष्णादि बढनेसे उसका परिणाम दुःख होता है एवं ताप वही वस्तु जिनको नहीं मिलनेसे तापकारक होता है उसकी प्राप्तिकी चिन्ता बनी रहनेसे संस्कारसेभी दुःखही होता है अतएव कहा है " तदेव प्रीतये भूत्वा पुनर्दुःखाय कल्पते" इति। चन्दन, कुसुम, रमणी आदि दुःखहेतुमें सुखत्वारोप है। प्राणियोंकी अनात्मभूत देहादिमें आत्मबुद्धिको अविद्या कहते हैं तादृश अविद्यामूलक बन्ध (संसार) होता है अविद्या नाश होनेसे मोक्ष होता है इस प्रकार अविद्याको अनित्य अशुचि दुःख अनात्मरूप चार पाद हैं ॥ ४४ ॥

नन्वेतेष्वविद्याविशेषेषु किञ्चिदनुगतं सामान्यलक्षणं वर्णनीयम् अन्यथा विशेषस्यासिद्धेः । तथाचोक्तं भट्टाचार्यैः—"सामान्यलक्षणं त्यक्त्वा विशेषस्यैव लक्षणम् । न शक्यं केवलं वक्तुमं-गोऽप्यस्य न वाच्यता ॥" इति । तदपि न वाच्यमतस्मिंस्तद्बुद्धिरिति सामान्यलक्षणाभिधानदत्तोत्तरत्वात् ॥ ४५ ॥

लक्षणप्रमाणसे वस्तुसिद्ध होती है लक्षणभी सामान्यलक्षणपूर्वक विशेष लक्षण होता है यथा द्रव्यसामान्यज्ञानानन्तर द्रव्यविशेष पृथिव्यादिका लक्षण होता है तद्वत् अविद्याविशेषमें सर्वत्र अनुगत सामान्य लक्षण कहना चाहिये नहीं तो विशेष प्रतीति न होगी " सामान्यलक्षणको छोडकर केवल विशेषकाही लक्षण कहना अ-

शक्य है" इत्यादि भट्टाचार्यनेभी कहा है। प्रकृतमें सामान्यलक्षण न कहनेसे अनुपपत्ति होगी ऐसेभी नहीं कह सकते क्योंकि अन्यमें अन्य बुद्धि अविद्या है इस प्रकार अविद्याका सामान्य लक्षण कह चुका हूँ ॥ ४५ ॥

सत्त्वपुरुषयोरहमस्मीत्येकताभिमानोऽस्मिता । तदप्युक्तं, 'दृक्दर्शनशक्त्योरेकात्मत्वाभिमानोऽस्मिता' इति ॥ ४६ ॥

अत्यन्तविलक्षण सत्त्व (प्रधान) और पुरुष दोनोंकी एकताभिमान अस्मिता है दृक्शक्ति पुरुष है दर्शनशक्ति बुद्धि (अन्तःकरण) है आत्मा नित्य और असंग है अन्तःकरण सुखदुःखादिका भोक्ता है अविद्यावश दोनोंका अभेदाभिमान होता है ॥ ४६ ॥

सुखाभिज्ञस्य सुखानुस्मृतिपूर्वकः सुखसाधनेषु तृष्णारूपो गर्द्धो रागः ॥ ४७ ॥

अनुभूत सुखको स्मरण कर सुखसाधनोंमें तृष्णा बढाना राग है अनुभूत दुःखको स्मरण कर दुःखसाधनोंमें निन्दाका नाम द्वेष है ॥ ४७ ॥

दुःखज्ञस्य तदनुस्मृतिपुरःसरं तत्साधनेषु निन्दा द्वेषः । तदुक्तं 'सुखानुशयो रागः दुःखानुशयो द्वेषः' इति । किमत्रानुशायशब्दे ताच्छील्यार्थे णिनिरिनिर्वा मत्वर्थो योऽभिमतः । नाद्यः सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्य इत्यत्र सुपीति वर्त्तमाने पुनः सुब्ग्रहणस्य उपसर्गनिवृत्त्यर्थत्वेन सोपसर्गाद्धातोर्णिनेरनुत्पत्तेः यथाकथञ्चिदंगीकारेऽपि अचोऽञ्णितीति वृद्धिप्रसक्तावतिशाय्यादिपदवदनुशायिपदस्य प्रयोगप्रसंगात् । न द्वितीयः । 'एकाक्षरात् कृतो जातेः सप्तम्यां च न तौ स्मृतौ" इति । तत्प्रतिषेधादत्र चानुशयशब्दस्याजन्तत्वेन कृदन्तत्वात् । तस्मादनुशयिशब्दो दुरुपपाद इति चेत् नैतद्भद्रं भावानवबोधात् प्रायिकाभिप्रायमिदं वचनम् । अतएवोक्तं वृत्तिकारेण–'इतिकरणो विवक्षार्थः सर्वत्राभिसम्बध्यते' इति । तेन क्वाचद्भवति कार्यं कार्यिकस्तण्डुली तण्डुलिक इति ।

तथाच कृदन्ततया जातेश्च प्रतिषेधस्य प्रायिकत्वम् अनुशयश-ब्दस्य कृदन्तात् इनेरुपपत्तिरिति सिद्धम् ॥ ४८ ॥

शंका–सुखानुशयी और दुःखानुशयी इन दोनों सूत्रोंमें जो अनुशयी शब्द है उसमें क्या ताच्छीलअर्थमें णिनि प्रत्यय है या मत्त्वर्थमें इनिप्रत्यय है । प्रथम कह नहीं सकते क्योंकि सुप्यजातौ इस सूत्रमें सुपिस्थसे सुपूकी अनुवृत्ति चली आती है पुनः सुपूकरन सामर्थ्यसे उपसर्गभिन्न सुप्का ग्रहण होता है अतः उपस-र्गपूर्वक धातुसे णिनि नहीं होगा "पतत्यधो धाम विसारि सर्वतः" "स बभूवोपजीवि-नाम्" इत्यादि प्रसिद्ध कविप्रयोगोंकी समान कथश्चित् णिनि मानाभी जाय तोभी वृद्धि दुर्वार होनेसे अनुशायी पद बनेगा अनुशयी न बन सकेगा। द्वितीयभी नहीं कह सकते एकाचूसे जातिवाचक कृदन्तसे, सप्तम्यन्तसे इन् और ठन् नहीं होते हैं स्ववान्, व्यघ्रवान्, दण्डः सन्ति अस्यां शालायाम् इत्या-दि इसके उदाहरण हैं यहां परभी अनुशयशब्द कृदन्ती अच्प्रत्ययान्त है अतः अनुशयी शब्द असाधु है ऐसा कहनाभी अनुचित है क्योंकि अभिप्रायको आप नहीं जानते हैं यह वार्तिक प्रायिक है अर्थात् सर्वत्र निषेध करताही है ऐसा नियम नहीं है अतएव वृत्तिकारने इतिशब्दको विवक्षितार्थ कहा है अतएव कार्य्यी इत्या-दिमें इनि भया अतः अनुशयशब्द कृदन्त होनेपरभी इनि हो गया वस्तुतः अनुशब्द कृदन्त होनेपरभी व्याघ्रादिवत् जातिवाचक न होनेसे निषेधकी प्रवृत्तिही नहीं है अतः शंका समाधान दोनों भूसा लेपनमात्र है ॥ ४८ ॥

पूर्वजन्मानुभूतमरणदुःखानुभववासनाबलात् सर्वस्य प्राणभृ-न्मात्रस्याकृमेरा च ।विदुषः सञ्जायमानः शरीरविषयादेर्मम वियोगो मा भूदीति प्रत्यहं निमित्तं विना प्रवर्त्तमानोभयरू-पोऽभिनिवेशः पञ्चमः क्लेशः ।मा च भूवं हि भूयासमिति प्रार्थनायाः प्रत्यात्ममनुभवसिद्धत्वात् । तदाह 'स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः' इति । ते चाविद्यादयः पञ्च सांसारिकविविधदुःखोपहारहेतुत्वेन पुरुषं क्लिश्नन्तीति क्लेशाः प्रसिद्धाः ॥ ४९ ॥

पूर्वजन्ममें अनुभूत मरणदुःखानुभववासनावश कृमिसे लेकर बडे ज्ञानपिर्यन्त समस्त आर विषयादि प्राणियोको हमारे शरीरका नाश न हो इस प्रकार विना निमित्तके उत्पन्न भयका नाम अभिनिवेश है यही पांचों क्लेश हैं उक्त अविद्यादिक

सांसारिक विविध दुःखहेतु होनेके कारण पुरुषको क्लेश (उपताप) युक्त कर देनेसे क्लेश कहे जाते हैं ॥ ४९ ॥

कर्माणि विहितप्रतिषिद्धरूपाणि ज्योतिष्टोमब्रह्महत्यादीनि विपाकाः कर्मफलानि जात्यायुर्भोगाः आफलविपाकाच्चित्त-भूमौ शेरत इत्याशयाः धर्माधर्मसंस्काराः तत्परिपन्थिचि-त्तवृत्तिनिरोधो योगः निरोधो नाभावमात्रमभिमतं तस्य तुच्छ-त्वेन भावरूपसंस्कारजननक्षमत्वासम्भवात्, किन्तु तदा-श्रयो मधुमतीमधुप्रतीकाविशोकासंस्कारशेषताव्यपदेश्यः चित्तस्यावस्थाविशेषः निरुध्यन्तेऽस्मिन् प्राणाद्याश्चिवृत्तय इति व्युत्पत्तेरुपपत्तेः ॥ ५० ॥

विहित ज्योतिष्टोम अग्निहोत्रादि और प्रतिषिद्ध ब्रह्महत्या कलञ्जभक्षणादि कर्म हैं ब्राह्मणत्वादि जाति, आयु भोगरूप कर्मका फल विपाक है विपाकका फलो-त्पत्तिपर्यन्त चित्तभूमिमें रहनेवाले धर्माधर्मसंस्कार आशय हैं उसके विरोधी जो चित्तकी वृत्तियां हैं उनका रोकना योग है निरोधपदसे अभावमात्र नहीं विवक्षित है क्योंकि अभाव अलीक पदार्थ होनेसे वह भावरूप संस्कारका जनक नहीं हो सकता किन्तु मधुमति मधुप्रतीकादि संज्ञक चित्तकी अवस्थाविशेष निरोध है निरोध किया जाय प्राणादि चित्तवृत्तिको जिसमें इस व्युत्पत्तिसे यही अर्थ प्रतीत होता है ॥ ५० ॥

अभ्यासवैराग्याभ्यां वृत्तिनिरोधः तत्र स्थितो यत्नोऽभ्यासः। प्रकाशप्रवृत्तिरूपवृत्तिरहितस्य चित्तस्य स्वरूपनिष्ठः परि-णामविशेषः स्थितिः । तन्निमित्तीकृत्य यत्नः पुनः पुनस्त-थात्वेन चेतसि निवेशनमभ्यासः । चर्मणि द्वीपिनं हन्तीति व-न्निमित्तार्थेयं सप्तमीत्युक्त भवति ॥ ५१ ॥

'तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्' इत्युक्तप्रकार निरोध दुस्साध्य समझकर उसका उपाय कहते हैं (अभ्यासेति) अभ्यास और वैराग्यसे उसका निरोध प्रकाशप्रवृत्तिरहित चित्तकी स्वरूपावस्थानरूप परिणामविशेष स्थिति है उस स्थितिके लिये यत्न बारम्बार चित्तमें निवेश करना अभ्यास है । स्थितौ यहांपर सप्तमी निमित्त अर्थमें है जिस प्रकार चर्मणिद्वीपिनंहन्ति इत्यादि स्थलमें है ॥ ५१ ॥

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् । ऐहिकपारत्रिकविषयादौ दोषदर्शनान्निरभिलाषस्य ममैते विषया वश्याः नाहमेतेषां वश्य इति विमर्शो वैराग्यमित्युक्तं भवति ॥ समाधिपरिपन्थिक्लेशतनूकरणार्थं समाधिलाभार्थं च प्रथमं क्रियायोगविधानपरेण योगिना भवितव्यं क्रियायोगसम्पादने अभ्यासवैराग्ययोः सम्भवात् ॥ ५२ ॥

इस लोक और परलोकमें दुःखजनकत्व परिणामित्वादि दोष देखकर तद्विषयक अभिलाषा छोड यह सब मेरे वश्य हैं । मैं इनके वश्य नहीं हूं इस विचारको वैराग्य कहते हैं । समाधिके विरोधी क्लेशादिको शिथिल करनेके और समाधिप्राप्तिके लिये प्रथम क्रिया है योगीको योगविधानमें तत्पर होना चाहिये क्रियायोगसम्पादनसेही अभ्यास और वैराग्य होसकता है ॥ ५२ ॥

तदुक्तं भगवता–"आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते । योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥ "इति । क्रियायोगश्चोपदिष्टः पतञ्जलिना–'तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः' इति । तपः स्वरूपं निरूपितं याज्ञवल्क्येन । "विधिनोक्तेन मार्गेण कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः । शरीरशोषणं प्राहुस्तपसां तप उत्तमम् ॥ "इति । प्रणवगायित्रीप्रभृतीनामध्ययनं स्वाध्याय इति । ते च मन्त्रा द्विविधाः वैदिकास्तान्त्रिकाश्च । वैदिकाश्च द्विविधाः प्रगीता अप्रगीताश्च । तत्र प्रगीताः सामानि, अप्रगीताश्च द्विविधाः छन्दोबद्धास्तद्विलक्षणाश्च । तत्र प्रथमा ऋचः । द्वितीया यजूंषि । तदुक्तं जैमिनिना–'तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था गीतिषु सामाख्या शेषे यजुःशब्दः' इति ॥ ५३ ॥

योगमार्गमें चढनेकी इच्छावाले मुनिको प्रथम कर्म (क्रिया) करना चाहिये योगमें आरूढ मुनिको शम साधन है । क्रिया योगभी पतञ्जलिने कहा है । तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधानका नाम क्रिया योग है । वेदादिविहित प्रकार

कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रतोंसे शरीरको शोषण करना सबसे श्रेष्ठ तप है। प्रणव गायत्री वेदोपानिषदादिका अध्ययन स्वाध्याय है । वैदिक तान्त्रिक भेदसे मंत्र दो प्रकार है वैदिक मंत्रभी दो प्रकार है एक प्रगीत दूसरा अप्रगीत है । प्रगीत साम है जिसको गान किया जाता है छन्दोबद्ध और उससे विलक्षण भेदसे अप्रगीतभी दो प्रकार है प्रथम ऋक् है जिसमें अर्थवश पादव्यवस्था होती है दूसरा यजु है इसमें पादव्यवस्था नहीं है ॥ ५३ ॥

तन्त्रेषु कामिककारणप्रपञ्चाद्यागमेषु ये ये वर्णितास्ते तान्त्रिकाः ॥ ते पुनर्मन्त्रास्त्रिविधाः स्त्रीपुन्नपुंसकभेदात्तत्राह–"स्त्रीपुंनपुंसकत्वेन त्रिविधा मन्त्रजातयः। स्त्रीमन्त्रा वह्निजायान्ता नमोऽन्ताः स्युर्नपुंसकाः। शेषाः पुमांसस्ते शस्ताः सिद्धा वश्यादिकर्मणि ॥ "इति ॥ ५४ ॥

कामिक और कारण प्रपञ्चाद्यागममें जो प्रतिपादित मंत्र है वह तान्त्रिक है। स्त्री पुरुष नपुंसकभेदसे वे मन्त्र तीन प्रकार हैं। स्वाहान्त मन्त्र स्त्री मन्त्र है नमःपद जिसके अन्तमें हो वह नपुंसक मन्त्र हैं। अवशिष्ट पुरुष मन्त्र हैं । वशीकरणादि कार्योंमें पुंमन्त्र प्रशस्त हैं ॥ ५४ ॥

स्नापनादिसंस्काराभावेऽपि निरस्तसमस्तदोषत्वेन सिद्धिहेतुत्वात् सिद्धत्वम् । स च संस्कारो दशविधः कथितः शारदातिलके ॥ "मन्त्राणां दश कथ्यन्ते संस्काराः सिद्धिदायिनः । निर्दोषतां प्रयान्त्याशु ते मन्त्राः साधु संस्कृताः ॥ ५५ ॥

अभिषेकादि संस्कार न होनेपरभी निर्दोष होनेके कारण सिद्ध हेतु होनेसे सिद्ध कहाते हैं। मंत्रोंके सिद्धि प्रद दश प्रकारके संस्कारोंको कहते हैं जिन संस्कारोंसे संस्कृत मंत्र शीघ्रही निर्दुष्ट हो जाते हैं ॥ ५५ ॥

जननं जीवनञ्चैव ताडनं बोधनं तथा। अभिषेकोऽथ विमलीकरणाप्यायने पुनः ॥ तर्पणं दीपनं गुप्तिर्दशैता मन्त्रसंस्क्रियाः ॥ मन्त्राणां मातृकावर्णादुद्धारो जननं स्मृतम् ॥ ५६ ॥

दशविध संस्कार इस प्रकार हैं। १ जनन २ जीवन ३ ताडन ४ बोधन ५ अभिषेक ६ विमलीकरण ७ आप्यायन (पुष्टि) ८ तर्पण ९ दीपन और १० गुप्ति यही दश संस्कार हैं मन्त्रोंको मातृका वर्णोंसे उद्धार करनेका नाम जनन है ॥५६॥

प्रणवान्तरितान् कृत्वा मन्त्रवर्णान् जपेत् सुधीः ॥ मन्त्रार्णसंख्यया तद्धि जीवनं संप्रचक्षते ॥ ५७ ॥

बुद्धिमान् लोग प्रणवको अन्तरित युक्त करके मन्त्रवर्णको मन्त्रके अक्षरोंकी संख्यासे जप करनेका नाम जीवन है ॥ ५७ ॥

मन्त्रवर्णान् समालिख्य ताडयेच्चन्दनाम्भसा ॥ प्रत्येकं वायुबीजेन ताडनं तदुदाहृतम् ॥ ५८ ॥

मन्त्राक्षरोंको लिखकर प्रत्येक अक्षरोंको वायुबीजका उच्चारण करके चन्दनजलसे ताडन (प्रोक्षण) करनेको ताडन कहते हैं ॥ ५८ ॥

विलिख्य मन्त्रवर्णांस्तु प्रसूनैः करवीरजैः ॥ मन्त्राक्षरेण संख्यातैर्हन्यात्तद्बोधनं मतम् ॥ ५९ ॥

मन्त्राक्षरोंको लिखकर अक्षरसमसंख्यक कनेरके फूलोंसे हनन करनेको बोधन कहते हैं ॥ ५९ ॥

स्वतन्त्रोक्तविधानेन मन्त्री मन्त्रार्णसंख्यया ॥ अश्वत्थपल्लवैर्मन्त्रमभिषिञ्चेद्विशुद्धये ॥ ६० ॥

जापक तत्तन्मन्त्रविधिसे मन्त्र शुध्यर्थ पीपलके पत्तोंसे मन्त्राक्षरसंख्याकी बराबर अभिषिक्त करनेको अभिषेक कहते हैं ॥ ६० ॥

सञ्चिन्त्य मनसा मन्त्रं ज्योतिर्मन्त्रेण निर्दहेत् । मन्त्रे मलत्रयं मन्त्री विमलीकरणं हि तत् ॥ तारव्योमाग्निमनुयुक् ज्योतिर्मन्त्र उदाहृतः ॥ ६१ ॥

मनसे मन्त्रको चिन्तवन कर ज्योतिर्मंत्रसे मलत्रयको निर्दहन करें इसीको विमलीकरण कहते हैं । तार, व्योम, अग्नियुक्त मंत्र ज्योतिर्मन्त्र है ॥ ६१ ॥

कुशोदकेन जप्तेन प्रत्यर्णं प्रोक्षणं मनोः । वारिबीजेन विधिवदेतदाप्यायनं मतम् ॥ ६२ ॥

अभिमन्त्रित कुशोदकसे मंत्रके प्रत्येक अक्षरोंको वारि बीजोच्चारण कर विधिवत् प्रोक्षण करनेको आप्यायन कहते हैं ॥ ६२ ॥

मन्त्रेण वारिणा मन्त्रे तर्पणं तर्पणं स्मृतम् ॥ ६३ ॥

मन्त्रसे अभिमान्त्रित जलको मन्त्रमें छोडदेनेका नाम तर्पण कहते हैं ॥ ६३ ॥

तारमायारमायोगो मनोर्दीपनमुच्यते ॥ ६४ ॥

तार, माया, और रमायोगको मन्त्रका दीपन कहते हैं ॥ ६४ ॥

जप्यमानस्य मन्त्रस्य गोपनं त्वप्रकाशनम् ॥ ६५ ॥

जप्यमान मन्त्रका अप्रकाशनका नाम गोपन है ॥ ६५ ॥

संस्कारा दश मन्त्राणां सर्वतन्त्रेषु गोपिताः ॥ यत्कृत्वा सम्प्रदायेन मन्त्री वाञ्छितमश्नुते ॥ ६६ ॥

यह दश संस्कार सब तन्त्रोंमें गुप्त हैं । जिनके करनेसे जापक इष्टसिद्धिको पाते हैं ॥ ६६ ॥

रुद्धकीलितविच्छिन्नसुप्तशप्तादयोऽपि च । मन्त्रदोषाः प्रणश्यन्ति संस्कारैरेभिरुत्तमैः ॥ " इति । तदलमकाण्डताण्डवकल्पेन मन्त्रशास्त्ररहस्योद्घोषणेन ॥ ६७ ॥

रुद्ध, कीलित, विच्छिन्न, सुप्त, शप्त, आदि मन्त्रदोष उक्त संस्कारोंसे नष्ट होते हैं । योगविचारके बीचमें अप्रासंगिक मन्त्रशास्त्रोंके व्यर्थ विचारोंसे विरत होता हूं ॥ ६७ ॥

ईश्वरप्रणिधानं नामाभिहितानामनभिहितानाञ्च सर्वासां क्रियाणां परमेश्वरे परमगुरौ फलानपेक्षया समर्पणम् । अत्रेदमुक्तम्—"कामतोऽकामतो वापि यत्करोमि शुभाशुभम् । तत्सर्वं त्वयि विन्यस्तं त्वत्प्रयुक्तः करोम्यहम् ॥ " इति ॥ ६८ ॥

विहिताविहित समस्त क्रियाको फलाकांक्षारहित होकर परम गुरु ईश्वरमें समर्पण करना ईश्वरप्रणिधान है सकाम या निष्कामसे मैं जो शुभाशुभ करता हूं वह सब आपके विषयमें समर्पण करता हूं आपसे प्रेरित होकर मैं करता हूं ॥ ६८ ॥

क्रियाफलसंन्यासोऽपि भक्तिविशेषापरपर्यायं प्रणिधानमेव फलाभिसन्धानेन कर्मकरणात् । तथाच गीयते गीतासु भगवता । " कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन । मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥ " इति ॥ ६९ ॥

क्रियाफलका त्यागभी भक्तिविशेषरूप ईश्वरप्रणिधानही है । अतएव भगवद्गीता-में कहा है हे अर्जुन ! तुमको कर्महीमें अधिकार है फलमें कदाचित् अधिकार नहीं कर्म और फलका हेतुभी न हो अर्थात् फलाभिलाषासे कर्म न करो कर्मके त्यागमें भी तुम्हारी रुचि न हो ॥ ६९ ॥

फलाभिसन्धेरुपघातकत्वमभिहितं भगवद्भिर्नीलकण्ठभारतीश्रीचरणैः । " अपि प्रयत्नसम्पन्नं कामेनोपहतं तपः । न तुष्टये महेशस्य श्वलीढमिव पायसम् ॥" इति ॥ ७० ॥

नीलकण्ठभारतीनेभी कहा है-अत्यन्त प्रयत्नसे किया हुआभी फलकामनायुक्त तप ईश्वरकी प्रीतिकारक नहीं होता है जिस प्रकार कुक्करका उच्छिष्ट पायस किसीके प्रीतिकारक नहीं होता है ॥ ७० ॥

सा च तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानात्मिका क्रिया योगसाधनत्वाद्योग इति । शुद्धसारोपलक्षणावृत्त्याश्रयणेन निरूप्यते यथायुर्घृतमिति । शुद्धसारोपलक्षणा नाम लक्षणाप्रभेदः मुख्यार्थबाधतद्योगाभ्यामर्थान्तरप्रतिपादनं लक्षणा । सा द्विविधा रूढिमूला प्रयोजनमूला च तदुक्तं । काव्यप्रकाशे । "मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढितोऽथ प्रयोजनात् । अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत् सा लक्षणारोपिता क्रिया ॥ " इति । तच्छब्देन लक्ष्यत इत्याख्याते गुणीभूतं प्रतिपादनमात्रं परामृश्यते । सा लक्षणेति प्रतिनिर्दिश्यमानापेक्षया तच्छब्दस्य स्त्रीलिंगत्वोपपत्तिः तदुक्तं कैयटैः । निर्दिश्यमानप्रतिनिर्दिश्यमानयोरैक्यमापादयन्ति सर्वनामानि पर्यायेण तत्तल्लिंगमुपाददत इति ॥ ७१ ॥

तप, ईश्वर प्रणिधान स्वाध्यायरूप क्रिया योग साधन होनेके कारण शुद्धसारोपलक्षणासे योग कहाता है जैसे आयुका साधक घृतमें आयुर्घृतम् इत्यादि व्यवहार होता है तथाहि शब्दका मुख्यार्थ (शक्तिसे उपास्थितार्थ) का बाध होनेपर मुख्यार्थयुक्त अर्थान्तर बोधनका नाम लक्षणा है । वह रूढि और प्रयोजनवती भेदसे दो प्रकार है । इस विषयमें काव्यप्रकाशकारकी सम्मति कहते हैं मुख्यार्थ बाध इति रूढिका अर्थ प्रसिद्ध है प्रयोजन व्यङ्ग्यार्थ प्रतिपादनरूप है

क्रियाका अर्थ व्यापार है । तथा च अन्यार्थ जो बोधित होता है वह लक्षणा है अन्यार्थप्रतिपादनमें मुख्यार्थका बाध शक्यार्थ सम्बन्ध और रूढि या प्रयोजन यह तीनों हेतु हैं तद्योग (मुख्यार्थसम्बान्धित्व) लक्षणामेंभा जोडना चाहिये नहीं तो व्यञ्जना और शक्ति स्मृतिमेंभी अतिव्याप्ति होगी मुख्यकामी अभिधारूप मुख्यार्थ सम्बन्धसे प्रतिपादन हो सकता है इसलिये उसके वारणार्थ अन्यपद है अन्य अर्थात् अमुख्य है यत्लक्ष्यते यहांपर तिङ्प्रत्ययेक अर्थ आश्रयमें यद्यपि धात्वर्थ प्रतिपादन विशेषणी भूत है तथापि उसीको यत् शब्दसे परामर्श होता है क्योंकि यत् तत् शब्दके नित्य सम्बन्ध होता है तत् शब्दसे लक्षणाका बोध होता है अतः यत् शब्दभी धात्वर्थ मात्रका बोधक है सा इति स्त्रीलिङ्गका निर्देश लक्षणा इति विधेय स्त्रीलिङ्ग पदके अभिप्रायसे है कैयटनेभी कहा है कि उद्देश्य और विधेयका अभेद प्रतिपादन करनेवाले सर्वनामपद क्रमसे दोनोंके लिङ्गके बोधक होते हैं यथा " शैत्यं हि यत्सा प्रकृतिर्जलस्य " इति ॥ ७१ ॥

तत्र कर्मणि कुशल इत्यादिरूढिलक्षणाया उदाहरणं कुशान् लातीति व्युत्पत्त्या दर्भादानकर्तरि यौगिकं कुशलपदं विवेचकत्वसारूप्यात् प्रवीणे प्रवर्त्तमानम् अनादिवृद्धव्यवहारपरम्परानुपातित्वेनाभिधानवत् प्रयोजनमनपेक्ष्य प्रवर्त्तते । तदाह, 'निरूढालक्षणाः काश्चित् सामर्थ्यादभिधानवत्' इति॥तस्मात् रूढिलक्षणायाः प्रयोजनापेक्षा नास्ति। यद्यपि प्रयुक्तः शब्दः प्रथमे मुख्यार्थं प्रतिपादयति तेनार्थेनार्थान्तरं लक्ष्यत इति अर्थधर्मोऽयं लक्षणा तथापि तत्प्रतिपादके शब्दे समारोपितः सन् शब्दव्यापार इति व्यपदिश्यते । एतदेवाभिप्रेत्योक्तं लक्षणारोपिता क्रियेति ॥ ७२ ॥

कर्मणि कुशल यह रूढिलक्षणाका उदाहरण है कुशल पद कुशान् लाति इस व्युत्पत्तिसे दर्भका आनयन कर्तामें यौगिक है एतादृश मुख्यार्थ कर्ममें बाधित होनेसे विवेचकत्वरूपसम्बन्धसे विचारशीलमें लाक्षणिक है यह अनादि वृद्ध व्यवहारमूलक होनेसे शक्तिके समान है कहाभी है कि निरूढ लक्षणाशक्तिका समानही है अतः रूढिलक्षणामें प्रयोजनकी अपेक्षा नहीं है । यद्यपि शब्द प्रथम मुख्यार्थका बोधन करता है परन्तु मुख्यार्थके बाध होनेसे अर्थान्तरलक्षित होता है तथा लक्षणा अर्थका धर्म है तथापि अर्थ प्रातिपादक शब्दमें आरोपित है इस अभिप्रायसे कहते हैं

कि लक्षणारोपितेति अर्थात् शक्याव्यवहित लक्ष्यार्थ विषयक होनेसे शब्दमें आरोपितमात्र है वस्तुतः अर्थवृत्तिही है प्रयोजनवती लक्षणाका उदाहरण गंगायांघोषः है यहां शैत्यपावनत्वादि प्रयोजन है ॥ ७२ ॥

प्रयोजनलक्षणा तु षड्विधा उपादानलक्षणा लक्षणलक्षणा गौणसारोपा गौणसाध्यवसाना शुद्धसारोपा शुद्धसाध्यवसाना चेति । कुन्ताः प्रविशन्ति मञ्चाः क्रोशन्ति गौर्वाहीकः गौरयं आयुर्घृतं आयुरेवेदमिति यथाक्रममुदाहरणानि द्रष्टव्यानि ॥७३॥

लक्षणा दो प्रकारकी है. शुद्ध और गौणी शुद्धमेंभी उपादानलक्षणा और लक्षणलक्षणारूप दो भेद हैं उन दोनोंमेंभी सारोप, और साध्यवसानरूप दो भेद हैं अर्थात् उपादानलक्षणा सारोपा, उपादानलक्षणा साध्यवसाना, लक्षणलक्षणा सारोपा, और लक्षणलक्षणासाध्यवसाना भेदसे शुद्धलक्षणा चार प्रकारकी है गौणीभी सारोप और साध्यवसान भेदसे दो प्रकार हैं इस प्रकार लक्षणा छः प्रकार हैं कुन्ताः प्रविशान्ति मञ्चाः क्रोशन्ति, गौर्वाहीकः, गौरयम्, आयुर्घृतम्, आयुरेवेदम् इत्यादि उदाहरण हैं ॥ ७३ ॥

तदुक्तम्–"स्वसिद्धये पराक्षेपः परार्थं स्वसमर्पणम् । उपादानं लक्षणं चेत्युक्ता शुद्धैव सा द्विधा ॥ सारोपान्या तु यत्रोक्तौ विषया विषयस्तथा । विषय्यन्तःकृतेऽन्यस्मिन् सा स्यात् साध्यवसानिका ॥ भेदाविमौ च सादृश्यात् सम्बन्धान्तरतस्तथा । गौणौ शुद्धौ च विज्ञेयौ लक्षणा तेन षड्विधा ॥" इति ॥ तदलं काव्यमीमांसामर्मनिर्मन्थनेन ॥ ७४ ॥

(तदुक्तमिति) वाक्यार्थमें स्वार्थका अन्वयप्रवेश सिद्धिके लिये पराक्षेप परका लक्षण अर्थात् स्वार्थको न त्यागकर परार्थलक्षण उपादान लक्षण है यथा "कुन्ताः प्रविशन्ति" यहांपर कुन्तको वाक्यार्थमें अन्वयसिद्धिके लिये कुन्तधारी पुरुषका आक्षेप होता है इसीको अजहत्स्वार्थालक्षणा कहते हैं । परार्थमिति । परार्थका अन्वयसिद्धिके लिये स्वार्थका त्याग लक्षणलक्षणा है यथा "गंगायांघोषः" घोषपदार्थके अन्वयसिद्धिके लिये गंगापद स्वार्थको त्यागकर तीररूप अर्थको लक्षित करता है यह दोनों भेद शुद्धके हैं सारोपान्येति अन्य अर्थात् गौणी सारोप और साध्यवसान भेदसे दो प्रकार है विषयी आरोप्यमाण गवादि और विषय आरोपके वाहीकादि दोनोंके जहाँपर भेदरूपसे सामानाधिकरण्यका प्रतिपादन हो वह सारोप है यथा गौर्वाहीक इत्यादि आरोप्यमाण गवादि अन्य आरोपविषयमें अन्तः निगीर्ण

हो अर्थात् भेदसे प्रतीयमान न हो वह साध्यवसाना है उक्त दोनों भेद सादृश्यसम्बन्धसे हो तो गौणी और अन्यसम्बन्धसे हो तो शुद्धा होती है सादृश्यमूलक सारोपका उदाहरण गौर्वाहीक है साध्यवसानका उदाहरण गौरयम् है सम्बन्धान्तरसे शुद्धसारोपका उदाहरण आयुर्घृतम् है साध्यवसानका उदाहरण आयुरेवेदम् है यहांपर कार्यकारणभावरूप सम्बन्ध है गौणसारोपमें भेद होते हुएभी अभेद प्रतीति और साध्यवसानमें सर्वथा अभेदप्रतीति प्रयोजन है शुद्ध सारोपमें अन्य वैलक्षण्यसे कार्यकारित्व और साध्यवसानमें अव्यभिचारेण कार्यकरत्व फल है ॥ ७४ ॥

स च योगो यमादिभेदवशादष्टांग इति निर्दिष्टः । तत्र यमा अहिंसादयः । तदाह पतञ्जलिः ' अहिंसासत्यांस्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः' इति । नियमाः शौचादयः । तदप्याह 'शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः' इति ॥ ७५ ॥

उक्त योग यमनियमादिभेदसे अष्टाङ्ग हैं अहिंसा, सत्य, अस्तेय, (चोरी न करना) ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह (दान) न लेना, यम है। शौच, सन्तोष, तपः, स्वाध्याय, और ईश्वरप्राणिधान नियम है यह विष्णुपुराणमेंभी कहा है ॥ ७५ ॥

एते च यमनियमा विष्णुपुराणे दर्शिताः–"ब्रह्मचर्यमहिंसां च सत्यास्तेयापरिग्रहान् । सेवेत योगी निष्कामो योग्यतां स्वं मनो नयन् ॥ स्वाध्यायशौचसन्तोषतपांसि नियमात्मवान् । कुर्वीत ब्रह्मणि परं परस्मिन् प्रवणं मनः ॥ एते यमाः सनियमाः पञ्च पञ्च प्रकीर्तिताः । विशिष्टफलदाः कामे निष्कामानां विमुक्तिदाः ॥ "इति ॥ ७६ ॥

निष्कामयोगी चित्तकी योग्यता प्राप्त करते हुए ब्रह्मचर्यादिको सेवन करे वशीकृतेन्द्रिय होकर स्वाध्यायादि कर परब्रह्ममें मनको सदा आसक्त (ईश्वरप्रणिधान) करे उक्त पाँच यम और पाँच नियम सकाम योगीको अभीष्ट फल देनेवाले हैं और निष्कामयोगीके लिये मोक्ष देनेवाले हैं ॥ ७६ ॥

स्थिरसुखमासनं पद्मासनभद्रासनवीरासनस्वस्तिकासनदण्डकासनसोपाश्रयपर्यंकक्रौंचनिषदनोष्ट्रनिषदनसमसंस्थासम्भेदाद्दशविधम् । "पादांगुष्ठौ निबध्नीयाद्धस्ताभ्यां व्युत्क्रमेण तु । ऊर्वारुपरि विप्रेन्द्र ! कृत्वा पादतले उभे । पद्मासनं भवेदेतत्

सर्वेषामभिपूजितम् " ॥ इत्यादिना याज्ञवल्क्यः पद्मासनादिस्वरूपं निरूपितवान् । तत्सर्वं तत एवावगन्तव्यम् ॥ ७७ ॥

जिसमें शरीर स्थिर (अचल) हो और सुख हो वह आसन है वह पद्मासनादि भेदसे दश प्रकार हैं वामचरणकी एडीको दक्षिण जंघापर चढावे और दक्षिणचरणकी एडीको वामजंघापर चढाकर दक्षिण हाथसे वामचरणके अंगूठेको और बायें हाथसे दाहिने चरणके अंगूठेको पकडे रहै उसको पद्मासन कहते हैं यह आसन अत्यन्त श्रेष्ठ है एवं क्रमसे याज्ञवल्क्यने पद्मासनादिका स्वरूप वर्णन किया है वह सब उसमेंसे जान लेना ॥ ७७ ॥

तस्मिन्नासनस्थैर्ये सति प्राणायामः प्रतिष्ठितो भवति । स च श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदस्वरूपः । तत्र श्वासो नाम बाह्यस्य वायोरन्तरानयनम् । प्रश्वासः पुनः कोष्ठस्य बहिर्निस्सारणम् । तयोरुभयोरपि सञ्चरणाभावः प्राणायामः ॥ ७८ ॥

आसन स्थिर होनेसे प्राणायामभी स्थिर होता है श्वास प्रश्वासकी गतिके रोकनेका नाम प्राणायाम है बाहरके वायुको भीतर लेजानेका नाम श्वास है भीतरके वायुको बाहर निकालनेका नाम प्रश्वास है दोनोंका सञ्चार रोकनेका नाम प्राणायाम है ॥ ७८ ॥

ननु नेदं प्राणायामसामान्यलक्षणं तद्विशेषेषु रेचकपूरककुम्भकप्रकारेषु तदनुगतेरयोगादिति चेन्नैष दोषः सर्वत्रापि श्वासप्रश्वासगतिविच्छेदसम्भात् । तथाहि कोष्ठस्य वायोर्बहिर्निस्सरणं रेचकः प्राणायामः प्रश्वासत्वेन प्रागुक्तः । बाह्यवायोरन्तर्धारणं चरमः यः श्वासरूपः । अन्तः स्तम्भवृत्तिः कुम्भकः । यस्मिन् जलमिव कुम्भे निश्चलतया प्राणाख्यो वायुरवस्थाप्यते तत्र सर्वत्र श्वासप्रश्वासद्वयगतिविच्छेदोऽस्त्येवेति नास्ति शंकावकाशः । तदुक्तं 'तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः 'इति ॥ ७९ ॥

शंका—श्वासप्रश्वासगतिविच्छेद प्रणायामसामान्यका लक्षण नहीं हो सकता क्योंकि प्रणायामविशेषमें रेचक, पूरक, कुम्भकादिमें श्वास और प्रश्वास उभय गतिका निषेध नहीं है । समाधान—ऐसा नहीं कह सकते प्राणायाममात्रमें तादृश-

गतिनिरोध होताही है भीतरके वायुका बाहर निकालना रेचक प्राणायाम है जिसको प्रश्वास कहा बाह्यवायुको भीतर लेजाना पूरक है जिसको श्वास कहा भीतर रोकना कुम्भक है जिस प्रकार घटमें जलको निश्चलरूपसे रोका जाता है उसी प्रकार प्राणवायुको निश्चल किया जाता है अतः सर्वस्थलमें श्वासप्रश्वासगतिनिरोध होनेसे शंका कलंकका लेशभी नहीं है अतएव कहा है कि तादृश कुम्भक होनेपर श्वास प्रश्वासकी गतिनिरोधरूप प्राणायाम होता है ॥ ७९ ॥

स च वायुः सूर्योदयमारभ्य सार्द्धघटिकाद्वयं घटीयन्त्रस्थितघटभ्रमणन्यायेन एकैकस्यां नाड्यां भवति । एवं सत्यहर्निशं श्वासप्रश्वासयोः षट्शताधिकैकविंशतिसहस्राणि जायन्ते अत एवोक्तं मन्त्रसमर्पणरहस्यवेदिभिरजपामन्त्रसमर्पणे । "षट्शतानि गणेशाय षट्सहस्रं स्वयम्भुवे । विष्णवे षट्सहस्रं च षट्सहस्रं पिनाकिने ॥ सहस्रमेकं गुरवे सहस्रं परमात्मने । सहस्रमात्मने चैवमर्पयामि कृतं जपम् ॥" इति ॥ ८० ॥

वह वायु सूर्योदयसे लेकर ढाई घडीतक घटीयन्त्रके घडेकी समान इडा पिंगला और सुषुम्ना प्रत्येक नाडीमें घूमता है इस प्रकार दिनरात्रिमें श्वास प्रश्वासकी संख्या २१६०० हो जाती है अतएव मन्त्रसमर्पणवेत्ताओंने अजपामन्त्र समर्पणमें कहा है किये हुए जपोंमेंसे ६०० गणेशजीको, ६००० ब्रह्माजीको, ६००० विष्णुभगवान्‌को, ६००० महादेवजीको १००० गुरुको १००० परमात्माको और १००० अपने आत्माको अर्पण करता हूं इति ॥ ८० ॥

तथा नाडीसञ्चरणदशायां वायोः सञ्चरणे पृथिव्यादीनि तत्त्वानि वर्णविशेषवशात् पुरुषार्थाभिलाषुकैः पुरुषैरवगन्तव्यानि । तदुक्तमभियुक्तैः—"सार्द्धं घटीद्वयं नाडीरेकैकार्कोदयात् वहेत् । आरघट्टघटीभ्रान्तिन्यायो नाड्योः पुनः पुनः ॥ ८१ ॥

नाडियोंके घूमते समय वायुका सञ्चरण होनेसे नीलपीतादि वर्णविशेषोपलक्षित पृथिव्यादितत्त्वभी पुरुषार्थ चाहनेवालोंको अवश्य ज्ञातव्य है । अभियुक्तोंने कहा है घटीयन्त्रस्थ घटके समान सूर्योदयसे ढाई घंटातक एक एक नाडी चलती है ॥ ८१ ॥

शतानि तस्य जायन्ते निःश्वासोच्छ्वासयोर्नव । खखषड्‌द्व्येकैः संख्याहोरात्रे सकले पुनः ॥ षट्त्रिंशद्गुणवर्णानां या वेला भणने

भवेत् । सा वेला मरुतो नाडयन्तरे सञ्चरतो भवेत् ॥ प्रत्येकं पंचतत्त्वानि नाड्योश्च वहमानयोः । वहन्त्यहर्निशं तानि ज्ञातव्यानि यतात्मभिः ॥ ऊर्ध्वं वह्निरधस्तोयं तिरश्चीनः समीरणः । भूमिमर्द्धपुटे व्योम सर्वगं प्रवहेत् पुनः ॥ वायोर्वह्नेरपां पृथ्व्या व्योम्नस्तत्त्वं वहेत् क्रमात् । वहन्त्योरुभयोर्नाड्योर्ज्ञातव्योऽयं यथाक्रमम् ॥ ८२ ॥

३६ गुणों और वर्णोंके उच्चारणमें जितना समय लगता है। उतने समय नाडीके भीतर चलनेवाले वायुको लगता है चलती हुई नाडीमें प्रत्येक पांच तत्त्व संयमीको अवश्य ज्ञातव्य हैं । अग्नितत्त्व उपरको जलतत्त्व नीचेको वायुतत्त्व टेढा पृथिवीतत्त्व अर्धपुटमें और आकाशतत्त्व सर्वत्र वहन करता है ॥ ८२ ॥

पृथ्व्याः पलानि पञ्चाशच्चत्वारिंशत् तथाम्भसः । अग्नेस्त्रिंशत् पुनर्वायोर्विंशतिर्नभसो दश ॥ प्रवाहकालसंख्येयं हेतुर्विह्वलयोरथ । पृथ्वी पञ्चगुणा तोयं चतुर्गुणमथानलः ॥ त्रिगुणो द्विगुणो वायुर्वियदेकगुणं भवेत् । गुणं प्रति दशपलान्युर्व्यां पञ्चाशदित्यतः ॥ एकैकहानिस्तोयादेस्तथा पञ्च गुणाः क्षितेः । गन्धो रसश्च रूपञ्च स्पर्शः शब्दः क्रमादमी ॥ ८३ ॥

वहते हुए दोनों नाडीमें वायु, अग्नि, जल, पृथिवी और आकाश क्रमसे चलते हैं उसको यथाक्रम जानना चाहिये । पृथिवीतत्त्व ५० पल, जलतत्त्व ४० पल, अग्नितत्त्व ३० पल वायुतत्त्व २० पल और आकाशतत्त्व १० पलतक बहन करता है पृथिवी पांच गुणवाली, जल चार गुणवाला, अग्नि तीन गुणवाला वायु दो गुणवाला, आर आकाश एक गुणवाला है । एक एक गुणके लिये दश पल समय लगनेसे पृथिवीतत्त्वके लिये ५० पल हुए, पृथिवीमें गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द ये पञ्च गुण हैं इससे जलादिमें क्रमसे एक एक घटानेपर पूर्वोक्त क्रम हो जाता है॥८३॥

तत्त्वाभ्यां भूजलाभ्यां स्यात् शान्तिकार्ये फलोन्नतिः । दीप्ता स्थिराधिका कृत्ये तेजो वाय्वम्बरेषु च ॥ पृथ्व्यप्तेजोमरुद्व्योमतत्त्वानां चिह्नमुच्यते । आद्ये स्थैर्यं स्वचित्तस्य शैत्ये कामोद्भवो भवेत् ॥ तृतीये कोपसन्तापौ चतुर्थे चञ्चलात्मता । पञ्चमे शून्यतैव स्यादथवा धर्मवासना ॥ ८४ ॥

पृथिव्यादितत्त्वोंका चिह्न कहते हैं । पृथिवीतत्त्व चलनेपर चित्तको स्थैर्य होता है जलसे कामोद्रेक होता है । अग्नितत्त्वसे कोप और सन्ताप होते हैं । वायुतत्त्वसे चित्त चञ्चल होता है और आकाशतत्त्व चलनेपर शून्यता अथवा धर्मवासना होती है ॥ ८४ ॥

श्रुत्योरङ्गुष्ठकौ मध्यांगुल्यौ नासापुटद्वये । सृक्किणोः प्रान्त्यकोपान्त्यांगुली शेषे दृगन्तयोः ॥ न्यस्यान्तर्भूपृथिव्यादितत्त्वज्ञानं भवेत् क्रमात् । पीतश्वेतारुणश्यामैर्बिन्दुभिर्निरुपाधि खम् ॥" इत्यादिना ॥ ८५ ॥

दोनों अंगूठोंसे दोनों कर्णको दोनों मध्यमा अंगुलियोंसे दोनों नासापुटको और दोनों हाथोंकी कनिष्ठिका और अनामिकासे ओष्ठको अवशिष्टअंगुली (तर्जनी) से नेत्रको दबाकर एकाग्रचित्त होनेसे अन्तःकरणमें पृथिव्यादि तत्त्वका ज्ञान होता है पीत, श्वेत, अरुण (लाल) श्याम और रत्नबिन्दुसे पृथिव्यादि लक्षित होते हैं निरूपाधि होनेसे आकाश बिन्दुरूपसे लक्षित होता है ॥ ८५ ॥

यथावद्वायुतत्त्वमवगम्य तन्नियमने विधीयमाने विवेकज्ञानावरणकर्मक्षयो भवति । तपो न परं प्राणायामादिति । "दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः । प्राणायामैस्तु दह्यन्ते तद्वदिन्द्रियपन्नगाः ॥ " इति च ॥ ८६ ॥

वायुतत्त्वको यथार्थ जानकर उसका नियमन करनेसे विवेक ज्ञानका आवरण जो कर्म है उसका क्षय होता है प्राणायामसे बढकर कोई तप नहीं है अग्निमें तपानेसे जिस प्रकार सुवर्णादिका मल जल नष्ट हो जाता है तिसी प्रकार प्राणायामसे इन्द्रियरूप सर्प भस्म हो जाते हैं इति ॥ ८६ ॥

तदेवं यमादिभिः संस्कृतमनस्कस्य योगिनः संयमप्रत्याहारः कर्त्तव्यः । चक्षुरादीनामिन्द्रियाणां प्रतिनियतरञ्जनीयकोपनीयमोहनीयप्रवणत्वप्रहाणेनाविकृतस्वरूपप्रवणचित्तानुकारः प्रत्याहारः इन्द्रियाणि विषयेभ्यः प्रतीपमाह्रियन्तेऽस्मिन्निति व्युत्पत्तेः ॥ ८७ ॥

इस प्रकार यमनियमादिसे शुद्ध चित्त योगीको संयमप्रत्याहार करना चाहिये चक्षुरादि इन्द्रियोंको नियत राग द्वेष मोहजनक शब्द स्पर्श रूप रस गन्धादि विषयमें असाधारणतया प्रवृत्त चित्तको हटाकर अन्तर्मुखसे स्वरूपमें स्थिर करना प्रत्याहार है

इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर स्वसमीप प्राप्त किया जाय जिसं समाधिमें उसका नाम प्रत्यहार है ऐसी प्रत्यहारशब्दकी व्युत्पत्ति है ॥ ८७ ॥

ननु तदा चित्तमभिनिविशते नेन्द्रियाणि तेषां बाह्यविषयत्वेन तत्र सामर्थ्याभावादतः कथं चित्तानुकारः अद्धा अतएव वस्तुतस्तस्यासम्भवमभिसन्धाय सादृश्यार्थमिवशब्दश्च सूत्रकारः स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहार इति ॥ ८८ ॥

यदि कहो इन्द्रिय बाह्य विषय होनेसे अन्तर्विषय चित्तके साथ तदाकार कैसे सम्भव होगा यहभी नहीं कह सकते क्योंकि वास्तवमें तदाकार असम्भव होनेपरभी तत्सादृश्य सम्भव हो सकता है अतएव सूत्रकारनेभी इवशब्दका प्रयोग किया स्वस्वविषयमें अप्रवृत्ति होनेंसे चित्तस्वरूपानुकरणके समान इन्द्रियोंका प्रत्याहार है इति ॥ ८८ ॥

सादृश्यञ्च चित्तानुकारनिमित्तं विषयासम्प्रयोगः । यदा चित्तं निरुध्यते तदा चक्षुरादीनां निरोधे प्रयत्नान्तरं नापेक्षणीयं यथा मधुकरराजं मधुमक्षिका अनुवर्त्तन्ते तथेन्द्रियाणि चित्तमिति । तदुक्तं विष्णुपुराणे "शब्दादिष्वनुरक्तानि निगृह्याक्षाणि योगवित् । कुर्याच्चित्तानुकारीणि प्रत्याहारपरायणः ॥" इति ॥ वश्यता परमा तेन ज्ञायतेऽतिचलात्मनः । इन्द्रियाणामवश्यैस्तैर्योगी योगस्य साधकः ॥" इति च ॥ ८९ ॥

सादृश्यकीभी चित्ताकारस्थिति निमित्तविषयमें अप्रवृत्ति है जब चित्त रुक जाता है तब चक्षुरादिकी निवृत्तिके लिये प्रयत्नान्तरकी अपेक्षा नहीं होती जिस प्रकार मधुकरराजके चलनेपर मधुमक्षिका सभी चलती हैं स्थिर होनेपर स्थिर हो जाती हैं तिसी प्रकार चित्तके स्थिर होनेपर सब इन्द्रियें स्थिर हो जाती हैं योगक्रियाको जाननेवाले प्रत्याहारपरायण होकर शब्दादिविषयोंमें आसक्त इन्द्रियोंको चित्तकी समान करें चञ्चलात्माको उससे अतिशय वश्यता होती है ॥ ८९ ॥

नाभिचक्रहृदयपुण्डरीकनाडयग्रादावाध्यात्मिके हिरण्यगर्भवासप्रजापतिप्रभृतिके बाह्ये वा देशे चित्तस्य विषयान्तरपरिहारेण स्थिरीकरणं धारणा । तदाह देशबन्धश्चित्तस्य धारणेति ।

पौराणिकाश्च—"प्राणायामेन पवन प्रत्याहारेण चेन्द्रियम् । वशीकृत्य ततः कुर्याच्चित्तस्थानं शुभाश्रयम् ॥" इति । तस्मिन् देशे ध्येयावलम्बनस्य प्रत्ययस्य विसदृशप्रत्ययप्रहाणेन प्रवाहो ध्यानम् । तदुक्तं 'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्' इति । अन्यैरप्युक्तम्—"तद्रूपप्रत्ययैकाग्र्या सन्ततिश्चान्यनिस्पृहा । तद्ध्यानं प्रथमरेगः षड्भिर्निष्पाद्यते तथा ॥" इति ॥ ९० ॥

नाभिचक्र, हृदयपुण्डरीक, नासिकाके अग्रभागादि आध्यात्मिकमें अथवा हिरण्यगर्भवास, प्रजापति प्रभृति बाह्यदेशमें विषयान्तरसे हटाकर चित्तको स्थिर करना धारणा है अतएव सूत्रकारने देशबन्धको चित्तकी धारणा कहा पौराणिकोंनेभी प्राणायामसे पवन और प्रत्याहारसे इन्द्रियको वश करके अनन्तर शुभ स्थानमें चित्तको स्थापन करना कहा है जिस देशमें चित्तको रोका (धारणा) है उस देशमें ध्येयावलम्बन (जिस को ध्यान किया हो) बुद्धिको उस ध्येयसे अन्यविषयोंमें न जाने देकर एकरूप प्रवाह होनेका नाम ध्यान है (ऐसा सूत्रकारनेभी) कहा है अन्य विषयोंसे निस्पृह होकर जो एक देह माना हो उसमें एकाग्रता बढाना ध्यान है यह पूर्वोक्त यम नियम और प्रत्याहारादि छः अंगोंसे होता है ऐसा पौराणिकोंनेभी कहा है ॥ ९० ॥

प्रसंगाच्चरममंगं प्रागेव प्रात्यपीपदामः । तदनेन योगांगानुष्ठानेनादरनैरन्तर्यदीर्घकालासेवितेन समाधिप्रतिपक्षक्लेशप्रक्षयेऽभ्यासवैराग्यवशान्मधुमत्यादिसमाधिलाभो भवति ॥ ९१ ॥

समाधिरूप आठवें अङ्गको प्रथमही कह चुका हूं उक्त योगांगको आदरपूर्वक निरन्तर दीर्घ कालतक अनुष्ठान करनेसे समाधिके प्रतिद्वन्द्वी क्लेश क्षीण होनेपर अभ्यास और वैराग्यवश मधुमति ज्योतिष्मति आदि समाधियें प्राप्त होती हैं ॥ ९१ ॥

अथ किमेवमकस्मादस्मानतिविकटाभिरत्यन्ताप्रसिद्धाभिः कर्णाटगौडलाटभाषाभिर्भीषयते भवान् । न हि वयं भवन्तं भीषयामहे किन्तु मधुमत्यादिपदार्थव्युत्पादनेन तोषयामः । ततश्चाकुतोभयेन भवता श्रूयतामवधानेन ॥ ९२ ॥

प्रश्न—अहो क्यों आप अकस्मात् अत्यन्त अप्रसिद्ध व अतिकठोर कर्णाटक गौड लाट भाषाओंसे हम लोगोंको डरातें हो । उत्तर—नहीं नहीं, मैं डरता नहीं हूं मधुमत्यादिपदार्थको व्युत्पादन करके प्रसन्न कराता हूं ॥ ९२ ॥

तत्र मधुमती नामाभ्यासवैराग्यादिवशादपास्तरजस्तमोलेश-सुखप्रकाशमयसत्त्वभावनयानवद्यवैशारद्यविद्योतनरूपऋतम्भर प्रज्ञाख्यासमाधिसिद्धिः । तदुक्तम् 'ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा' इति । ऋत सत्यं बिभर्त्ति कदाचिदपि न विपर्ययेणाच्छाद्यते तत्र स्थितौ दाढर्चे सति द्वितीयस्य योगिनः सा प्रज्ञा भवती-त्यथः ॥ ९३ ॥

सावधानचित्तसे सुनिये । मधुमति उसको कहते हैं जो अभ्यास और वैराग्यसे रजस्तमोलेशशून्य सुख एवं प्रकाशरूप सत्त्वभावनावश स्वच्छ और स्फुटप्रकाशरूप ऋतम्भरप्रज्ञा समाधि सिद्धि हो ऋत अर्थात् सत्यको भरण करे कभीभी विपरीतसे आच्छादित न हो उस स्थितिमें दृढ होनेसे द्वितीययोगीको वही प्रज्ञा होती है॥९३॥

चत्वारः खलु योगिनः प्रसिद्धाः प्रथमकल्पिको मधुभूमिकः प्रज्ञाज्योतिरतिक्रान्तभावनीयश्चेति । तत्राभ्यासी प्रवृत्तिमा-त्रज्योतिः प्रथमः । न त्वनेन परचित्तादिगोचरज्ञानरूपं वै ज्योतिर्वशीकृतमित्युक्तं भवति । ऋतम्भरप्रज्ञो द्वितीयः । भूतेन्द्रियजयी तृतीयः । परवैराग्यसम्पन्नश्चतुथः ॥ ९४ ॥

चार प्रकारके योगी होते हैं प्रथम कल्पिक, मधुभूमिक, प्रज्ञाज्योति और अति-क्रान्तभावनीय अभ्यास करनेवाले प्रवृत्तिमात्र ज्योति प्रथम हैं । उन्होंने पराचित्त ज्ञानरूप ज्योतिको वश नहीं किया है । ऋतम्भर प्रज्ञा द्वितीय है । भूत और इन्द्रि-यको जय करनेवाले तीसरे हैं । परवैराग्यसम्पन्न चौथे हैं ॥ ९४ ॥

मनोजवित्वादयो मधुप्रतीकसिद्धयः । तदुक्तं मनोजवित्वं विक-रणाभावः प्रधानजयश्चेति । मनोजवित्वं नाम कायस्य मनो-वदुत्तमो गतिलाभः । विकरणाभावः कायनिरपेक्षाणामिन्द्रि-याणामभिमतदेशकालविषयापेक्षवृत्तिलाभः । प्रधानजयः प्रकृतिविकारेषु सर्वेषु वशित्वम् ॥ ९५ ॥

मनोजवित्व, विकरणाभाव, प्रधान जय, प्रभृति मधुप्रतीक सिद्धि हैं । मनके समान गति शरीरकी हो जाना मनोजवित्व है । शरीरनिरपेक्ष होकर इन्द्रियोंको देशकालादि अपेक्षित विषयप्राप्ति विकरणाभाव है । प्रकृतिके विकार महदादिको वश करना प्रधान जय है ॥ ९५ ॥

एताश्च सिद्धयः करणपञ्चकस्वरूपजयात् तृतीयस्य योगिनः प्रादुर्भवन्ति । यथा मधुन एकदेशोऽपि स्वदते तथा प्रत्येकमेव ताः सिद्धयः स्वदन्त इति मधुप्रतीका सर्वभावाद्यधिष्ठातृत्वादिरूपा विशोका सिद्धिः । तदाह, सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रप्रतिष्ठस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञत्वं चेति । सर्वेषां व्यवसायाव्यवसायात्मकानां गुणपरिणामरूपाणां भावानां स्वामिवदाक्रमणं सर्वभावाधिष्ठातृत्वं तेषामेव शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मित्वेन स्थितानां विवेकज्ञानं सर्वज्ञातृत्वम् । तदुक्तं विशोका वा ज्योतिष्मतीति ॥ ९६ ॥

यह सिद्धियां करणपञ्चकजयसे तृतीय योगीको प्राप्त होती हैं जिस प्रकार मधुके एक देशकाभी आस्वादन किया जाता है । तिसी प्रकार प्रत्येक सिद्धिका आस्वादन किया जाता है । मधुमतीक समस्त वस्तुका अधिष्ठातृत्वरूप विशोक सिद्धि है । कहा है सत्त्व पुरुषको अन्यत्व भेद ख्यातिमात्र प्रतिष्ठितको समस्तवस्तुका अधिष्ठातृत्व और सर्वज्ञत्व होता है समस्त व्यवसायाव्यवसायात्मक गुणपरिणामरूप भावको स्वामीके समान आक्रमण करना सर्वभावाधिष्ठातृत्व है उसीको शान्तोदिता व्यपदेश (व्यवहार) से स्थितोंका विवेकज्ञानही सर्वज्ञातृत्व है । तदुक्तम्–विशोका ज्योतिष्मतीति ॥ ९६ ॥

सर्ववृत्तिप्रत्यस्तमये परं वैराग्यमाश्रितस्य जात्यादिबीजानां क्लेशानां निरोधसमर्थो निर्बीजः समाधिः असम्प्रज्ञातपदवेदनीयः संस्कारशेषताव्यपदेश्यः चित्तस्यावस्थाविशेषः । तदुक्तं, 'विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः 'इति ॥ एवञ्च सर्वतो विरज्यमानस्य तस्य पुरुषधौरेयस्य क्लेशबीजानि च निर्दग्धशालिबीजकल्पानि प्रसवसामर्थ्यविधुराणि मनसा सार्द्धं प्रत्यस्तं गच्छन्ति ॥ ९७ ॥

समस्त वृत्तियोंके लय होनेपर परवैराग्यसे जात्यादि बीजके निरोधमें समर्थ निर्बीज समाधि है । असम्प्रज्ञातपदवाच्य संस्कारविशेषरूप चित्तकी अवस्थाविशेष है। यही सूत्रकारनेभी विरामेत्यादिसे कहा है । एवं समस्त वस्तुओंसे विरक्त श्रेष्ठ पुरुषके भुने हुए धानोंकी समान क्लेश बीज उत्पत्तिमें असमर्थ होकर मनके साथही नष्ट हो जाते हैं ॥ ९७ ॥

तदेतेषु प्रलीनेषु निरुपप्लवविवेकख्यातिपरिपाकवशात् कार्यकारणात्मकानां प्रधाने लयः चितिशक्तिस्वरूपप्रतिष्ठा पुनर्बुद्धिसत्ताभिसम्बन्धविधुरा कैवल्यं लभते इति । सिद्धिद्वयी च मुक्तिरुक्ता पतञ्जलिना 'पुरुषार्थशून्यानां प्रतिप्रसवस्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिः' इति ॥ ९८ ॥

क्लेशादिकके नष्ट होनेपर निरन्तरायविवेकख्यातिके परिपाकसे कार्यकारणात्मक स्थूल सूक्ष्मभूतादिक प्रधानमें लीन होता है चितिशक्ति (आत्मा) असंगादिस्वरूपस्थ होता है अनन्तर बुद्धिके साथ सम्बन्ध न होनेसे कैवल्य (मोक्ष) प्राप्त होताहै उक्त कार्यकारणात्मक गुणोंको प्रधानमें लय और स्वरूपप्रातिष्ठारूप सिद्धि द्वयात्मक मुक्ति पतञ्जलिनेभी कही है पुरुषार्थशून्यानामित्यादि ॥ ९८ ॥

न चस्मिन् सत्यपि कस्मान्न जायते जन्तुरिति वदितव्यं कारणाभावात् कार्याभाव इति प्रमाणसिद्धार्थे नियोगानुयोगयोरयोगात् । अपरथा कारणाभावेऽपि कार्यसम्भवे मणिवेधादयोऽन्धादिभ्यो भवेयुः तथाचानुपपन्नार्थतायामाभाणको लौकिक उपपन्नार्थो भवेत् । तथाच श्रुतिः—'अन्धो मणिमविन्दत्' आविध्यत् तमनंगुलिरावयत् गृहीतवान् अग्रीवः प्रत्यमुञ्चत् पिनद्धवान् तमजिह्वो वा असंस्तुत अभ्यपूजयत् स्तुतवानिति यावत् ॥ ९९ ॥

यदि शंका करें कैवल्य होनेपरभी जीवको पुनः संसारमें जन्ममरणादि क्यों नहीं होते अद्वैतियोंके समान अविद्यारूपोपाधि नष्ट होनेपर तादृशोपाधिकृत जीवस्वरूपभी नष्ट होकर निर्विशेष चिन्मात्र ब्रह्मतत्त्वही रहता है जिस प्रकार घट नष्ट होनेसे घटाकाश कोई चीज नहीं महाकाशही रहता है यह पातञ्जलके मतमें कह नहीं सकते क्योंकि उनके मतमें जीव और ईश्वर भिन्न हैं और दोनों नित्य हैं । ईश्वरप्रणिधानसे मुक्तिसाधन कहा है । प्रातिबिम्बप्रतिबिम्बीमें ध्यानध्येय मानना अविद्याकी परा

काष्ठा है । अतः पातञ्जलके मतमें पुनः उत्पत्ति आनिवार्य होगी तो उसका अपरथा कारणके न रहनेपर कार्य नहीं होता है इसमें किसीकी विप्रतिपत्ति नहीं । यह कारणाभावमेंभी कार्य होता तो अन्धभी मणिको भेदन करने लगेगा जिसके अंगुली न हो वहभी मुट्ठीमें ग्रहण करने लगेगा, जिसके हाथ न हो वह वस्त्र बुनने लगेगा जिह्वा न होनेपरभी स्तुति करने लगेगा अपरिचितभी पूजा करने लगेगा ॥ ९९॥

एवञ्च चिकित्साशास्त्रवद्योगशास्त्रंचतुर्व्यूहम् । यथा चिकित्सा-शास्त्रं रोगो रोगहेतुरारोग्यं भेषजमिति तथेदमपि संसारःसंसारहे-तुर्मोक्षो मोक्षोपाय इति ।तत्र दुःखमयः संसारो हेयः प्रधानपुरु-षयोः संयोगो हेयभोगहेतुः तस्यात्यन्तिकी निवृत्तिर्हानं तदु-पायः सम्यग् दर्शनम् । एवमन्यदपि शास्त्रं यथासम्भवं चतु-र्व्यूहमूहनीयमिति सर्वमवदातम् ॥ १२० ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहे पातञ्जलदर्शनम् ॥ १५ ॥

तथा च चिकित्साशास्त्रके समान योगशास्त्रभी चार व्यूह हैं चिकित्साशास्त्रमें रोग, रोगका कारण, आरोग्य और औषध ये चार व्यूह हैं । योगशास्त्रभी संसार, संसारहेतु, मोक्ष और मोक्षोपाय इन चारोंसे युक्त है दुःखमय संसार हेय है प्रधान और पुरुषका संयोग संसारभोगरूप हेयका हेतु है उसकी अत्यन्त निवृत्ति मोक्ष है सम्यक् ज्ञान मोक्षोपाय है इस प्रकार अन्य शास्त्रोंकेभी यथासम्भव चार व्यूह जानना चाहिये ॥ १०० ॥

वानाद्रिमुनिसंपातप्रेम्णा गोविन्दसूरिणा ।
कृतोऽयमनुवादोऽस्तु श्रीनिवासमुदे सदा ॥
मासेऽस्मिन्नभसि क्षपाकरदिने पक्षेऽवलक्ष तिथौ
पञ्चम्यां वसुधावसुग्रहमितेप्येकादक वत्सरे ॥
गोविन्दार्यसुधीवरः स्वरचितं भाषानुवादं सतां
पादाब्जेऽपि निवेशयामि तमिमं गृह्णन्तु सन्तो मुदा ॥
इति सर्वदर्शनसंग्रहे पातञ्जलदर्शन समाप्त हुआ ॥ १५ ॥

इति सर्वदर्शनसंग्रहग्रन्थ समाप्त·